कक्षा 11

पर्यावरण विज्ञान-I

कक्षा 11
पर्यावरण विज्ञान-I

पर्यावरण विज्ञान-I

कक्षा – 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : पर्यावरण विज्ञान–I
कक्षा – 11

लेखकगण

डॉ. गौतम कुमार कूकड़ा (संयोजक)
विभागाध्यक्ष, वनस्पतिशास्त्र
महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चित्तौड़गढ़

डॉ. भगवती लाल जागेटिया
विभागाध्यक्ष, वनस्पतिशास्त्र
माणिक्यलाल वर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय भीलवाड़ा

डॉ. ज्योति चौधरी
सहायक आचार्य, पॉलीमरसाइन्स
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

श्री कुलदीप सिंह रत्नू
प्रधानाचार्य
रा. उ. मा. वि., टहला (नागौर)

प्रस्तावना

पर्यावरण शिक्षा का महत्व प्राचील काल से ही रहा है तथा उस समय से ही मनुष्य इसके संरक्षण के लिए सजग रहा है। लेकिन आधुनिक काल में मनुष्य की आवश्यकताओं में वृद्धि होती गई तथा औद्योगीकरण, शहरीकरण व वैश्वीकरण के चलते पर्यावरण का अत्यन्त नुकसान हुआ है। इसके दुष्परिणाम भी हमारे सामने भूकम्प, अतिवृष्टि, बाढ़, सुनामी, अव्यवस्थित ऋतु चक्र के रूप में आ रहे हैं। पर्यावरण की समस्याओं के सम्बन्ध में जनमानस को जागृत करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपना दायित्व समझे तो ही पर्यावरण संरक्षण की चेतना जनमानस में जागृत की जा सकती है।

इसी सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के नवीन पाठ्यक्रमानुसार यह पुस्तक लिखी गयी है। इस पाठ्यपुस्तक की सफलता एवं उपादेयता शिक्षकों तथा छात्रों की पाठ्यक्रम के प्रति निष्ठा एवं प्रतिबद्धता पर निर्भर करेगी। इसके लिए इस पाठ्य सामग्री का शिक्षक एवं विद्यार्थियों को सहजतापूर्वक उपलब्ध होना आवश्यक है।

तदनुसार कक्षा 11 के विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण शिक्षा अध्ययन की पुस्तक प्रस्तुत है। कक्षा 11 की पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए स्तरीय, प्रासंगिक, रोचक, सहज व सरल सामग्री सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। आशा है कि इस पाठ्यपुस्तक के माध्यम से वर्तमान परिवेश में पर्यावरण विज्ञान के विभिन्न आयामों को समझने में सहायता मिलेगी।

पुस्तक के इस संस्करण में जो भी त्रुटियाँ अथवा कमियाँ होगी, इस सम्बन्ध में शिक्षकगण एवं विद्यार्थीगण अपने अमूल्य सुझावों से अवगत करायेंगे।

— संयोजक एवं लेखकगण

अनुक्रमणिका

पर्यावरण विज्ञान – I

पृष्ठ संख्या

इकाई – 1 पृथ्वी तंत्र तथा पारिस्थिति कारक 1

सौर तंत्र, पृथ्वी की संरचना, पृथ्वी के वायुमण्डल का विकास, पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति, वायुमण्डल का संगठन, पारिस्थितिकी परिचय, पर्यावरणीय कारक, जलवायवीय कारक, स्थलीय या भूआकृतिक कारक, मृदीय कारक, जैविक कारक, जैविक अन्योन्यक्रियाएं, धनात्मक अन्योन्यक्रियाएं, सहोपकारिता, प्राक्सहयोगिता, सहभोजिता, ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं, शोषण, प्रतिजीविता, स्पर्धा, पारिस्थितिकी नियम– सहनशीलता का नियम, न्यूनता का नियम

इकाई – 2 जनसंख्या और समुदाय 25

परिभाषा, जनसंख्या के अभिलक्षण, आकार एवं घनत्व, प्रकीर्णन, जन्म दर, मृत्यु दर, आयु संरचना, लिंगानुपात, वृद्धि दर, जैविक विभव, समुदाय पारिस्थितिकी, पादप समुदाय के लक्षण, गुणात्मक लक्षण, परिमाणात्मक लक्षण, संश्लेषणात्मक लक्षण, अनुक्रमण के प्रकार, मरुक्रमक एवं जलक्रमक

इकाई – 3 पारिस्थितिकी तंत्र 46

परिचय, पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा, पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार, स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र – वन पारिस्थितिकी तंत्र, घास स्थल पारिस्थितिकी तंत्र, मरूस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र, जलीय – ताल पारिस्थितिकी तंत्र, सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र, पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना – पारिस्थितिकी तंत्र के घटक– अजैविक एवं जैविक, पारिस्थितिकी पिरेमिड – संख्या का पिरेमिड, जैवभार का पिरेमिड, ऊर्जा का पिरेमिड, पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता – पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता, पारिस्थितिकी तंत्र की खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल, पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह, जैव भू रसायनिक चक्र

इकाई – 4 जैवविविधता एवं वन्य जीवन 60

परिचय, जैवविविधता के प्रकार, जैवविविधता के उपयोग, जैवविविधता की पारिस्थितिकीय सेवाएं, जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र, संकटापन्न प्रजातियाँ, विशेष क्षेत्रीय जातियाँ, विश्वव्यापी स्तर पर जैवविविधता, राष्ट्रीय स्तर पर जैवविधिता, भारत एक वृहद् विविधता का देश, जैवविविधता एवं वन्य जीव संकट, जैवविविधता संरक्षण, प्रजाति उन्मुख परियोजनाएँ, चिपको आन्दोलन

इकाई – 5 प्राकृतिक संसाधन 80

परिचय, वन संसाधन, खाद्य संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन, ऊर्जा संसाधन – नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत, अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत, ऊर्जा आवश्यकता, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत

पर्यावरण विज्ञान – II

इकाई – 1 पर्यावरणीय प्रदूषण एवं मानव स्वास्थ्य 105

परिचय, प्रदूषण की परिभाषा, प्रदूषण के प्रकार – वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे – वैश्विक ताप वृद्धि, ओजोन परत क्षरण

इकाई – 2 हरित प्रौद्योगिकी 129

परिभाषा, हरित प्रौद्योगिकी की अवधारणा, प्राकृतिक संसाधनों की सतत् अवधारणा, सतत विकास, जनसंख्या वृद्धि एवं संसाधनों की उपलब्धता, प्राकृतिक सम्पदा, पारिस्थितिकी पद चिन्ह, अपशिष्ट एवं उनका प्रबन्धन,व्यक्ति, 3 आर – पुनः चक्रण, घटाना और पुनः उपयोग, जल उपचार, ऊर्जा संरक्षण, ऊर्जा के स्रोत– सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, पर्यावरण अंकन, जीवन चक्र समीक्षा, ग्रीन बेल्ट, हरित अर्थ व्यवस्था, ग्रीन बैंकिंग, स्वच्छ विकास प्रणाली

इकाई – 3 पर्यावरण कानून और अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं 151

48. I अनुच्छेद, 51. I अनुच्छेद, पयार्वरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981, जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974, वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972, वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980, ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000, राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण कानून, 2010, पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय कानून – मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, क्योटो प्रोटोकॉल, स्टॉकहोम सम्मेलन, रामसर समझौता, पृथ्वी सम्मेलन, पर्यावरण कानून लागू करने में बाधाएं

इकाई – 4 पर्यावरणीय जैव प्रौद्योगिकी 161

परिचय, अपशिष्ट जल उपचार, ठोस अपशिष्ट – स्रोत, उपचार व प्रबन्धन, वर्मी कम्पोस्ट, जीनोबायोटिक्स, तेल प्रदूषक, अपमार्जक, समन्वित पीड़क, प्रबन्धन, आनुवंशिक रूपान्तरित जीव – ट्रान्सजैनिक पादप, ट्रान्सजैनिक जन्तु

इकाई – 5 पर्यावरण एवं समाज 174

परिचय, पर्यावरण ह्रास के कारण, पर्यावरणीय शिक्षा एवं चेतना, पर्यावरणीय नैतिकता, पर्यावरण संरक्षण में समुदाय की भागीदारी, भारतीय परम्पराएं एवं पर्यावरण, वर्षा जल पुनर्भरण, बंजर भूमि सुधार, आपदाएं एवं उनका प्रबन्धन – भूकम्प, भूस्खलन, बाढ़, सुनामी, आग, ज्वालामुखी, चक्रवात, नाभिकीय दुर्घटना

इकाई – 1
पृथ्वी तंत्र तथा पारिस्थितिकीय कारक
(Earth System and Ecological Factors)

परिचय

सौर तंत्र (Solar System)

हमारा ब्रह्माण्ड सूर्य, विभिन्न ग्रहों, पृथ्वी, चन्द्रमा तथा लाखों तारों से मिलकर बना है। इन तारों में सूर्य भी एक तारा है जो पृथ्वी के सबसे नजदीक स्थित है। यह पृथ्वी से 1.5 करोड़ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। सूर्य के चारों ओर घेरे में असंख्य क्षुद्रग्रह (Asteroid) तथा धूमकेतु (Comets) पाये जाते हैं। सूर्य और उसके परिवार को सौरमण्डल कहते हैं। सौरमण्डल में सूर्य मध्य में होता है तथा उसके चारों ओर विभिन्न ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं (चित्र 1.1)। पूर्व में सौरमण्डल के नौ ग्रह माने जाते थे। बुध (Mercury), शुक्र (Venus), मंगल (Mars), बृहस्पति (Jupiter), शनि (Saturn), अरूण (Uranus), वरूण (Neptune), पृथ्वी (Earth), यम (Pluto) परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक मान्यतानुसार प्लूटो को ग्रह का दर्जा नहीं दिया गया है। अतः वर्तमान में सूर्य के कुल आठ ग्रह हैं।

सौरमण्डल में पाये जाने वाले 8 ग्रहों का विवरण निम्न प्रकार है –

1. बुध (Mercury) – सूर्य के सबसे नजदीक ग्रह है। इसका जो भाग सूर्य के सामने आता है उसका तापमान 427° सेल्सियस होता है। यहाँ वायुमण्डल नहीं पाया जाता है।
2. शुक्र (Venus) – यह पृथ्वी के सबसे नजदीक ग्रह है जो पृथ्वी से 40 लाख किमी दूर है। यह अत्यन्त गर्म ग्रह है जिसका तापक्रम 480° C है। इसके वायुमण्डल में 96% CO_2, SO_2 एवं CO जैसी गैसें पाई जाती हैं।
3. पृथ्वी (Earth) – यह सौरमण्डल का एक ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीव जन्तु, पौधें आदि पाये जाते हैं क्योंकि पृथ्वी पर ही जल व वायु की उपस्थिति है जो जीवन के लिए आवश्यक है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमती

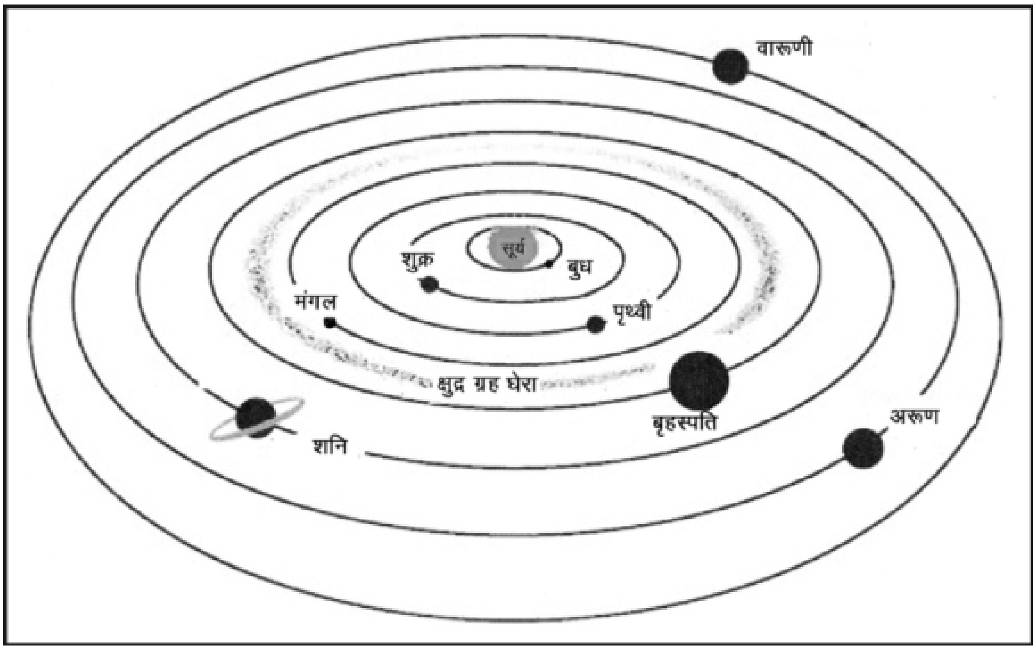

चित्र 1.1: सूर्य एवं उसकी परिक्रमा करते ग्रह

रहती है जिससे 24 घण्टे का दिन व रात का चक्र बनता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाने के साथ–साथ सूर्य के चारों ओर भी चक्कर लगाती है जिसमें 365¼ दिन लगते हैं।

पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा चक्कर लगाता है तथा चन्द्रमा को एक चक्कर पूरा करने में 27.33 दिन लगते हैं। चन्द्रमा पर जल हवा एवं जीवन नहीं पाया जाता है।

4. मंगल (Mars) – यह भी पृथ्वी के नजदीक का ग्रह है। इसे लाल ग्रह भी कहते हैं। इसमें 85% CO एवं लाल धूल है। यह अन्य ग्रहों की तुलना में ठण्डा ग्रह है लेकिन अभी भी इस पर जीवन की उपस्थिति के बारे में पूर्णतः मान्यता नहीं है।

5. बृहस्पति (Jupiter) – यह सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है तथा इसे अमोनिया के बादलों का गोला भी कहते हैं जो अत्यन्त तेजी से घूमता रहता है। इसकी सतह भी ठोस नहीं है।

6. शनि (Saturn) – इसमें मुख्यतः हाइड्रोजन एवं हीलियम गैस पाई जाती है। इसमें 90% नाइट्रोजन भी होती है। इसका तापमान 187° से रहता है। इसके चारों ओर एक घेरा पाया जाता है। इस पर हाइड्रोजन सायनाइड जैसी विषैली गैस पाई जाती है।

7. अरूण (Uranus) – यह बहुत ही ठण्डा ग्रह है। सूर्य से दूरी के दृष्टि से सातवें स्थान पर है। यह वरूण के साथ सौरमण्डल का सबसे बाहरी ग्रह है। इसकी घूर्णन धूरी सबसे अधिक झुकी हुई है।

8. वरूण (Neptune) – पृथ्वी के मुकाबले बहुत ही छोटा, ठण्डा ग्रह है। इस पर अत्याधिक अंधकार रहता है। इसकी सतह जमी हुई मीथेन से ढकी रहती है। सौरमण्डल का अंतिम ग्रह है तथा सूर्य से सबसे दूर स्थित है।

पृथ्वी का उद्गम (Origin of Earth)

पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में समय–समय विभिन्न वैज्ञानिकों ने अलग–अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किये उसमें सबसे अधिक मान्यता बिग बैंग के सिद्धान्त को मिली है। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का उद्भव एक विशाल विस्फोट से हुआ जिसके कारण धूल मिट्टी एवं गैस घर्षण के कारण गोल–गोल घूमने लगे इसके फलस्वरूप केन्द्रीय स्थान अत्यधिक गर्म हो गया उससे सूर्य की उत्पत्ति हुई, साथ ही इस धूल और गैस के गोले के किनारों से धूल के बड़े–बड़े टुकड़े टूट कर गिरे इससे गेंद के आकार के विभिन्न ग्रहों का निर्माण हुआ।

लगभग 4.5×10^{11} वर्ष पहले पृथ्वी एक विस्फोट के साथ अलग हुई जो कि अत्यधिक गर्म सफेद रंग के गैस और धूल के समूह के रूप में थी। काफी समय बीतने के पश्चात् धूल और गैस के संघनित होने से यह चट्टान में बदल गई। उसके लाखों वर्षों के बाद पृथ्वी के बाहरी सतह तो ठण्डी हो गई लेकिन उसका भीतरी हिस्सा अब भी बहुत गर्म है। पृथ्वी के ठण्डी होने से उसकी बाहरी परत सख्त हो गई और भूमि में परिवर्तित हुई तथा संघनित जल वाष्प से जल बना जिससे गड्ढे भरे और समुद्रों का निर्माण हुआ।

पृथ्वी की संरचना (Structure of Earth)

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना में तीन मुख्य परतें पायी जाती हैं (चित्र 1.2) –

1. पटल या पर्पटी (Sial) – यह सबसे बाहरी परत है जो लगभग 100 कि.मी. मोटी है। पटल की ऊपरी परत अवसादी (Sedimentry) पदार्थों से बनी है जिसके नीचे आग्नेय व कायान्तरित चट्टानें हैं। तथा पटल की निचली परत बेसाल्टी व अल्ट्रा बेसाल्टी चट्टानों से बनी है। महाद्वीपों का निर्माण सिलिका व एल्युमिनियम से हुआ है जिसे स्याल (Si + Al) कहते हैं। जबकि महासागरों का निर्माण सिलिका व मैग्नीशियम से हुआ है। इसे स्याम (Si + Mg) कहते हैं। पटल पृथ्वी के कुल आयतन की मात्र 0.5% है।

2. प्रावार (Mantle) – यह पृथ्वी की सतह से 100–2900 कि. मी. के मध्य स्थित है। मेंटल के बाहरी परत अंशत स्यामिक है तथा प्लास्टिक संहति की तरह व्यवहार करती है। इस परत में सिलिकन (Si), मैग्नीशियम (Mg), आयरन (Fe) का भारी मिश्रण तथा निकेल (Ni) पाये जाते हैं। यह परत पृथ्वी के कुल आयतन की 16% है।

3. केन्द्रक या कोर (Core) – यह पृथ्वी की सबसे भीतरी परत

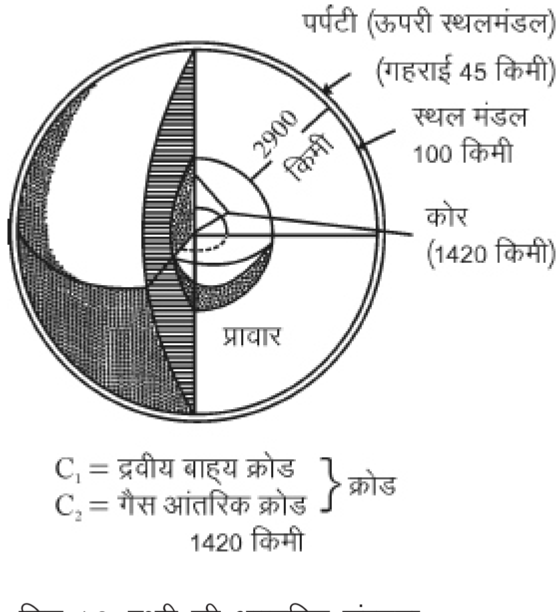

चित्र 1.2: पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

है जो 2900–6400 कि.मी. की गहराई में स्थित है। यह पृथ्वी के कुल आयतन का 83% है। इस परत में उच्च घनत्व के भारी धातु व सिलिकेट का मिश्रण पाया जाता है। यह मुख्यतः निकेल (Ni) व आयरन (Fe) से बनी है। यह भाग गर्म एवं तरल है। यहाँ का तापमान 5000°C के आसपास है।

पृथ्वी के वायुमण्डल का विकास

(Evplution of Atmosphere on Earth)

पृथ्वी पर वायुमण्डल की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह प्रश्न उतना ही जटिल है जितना कि स्वयं पृथ्वी की उत्पत्ति। जलवायुशास्त्री क्रिचफील्ड के अनुसार आज से लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व (कैम्ब्रियन युग) वायुमण्डल अस्तित्व में आया होगा।

वैज्ञानिकों के अनुसार सर्वप्रथम हीलीयम तथा हाइड्रोजन जैसी अत्यधिक हल्की गैसें पृथ्वी से अलग हुई होगी जिनसे प्राथमिक वायुमण्डल का निर्माण हुआ होगा। वर्तमान में यह प्रमाणित है कि ये दोनों गैसें वायुमण्डल में अत्यधिक ऊँचाई पर पायी जाती है। कालान्तर में प्राथमिक वायुमण्डल में निरन्तर विकास व परिवर्तन होते रहे तथा स्थलमण्डल व जलमण्डल का विकास होता गया। पृथ्वी का भार 6.6×10^{12} टन है तथा सम्पूर्ण वायुमण्डल का भार 5.6×10^{15} टन है। वायुमण्डल का 99% भाग पृथ्वी के 30 कि.मी. की ऊँचाई तक केन्द्रित है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वायुमण्डल इससे बंधा हुआ है। वायुमण्डल की ऊपरी स्तर की सीमा 10000 कि.मी. से प्रारम्भ होती है। उपग्रहों से प्राप्त आधुनिक जानकारी के अनुसार 100 कि.मी के बाद हल्की गैसें अलग हो जाती है। पृथ्वी से 100–200 कि.मी की ऊँचाई पर नाइट्रोजन परत है, उसके बाद पृथ्वी से 200–1100 कि. मी. तक ऑक्सीजन की परत तथा 1100–3500 कि.मी. तक हीलीयम की परत है उसके ऊपर हाइड्रोजन की परत है जिसके फैलाव की ऊपरी सीमा स्पष्टतः जानकारी में नहीं है।

वायुमण्डल पृथ्वी पर आने वाली हानिकारक विकिरणों से रक्षा करता है। इस प्रकार यह ग्रीन हाउस प्रभाव की तरह कार्य करता है साथ ही वायुमण्डल में प्रतिरोधात्मक शक्ति होने के कारण अंतरिक्ष से आने वाले आकाशीय उल्का पिण्ड पृथ्वी पर पहुंचने से पहले ही नष्ट हो जाते हैं।

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति

(Origin of Life on Earth)

ऐसा माना जाता है कि कोई 15–20 खरब वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई तथा 4.5 खरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण हुआ होगा। लेकिन उस समय पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं था। वायुमण्डल में प्रारम्भ में मीथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन, कार्बनडाइऑक्साइड गैसें थी। जलीय वाष्प भी वायुमण्डल में प्रचुर मात्रा में उपस्थित था लेकिन मुक्त ऑक्सीजन न होने के कारण जीवन की कोई कल्पना नहीं की जा सकती थी।

जैसे–जैसे पृथ्वी ठण्डी होती गयी, जलवायु में संघनन की क्रिया होने से वह जल में परिवर्तित हुई, इससे वर्षा होकर जलाशयों का निर्माण हुआ और पानी में जीवन के अणु उत्पन्न हुए। इनसे ही आगे चलकर जीवाणुओं का विकास हुआ। ये जीवाणु ही सबसे आदिम व सबसे सरल जीव थे। जीवाश्मीय प्रमाणों के आधार पर जीवाणुओं की उत्पत्ति 3.5 अरब वर्ष पूर्व मानी गयी है। कालान्तर में (लगभग 2 अरब वर्ष पूर्व) विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं में से किसी एक में क्लोरोफिल नामक वर्णक का विकास हुआ और ये क्लोरोफिल युक्त जीवाणु जल व कार्बनडाइऑक्साइड का उपयोग कर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ऑक्सीजन छोड़ते थे। इस प्रकार ऑक्सीजन वायुमण्डल में एकत्रित होना शुरू हुई, और एक समय पर इसकी मात्रा वायुमण्डल में 21% हो गयी।

समय बीतने के साथ जीवाणुओं से प्रोटिस्ट (प्रजीन) विकसित हुए। जीवाणु व प्रोटिस्ट दोनों एक कोशिकीय जीव है उसके बाद बहुकोशिकीय फफूंदों का उद्‌भव हुआ। तथा बाद में पौधे व जन्तुओं का विकास हुआ (चित्र 1.3)। वर्तमान में जीवधारियों में पाँच जगत सम्मिलित है – मोनेरा, प्रोटिस्टा, फफूंद, प्लांटी और एनीमेलिया।

वायुमण्डल का संघटन

(Composition of Atmosphere)

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसों के साथ जलवाष्प एवं धूल के कण पाये जाते हैं। वायुमण्डल के निचले हिस्से में भारी गैंसे पायी जाती है जैसे कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा ये सक्रिय गैसें है। जबकि अधिक ऊँचाई पर निष्क्रिय गैसें पायी जाती है जैसे हीलियम, नियॉन, क्रिप्टॉन आदि।

उपरोक्त गैसों में नाइट्रोजन व ऑक्सीजन मिलकर वायुमण्डल का (99%) भाग बनाती है। नाइट्रोजन गैसे सर्वाधिक मात्रा में (78%) में पायी जाने वाली गैस है (तालिका 1.1)। वही ऑक्सीजन (21% मात्रा) प्राण वायु कहलाती है इसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। कार्बनडाइऑक्साइड यद्यपि अत्यन्त कम मात्रा (0.03%) में उपलब्ध है तथापि यह वायुमण्डल के लिए आवश्यक है। यह ताप का अवशोषण कर वायुमण्डल की परतों को गर्म रखती है।

तालिका 1.1 : वायुमण्डल में गैसों का प्रतिशत संघटन

गैस	प्रतीक	प्रतिशत आयतन
नाइट्रोजन	N_2	78.088
ऑक्सीजन	O_2	20.949
आर्गन	Ar	0.93
कार्बनडाइऑक्साइड	CO_2	0.03
नियॉन	Ne	0.0018

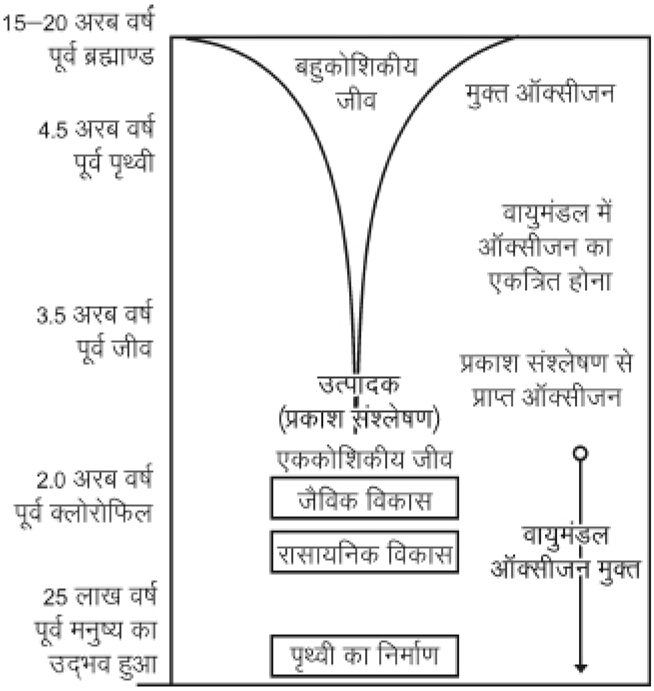

चित्र 1.3 : पृथ्वी पर जीवन का विकास

ओजोन	O_3	0.00006
हाइड्रोजन	H	0.00005
हीलीयम	He	0.0005
क्रिप्टॉन	Kr	अज्ञात
जेनॉन	Xe	अज्ञात
मिथेन	CH_4	अज्ञात

ओजोन एक सक्रिय गैस है जो वायुमण्डल में अल्प मात्रा में बहुत ऊँचाई पर पायी जाती है। यह सूर्य से आने वाली पराबैंगनी विकिरणों को सोख लेती है तथा पृथ्वी पर नहीं पहुंचने देती है, इस प्रकार यह पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती है। वर्तमान में क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसी हानिकारक गैसों के अत्यधिक विसर्जन से इस ओजोन परत को नुकसान पहुंचा है जिससे पराबैंगनी विकिरणों से होने वाले रोगों का खतरा बढ़ गया है।

जलवाष्प – तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन के कारण वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों के पास जलवाष्प कम जबकि विषुवतीय क्षेत्रों के पास सर्वाधिक मात्रा में जलवाष्प पायी जाती है। यह जलवाष्प सौर विकिरणों को सोख लेती है और धरातल के तापमान को सम बनाये रखती है। इस प्रकार जलवाष्प मौसम और जलवायु के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

धूल कण – वायुमण्डल में गैस और जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस कण पाये जाते हैं वे धूल कण ही है। ये वायुमण्डल की निचली परतों में तैरते रहते हैं। ये धूल कण विकिरणों के कुछ भाग को सोखते है तथा उनका प्रकीर्णन व परावर्तन करते है। इस प्रकार इनके द्वारा उषाकाल एवं गोधूलि की अवधि व तीव्रता निर्धारित होती है। सांय धूल कणों के चयनात्मक प्रकीर्णन के कारण आकाश नीला तथा सूर्योदय व सूर्यास्त के समय आकाश लाल दिखाई देता है। शुष्क प्रदेशों के वायुमण्डल में आर्द्र प्रदेशों की तुलना में अधिक धूल कण पाये जाते हैं।

पारिस्थितिकी परिचय (Introduction to Ecology)

यह विज्ञान की वह नवीन शाखा है जो जीवों तथा उसके पर्यावरण के साथ अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करती है। इकोलॉजी (Ecology) शब्द सर्वप्रथम राइटर द्वारा काम में लिया गया। यह दो ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है पहला ओइकोज (Oikos) जिसका अर्थ है घर या आवास तथा दूसरा लोगोज (Logos) जिसका अर्थ है अध्ययन (The study of), अर्थात आवास का अध्ययन। लेकिन राइटर ने इसे परिभाषित नहीं किया। हेकल (1869) ने इसे सर्वप्रथम जीवित जीवों तथा पर्यावरण के मध्य आपसी सम्बन्ध के द्वारा परिभाषित किया।

ओडम (Odum, 1969) ने इसे पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना एवं कार्य के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया। आधुनिक अर्थों में पारिस्थितिकी को विभिन्न जैविक स्पेक्ट्रमों में वर्गीकृत कर अध्ययन किया जाता है, जैविक स्तरों में से कुछ प्रमुख निम्न है– पारिस्थितिक तंत्र, समुदाय, समष्टि, जीव, कोशिका एवं जीन (चित्र 1.4)। इन्हें जैविक स्पेक्ट्रम के विभिन्न स्तरों के रूप में लिया जाता है। जैविक स्पेक्ट्रम के प्रत्येक स्तर की पर्यावरण के साथ अपनी व्यक्तिगत अन्तःक्रिया होती है।

पारिस्थितिकी की शाखाएं (Branches of Ecology)

1. स्वपारिस्थितिकी (Autecology) – यह किसी जाति विशिष्ट का उसके पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन है। इसमें उस जाति के भौगोलिक वितरण, बाह्य आकारिकी, जीवन चक्र एवं पर्यावरणीय कारकों से उसकी अन्योन्यक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

2. समुदाय पारिस्थितिकी (Synecology) – इससे किसी सम्पूर्ण पादप समुदाय की पर्यावरण से अन्योन्य क्रिया का अध्ययन किया जाता है। अतः किसी समुदाय के जन्म, वृद्धि आदि के अध्ययन को समुदाय पारिस्थितिकी कहा जाता है।

3. आवास पारिस्थितिकी (Habitat ecology) – यह किसी जीव का उसके आवास के संदर्भ में अध्ययन का विज्ञान है। पौधे अपनी शारीरिक संरचना, अनुकूलन आदि अपने आवास के अनुरूप परिवर्तित कर लेते हैं, उदाहरणार्थ मरुस्थलीय पादपों के आवासीय लक्षण जलीय पादपों से अलग होते हैं।

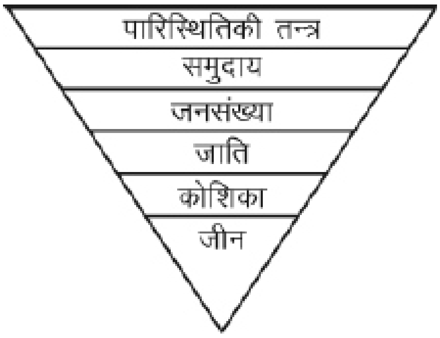

चित्र 1.4 : पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न स्तर

4. जीन पारिस्थितिकी (Gene ecology) – आनुवंशिकी के सन्दर्भ में जब पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है तो यह जीन पारिस्थितिकी शाखा के अन्तर्गत आता है। पारिस्थितिकी इन शाखाओं को कई उपशाखाओं में बांटा गया है (चित्र 1.5)।

पारिस्थितिकी विज्ञान के क्षेत्र एवं उद्देश्य (Scope and Aims of Ecology)

मानव की तीव्र विकास करने की प्रवृत्ति ने पर्यावरण को कई नुकसान पहुंचाए हैं जिसके भयावह परिणाम हमें आने वाले समय में भुगतने पड़ेगें, इस हेतु सदैव तैयार रहना चाहिए। स्थिति पर नियन्त्रण हेतु हमें पर्यावरण व पारिस्थितिकी का पूर्ण या आधारभूत ज्ञान होना आवश्यक है। पारिस्थितिकी इतना सरल विषय है कि इसका अध्ययन कोई साधारण व्यक्ति भी कर सकता है।

पारिस्थितिकी में पर्यावरण में पैदा हो रहे असन्तुलन का ज्ञान करवाया जाता है साथ ही इस असन्तुलन को कैसे सन्तुलित किया जा सकता है इस हेतु पर्याप्त सुझाव भी दिए जाते हैं। अत्यधिक मानव हस्तक्षेप के कारण पारिस्थितिकी में उत्पन्न आपदाओं की वस्तुस्थिति का ज्ञान भी इसी विषय का हिस्सा है। इन आपदाओं से बचाव तभी हो पाएगा जब जनसाधारण को वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी होगी व बचाव के उपाय उन्हें बताए जाएगें। अतः पर्यावरण से मित्रता के साथ मानवीय विकास हेतु पारिस्थितिकी विज्ञान को जनसाधारण तक पहुंचाना महत्वपूर्ण है। वर्तमान में मानव निम्न पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है–

1. प्राकृतिक संसाधनों की कमी,
2. मृदा प्रदूषण व उर्वरता में कमी,
3. जल, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण,
4. मानव की अन्य संसाधनों पर निर्भरता,
5. बढ़ती आबादी, घटते संसाधन,
6. मृदा अपरदन, एवं
7. प्राकृतिक आपदाएं आदि।

इन परिस्थितियों में मानव जीवन को स्वस्थ्य एवं सुरक्षित देख पाना मुश्किल जान पड़ता है, लेकिन इस हेतु कई प्रयास किए जा रहे हैं– जैसे विश्वव्यापी कार्यक्रम 'अन्तर्राष्ट्रीय जीव विज्ञान

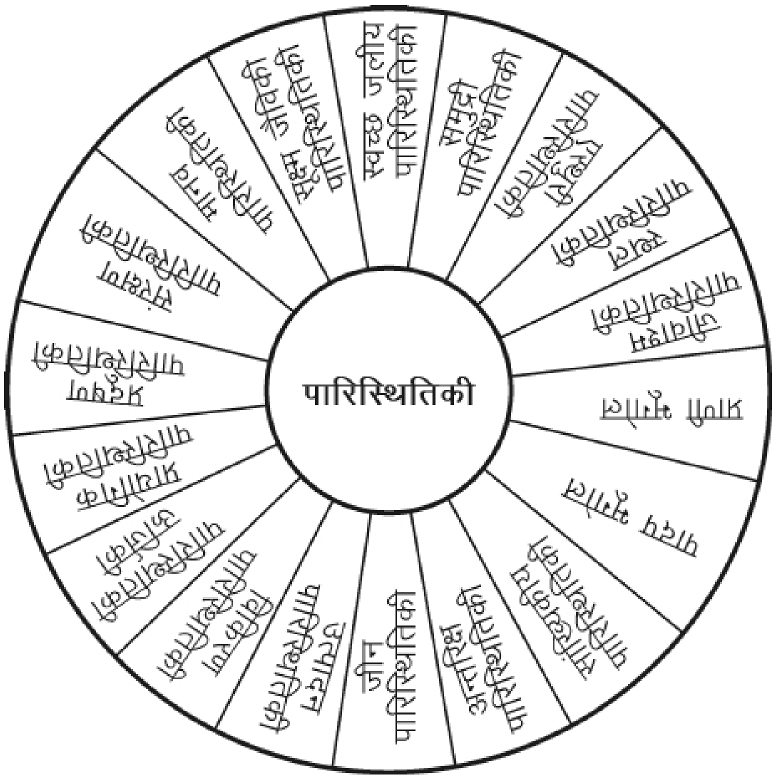

चित्र 1.5 : पारिस्थितिकी विज्ञान की विभिन्न शाखाएं

कार्यक्रम' (International Biological Programme) चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य 'उत्पादन का जैविक आधर और मानव कल्याण' (Biological Basis of Productivity and Human Welfare) है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न पारिस्थितिकी महत्व के क्षेत्रों में पारिस्थितिकी विज्ञ नियुक्त किए गए हैं जो उस क्षेत्र विशेष के संसाधनों का अध्ययन कर उनकी सुरक्षित उत्पादकता हेतु उपयोगी सुझाव क्षेत्र के जनसाधारण को देते हैं। इस कार्यक्रम के अलावा 'मानव एवं जैव मण्डल' (Man and Biosphere; MAB) कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया है।

पर्यावरणीय कारक
(Environmental Factors)

पर्यावरण में व्याप्त कई कारक जीवों को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं तथा जीवों के द्वारा स्वयं भी प्रभावित होते हैं। ये समस्त कारक पर्यावरणीय कारक कहलाते हैं।

जीवों को प्रभावित करने वाले ये कारक जैविक (Biotic) या अजैविक (Abiotic) हो सकते हैं। जैविक व अजैविक प्रकार के विभिन्न कारक समग्र रूप से जीवों को प्रभावित करते हैं। अतः किसी क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली वनस्पति पर कुछ आधारभूत कारकों का समान रूप से प्रभाव पाया जाता है। फलतः इन वनस्पतियों में कुछ समानताएं भी देखने को मिलती है। उस क्षेत्र विशेष की इन पर्यावरण दशाओं को क्षेत्र की पर्यावरणीय जटिलताएं कहते हैं। इन कारकों के वर्गीकरण में जैविक व अजैविक कारकों के अतिरिक्त इन्हें निम्न दो वर्गों में बांट कर भी अध्ययन किया जाता है–

1. प्रत्यक्ष कारक (Direct factor) – इनमें प्रकाश, ताप, आर्द्रता, मृदा–वायु, मृदा जल, पोषक तत्व आदि आते हैं।
2. अप्रत्यक्ष कारक (Indirect factor) – इसमें भूमि की बनावट, ह्यूमस, ऊंचाई, वायु तथा ढाल आदि आते हैं।

अधिकांश पारिस्थितिकीविज्ञों ने इन कारकों को प्रमुख चार वर्गों में बांटा है–

1. जलवायवीय कारक (Climatic factors)
   (i) प्रकाश (ii) वायुमण्डलीय तापमान
   (iii) वर्षा (iv) वायु की आर्द्रता
   (v) वायुमण्डलीय गैसें
2. स्थलीय या भू–आकृतिक कारक (Topographic or physiographic factors) – ये कारक पृथ्वी के भौतिक भूगोल से सम्बन्धित हैं जैसे –
   (i) ऊंचाई
   (ii) पर्वत श्रृंखलाओं व घाटियों की दिशा
   (iii) ढालों का खुलापन और तीव्रता।
3. मृदीय कारक (Edaphic factors)
4. जैविक कारक (Biotic factors)

जिस प्रकार ये पर्यावरणीय कारक जीवों को प्रभावित करते हैं उसी प्रकार ये कारक आपस में एक दूसरे कारक को भी प्रभावित करते हैं अतः इन कारकों में आपस में भी अन्तःक्रिया पाई जाती है उदाहरणतः तापमान बढ़ने पर क्षेत्र की आर्द्रता कम हो जाती है या प्रकाश की तीव्रता बढ़ने पर प्रकाश संश्लेषण की दर भी प्रभावित होती है। इस प्रकार जीवों पर सभी पर्यावरणीय कारकों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है (चित्र 1.6 एवं 1.7)।

सभी पर्यावरणीय कारकों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

1. जलवायवीय कारक (Climatic factors) – इन कारकों में वर्षण, तापमान, आर्द्रता, वायु, प्रकाश आदि भौतिक कारक सम्मिलित हैं। ये सभी जलवायवीय कारक संयुक्त रूप से किसी क्षेत्र विशेष को विशिष्टता प्रदान करते हैं। इन सभी जलवायवीय कारकों का विस्तार से विवरण यहां दिया जा रहा है–

(i) प्रकाश (Light) – प्रकाश, भौतिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण कारक है जो जीवों के लिए ऊर्जा का आधारभूत स्रोत है। इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा लगभग सभी जीवों में अभिलाक्षणिक जीवन क्रियाओं का संचालन करती है। अतः प्रकाश को उन तीन महत्वपूर्ण कारकों में शामिल किया जाता है जिनके द्वारा पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव सम्भव हो पाया है।

(a) सूर्य (Sun) – जीवों के लिए ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है। यह हाइड्रोजन व हीलियम से बना गैसों का विशालकाय पिण्ड है जिससे सतत रूप से अपार ऊर्जा, प्रकाश व ऊष्मा के रूप में निकालती रहती है। इस प्रकार उत्सर्जित ऊष्मा ऊर्जा को सूर्यताप या सूर्य विकिरण कहा जाता है।

प्रकाश प्रियता एवं प्रकाश की आवश्यकता के आधार पर पादपों को निम्न दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है–

1. प्रकाश प्रिय पादप (Heliophytes) – ऐसे पादप जो सूर्य के सीधे प्रकाश में उगते हैं सूर्य तापी या प्रकाश प्रिय कहलाते हैं। उदाहरणतः एमेरन्थस (*Amaranthus*), जेन्थियम (*Xanthium*), बिटुला (*Betula*), पोपुलस (*Populus*), सेलिक्स (*Salix*)। इन पादपों में कुछ विशिष्ट अनुकूलन पाए जाते हैं जो सूर्य के सीधे प्रकाश में इनकी नियत वृद्धि को बनाए रखते हैं। इन अनुकूलनों का विवरण आगे तालिका 1.2 में दिया गया है।

2. छाया प्रिय पादप (Sciophytes) – वे पादप जो कम प्रकाश या छाया में उगते हैं व वृद्धि करते हैं, छाया प्रिय या छाया तापी पादप कहलाते हैं। उदाहरणतः एक्लिपफा (*Aclypha*), फेगस (*Fagus*), एबीज (*Abies*), पिसिया (*Picea*) आदि।

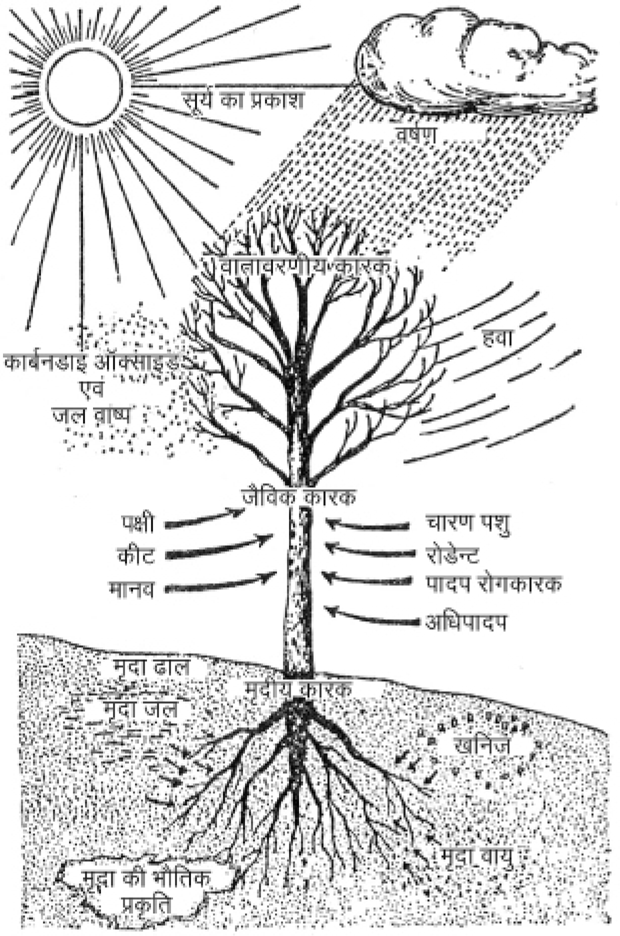

चित्र 1.6
पौधे को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारक

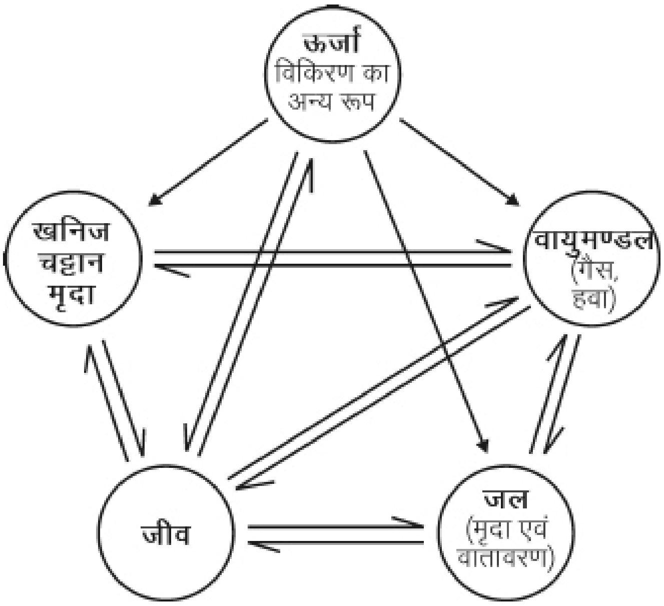

चित्र 1.7 : पर्यावरण के मुख्य घटकों के बीच परस्पर संबंधों को दर्शाता आरेख

प्रकाश के निम्न तीन लक्षण पादपों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है–

1. प्रकाश तीव्रता (Light intensity)
2. प्रकाश गुणवत्ता (Light quality)
3. प्रकाश दीप्तिकाल (Light duration)

1. प्रकाश तीव्रता (Light intensity): सूर्योदय से दोपहर तक प्रकाश तीव्रता (Light intensity) बढ़ती है और दोपहर से सूर्यास्त तक घटते–घटते शून्य हो जाती है इसके अलावा धूल, बादल, प्रदूषण के द्वारा भी सूर्य के प्रकाश की तीव्रता प्रभावित होती है। प्रकाश की अलग–अलग तीव्रता को पसन्द करने के आधार पर पादपों के दो प्रकारों सूर्यतापी व छायातापी पादपों का विवरण पहले दिया जा चुका है। कुछ पादप सूर्य की दिशा में अपने पर्णकोर को घुमा देते हैं 'दिक सूचक पौधे' (Compass plant) कहलाते हैं। सूरजमुखी का पादप भी प्रकाश संवेदी होता है जिसके कारण इसके शीर्ष भाग पर खिले फूल की दिशा पूर्व से पश्चिम की ओर बदलती रहती है। क्योंकि छाया में रहने वाले तने में अतिरिक्त वृद्धि होती है जिससे शीर्ष की दिशा सूर्य की ओर मुड़ जाती है।

2. प्रकाश की गुणवत्ता (Light quality): प्रकाश की गुणवत्ता में प्रकाश में व्याप्त विभिन्न रंग आते हैं। पौधे की पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल लाल व नीले रंग के प्रकाश का अधिकतम अवशोषण करते हैं। प्रकाश की गुणवत्ता का प्रभाव समुद्री पादपों में अच्छा देखने को मिलता है। समुद्र की गहराई के अलग–अलग स्तर पर अलग–अलग तरंगदैर्ध्य का प्रकाश ही पहुंच पाता है। अतः प्रकाश की गुणवत्ता के अनुसार ही विभिन्न शैवालों की उपस्थिति समुद्र की अलग–अलग गहराई पर देखी जा सकती है।

3. प्रकाश दीप्तिकाल (Light duration): प्रकाश दीप्तिकाल के आधार पर पादपों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

(i) लघु प्रदीप्तिकाली पौधे (Short day plants)
(ii) दीर्घ प्रदीप्तिकाली पौधे (Long day plants)
(iii) प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants)

दिन के प्रकाश का पूर्ण आवर्त काल जो पौधों को प्राप्त होता है, दीप्तिकाल (Photoperiod) कहलाता है। दीप्तिकाल के आधार पर पादपों के अध्ययन को दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहते हैं।

लघु प्रदीप्तिकाली पौधे (Short day plants) : जिनके लिए 12 से 14 घण्टों (क्रान्तिक समय) से कम दीप्तिकाल होता है। उदाहरणतः सेल्विया स्पलेन्डन्स (*Salvia splendens*), धतूरा स्ट्रेमोनियम (*Datura stramonium*) आदि।

दीर्घ प्रदीप्तिकाल पौधे (Long day plants): वे पादप जिन्हें

तालिका 1.2 : सूर्यतापी व छायातापी पादपों में अन्तर

क्र.सं.	**सूर्यतापी** (Heliophytes)	**छायातापी** (Sciophytes)
1.	तना मोटा, सुदृढ़ व इनमें जाइलम ज्यादा विकसित होता है।	तना अपेक्षाकृत पतला, दुर्बल व जाइलम कम विकसित होता है।
2.	पत्तियां छोटी, हल्के हरे रंग की कटी हुई या संयुक्त पिच्छकी व मोटी होती है।	पत्तियां बड़ी, गहरे हरे रंग की व पतली होती है।
3.	पर्ण मध्योतक में स्पष्ट रूप में दो प्रकार की कोशिकाएं– ऊपर खंभ ऊत्तक व नीचे स्पंजी मृदुतक होती है। अन्तरकोशिकीय अवकाश कम होता है।	केवल एक ही प्रकार की कोशिकाएं (स्पंजी मृदुतक) होती है, इनमें अन्तरकोशिकीय अवकाश अपेक्षाकृत अधिक होता है।
4.	शाखायें अधिक तथा पर्व छोटे होने से पर्व संधियां पास–पास होती है।	शाखाएं कम तथा पर्व लम्बे होने से पर्व संधियां दूर–दूर होती है।
5.	तने व पत्तियों पर रोम अधिक होते हैं।	रोम कम पाये जाते हैं।
6.	पर्णरन्ध्रों की संख्या अधिक होती है। इनकी संख्या निचली सतह पर अधिक व ऊपरी सतह पर कम होती है।	पर्णरन्ध्र संख्या में कम तथा पत्ती की दोनों सतह पर समान संख्या में होते हैं।
7.	ऊपरी बाह्य त्वचा बहुपरतीय एवं लवक रहित होती है।	ऊपरी बाह्य त्वचा एक परत की व दोनों सतहों की कोशिकाएं अपेक्षाकृत पतली परत वाली तथा हरित लवक युक्त होती है।
8.	यांत्रिक ऊत्तक ज्यादा विकसित होती है।	यांत्रिक ऊत्तक कम या अनुपस्थित होती है।
9.	जड़ें अत्यधिक गहरी व संख्या में अधिक तथा पूर्ण शाखित होती है।	जड़ें छोटी व संख्या में कम और अल्प शाखित होती हैं।
10.	पौधों का शुष्क भार अधिक होता है।	पौधों का शुष्क भार कम होता है।
11.	पुष्प जल्दी निकलते हैं तथा इनमें पुष्प व फल उत्पन्न करने की क्षमता ज्यादा होती है।	पुष्प देरी से निकलते हैं तथा इनमें पुष्प और फल पैदा करने की क्षमता बहुत कम या नहीं के बराबर होती है।
12.	कोशिका रस (Cell sap) अधिक अम्लीय व परासरण दाब (Osmotic pressure) अधिक होता है।	कोशिका रस कम अम्लीय व परासरण दाब भी कम होता है।
13.	पौधे में शुष्कता व ताप से बचने की क्षमता होती है।	ये पौधे अधिक शुष्कता व ताप को सहन नहीं कर पाते।
14.	कार्बोहाइड्रेट/नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है।	कम होता है।
15.	पोटेशियम की मात्रा कम होती है।	अधिक होती है।
16.	बीज के प्रति ग्राम शुष्क भार में अधिक कैलोरी ऊर्जा होती है।	कम होती है।

क्रान्तिक समय से अधिक दीप्तिकाल उपलब्ध रहता है। उदाहरणतः ब्रेसिका रापा (*Brasica rapa*), सिकेल सिरियल (*Secale cereale*) आदि।

प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants): कुछ पादप जैसे कुकुमिस सेटाइवस (*Cucumis sativus*), सोरगम वल्गेर (*Sorghum vulgare*) आदि प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants) की श्रेणी में आते हैं अर्थात इनकी वृद्धि हेतु प्रकाश दीप्तिकाल का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है।

उपरोक्त वर्णित प्रकाश के लक्षणों के अलावा भी पादपों में कई क्रियाएं प्रकाश के द्वारा प्रभावित होती है ये निम्न हैं–

1. क्लोरोफिल उत्पादन (Chlorophyll production)
2. ऊष्मीकरण प्रक्रिया (Heating action)
3. वाष्पोत्सर्जन (Transpiration)
4. रन्ध्र गति (Stomatal movement)
5. पादप वितरण (Distribution of plants)
6. पौधों के भागों का सर्वांगीण विकास (Overall development of plant parts)
7. अनुक्रमण (Succession) आदि।

(ii) तापमान (Temperature) – ताप एवं इसमें होने वाले परिवर्तन से क्षेत्रों की वनस्पति भी प्रभावित होती है। वनस्पति पर पड़ने वाले प्रभावों में से कुछ का विवरण यहां दिया जा रहा है–

1. उपापचय (Metabolism) – पादप शरीर में होने वाली समस्त क्रियाओं का नियमन विभिन्न एन्जाइमों द्वारा किया जाता है तथा प्रत्येक एन्जाइम की अधिकतम क्रियाशीलता हेतु एक विशिष्ट तापमान होता है। अतः ताप में परिवर्तन से एन्जाइमों की क्रियाशीलता प्रभावित होती है। फलतः पादप कार्यिकी जैसे वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन आदि प्रभावित होते हैं।

2. प्रजनन (Reproduction) – पौधों में फूल बनने की प्रक्रिया तापकालिता (Thermoperiodism) द्वारा अर्थात तापमान में उतार–चढ़ाव के दैनिक चक्र (Diurnal fluctuation) द्वारा प्रभावित होती है। पौधों की घटना विज्ञान (Phenology) (पौधों की आवर्ती प्रक्रियाओं, फूल बनते समय जलवायु के सम्बन्ध का अध्ययन) में तापमान एक महत्वपूर्ण कारक है।

3. वृद्धि तथा विकास (Growth and Development) – तापमान में अत्यधिक वृद्धि या कमी दोनों, पादपों के लिए नुकसानदायक होते हैं। तापमान में अत्यधिक कमी से सूखापन (Desiccation), ठिठुरन (Chilling injury) क्षति और प्रशीतन क्षति (Freezing injury) आदि द्रुतशीतन क्षति (Cold injury) होती है। हालांकि कुछ बहुवर्षीय पौधों (Perennials) में अत्यन्त कम तापमान सहने की क्षमता होती है, इसे शीत प्रतिरोधकता (Cold resistance) कहते हैं। तापमान में अत्यधिक वृद्धि पादप वृद्धि को रोक देती है व पादप की मृत्यु भी हो जाती है। ताप वृद्धि से पादपों में श्वसन, वाष्पोत्सर्जन, प्रोटीन उपापचय सम्बन्धी होने वाली क्षति को तापीय क्षति (Heating injury) कहा जाता है।

4. वितरण पर प्रभाव (Effect on distribution) – तापमान के आधार पर संसार की समस्त वनस्पतियों को निम्न वर्गों में बांटा गया है (तालिका 1.3)।

तापमान के आधार पर वनस्पति के वितरण को समझने के लिए पश्चिमी हिमालय पर ऊंचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण एक सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है। ऊंचाई की ओर बढ़ने पर तापमान में कमी आती जाती है। हिमालय के आधार से 1200 मी. की ऊंचाई तक मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed decedous forests) मिलते हैं। इससे ऊपर 3300 मीटर की ऊंचाई पर शंकुधारी वन (Coniferous forests) पाए जाते हैं। ऐसे स्थान पर जलवायु शीतोष्ण प्रकार की पाई जाती है। शंकुधारी वनों में भी नीचे के क्षेत्रों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष तथा ऊंचाई पर शंकुवृक्ष अधिक पाए जाते हैं। लगभग 3600 मीटर ऊंचाई के बाद वृक्षों की संख्या कम होने लगती है यहां अल्पाइन जलवायु युक्त झाड़ियां दिखाई देने लगती है। इससे ऊपर बढ़ने पर झाड़ियों के स्थान पर घास, लाइकेन, मॉस आदि का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। 4500 मीटर से अधिक ऊंचाई पर जाने पर केवल बर्फ से ढकी सतह दिखाई पड़ती है यहां किसी प्रकार की वनस्पति नहीं होती है।

इस प्रकार पश्चिम हिमालय पर पादपों के ऊंचाई के वितरण को उपर्युक्त चित्र द्वारा समझाया गया है (चित्र 1.8)।

अक्षांश व देशान्तर दोनों का परिवर्तन संसार भर की वनस्पति पर लगभग एक जैसा प्रभाव डालते हैं। विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ती दूरी के साथ पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वानस्पतिक क्षेत्र और पर्वतों पर बढ़ती ऊंचाई के साथ पाये जाने वाले वानस्पतिक क्षेत्र लगभग समान होते हैं (चित्र 1.9)।

(iii) वर्षण (Precipitation) – पादपों व जन्तुओं के लिए जल का सबसे बड़ा स्रोत वर्षण है। पृथ्वी तथा वायुमण्डल में जल का आदान–प्रदान दो क्रियाओं वर्षण (Precipitation) तथा वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration) द्वारा होता है।

तालिका 1.3 : विभिन्न क्षेत्रों में तापमान के आधार पर पाई जाने वाली वनस्पति

तापक्रम क्षेत्र	भौगोलिक क्षेत्र	तापमान स्थिति	वनस्पति का प्रकार
उच्चतापी (Megatherms)	भूमध्यीय और उष्ण कटिबंधीय (Equatorial and Tropical)	पूरे वर्ष भर अधिक तापमान	उष्ण कटिबंधीय वृष्टि वन (Tropical rain forests)
मध्यतापी (Mesotherms)	उष्णकटिबंधीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्र (Tropical & sub tropical)	अधिक तापमान के साथ सर्दी के मौसम में कम तापमान	उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन (Tropical deciduous forests)
निम्नतापी (Microtherms)	शीतोष्ण तथा उच्च ऊंचाई वाले (12,000 फीट तक) उष्ण कटिबंधीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्र	न्यून तापमान	मिश्रित शंकुधारी वन (Mixed coniferous forests)
हेकिस्टोथर्म (Hekistotherms)	उत्तरी ध्रुवीय और अल्पाईन प्रदेश (उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्र में 16000 फीट से अधिक तथा शीतोष्ण क्षेत्र में 12000 फीट से अधिक की ऊंचाई)	अत्यन्त कम तापमान	अल्पाईन वनस्पति (Alpine vegetation)

वर्षण कई प्रकार से होता है यथा वर्षा, बर्फबारी, कोहरा आदि के रूप में। वर्षण के कई रूप पादपों के लिए लाभदायक तथा शेष कई रूप हानिकारक भी हो सकते हैं। लाभदायक रूपों में वर्षा (Rain) सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकार का वर्षण है। वर्षा की मात्रा किसी क्षेत्र की वनस्पति को बहुत अधिक प्रभावित करती है। साल भर में वर्षा के वितरण का प्रभाव भी क्षेत्र की वनस्पति पर पड़ता है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों (Tropical areas) में साल भर भारी वर्षा होती है अतः वहां सदाहरित प्रकार की वनस्पति (Evergreen type of vegetation) पाई जाती हैं। कुछ क्षेत्र में केवल सर्दी में ही भारी वर्षा होती है तथा गर्मियों में कम वर्षा होती है, ऐसे क्षेत्रों में दृढपर्णी वन (Sclerophyllous forests) बहुलता में पाए जाते हैं। इसी प्रकार उन क्षेत्रों में जहां गर्मियों में भारी वर्षा तथा सर्दियों में कम वर्षा होती है में चारागाह (Grassland) प्रकार की वनस्पति देखी जाती है एवं उन क्षेत्रों में जहां वर्ष भर कम वर्षा होती है मरुस्थलीय वनस्पति (Xerophytic vegetation) पाई जाती हैं।

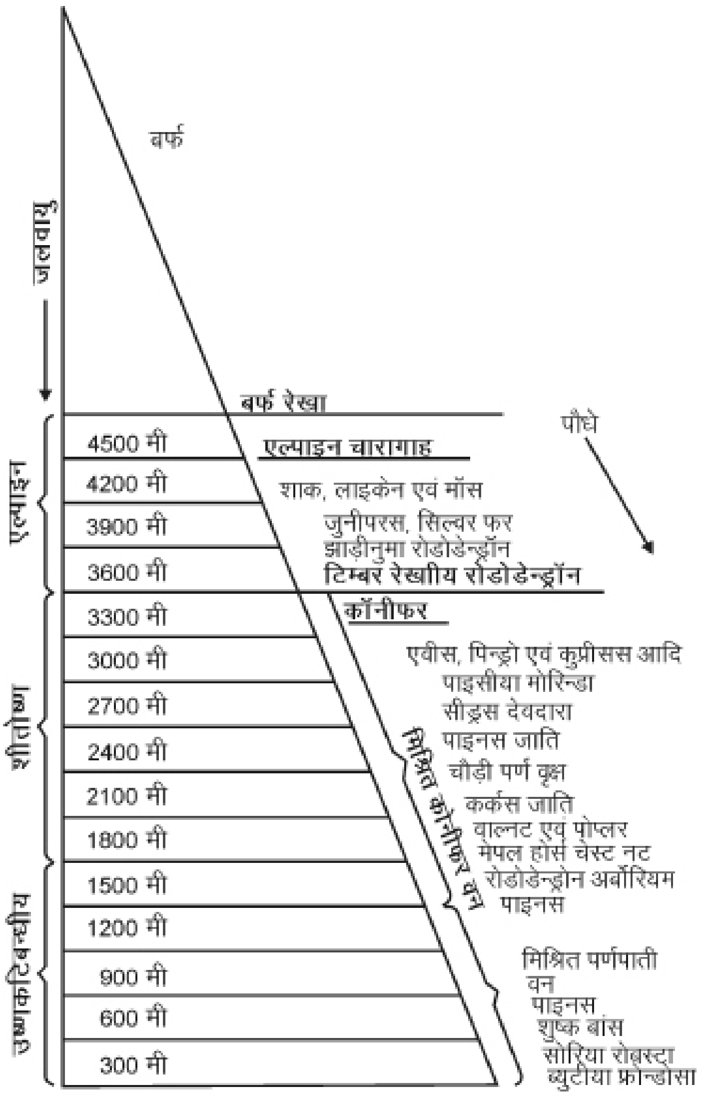

चित्र 1.8 : पश्चिम हिमालय पर ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण

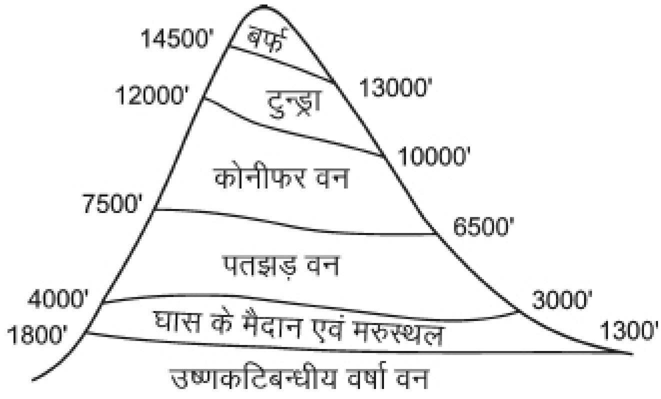

चित्र 1.9 : पर्वतों पर वनस्पति का तुंगीय क्षेत्र खण्डीकरण

(iv) आर्द्रता (Humidity) – यह प्रकृति में पाए जाने वाले जल के विभिन्न रूपों में से एक हैं। वायुमण्डल में घुलित अदृश्य जल की मात्रा को आर्द्रता (Humidity) कहते हैं। वायुमण्डल की आर्द्रता को हाइग्रोमीटर या साइक्रोमीटर से नापा जाता है।

वायुमण्डल की आर्द्रता भी वनस्पति को बहुत अधिक प्रभावित करती है। कुछ पादप जैसे ऑर्किड, लाइकेन तथा ब्रायोफाइट्स आदि वायुमण्डलीय आर्द्रता का सीधा अवशोषण कर लेते हैं। जीवाणुओं तथा कवक के बीजाणुओं के अंकुरण के लिए भी आर्द्रता एक महत्वपूर्ण घटक है।

2. भूआकृतिक कारक (Topographic factors) – हमने पिछले बिन्दु में अध्ययन किया कि जलवायवीय कारक क्षेत्र विशेष की वनस्पति को प्रभावित करते हैं। लेकिन किसी क्षेत्र की जलवायु का निर्धारण भूआकृतिक कारकों के द्वारा होता है अतः परोक्ष रूप से वनस्पति का निर्धारण भी भूआकृतिक कारकों के द्वारा ही होता है। प्रकाश व ताप के प्रभावों में पश्चिम हिमालय के उदाहरण से वनस्पति वितरण पर ऊंचाई के प्रभावों का विवरण पहले दिया जा चुका है।

कुछ अन्य भूआकृतिक कारकों का विवरण यहां दिया जा रहा है–

1. पर्वत श्रृंखलाओं की ऊंचाई (Height of mountain chains)

2. पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा (Direction of mountains)

पर्वत श्रृंखलाएं वायु के प्रवाह की दिशा का निर्धारण करती है तथा क्षेत्र की आर्द्रता को भी प्रभावित करती है। क्योंकि पर्वत श्रृंखलाओं की सही दिशा होने पर ही आस–पास के क्षेत्रों में वर्षा की पर्याप्त मात्रा देखी जाती है यही कारण है कि कुछ पर्वतों के आस–पास घनी वनस्पति पैदा होती है जबकि कुछ पर्वतों की चोटियां नग्न दिखाई पड़ती है।

पृथ्वी धरातल का ताप वहां तक आने वाली सूर्य की किरणों

के झुकाव कोण पर निर्भर करता है अतः इससे भी क्षेत्र की वनस्पति का वितरण व प्रकार निश्चित होता है (चित्र 1.10)।

हिमालय के पश्चिमी ढलान के अध्ययन से पता लगता है कि प्रथम 1200 मीटर तक की ऊंचाई पर मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed deciduous forest) मिलते हैं; 1200–3300 मीटर तक शंकुधारी वन (Coniferous forest) एवं 3600 मीटर पर वन लुप्त हो जाते हैं। 4200 मीटर की ऊंचाई पर स्थित अल्पाइन क्षेत्र के ठीक नीचे कुछ मॉस व लाइकेन आदि ही पाये जाते हैं। एक ही पर्वत पर वनस्पति का यह अनुक्षेत्र वर्गीकरण (Zonation) पादप जातियों के पारिस्थितिकीय आयाम (Ecological amplitude) में भिन्नता के फलस्वरूप होता है।

भूमि का ढाल (Slope) – ढाल, वनस्पति की प्रकृति को प्रभावित करने वाला दूसरा प्रमुख स्थलाकृतिक कारक है। ढाल पर्वतों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। ढाल वर्षा के पश्चात् तीव्र जल प्रवाह (Swift runoff) का कारण बनता है। तीव्र जल प्रवाह से अधिकांश जल बह जाता है तथा मृदा में जल का रिसाव (Percolation) नहीं हो पाता है साथ ही मृदा की ऊपरी परत भी जल के साथ बह जाती है। भूमि अपरदन (Soil erosion) की भी समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा ह्यूमस भी एकत्रित नहीं हो पाता है। इस कारण ढाल पर वनस्पति का या तो पूर्णतः अभाव होता है या झाड़ियों वाली बहुत ही कम मरुद्भिदी वनस्पति (Xerophytic vegetation) ही पाई जाती है। पुनः पर्वतों के ढालों पर स्थाई भौम जल स्तर (Permanent water table) काफी गहराई पर होता है जिससे पादपों में जल का निरन्तर संभरण नहीं हो पाता है इसकी तुलना में घाटियों में, जहां जल काफी मात्रा में होता है तथा भौम जल स्तर भी मृदा सतह के समीप होता है, अत्यधिक वनस्पति होती है।

ढाल का खुलाव या अनावरण (Exposure of the slope)– यदि किसी पर्वतीय ढाल पर क्षीण प्रकाश तीव्रता तथा अति शुष्क वायु हो तो वहां वनस्पति बहुत ही कम एवं मरुद्भिदी होती है। उदाहरण के लिए हिमालय का उत्तरी ढलान जहां प्रकाश की किरणें तिरछी पड़ती हैं तथा वायु भी शुष्क होती है। इसकी तुलना में जहां ढाल सूर्य के प्रकार की ओर तथा वायु के मार्ग में होता है, वहां की वनस्पति सघन होती है, जैसे हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर जहां प्रकाश पर्याप्त मात्रा में होता है तथा वायु में भी पर्याप्त आर्द्रता होती है। दोनों ढलानों पर प्रकाश तीव्रता, वर्षा, बर्फ गिरने, आपेक्षिक आर्द्रता तथा पवन गति में अन्तर के कारण इन ढलानों के तापक्रम में भी अन्तर है। उन क्षेत्रों में जहां नमी क्रांतिक कारक (Critical factor) नहीं होती है वहां की वनस्पति, ढाल एवं ढाल के खुलेपन से प्रभावित नहीं होती है। अतः स्थलाकृतिक कारकों का प्रभाव अमुक क्षेत्र में उपस्थित नमी की मात्रा (Moisture content) से सम्बन्धित होता है।

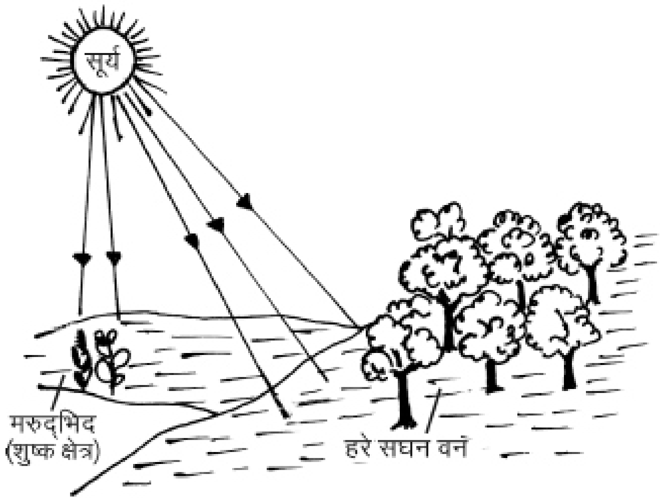

चित्र 1.10 : सौर किरणों के कोण एवं भू–सतह तापन से संबंध दर्शाता आरेख

पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा (Direction of mountain chains) – किसी स्थान की जलवायु पर वहां उपस्थित पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ऊंचे पर्वत वायु के मार्ग को बदल देते हैं। यदि ऊंचे पर्वत मानसूनी हवाओं के मार्ग में पड़ते हैं तो ये हवाएं पर्वतों से टकराकर व संघनित होकर वर्षा कर देती है। अतः यहां की वनस्पति, समोद्भिद (Mesophyte) प्रकार की होती है जबकि पर्वत की दूसरी तरफ का भाग पूर्णतः शुष्क रह जाता है तथा वनस्पति मरुद्भिद प्रकार की होती है।

इसी कारण से पर्वत श्रृंखलाओं को जलवायु अवरोधक (Climatic barriers) भी कहते हैं। उदाहरण के लिए कुल्लू घाटी के दक्षिणी भागों में तो घनी वनस्पति पाई जाती है जबकि उत्तरी भागों (लाहुल घाटी) में केवल मरुद्भिद प्रकार की वनस्पति मिलती है। असम में गारो, खासी, जयन्तिया पर्वत मालाओं से, बंगाल की खाड़ी से उठने वाली मानसूनी हवाएं टकराकर यहां वर्षा कर देती हैं। इन पर्वत श्रृंखलाओं की निश्चित दिशा के कारण असम में संसार की सबसे अधिक वर्षा होती है जिसके कारण यहां की वनस्पति भी अधिक घनी है। राजस्थान में मानसूनी हवाओं के मार्ग में पड़ने वाली ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं का पूर्ण अभाव होने के कारण, अरब सागर से उठने वाली मानसूनी हवायें इस प्रान्त के ऊपर से गुजर जाती हैं, परिणामतः यह कम वर्षा का शुष्क क्षेत्र ही बना रहता है (चित्र 1.11)।

मृदीय कारक (Edaphic Factors)

पादप जीवन हेतु मृदा एक महत्त्वपूर्ण कारक है। जल, खनिज पोषकों तथा स्थिरीकरण (Anchorage) के लिए स्थलीय पादप पूरी तरह से मृदा पर निर्भर रहते हैं। कई मामलों में जलीय पौधे भी मृदा कारकों से उतने ही प्रभावित होते हैं जितने की स्थलीय पादप। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों (Microbes) का भी पादपों पर एक निश्चित प्रभाव होता है।

मृदा भूमि की सतह की सबसे ऊपरी परत है। इसका निर्माण चट्टानों के अपक्षय (Weathering) तथा पौधों एवं जन्तुओं के अपघटन से बनने वाले कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस (Humus) से मिलकर होता है। विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता है, 'मृदा विज्ञान' (Pedology) कहलाती है।

चट्टानों का अपक्षय भौतिक कारकों (जैसे – वायु, वर्षा, ताप, भू–फिसलन आदि), रासायनिक कारकों (जैसे – जल अपघटन, ऑक्सीकरण, अपचयन आदि) तथा जैविक कारकों (जैसे – लाइकेनों, जीवाणुओं, कवकों आदि) से होता है। उपुर्यक्त कारकों द्वारा मृदा का निर्माण निरन्तर होता रहता है। यह क्रिया अत्यन्त मन्द होती है। ह्यूमस (Humus) के निर्माण की क्रियायें भूमि की ऊपरी सतह पर अधिक तथा गहराई में कम होती है इससे मृदा की विभिन्न परतों के रंग, रूप एवं रचना में अन्तर पाया जाता है। अगर भूमि में एक सीधी खाई (Trench) खोदी जावे तो मृदा की एक–दूसरे पर जमी हुई विभिन्न स्तरें (Layers) दिखाई देती है। मृदा की इस परतीय रचना को 'मृदा परिच्छेदिका' (Soil profile) कहते हैं।

मृदा परिच्छेदिका (Soil profile) – मृदा परिच्छेदिका में क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर के स्तरों को A, B व C नाम दिये गये हैं (चित्र 1.12)। इन स्तरों को संस्तरण (Horizon) भी कहते हैं। संस्तरण A व B वास्तविक मृदा बनाते हैं। जनक शैल का अर्द्ध खण्डित भाग संस्तरण C कहलाता है।

A' संस्तरण ('A' Horizon)– यह सबसे ऊपरी स्तर होती है। इसको शीर्ष मृदा (Top soil) भी कहते हैं। इसमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थ अपघटन (Disintegration) की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। इस संस्तरण की सबसे ऊपरी परत को 'A_{00}' परत कहते हैं। इसमें पत्तियों व शाखाओं के अक्षत (Intact) या आंशिक रूप से टूटे हुए टुकड़े होते हैं। इसके नीचे 'A_0' परत होती है इसमें आंशिक रूप से अपघटित (Partly decomposed) कार्बनिक पदार्थ होते हैं तथा अपघटित होने वाले अंग अपनी

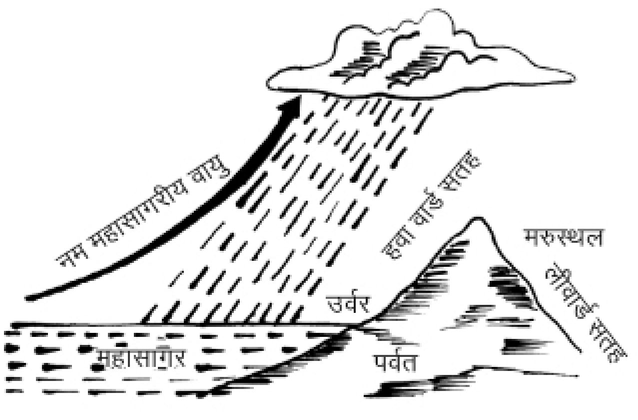

चित्रा 1.11 : वर्षण तथा वनस्पति पर पर्वत श्रृंखलाओं की दिशाओं का प्रभाव

पहचान खो चुके होते हैं। 'A_0' के नीचे A_1 परत होती है जिसमें पूर्णतः अपघटित कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस होता है जो खनिज पदार्थों के साथ मिला हुआ रहता है। A_1 परत गहरे रंग की होती है। A_1 के नीचे A_2 व A_3 परतों में ह्यूमस की घटती हुई मात्रा होती है तथा ये A_1 से हल्के रंग की होती है।

B' संस्तरण ('B' Horizon) – यह 'A' संस्तरण से ठीक नीचे वाला संस्तरण होता है। इसे उप मृदा (Sub soil) भी कहते हैं। इस संस्तरण को भी परिपक्वता (Maturation) के घटते क्रम में B_1, B_2, B_3 परतों में उपविभाजित किया जाता है। B_1 परत, A_3 परत के ही समान होती है लेकिन इसमें कुछ कणीय रचनाएं भी उपस्थित हो सकती हैं। B_2 तथा B_3 में मृदा खण्ड (Soil blocks) होते हैं जो लोह (Iron) तथा एल्यूमिनियम (Aluminium) के समुच्चयन (Aggregation) से बनते हैं।

C' संस्तरण ('C' Horizon) – यह अपूर्ण अपक्षीण (Incomplete weathered) चट्टानों का बना होता है। इस संस्तरण के नीचे पृथ्वी की चट्टानें होती हैं।

प्रत्येक स्थान की मृदा परिच्छेदिका में उपरोक्त वर्णित सभी संस्तरण समान मोटाई व संरचना के नहीं होते हैं क्योंकि स्थान–स्थान पर जलवायु कारकों में असमानता पाई जाती है। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शीर्ष मृदा (Top soil) सर्वाधिक उर्वर (Fertile) होती है जो वनस्पति की वास्तविक उत्पत्ति व उचित वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है। शीर्ष मृदा में उपस्थिति विभिन्न कणों के आमाप (Size) तथा बनावट के आधार पर ही मृदा के भौतिक व रासायनिक गुण निर्भर करते हैं।

मृदा के घटक (Components of soil) – मृदा के चार मुख्य घटक होते हैं –

(i) खनिज पदार्थ (Mineral matter)

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter)

(iii) मृदा जल (Soil water)

(iv) मृदा वायु (Soil air)

उपजाऊ भूमि की मृदा में खनिज पदार्थ लगभग 40 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ 10 प्रतिशत, मृदा जल 25 प्रतिशत एवं मृदा वायु 25 प्रतिशत होती है।

(i) खनिज पदार्थ (Mineral matter) – खनिज पदार्थ चट्टानों के अपक्षय द्वारा उपलब्ध होते हैं जो विभिन्न आमाप (Size) के कणों के रूप में मृदा में विद्यमान होते हैं। मृदा विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान ने विभिन्न आमाप के कणों को निम्नलिखित नाम दिये हैं:–

	कणों के नाम	कणों का आकार (व्यास मिमी. में)
(i)	मोटी बजरी (Coarse gravel)	5.0 से अधिक

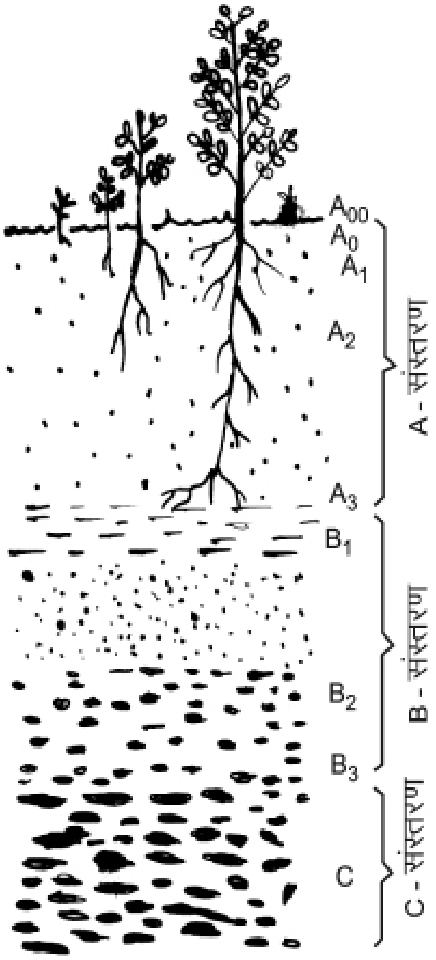

चित्र 1.12 : मृदा परिच्छेदिका

(ii)	बारीक बजरी (Fine gravel)	2.0 से 5.0 तक
(iii)	मोटी बालू (Coarse sand)	0.2 से 2.0 तक
(iv)	बारीक बालू (Fine sand)	0.02 से 0.2 तक
(v)	गाद (Silt)	0.002 से 0.02 तक
(vi)	चिकनी मृदा (Clay)	0.002 से कम

मृदा में इन कणों का अनुपात इसके विभिन्न गुणों जैसे खनिज पदार्थों की मात्रा, जल धारिता तथा पोषणता आदि का निर्धारण करता है।

मृदा का गठन (Soil texture) – मृदा का गठन उसमें उपस्थित विभिन्न आमाप (Different size) के खनिज कणों के आपेक्षिक अनुपात द्वारा निर्धारित होता है। कणों के आपेक्षिक अनुपात के आधार पर मृदा को छः प्रकारों में विभक्त किया गया है (सारणी अगले पृष्ठ पर) –

मृदा गठन का सम्बन्ध मृदा जल (Soil water), वातन (Aeration) व मूल वेधन (Root penetration) से है।

बलुई मिट्टी मोटे कणों (Coarse particles) से गठित होती है तथा हल्के गठन वाली (Light textured) कहलाती है। इसकी जल धारण क्षमता (Water holding capacity) व इसमें पोषकों (Nutrients) की मात्रा कम होती है जबकि रन्ध्र अवकाश (Pore space) अधिक होता है। चिकनी मिट्टी कोलाइडी कणों (Colloidal particles) की बनी होती है तथा भारी गठन (Heavy textured) वाली कहलाती है। इसकी जल धारिता अधिक तथा वातन (Aeration) कम होता है। चिकनी मृदाओं में जल आक्रान्ता (Water logging) होती है।

दोमट मिट्टी पादपों की वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त होती है क्योंकि इसमें बलुई (Sandy), गाद (Silty) व चिकनी (Clayey) मिट्टी लगभग समान मात्रा में होती है। इसलिए दोमट मिट्टी में वायु व जल का अच्छा आवागमन, सरल मूल वेधन (Easy root penetration) बलुई की उपस्थिति के कारण तथा उच्च जल धारिता एवं उर्वरता चिकनी मिट्टी की उपस्थिति के कारण होती है।

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) – मृदा के खनिज पदार्थों के साथ वर्ष दर वर्ष कार्बनिक पदार्थ जुड़ते रहते हैं। यद्यपि मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रतिशत कम (10 प्रतिशत) ही होता है फिर भी किसी स्थान की वनस्पति एवं पादप वृद्धि पर ये व्यापक प्रभाव डालते हैं। मृदा में पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों के अपघटन के फलस्वरूप कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता है। मृत भागों का अपघटन मृदा जीवों द्वारा किया जाता है।

भूमि की सतह पर सूखे मृत या टूटे पौधों के भागों ;पत्तियां, टहनियां, फल, फूल, मूल आदि एवं मृत जन्तुओं की एक परत बन जाती है। इस परत में मृत भाग अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। इस परत का वह भाग जिसमें पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन नहीं हुआ हो अर्थात् सभी मृत भाग अपनी पहचान बनाये हुए हों, करकट या लीटर (Litter) कहलाता है। लीटर के नीचे का वह भाग जिसमें मृत भागों का आंशिक अपघटन हो गया हो लेकिन उन भागों को पहचाना जा सकता हो, 'डफ' (Duff) कहलाता है। इससे नीचे की परत में पौधों के मृत भागों का अपघटन अधिक होने के कारण इन भागों को नहीं पहचाना जा सकता, इस परत को ह्यूमस (Humus) परत कहते हैं। इस प्रकार पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों के सड़ने गलने से, ये काले और भूरे पदार्थ में बदल जाते हैं। इस काले भूरे पदार्थ को ही ह्यूमस (Humus) कहते हैं। ह्यूमस का और अधिक अपघटन होने से खनिज लवण मुक्त हो जाते हैं। पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन होकर ह्यूमस में परिवर्तन के प्रक्रम को ह्यूमीफिकेशन (Humification) कहते हैं तथा ह्यूमस का खनिज लवणों में परिवर्तन खनिजीकरण कहलाता है।

	मृदा का प्रकार		प्रतिशत के आधर पर कणों की मात्रा
(i)	बलुई मिट्टी (Sandy soil)	(ii)	बालू कणिकाओं (Sand particles) की अधिकता।
(ii)	चिकनी मिट्टी (Clay soil)	(ii)	चिकनी मिट्टी के कणों (Clay particles) की अधिकता।
(iii)	दोमट मिट्टी (Loam soil)	(iii)	बालू, गाद व चिकनी मिट्टी के कण बराबर की प्रतिशतता में।
(iv)	बलुई दोमट मिट्टी (Sandy loam soil)	(iv)	दोमट मिट्टी जिसमें बालू की अधिकता हो।
(v)	गाद दोमट मिट्टी (Silt loam soil)	(v)	दोमट मिट्टी जिसमें गाद कणों की अधिकता हो।
(vi)	चिकनी दोमट मिट्टी (Clay loam soil)	(vi)	दोमट मिट्टी जिसमें चिकनी मिट्टी के कण अधिकता में हो।

मृदा में ह्यूमस पादपों के लिए अत्यन्त आवश्यक है –

1. ह्यूमस में खनिज लवणों की प्रचुरता होती है अत: यह पादप पोषकों का भण्डार हैं। इससे मृदा की उर्वरता में भी बढ़ोतरी होती है।
2. ह्यूमस मृदा की जल धारिता बढ़ा देता है। ह्यूमस के कारण मृदा की रन्ध्रता (Porosity) बढ़ जाती है जिससे जल का रिसाव (Percolation) व गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है।
3. ह्यूमस मृदा जीवों के लिए भोजन का स्रोत है।
4. ह्यूमस मूलों के श्वसन हेतु ऑक्सीजन व जल का स्रोत है।

मृदा जीव (Soil organisms) – मृदा जीव मृदा का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। मृदा में वनस्पति जात (Flora) एवं जन्तु जात (Fauna) दोनों ही पाये जाते हैं जो मिलकर मृदा के जैविक तंत्र का निर्माण करते हैं। इन जीवों की क्रिया के लिए मृदा एक स्थिर वातावरण प्रदान करती है। मृदा में पाये जाने वाले वनस्पति जात एवं जन्तु जात के सदस्य निम्नलिखित हैं–

	मृदा वनस्पति जात (Soil flora)		मृदा जन्तु जात (Soil fauna)
1.	जीवाणु (Bacteria)	1.	निमेटोड्स (Nematodes)
2.	मृदा कवक (Soil fungi)	2.	केंचुए (Earthworms)
3.	शैवाल (Algae)	3.	प्रोटोजोआ व रोटीफर (Protozoa & Rotifer)
4.	मृदा एक्टीनोमाइसीट्स (Soil actinomycetes)	4.	दीमक
		5.	बिल बनाकर रहने वाले प्राणी

मृदा जीवों का महत्त्व (Importance of Soil Organisms)

(I) अनेक जीवाणु (Bacteria) तथा कवकें (Fungi) पादपों एवं जन्तुओं के मृत शरीर या उनके मृत अंगों में उपस्थित जटिल कार्बनिक पदार्थों का विघटन कर उन्हें सरल, यौगिकों में परिवर्तित कर पुन: जीवों को उपलब्ध कराते हैं तथा मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं। इस प्रकार पोषकों का चक्रीकरण सम्भव हो पाता है।

(ii) कुछ जीवाणु जैसे एजोटोबैक्टर (*Azotobacter*), क्लॉस्ट्रिडियम (*Clostridium*) तथा राइजोबियम (*Rhizobium*) एवं नील हरित शैवाल, वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं।

(iii) कुछ बड़े जीव जैसे केंचुएं (Earthworms), चूहे (Rates) आदि भूमि खोदकर बिल (Tunnel) बनाते रहते हैं जिससे नीचे की मिट्टी ऊपर तथा ऊपर की नीचे होने से मृदा को एकरूपता प्रदान करते हैं। मृदा में बिल बनाने से मृदा की अन्दर की परतों में गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है।

(iv) जीवाणुओं एवं कवकों द्वारा वृद्धिकारी पदार्थों (Growth stimulating substances) का स्त्राव किया जाता है जो पौधों की वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। कभी–कभी मृदा जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थों की अपूर्ण सड़ान के कारण, विषैले पदार्थों का उत्पादन होता है जो पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

(v) मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव विशेषकर जीवाणु व कवक पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन कर मृदा में ह्यूमस के रूप में मिश्रित कर देते हैं। इस प्रकार ये जीव प्राकृतिक अपमार्जकों (Natural scavangers) का कार्य करते हैं।

;अपद्ध कुछ शैवाल तथा जीवाणु श्लेष्मा (Mucilage) पदार्थ स्त्रावित करते हैं। इस श्लेष्मा के कारण मृदा के विभिन्न कण आपस में बंधे रहते हैं।

(iii) मृदा जल (Soil water) – पादप समुदायों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं को उत्पन्न करने में मृदा जल का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मृदा में जल प्रमुख रूप से वर्षा से आता है। मृदा के कणों के बीच कुछ रिक्त स्थान होते हैं जिन्हें रन्ध्र अवकाश कहते हैं। वर्षा का कुछ जल इन अवकाशों में भरा रहता है जिसे केशिका जल (Capillary water) कहते हैं। विभिन्न प्रकार के मृदा जल में से केवल केशिका जल ही पौधों को उपलब्ध हो पाता है। केशिका जल की मात्रा मृदा के कणों के आकार पर निर्भर करती है। जैसे–जैसे मृदा कण छोटे होते जाते हैं मृदा की जल धारिता अधिक होती जाती है।

मृदा में जल की अधिकता पौधों के लिए हानिकारक होती है। जलाक्रान्ता (Water logging) के कारण मृदा में क्षीणवातन (Poor aeration) होता है जिससे पौधों द्वारा जल का बहुत ही कम अवशोषण सम्भव हो पाता है। मृदा में जल की कमी के कारण वनस्पति की क्षीण वृद्धि (Poor growth) होती है।

मृदा वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर पाये जाने वाले जल की कुल मात्रा को होलार्ड या सम्पूर्ण जल (Halard), पौधों को उपलब्ध होने वाले जल को क्रेसार्ड या प्राप्य मृदा जल (Chresard) तथा पौधों को उपलब्ध नहीं होने वाले जल को इकार्ड या अप्राप्य जल (Echard) कहा है।

वर्षा के उपरान्त गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से जल के नीचे चले जाने के पश्चात् मृदा में बचे हुए जल की प्रतिशत मात्रा को क्षेत्र क्षमता कहते हैं। अतः केशिका जल, रसायनतः संयुक्त जल (Chemically combined water), आर्द्रता जल तथा जल वाष्प की कुल मात्रा संयुक्त रूप से क्षेत्र क्षमता का गठन करते हैं (चित्र 1.13)।

क्षेत्र क्षमता = रासायनिक बन्धित जल+आर्द्रता जल + केशिका जल + जल वाष्प

Field capacity = Capillary water + Hygroscopic water + Chemically combined water + water vapours)

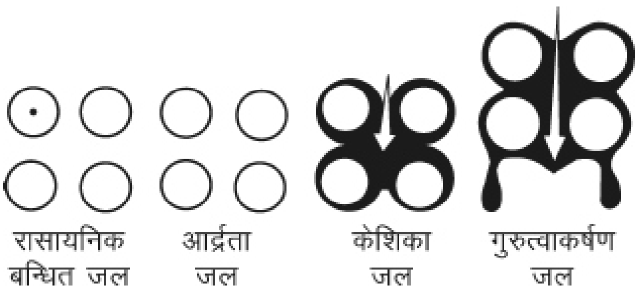

चित्र 1.13 : मृदा में विभिन्न प्रकार के जल

(vi) मृदा वायु (Soil air) – मूलों के श्वसन में O_2 की आवश्यकता होती है। श्वसन से प्राप्त ऊर्जा, मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए आवश्यक होती है जिससे जल अवशोषण निरन्तर बना रहे। क्षीण वातन वाली मृदा में मूल के आस–पास CO_2 एकत्रित हो जाती है जो पादप मूलों के लिए विषैली होती है। O_2 की कमी तथा CO_2 की अधिकता के कारण कुछ विषैले पदार्थ जैसे H_2S, फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, ऑक्सेलिक अम्ल आदि का निर्माण हो जाता है जो पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

मृदा कणों के बीच उपस्थित अन्तराल जिन्हें रन्ध्र स्थान (Pore space) कहते हैं, जल एवं वायु से भरे रहते हैं। रन्ध्र स्थानों में पाई जाने वाली गैसें ही मृदा वायुमण्डल का निर्माण करती है। मृदा वायु पौधों के लिए निम्नलिखित प्रकार से महत्त्वपूर्ण है –

(I) पादपों के भूमिगत भागों तथा मृदा जीवों की श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक है।

(ii) ह्यूमस निर्माण एवं बीजों के अंकुरण के लिए मृदा वायु अत्यावश्यक है।

(iii) सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन क्रिया O_2 पर निर्भर करती है।

(iv) मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए मृदा में वातन आवश्यक है।

(v) मृदा का वातन क्षीण (Poor aeration) होने के कारण पौधों में आकारिकीय, कार्यिकीय एवं शारीरिय गुणों में परिवर्तन आ जाते हैं जैसे न्यूमेटोफोर (Pneumatophore), बट्रेसेस या पुश्ता मूल (Buttress root) आदि का पाया जाना।

मृदा तापमान (Soil temperature) – मृदा तापक्रम मृदा में होने वाले भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रमों को प्रभावित करने के अतिरिक्त (i) मूलों द्वारा जल एवं लवणों के अवशोषण की दर (ii) बीजों के अंकुरण एवं (iii) पादप के भूमिगत भागों की वृद्धि, को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित करता है। पादप में उच्चतम उपापचयी क्रियाएं एवं मूलों द्वारा जल का उच्चतम अवशोषण सामान्यतः 20°C से 30°C के मध्य होता है। 20°C से निम्न तापमान जल की अवशोषण दर को काफी कम कर देता है। हिमांक पर अवशोषण दर नगण्य होती है। अतः शीत मृदाओं (Cold soils) में क्षीण वनस्पति (Poor vegetation) होती है तथा पौधे बौने (Dwarf) बने रहते हैं। उष्ण मृदाओं (Warm soils) की वनस्पति में वृक्षों की अधिकता होती है। मृदा तापक्रम का मापन मृदा तापमापी (Soil thermometer) द्वारा किया जाता है।

मृदा तापक्रम निम्न कारकों पर निर्भर करता है –

(i) मृदा सतह का रंग एवं गठन

(ii) मृदा जल की मात्रा एवं मृदा रन्ध्रता

(iii) वनस्पति का आवरण

(iv) ढाल की दिशा आदि।

मृदा क्रियायें (Soil reactions) – रासायनिक दृष्टि से मृदा उदासीन (Neutral), अम्लीय (Acidic) अथवा क्षारीय (Alkaline) हो सकती है। अम्लीयता या क्षारीयता, मृदा में उपस्थित H व OH- आयनों की सान्द्रता पर निर्भर करती है। यदि किसी मृदा में दोनों आयन्स (H व OH-) की मात्रा बराबर हो तो वह उदासीन कहलाती है। इस मृदा का pH=7 होता है। मृदा में

H अधिक हो तो pH=7 से कम अर्थात् अम्लीय तथा OH की मात्रा बढ़ने पर pH=7 से अधिक अर्थात् क्षारीय होती है।

मृदा की अधिक अम्लीयता या क्षारीयता पौधों के लिए हानिकारक हो सकती है। pH का पौधों की जीवन क्षमता (Viability) तथा पोषकों के सम्भरण (Nutrient supply) पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। मूल कोशिकाओं का जीवद्रव्य pH=3 के नीचे तथा pH=9 के ऊपर अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो जाता है। सूक्ष्मजीव अम्लीयता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। जीवाणु क्षारीय माध्यम में रहते हैं तथा pH=6 से नीचे उनमें क्षति होती हैं। संवहनी पादप pH 3.5 से pH 8.5 के बीच स्वस्थ रह सकते हैं। कुछ पादप अम्ल सहिष्णु (Acid tolerant) होते हैं। अधिक क्षारीय मृदा ऊसर (Barren) होती है तथा रेह (Reh) कहलाती है।

उदासीन या आंशिक अम्लीय मृदा अधिकांश पौधों के लिए उपयुक्त होती है। कृषिजन्य पादपों (Cultivated plants) की कुछ जातियां अम्लीय मृदा में उग सकती हैं जबकि शिम्बी पादपों (Leguminous plants) की ऐसी मृदा में अल्प वृद्धि (Poor growth) होती है।

जैविक कारक (Biotic Factors)

प्रकृति में किसी भी जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। सभी पादप एवं जन्तु साथ–साथ रहते हैं तथा एक–दूसरे को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन सजीवों को समस्त जैविक क्रियाओं जैसे वृद्धि, पोषण, प्रजनन, परागण एवं बीज विकिरण के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। उपरोक्त सभी प्रक्रमों को पूर्ण करने के लिए जीवों में अन्योन्य क्रियाएं होती रहती हैं। अन्योन्य क्रियाएं एक ही जाति के पादपों के मध्य अथवा विभिन्न जातियों के मध्य या पौधों एवं जन्तुओं याने विभिन्न वंशों के मध्य होती रहती है। इन्हें क्रमशः अन्तराजातीय (Intraspecific), अन्तरजातीय (Interspecific) व अन्तरवंशीय (Intergeneric) अन्योन्यक्रियाएं कहते हैं। जीवों में होने वाली समस्त अन्योन्य क्रियाओं को जैविक कारकों के अन्तर्गत रखा गया है। इन सब के साथ–साथ मानव भी एक महत्त्वपूर्ण जैविक कारक है।

प्रकृति में समस्त जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं तथा जैविक सम्बन्ध (Biotic relations) बनाये रखते हैं। जीवों के बीच ये सम्बन्ध दोनों भागीदारों के लिए लाभदायक, हानिकारक या एक के लिए लाभदायक तथा दूसरे के लिए हानिकारक हो सकते हैं। डी बेरी (De Bary, 1879) ने जीवों के सहसम्बन्धों को दर्शाने के प्रयोजन से 'सहजीवन' (Symbiosis) शब्द का गठन किया जिसमें एक या दोनों सहभागियों (Partners) को लाभ होता है तथा हानि किसी को भी नहीं होती है। लेकिन क्लार्क (Clark, 1954) ने सहजीवन शब्द का प्रयोग तभी उचित बताया है जब दोनों सहभागी जीवों को लाभ पहुंचे तथा किसी को भी हानि न हो। यदि एक जीव को हानि होती है तो उस अवस्था में 'विरोध' (Antagonism) शब्द का उपयोग सुझाया गया है।

जैविक अन्योन्यक्रियाएं (Biotic Interactions)

ओडम (1971) ने सहजीवन सम्बन्धी को, धनात्मक एवं ऋणात्मक अन्योन्य क्रियाओं (Positive and negative interactions) में विभक्त किया है।

I. धनात्मक अन्योन्यक्रियाएं (Positive Interactions)

इन क्रियाओं के अन्तर्गत समष्टियों (Populations) के आपसी सम्बन्धों द्वारा दोनों सहभागियों को सहायता पहुंचती है फलस्वरूप एक या दोनों जातियां लाभान्वित होती हैं। इन लाभदायक अन्योन्यक्रियाओं की श्रेणी में निम्नलिखित सम्बन्ध आते हैं –

1. सहोपकारिता (Mutualism)
2. प्राक्सहयोगिता (Proto-cooperation)
3. सहभोजिता (Commensalism)

1. सहोपकारिता (Mutualism) – जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों के परस्पर साहचर्य (Association) में रहने से दोनों को लाभ पहुंचता हो। पुनः दोनों जीवों को जीवित रहने के लिए दोनों का साथ रहना अर्थात् साहचर्य भी आवश्यक हो तो इस सम्बन्ध को सहोपकारिता (Mutualism) कहते हैं। यह सम्बन्ध दो पादपों के बीच, दो जन्तुओं के बीच अथवा जन्तुओं व पादपों के बीच हो सकते हैं। इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(अ) शैक (Lichens) – कवक एवं शैवाल दोनों मिलकर एक जटिल जीव का निर्माण करते हैं जिसे शैक या लाइकेन कहते हैं। लाइकेन का थैलस मुख्यतः कवक का होता है तथा शैवाल घटक इसमें लिपटा रहता है। ये दोनों घटक लाइकेन में साथ–साथ रहकर एक–दूसरे को लाभान्वित करते हैं। इसमें शैवाल सहभागी प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं जिसका उपयोग कवक भी करती है। इसके प्रतिफल में कवक से शैवाल को जल, खनिज लवण तथा सुरक्षा प्राप्त होती है।

(ब) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) – लेग्युमिनोसी कुल के शाकीय व पेपिलियोनेसी उपकुल के अधिकांश पौधों में ग्रंथिल मूलें (Nodulated roots) होती हैं। ये ग्रन्थियां राइजोबियम जीवाणु (*Rhizobium* bacteria) द्वारा उत्पन्न होती है। ग्रन्थिल मूलों में निवास कर रहे जीवाणुओं को पौधे से भोजन तथा रहने के लिए आश्रय प्राप्त होता है। जीवाणु भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधे को उपलब्ध कराते रहते हैं जिसकी सहायता से पादप में प्रोटीनों का संश्लेषण सुगम होता है। इसी प्रकार साइकस की प्रावलाभ मूल

(Coralloid root), एजोला (*Azolla*) तथा ब्रायोफाइट के एन्थोसिरोस में नील हरित शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का कार्य करती है एवं पादप शरीर में सुरक्षित रहती हैं।

(स) कवकमूल साहचर्य (Mycorrhizal associations)– कतिपय उच्च श्रेणी के पादपों की मूलों एवं कवक के साहचर्य को कवकमूल (Mycorrhiza) कहते हैं।

कवक, मूल की बाह्य सतह पर ही लिपटी हो सकती है जिसे बहिर्पोषी (Ectotrophic) कहते हैं जैसे पाइनस, ओक आदि। कुछ कवकमूलों में कवक, मूल के अन्दर कोशिकाओं में भी हो सकती है जिसे परान्त:पोषित (Endotrophic) कवकमूल कहते हैं, जैसे ऑर्किडेसी (Orchidacae), एरिकेसी (Ericaceae) आदि। इन दोनों प्रकार की कवकमूलों में कवक भाग जल एवं खनिज लवणों का अवशोषण कर वृक्षों को उपलब्ध कराती है तथा स्वयं मूलों से भोजन प्राप्त करती है। कुछ तत्त्वों जैसे फास्फोरस को पौधे सीधे मृदा से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। कवक विशेष क्रिया द्वारा इनका अवशोषण कर पौधों को उपलब्ध कराती है। सामान्यत: देखा गया है कि जिन पौधों में कवकमूल होती है उनकी मूलों में मूल रोम नहीं पाये जाते। मूल रोमों का कार्य कवक तन्तुओं द्वारा किया जाता है (चित्र 1.14)।

लकड़ी को खाने वाले दीमक सहोपकारिता का एक अच्छा

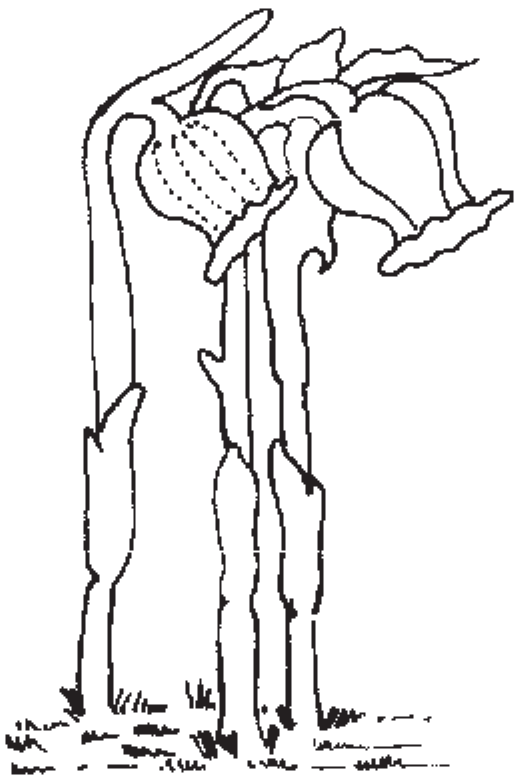

चित्रा 1.14 : परान्त:पोषित कवकमूल, मोनोट्रोपा

उदाहरण है। दीमक की आंत्र में ट्राइकोनिम्फा (*Trichonympha*) नाम प्रोटोजोआ सेल्यूलोज का पाचन करता है तथा दीमक से इसे आश्रय एवं भोजन प्राप्त होता है।

पौधों में परागण (Pollination) तथा फल एवं बीजों का प्रकीर्णन भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं। युक्का (*Yucca*) में परागण क्रिया एक विशिष्ट शलभ (Moth) प्रोनूबा युक्कासेला (*Pronuba yuccasella*) द्वारा सम्पन्न होती है। यह शलभ अपना जीवन–चक्र युक्का पर पूर्ण करता है। अत: दोनों का जीवन–चक्र पूर्ण करने में एक–दूसरे का सहयोग प्राप्त होता है।

2. प्राक्सहयोगिता (Proto-cooperation) – इस प्रकार के सम्बन्ध में साथ रहने वाली दोनों समष्टियों (Populations) को लाभ होता है लेकिन दोनों के जीवित रहने के लिए यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है। समुद्री एनीमोन, साधु केंकड़े (Hermit crab) के बीच प्राक् सहयोगिता पाई जाती है। समुद्री एनीमोन, साधु केंकड़े के खोल पर चिपका रहता है। हरमिट क्रेब (साधु केंकड़ा) इसको भोजन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है तथा समुद्री एनीमोन अपनी दंश कोशिकाओं (Nematocysts) से क्रेब को बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करता है। दोनों जीव स्वतन्त्र रूप से भी जीवनयापन करने में सक्षम हैं अत: साहचर्य दोनों के जीवित रहने के लिए अनिवार्य नहीं है।

3. सहभोजिता (Commensalism) – जब दो साथ रहने वाली भिन्न जातियों के जीवों में से एक जाति के जीव को लाभ होता हो लेकिन हानि किसी को भी नहीं होती हो तो इस प्रकार के सम्बन्ध को सहभोजिता कहते हैं। सहभोजिता के मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(अ) अधिपादप (Epiphytes) – ये पौधे स्व:पोषी तथा छोटे होते हैं। सघन वनों में प्रकाश की अत्यधिक समस्या होती है। अधिपादप प्रकाश व आर्द्रता प्राप्त करने के लिए दूसरे वृक्षों के तनों, शाखाओं या पर्णों पर चिपके रहते हैं। इनमें दो प्रकार की मूलें होती हैं – अनुलग्न मूलें (Clinging roots) जो अधिपादप को दूसरे वृक्ष के तने या शाखाओं पर चिपकाने का कार्य करती हैं। निलम्बी मूलें (Hanging roots) जो आर्द्रताग्राही गुंठिका (Velamen) या वेलेमिन नामक मृत स्पंजी ऊतक के आवरण युक्त होती है जिसकी सहायता से ये मूलें वायुमण्डल की नमी, ओस, वर्षा आदि के जल को अवशोषित करती है। प्रकाश की उपस्थिति में ये पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। अत: अधिपादप जिस वृक्ष पर चिपके रहते हैं उस वृक्ष को इनसे किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है। उदाहरण– वैन्डा (*Vanda*) तथा अन्य ऑर्किंड्स।

(ब) कठलताएं (Lianas) – ये काष्ठीय आरोही पादप हैं जो अपनी जड़ों द्वारा स्थिर रहते हैं लेकिन अन्य वृक्षों की सहायता से इनके शीर्ष भागों पर फैले रहते हैं। नम उष्ण कटिबन्धीय वनों

(Moist tropical forest) में ऊंचे वृक्षों की सघनता के कारण नीचे के स्तरों की वनस्पति को पर्याप्त प्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता है। इसी कारण कठलताएं प्रकाश ग्रहण करने के उद्देश्य से दूसरे पादपों के सहारे ऊंचाई पर पहुंच जाती हैं जहां पत्तियों को फैलाकर उपयुक्त प्रकाश ग्रहण कर भोजन निर्माण करते हैं। यहां पर उन पौधों को जिनसे ये कठलताएं सहारा (Support) प्राप्त करती हैं, कोई हानि नहीं होती है। कठलताओं के मुख्य उदाहरण हैं– बोहिनिया (*Bauhinia*) की कुछ जातियां, टीनोस्पोरा (*Tinospora*), बॉगेनविलिया (*Bougainvillea*) आदि। कठलताएं मूलों की सहायता से भूमि से सम्बन्ध बनाये रखती हैं जबकि अधिपादपों का मूलों द्वारा भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है।

II. ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं (Negative Interactions)

जब दो जीवों के सम्बन्ध इस प्रकार के हों कि उनके जीवनकाल में एक या दोनों को हानि पहुंचती हो, ऐसे सम्बन्धों को ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं या विरोध (Antagonism) कहते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया गया है–

(1) शोषण (Exploitation)

(2) प्रतिजीविता (Antibiosis)

(3) स्पर्धा (Competition)

(1) शोषण (Exploitation) – इसमें एक सहभागी अपने स्वयं के लाभ हेतु दूसरे सहभागी का शोषण करता है जो मुख्यतः भोजन व आश्रय के रूप में होता है। भोजन के कारण होने वाले शोषण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(अ) परजीविता (Parasitism),

(ब) परभक्षिता (Predation)।

(अ) परजीविता (Parasitism) – वे जीव जो अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते वरन् इसके लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं। परजीवी (Parasite) जिस जीव से भोजन लेता है वह परपोषी (Host) कहलाता है। परजीवी आश्रयदाता या परपोषी से चूपकांगों (Haustoria) की सहायता से भोजन प्राप्त करते हैं। परजीवी अन्तः परजीवी (Endoparasite) या बाह्य परजीवी (Ectoparasite) हो सकते हैं। कवक तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछ पुष्पीय पौधे भी परजीवी होते हैं। ये पौधे दूसरे पौधों की मूलों पर मूल परजीवी (Root parasite) या स्तम्भ पर स्तम्भ परजीवी (Stem parasite) होते हैं। ये आंशिक (Partial) या पूर्ण (Total) परजीवी हो सकते हैं। परजीवी पुष्पीय पौधों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

(i) पूर्ण स्तम्भ परजीवी (Total stem parasite) – जैसे अमरबेल (*Cuscuta*), जो बेर (*Ziziphus*), बबूल (*Acacia*) आदि

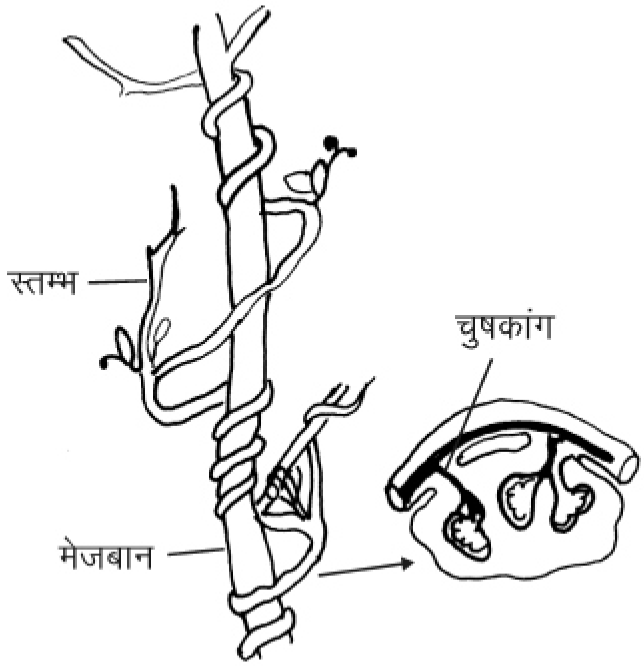

चित्र 1.15 : पूर्ण स्तम्भ परजीवी–अमर बेल (कुस्कुटा)

के स्तम्भ पर पाया जाता है। यह परजीवी मूल एवं पत्तियों रहित होता है। अतः पूर्ण रूप से परपोषी पर जीवित रहता है। कसाईथा (*Cassytha*) नीम पर पूर्ण स्तम्भ परजीवी है (चित्र 1.15)।

(ii) आंशिक स्तम्भ परजीवी (Partial stem parasite)– जैसे लोरेन्थस लोंगीफ्लोरस (*Loranthus longiflorus*), जो बोसविलीया (*Boswellia*) के स्तम्भ पर, डेंड्रोफथी (*Dendrophthae*) आम के स्तम्भ पर तथा विस्कम (*Viscum*) सेब, पाइनस आदि के स्तम्भ पर। ये परजीवी आंशिक रूप से परपोषी पर निर्भर करती हैं।

(iii) पूर्ण मूल परजीवी (Total root parasite) – जैसे स्ट्राइगा (*Striga*) घासों व लेपिडागेथिस (*Lepidagathes*) की मूल पर, आरोबैंकी (*Orobanche*) सोलेनेसी व क्रूसीफेरी कुल के पौधों की मूलों पर, बैलेनोफोरा (*Balanophora*) अनेक उष्ण कटिबन्धीय वनों के वृक्षों की मूलों पर पाये जाते हैं (चित्र 1.16)।

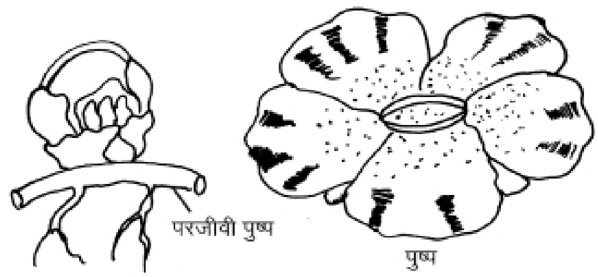

चित्र 1.16 : पूर्ण मूल परजीवी (रैफ्फलिशिया)

(iv) आंशिक मूल परजीवी (Partial root parasite) – जैसे चन्दन (*Santalum album*) शीशम, सिरिस की मूलों पर।

(ब) परभक्षिता (Predation) – परभक्षिता में परभक्षी (दूसरे जीवों को खाने वाला) अन्य जाति के प्राणियों को पकड़कर, मारकर भोजन के रूप में काम लेता है। जो परभक्षी जन्तुओं को खाते हैं उन्हें मांसाहारी (Carnivores) तथा जो पौधों को खाते हैं उन्हें शाकाहारी (Herbivores) परभक्षी कहते हैं। अधिकांश परभक्षी जन्तु ही होते हैं। स्वयं मनुष्य एक परभक्षी है। कतिपय पादप भी परभक्षी होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के पौधे कीटों को पकड़कर भोजन के रूप में उपयोग करते हैं इन्हें कीटभक्षी पादप (Insectivorous plants) कहते हैं। ये पादप नाइट्रोजन की कमी वाली मृदा में उगते हैं। नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए ये विशेष अंगों की सहायता से कीटों को पकड़कर खाते हैं। कीटभक्षी पादपों के मुख्य उदाहरण हैं– नेपेन्थिस, डायोनिया, ड्रोसेरा, पिंगुईकुला, अल्ड्रावैन्डा, यूट्रीकुलेरिया आदि(चित्र 1.17)।

(2) प्रतिजीविता (Antibiosis) – दो जीवों या जीव समूहों के इस प्रकार के परस्पर सम्बन्ध जिससे दोनों को ही लाभ नहीं होता है। इसमें एक जीव द्वारा कुछ रासायनिक पदार्थों के स्त्रवण (Secretion) के कारण दूसरे जीव की वृद्धि पूर्ण या आंशिक रूप से अवरूद्ध हो जाती है या उसकी मृत्यु हो जाती है। कवक, जीवाणु तथा एक्टिनोमाइसीट्स इस प्रकार के पदार्थों का स्त्रवण (Secretion) करते हैं। अनेक नील हरित शैवाल अतिवृद्धि कर जल की सतह पर छा जाती है तथा हाइड्रोक्सील अमीन जैसे जहरीले पदार्थों का स्त्रवण करती हैं जिससे मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है।

(3) स्पर्धा (Competition) – प्रायः समान आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीवों में स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है। यह स्पर्धा निकट सम्बन्धियों अर्थात् समान जाति के जीवों में अधिक होती है। गाउसे (Gause, 1935) के अनुसार दो जातियों की समान आवश्यकता में स्पर्धा के कारण उनमें से एक समाप्त हो जाती है। इसे प्रतिस्पर्धा के निष्कासन का सिद्धान्त कहते हैं।

पौधों में स्पर्धा पर्यावरणीय कारकों (खनिज, प्रकाश, जल, लवण, CO_2, O_2 आदि) की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण उत्पन्न होती है। एक ही जाति के पौधों के बीच होने वाली स्पर्धा को स्वजातीय या अन्तराजातीय स्पर्धा (Intraspecific competition) तथा दो भिन्न जातियों के पादपों के बीच होने वाली स्पर्धा को अन्तरजातीय स्पर्धा (Interspecific) कहते हैं। कुछ पौधे विशेष प्रकार के रसायनों का स्त्रवण करते हैं जो दूसरे पौधों के लिए हानिकारक होते हैं। इसे एलीलोपेथी (Allelopathy) कहते हैं। ऐरिस्टिडा ओलिकेन्था (घास) फीनोल जैसे– पदार्थों का स्त्राव करती है जिससे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं एवं शैवालों की वृद्धि रूक जाती है। इसी प्रकार लेन्टाना केमेरा (*Lantana camara*) तथा पार्थिनियम हिस्टेरोफोरस (*Parthenium hysterophorus*) भी कुछ विशेष रसायनों का स्त्रवण करता है जिनके कारण, इन पौधों के आस–पास अन्य शाकीय पौधों की वृद्धि रूक जाती है या उनकी मृत्यु हो जाती है।

वनस्पति पर जन्तुओं का प्रभाव

(Effect of Animals on Vegetation)

पादपों के बीच पारस्परिक क्रियाओं के अतिरिक्त पादपों एवं जन्तुओं के मध्य भी पारस्परिक क्रियाएं होती हैं। सभी जन्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना भोजन वनस्पति से प्राप्त करते हैं तथा उनकी इन क्रियाओं से पौधों की वृद्धि एवं विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ऊंट, भेड़, बकरी, गाय, भैंस, चूहे, खरगोश पौधों की पत्तियों को खाते हैं जिससे पौधों का प्रकाश संश्लेषी क्षेत्र बहुत कम हो जाता है। जन्तुओं के निरन्तर विचरण से छोटे शाकीय पौधे रौंद दिये जाते हैं तथा उनके पैरों से वहां की भूमि भी कठोर हो जाती है जिससे मृदा में वायु संचरण कम हो जाता है। पशुओं के निरन्तर दबाव से भूमि पर वनस्पति का आवरण नहीं बन पाता तथा मृदा अपरदन (Soil erosion), भूमि का कटाव, बाढ़ आना आदि होने लगते हैं। राजस्थान के दक्षिणी पश्चिमी भाग में भेड़, बकरी एवं ऊंट जैसे पालतू पशु बहुतायत में होते हैं। इस भाग के मरुस्थलीकरण में इन पशुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कारण यह भाग पूर्ण रेगिस्तान है। चरने का प्रभाव बहुवर्षी पौधों की तुलना में एकवर्षी पौधों पर अधिक पड़ता है।

वनस्पति पर मानव का प्रभाव

(Effect of Man on Vegetation)

मानव तथा वनस्पति का सम्बन्ध अति प्राचीन है। मानव की आधारभूत आवश्यकताएं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान वनस्पति से पूर्ण होती है। आदिकाल में मानव ये आवश्यकताएं प्रकृति के साथ सन्तुलन बनाये रखते हुए पूरी कर लेता था लेकिन जैसे–जैसे मानव का बौद्धिक विकास हुआ तथा उसके द्वारा औद्योगीकरण, शहरीकरण, जंगलों का काटना (Deforestation) जैसी क्रियाओं के कारण प्रकृति का प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ता ही चला गया है। वर्तमान में मानव निजी हितों के लिए वनों को साफ कर कृषि तथा

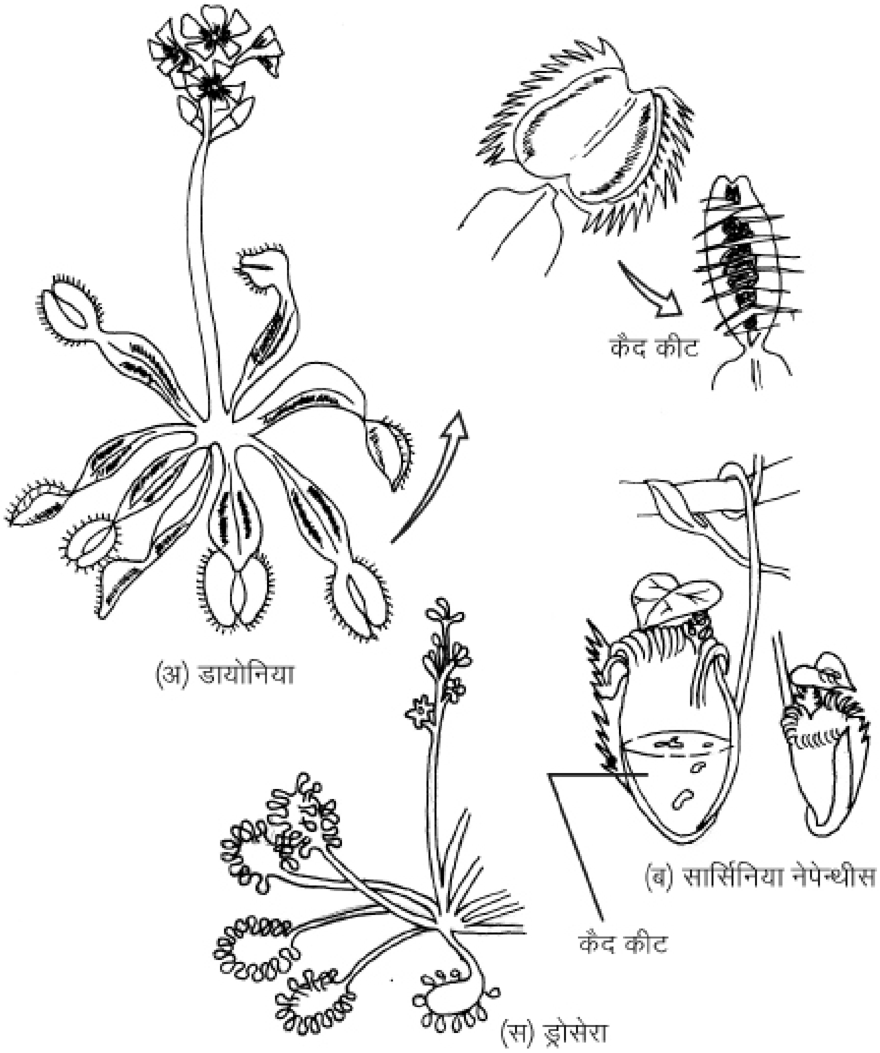

चित्र 1.17 : कीटभक्षी पादप (अ) डायोनिया (ब) नेपेन्थिस, (स) ड्रोसेरा

चारागाह क्षेत्र बनाता जा रहा है। शहरों के असीमित विस्तार, बड़े–बड़े भवनों का निर्माण, कारखानों, बाँधों, सड़कों एवं रेलमार्गों के निर्माण आदि के लिए वनस्पति का सफाया किया जा रहा है, फलस्वरूप अनेक समस्याओं जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय तापमान का बढ़ना, प्राकृतिक संसाधनों में कमी आदि के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। इन सबके अतिरिक्त, पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर (भौगोलिक वितरण) वनस्पति के वितरण में मानव ने उपयोगी भूमिका निभाई है।

पारिस्थितिकीय नियम (Ecological Laws)

1. न्यूटन का नियम (Law of Minium)

सर्वप्रथम लीबिग (1843) ने यह बताया कि किसी भी जैविक समुदाय या व्यक्तियों के समूह या व्यक्तियों की सफलता कई कारकों पर निर्भर करती है एवं मुख्य रूप से उस कारक पर निर्भर करती है जिसकी मात्रा न्यूनतम हो। इसे लीबिग का न्यूनता का नियम कहते हैं।

उदाहरणार्थ – एक न्यूनपोषी झील में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा न्यूनतम होने पर उसमें प्रकाश संश्लेषण की दर कम होगी, इसी कारण उसमें प्राथमिक उत्पादकता भी कम होगी।

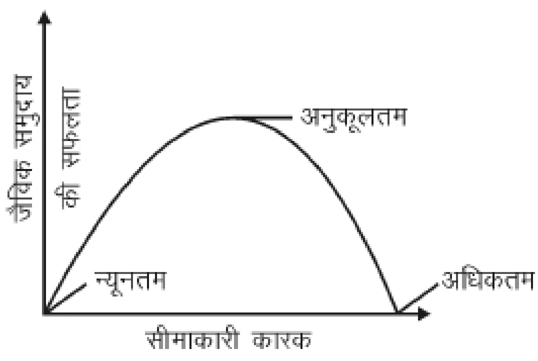

हालांकि उसमें अन्य सभी पोषक तत्वों की मात्रा अत्यधिक है। अगर इस झील में CO_2 की मात्रा बढ़ाई जाई तो प्राथमिक उत्पादकता में भी तेजी से वृद्धि होगी। लेकिन एक स्तर के पश्चात् उत्पादकता की दर में कोई वृद्धि नहीं होगी क्योंकि अब CO_2 की मात्रा सीमाकारी कारक बन जाती है। इस स्थिति में अन्य कोई कारक जो न्यूनतम मात्रा में उपस्थित है वह प्राथमिक उत्पादकता की दर का निर्धारण करेगा व उसकी मात्रा बढ़ाने पर उत्पादकता की दर में भी वृद्धि होगी।

2. सहनशीलता का नियम (Law of Tolerance)

प्रत्येक जीव का भौतिक कारकों के साथ एक सहनशीलता स्तर होता है। सेल्फोर्ड के अनुसार जातियों का वितरण उस पर्यावरणीय कारक पर निर्भर करता है जिसकी सहनशीलता का स्तर उस जीव जाति के लिए सीमित हो।

जीवों में एक कारक के प्रति सहनशीलता का स्तर विस्तृत और दूसरे किसी कारक के लिए सीमित हो सकता है। यह किसी भी एक भौतिक या रासायनिक कारक द्वारा जाति का वितरण सीमित हो सकता है। ऐसी जीव जातियाँ जिनकी सीमाकारी कारकों के लिए सहनशीलता की क्षमता विस्तृत हो उनका वितरण विश्वव्यापी होगा।

अगर परिस्थितियाँ एक कारक के लिए अनुकूलतम नहीं है तो अन्य कारकों के लिए सहनशीलता स्तर भी कम हो जायेगा। जैसे नाइट्रोजन की कम मात्रा में उपस्थिति सुखा के प्रति प्रतिरोधकता में कमी कर देती है। अगर जीव अपने अनुकूलतम स्तर पर नहीं पाया जाता है तो अन्य कारक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जैसे स्पारटिना अल्टरनीफ्लोरा स्वच्छ जल में सर्वोत्तम रूप से वृद्धि करता है लेकिन यह दलदली लवणीय स्थलों पर पाया जाता है। यह अन्य पौधों के बजाय अपनी पर्णो से लवणों का बेहतर स्त्रवण कर सकता है। अतः यह लवणीय दलदली स्थानों के लिए सर्वोत्तम पादप है। पर्यावरणीय कारक जनन के दौरान अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। जनन करने वाले जीव, बीज, अण्डे, भ्रूण, नव पादप एवं लार्वा आदि की सहनशीलता स्तर वयस्कों के बजाय संकीर्ण होती है। जैसे वयस्क साइप्रस वृक्ष जल में बेहतर ढंग से जीवनयापन कर सकता है लेकिन नवपादपों के विकास के लिए शुष्क जमीन की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार वयस्क नील केंकड़ा उच्च क्लोराइड युक्त स्वच्छ जल में अच्छे से वृद्धि करता है लेकिन इसके लार्वा को वृद्धि करने के लिए समुद्री जल की आवश्यकता होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पृथ्वी की आयु 4–5 करोड़ वर्ष है तथा पृथ्वी पर सर्वप्रथम जीवन का उद्गम 3.5 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ।
2. सौरमण्डल में सूर्य के चारों ओर 8 ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं जिनमें बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरूण व वरूण हैं।
3. ब्रह्माण्ड के उद्भव के बारे में बिग बेंग सिद्धान्त को सर्वाधिक मान्यता मिली जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड एक विशाल विस्फोट के साथ शुरू हुआ।
4. पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है जो 365¼ दिन में पूरा होता है। जबकि पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा चक्कर लगाता है जो एक चक्कर 27.33 दिनों में पूरा करता है।
5. सौरमण्डल में पृथ्वी ही एक मात्र ऐसा ग्रह है जहाँ जीव जन्तु पाये जाते हैं। पृथ्वी पर वायु और जल है जो जीवों के लिए आवश्यक है।
6. पृथ्वी के तीन भाग हैं – कोर, प्रावार एवं पर्पटी भाग।
7. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल में अनेक गैसें CO_2, मीथेन, अमोनिया हाइड्रोजन, जलवाष्प उपस्थित थी। यह गर्म एवं ऑक्सीजन रहित थी।
8. पर्यावरण पृथ्वी के चारों ओर की परिस्थितियाँ या परिवेश है।
9. वातावरण के दो प्रकार के घटक होते हैं – (i) निर्जीव घटक (ii) सजीव घटक।
10. निर्जीव घटकों में प्रकाश, तापमान, वर्षा, मृदा आदि आते हैं।
11. सजीव घटकों में सूक्ष्मजीव, कवक, प्रोटोजोआ पौधे व प्राणी आते हैं।
12. पृथ्वी अपनी धूरी पर 24 घण्टे में एक बार लट्टू की तरह घूमती है इसलिए दिन व रात का चक्र 24 घण्टे का होता है।
13. मृदा में केशिका, रासायनिक बन्धित, गुरुत्वीय एवं आर्द्रता जल उपस्थित रहता है। केवल केशिका जल ही पौधों को उपलब्ध रहता है।
14. विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता है, मृदा विज्ञान (Pedology) कहलाती है।
15. मृदा परत का वह भाग जिसमें जन्तुओं व पौधों के मृत भागों का पूर्ण अपघटन न हुआ हो लिट्टर या करकट कहलाता है। लिट्टर के नीचे का भाग डफ एवं उसके नीचे पूर्ण अपघटित भाग ह्युमस कहलाता है।
16. जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों को परस्पर साहचर्य में रहने पर दोनों को लाभ पहुंचता हो सहोपकारिता कहलाता है। उदा. लाइकेन, कवकमूल।

17. आधसहकारिता में संबंध दोनों जीवों के जीवित रहने के लिए आवश्यक नहीं होता है लेकिन साथ रहने पर दोनों को लाभ होता है।

18. वह संबंध जिसमें दो साथ रहने वाली भिन्न जातियों के जीवों में से एक जाति के जीव को लाभ होता हो तथा दूसरे को किसी प्रकार की हानि नहीं होती हो। सहभोजिता कहलाती है।

19. वे जीव जो अपना भोजन स्वयं न बनाकर दूसरों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं।

20. दो जीवों का समूह जिसमें परस्पर दोनों को लाभ नहीं होता है। प्रतिजीविता कहलाती है।

21. दूसरों जीवों को खाने वाला जीव परभक्षी कहलाता है। पौधों को खाने वाला शाकाहारी एवं जन्तुओं को खाने वाला मांसाहारी कहलाता है।

22. वे पौधें जो कीटों को पकड़कर भोजन के रूप में काम लेते हैं, कीटाहारी पादप कहलाते हैं। उदा. ड्रोसेरा, डायोनिया, नेपेन्थीस आदि।

23. लाइकेन में शैवाल व कवक का साहचर्य एवं कवकमूल में कवक व उच्च पादपों की जड़ों के मध्य साहचर्य पाया जाता है।

24. आर्किड व वेन्डा अधिपादपों के उदाहरण है जबकि अमरबेल पूर्ण स्तम्भ परजीवी व ओरोबेंकी पूर्ण मूल परजीवी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. आधुनिक मान्यता के अनुसार सौरमण्डल में कितने ग्रहों की उपस्थिति मानी गई है–

   (अ) 7 (ब) 8

   (स) 9 (द) 10

2. पृथ्वी पर जीवन का उद्‌भव कितने वर्षों पूर्व हुआ–

   (अ) 4.5 करोड़ वर्ष पूर्व (ब) 4.0 करोड़ वर्ष पूर्व

   (स) 3.5 करोड़ वर्ष पूर्व (द) 3.0 करोड़ वर्ष पूर्व

3. पृथ्वी लगभग कितने वर्ष पुरानी है–

   (अ) 5 करोड़ वर्ष (ब) 4 करोड़ वर्ष

   (स) 4.5 करोड़ वर्ष (द) 3 करोड़ वर्ष

4. चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर कितने दिनों में पूरा करता है–

   (अ) 27.33 दिन (ब) 24 दिन

   (स) 30 दिन (द) 365¼ दिन

5. सौरमण्डल के किस ग्रह पर जीवन पाया जाता है–

   (अ) मंगल (ब) बृहस्पति

   (स) बुध (द) पृथ्वी

6. पृथ्वी को ऊर्जा कहाँ से मिलती है–

   (अ) चन्द्रमा (ब) सूर्य

   (स) मंगल (द) बृहस्पति

7. पृथ्वी का गर्म व तरल भाग है–

   (अ) प्रावार (ब) पर्पटी भाग

   (स) क्रोड (द) उपरोक्त सभी

8. पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में कितना समय लगता है–

   (अ) 30 दिन (ब) 24 दिन

   (स) 27.33 दिन (द) 365¼ दिन

9. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल में कौनसी गैस अनुपस्थित थी–

   (अ) अमोनिया (ब) कार्बन डाइऑक्साइड

   (स) मीथेन (द) ऑक्सीजन

10. इकोलोजी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया–

    (अ) राइटर (ब) टेन्सले

    (स) हेकल (द) डार्विन

11. जीवों के समूह एवं उनके पर्यावरण के मध्य के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन को कहा जाता है–

    (अ) भूगोल (ब) जीव विज्ञान

    (स) पारिस्थितिकी (द) मानव शास्त्र

12. MAB किसका संक्षिप्त रूप है–

    (अ) मानव एवं जैवमण्डल (ब) मानव एवं पर्यावरण

    (स) मानव एवं बायोम (द) मानव एवं बैक्टीरिया

13. दीर्घ दीप्तीकाली पौधों को कितने घण्टे का अंधकार काल आवश्यक होता है–

    (अ) 8 (ब) 10

    (स) 12 (द) 16

14. जिन क्षेत्रों में उच्च तापक्रम होता है वहाँ किस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है–

    (अ) सदाहरित (ब) पर्णपाती

(स) एल्पाइन (द) मिश्रित शंकुधारी

15. कौनसे पौधे वायुमण्डलीय आर्द्रता को सीधे अवशोषित करते हैं–

(अ) लाइकेन (ब) मॉस

(स) आर्किड (द) उपरोक्त सभी

16. कौनसी मृदा जलाक्रान्त होती है–

(अ) चिकनी (ब) दोमट

(स) बलुई (द) गाद

17. मृदा में पाये जाने वाला किस प्रकार का जल पौधों को प्राप्त होता है–

(अ) आर्द्रताग्राही (ब) केशिका

(स) रासायनिक बन्धित (द) गुरुत्वीय

18. समुद्री एनीमोन एवं हरमिट क्रेब के मध्य कौनसा संबंध पाया जाता है–

(अ) सहभोजिता (ब) सहोपकारिता

(स) प्राकसहयोगिता (द) परजीविता

19. पूर्ण स्तम्भ परजीवी है–

(अ) कुस्कुटा (ब) ओरोबेंकी

(स) लोरेंथस (द) स्ट्राइगा

20. कीटाहारी पादप नहीं है–

(अ) ड्रोसेरा (ब) नेपेन्थीस

(स) डायोनिया (द) ओरोबेंकी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. ब्रह्माण्ड किससे बनता है?
2. सौरमण्डल क्या है?
3. दिन व रात्रि का चक्र 24 घण्टे का ही क्यों होता है?
4. सूर्य के नजदीक ग्रह कौनसा है?
5. सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह कौनसा है?
6. पृथ्वी पर जीवन धारण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ क्या है?
7. ह्युमस व डफ में क्या अन्तर है?
8. पारिस्थितिकी की परिभाषा लिखिए।
9. लघुदीप्तीकाली पौधे क्या है?
10. लिट्टर क्या है?
11. पीडोलोजी की परिभाषा दीजिए।
12. सहभोजिता क्या है?
13. प्राक्सहयोगिता किसे कहते हैं?
14. एलीलोपेथी क्या है?
15. किस प्रकार की मृदा खेती के लिए उपयुक्त होती है?
16. कवकमूल में किसका साहचर्य होता है?
17. विश्व का सबसे बड़ा पुष्प कौनसा है?
18. मृदा में नाइट्रोजन स्थायीकरण करने वाले जीवाणु कौनसे हैं?
19. खनिजीकरण क्या है?
20. होलार्ड किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. बिग बेंग सिद्धान्त क्या है?
2. ब्रह्माण्ड किससे मिलकर बनता है?
3. सौरमण्डल की संरचना कैसी होती है?
4. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल की क्या विशेषताएं थी?
5. पृथ्वी की संरचना को समझाइए।
6. पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई?
7. सूर्य के विभिन्न ग्रहों को समझाइए।
8. मृदा परिच्छेदिका की विभिन्न स्तरों को समझाइए।
9. सहोपकारिता एवं परजीविता में क्या अन्तर है?
10. जलवायवीय कारकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. सहनशीलता का नियम क्या है?
12. न्यूनता का नियम क्या है?
13. दीप्तीकालिता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
14. तापमान का वनस्पति वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइए।
15. सहभोजिता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
16. भूआकृतिक कारकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
17. सूर्यतापी एवं छायातापी पादपों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
18. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) अधिपादप
    (ii) आधसहकारिता
19. परभक्षिता एवं प्रतिजीविता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
20. धनात्मक अन्योयक्रियाएं क्या है?टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. जलवायवी कारकों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. सौरमण्डल एवं इसके विभिन्न ग्रहों पर विस्तार से वर्णन लिखिए।
3. मृदीय कारकों को विस्तार से समझाइए।
4. धनात्मक व ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाओं के विभिन्न प्रकारों को विस्तार से समझाइए।
5. पृथ्वी के उद्‌भव एवं इस पर जीवन के विकास की अवधारणा को विस्तारपूर्वक समझाइए।
6. निम्न पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए–

   (अ) भूवैज्ञानिक चक्र

   (ब) सहोपकारिता

उत्तरमाला: 1 (ब) 2 (स) 3 (स) 4 (अ) 5 (द)
6 (ब) 7 (स) 8 (द) 9 (द) 10 (अ)
11 (स) 12 (अ) 13 (अ) 14 (अ) 15 (द)
16 (अ) 17 (ब) 18 (स) 19 (अ) 20 (द)

इकाई – 2
जनसंख्या और समुदाय
(Population and Community)

सामान्य अर्थों में समष्टि (Population) का अर्थ जनसंख्या अर्थात जीवों की संख्या से लिया जाता है। अंग्रेजी में प्रयुक्त 'पापुलेशन' शब्द लेटिन भाषा के शब्द 'पोप्यूलस' से लिया गया है जिसका अर्थ होता है लोग (People)। वहीं पारिस्थितिकी में समष्टि का अर्थ एक विशेष प्रजाति या कई सम्बन्धित जातियों के समस्त प्राणियों से है जो एक विशेष समय पर विशेष क्षेत्र में पाये जाते हैं।

परिभाषा (Definition)

विभिन्न वैज्ञानिकों ने समष्टि पारिस्थितिकी शब्द को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया है–

रूट (1967) के अनुसार, "किसी जन्तु प्रजाति की कार्यात्मक इकाई के सदस्यों के उस समूह को जो वातावरण से सीधे अनुक्रियायें करते हुए स्थान विशेष के प्राकृतिक स्रोतों का समान रूप से शोषण करते है, समष्टि (Population) कहते हैं।"

मकनॉटन (1973) के अनुसार, "समान आनुवंशिकी के उस समूह को जो समान समय व स्थान पर पाये जाते हैं, समष्टि कहलाते हैं।"

क्रेब्स (1976) के अनुसार, "किसी विशेष समय और स्थान पर प्रजाति विशेष के समूह को वहाँ की जीव संख्या या समष्टि कहते हैं।"

अध्ययन की दृष्टि से समष्टि को दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. एक जातीय समष्टि (Monospecific population) – एक समष्टि में केवल एक जाति को शामिल किया जाता है।

2. बहुजातीय समष्टि (Polyspecific population) – एक समष्टि के अध्ययन में कई जातियों को शामिल किया जाता है।

समष्टि पारिस्थितिकी में किसी समष्टि की वद्धि, घनत्व, आकार, विभाजन, जन्मदर, प्रतिस्पर्द्धा, मृत्युदर, सहनशीलता आदि का अध्ययन किया जाता है।

जनसंख्या के अभिलक्षण (Population Characteristics)

एक जनसंख्या के अध्ययन हेतु निम्नलिखित अभिलाक्षणिक गुणों का अध्ययन किया जाता है–

(1) आकार एवं घनत्व (Size and density)

(2) प्रकीर्णन (Dispersion)

(3) जन्म दर (Natality)

(4) मृत्यु दर (Morality)

(5) आयु संरचना (Age structure)

(6) लिंगानुपात (Sex ratio)

(7) वृद्धि दर (Growth rate)

(8) जैविक विभव (Biotic potential)

1. आकार एवं घनत्व (Size and density) – किसी भी जनसंख्या में उसके सदस्यों की संख्या को सम्पूर्ण आकार के रूप में विरूपित किया जाता है जबकि पर्यावरण के प्रति इकाई क्षेत्रफल में उपस्थित सदस्यों की संख्या उसका घनत्व कहलाती है। बड़े जीवों को जैसे प्रति हेक्टेयर 200 वृक्षों की संख्या तथा छोटे जीवों जैसे पादप प्लवकों की 5 मिलियन कोशिकाऐं प्रति क्युबिक मीटर जल के रूप में दर्शाया जाता है। भार के रूप में इसे 200 पौण्ड मछलियों की प्रति हेक्टेयर जल सतह के रूप में दर्शाया जा सकता है।

प्रकृति में जीवों का वितरण भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है अतः घनत्व भी इसी आधार पर दो प्रकार का हो सकता है–

(i) अपरिष्कृत घनत्व (Crude density) – किसी भी जीव की प्रति इकाई संख्या या जैवभार कुल क्षेत्रफल का अपरिष्कृत घनत्व कहलाता है।

(ii) विशिष्ट या पारिस्थितिकीय घनत्व (Specific or ecological density) – किसी भी जीव की प्रति इकाई संख्या या घनत्व कुल आवासीय क्षेत्रफल का विशिष्ट घनत्व कहलाता है। आवासीय क्षेत्रफल वह क्षेत्र है जिसमें वास्तविक रूप से जनसंख्या निवास करती है।

उपरोक्त दोनों घनत्व प्रकारों को निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है। प्रकृति में सामान्यतः जीव जातियाँ समूह में उगती हैं लेकिन उनका वितरण कभी भी समान नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर पादप जातियाँ केसिया टोरा एवं ऑप्लीसेम्नस छायादार क्षेत्रों में सघनता से तथा खुले क्षेत्रों में विरल रूप से उगती हैं। इस प्रकार पूर्ण क्षेत्रफल (छायादार व खुला) का घनत्व अपरिष्कृत घनत्व कहलायेगा जबकि केवल छायादार क्षेत्रों का घनत्व जहाँ पर अधिकांश पादप जातियाँ सघनता से उग रही है, पारिस्थितिकीय घनत्व कहलायेगा।

घनत्व का मापन उस समय और महत्वपूर्ण हो जाता है जब किसी क्षेत्र की जनसंख्या समय के साथ परिवर्तित हो रही है या तो घट रही है या बढ़ रही है। ऐसे समय में दोनों घनत्व का मान में अन्तर होगा। बदलती हुई जनसंख्या क्षेत्रों में सापेक्षिक बाहुल्यता अधिक बेहतर सूचक होगा।

2. प्रकीर्णन (Dispersion) – किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या के सदस्यों का एक दूसरे से सापेक्षिक स्थानिक स्वरूप प्रकीर्णन कहलाता है।

वितरण सामान्यतः तीन प्रकार का होता है–

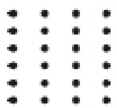

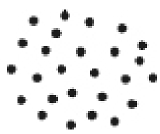

(i) नियमित प्रकीर्णन (Regular dispersion) – इस प्रकार के प्रकीर्णन में जनसंख्या के सदस्य एक दूसरे से लगभग समान दूरी पर उपस्थित रहते हैं। यह प्रकृति में कभी–कभी होता है। लेकिन फसली क्षेत्रों में यह व्यवस्थित तंत्र के रूप में पाया जाता है।

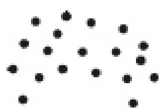

(ii) यादृच्छिक प्रकीर्णन (Random dispersion) – इस प्रकार के प्रकीर्णन में जनसंख्या के एक सदस्य स्थिति दूसरे पड़ौसी सदस्यों से असम्बन्धित होती है। यह भी प्रकृति में सामान्यतः कभी–कभी होती है।

(iii) सामूहिक प्रकीर्णन (Clumped dispersion) – अधिकांश जनसंख्या में इस प्रकार का प्रकीर्णन सामान्यतः पाया जाता है। जिसमें जनसंख्या सदस्य समूहों में पायी जाती है तथा इनके बीच–बीच में सदस्य कम या नहीं भी पाये जाते हैं। इस प्रकार का प्रकीर्णन सामानिक समूहों जैसे एक ही कुल समूह या कुछ वातावरणीय परिस्थितियों के फलस्वरूप होता है।

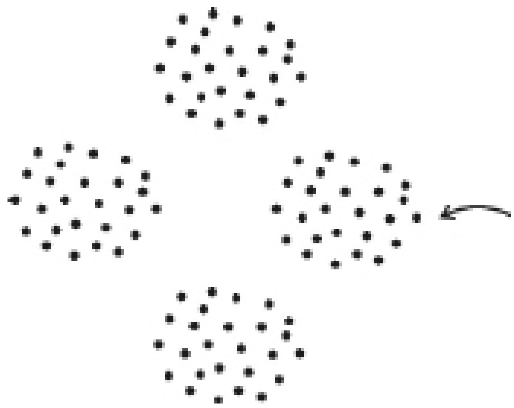

3. जन्म दर (Natality) – किसी समष्टि में इकाई समय में जन्मे नए सदस्यों की संख्या को जन्म दर (Natality or birth rate) कहा जाता है। यह समष्टि की जनसंख्या में हो रही वृद्धि को दर्शाती है।

जन्म दर की गणना के समय कई कारकों को ध्यान में रखा जाता है – आयु, समय, भोजन, जैविक या अजैविक आदि अनेक कारक जन्म दर को प्रभावित करते हैं। उदाहरणतः समष्टि के अलग–अलग आयु वर्ग के लिए जन्म दर अलग–अलग होती है यथा युवावस्था में जन्म दर अधिकतम तथा उत्तरोतर वृद्धावस्था में यह कम होती जाती है।

जन्म दर का निम्न दो रूपों में अध्ययन किया जाता है–

(i) उच्चतम या कार्यिकीय जन्म दर (Maximum or physiological natality) – इसे परम, सम्भावित या क्रियाशील जन्म दर भी कहा जाता है, यह किसी समष्टि के लिए नियत (Constant) होती है अतः इसके मान पर पर्यावरणीय कारकों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन यह कार्यिकीय कारकों से प्रभावित होती है इसे उत्पादकता दर (Fecundity rate) के रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) पारिस्थितिकीय या वास्तविक जन्म दर (Ecological or realised natality) – इसका मान विभिन्न पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होता है अर्थात् परिवर्तनशील होता है। अतः सभी वास्तविक दशाओं में समष्टि के जीवों की संख्या में होने वाली वृद्धि को पारिस्थितिकीय या वास्तविक जन्म दर कहते हैं (चित्र 2.1)।

जन्म दर की गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है–

$$N = \frac{B}{t}$$

$$\text{जन्म दर} = \frac{\text{नए उत्पन्न जीवों की संख्या}}{\text{समय}}$$

जन्म दर को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है –

परम जन्म दर $\quad (B) = \frac{\Delta Nn}{\Delta t}$

विशिष्ट जन्म दर $\quad (b) = \frac{\Delta Nn}{N\Delta t}$

जहाँ – $\quad$ N = वास्तविक जीवों की संख्या

n = नए जीवों की संख्या

t = समय

4. मृत्यु दर (Mortality) – इकाई समय में किसी समष्टि में मरने वाले जीवों की संख्या समष्टि की मृत्यु दर कहलाती है। जन्म दर की तरह ही मृत्यु दर को भी निम्न दो रूपों में व्यक्त किया जाता है–

(i) न्यूनतम मृत्यु दर (Minimum mortality) – इसे विशिष्ट या परम मृत्यु दर भी कहते हैं। यह आदर्श परिस्थितियों अर्थात् बिना किसी सीमाकारी कारकों के प्रभाव में समष्टि में होने वाली मृत्यु की संख्या में प्रदर्शित करती है। किसी समष्टि के लिए इसका मान स्थिर होता है एवं पर्यावरणीय कारकों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्थात् जीवों की मृत्यु आदर्श परिस्थितियों में सम्पूर्ण आयु पूरी कर लेने के पश्चात् ही होती है।

(ii) पारिस्थितिकीय या वास्तविक मृत्यु दर (Ecological or realised mortality) – वास्तविक परिस्थितियों में मृत्यु दर समष्टि में होने वाले जीवों की मृत्यु, वास्तविक या पारिस्थितिकीय मृत्यु दर कहलाती है। इसका मान पारिस्थितिकीय व अन्य कारकों द्वारा प्रभावित होता है अतः मान परिवर्तनशील होता है।

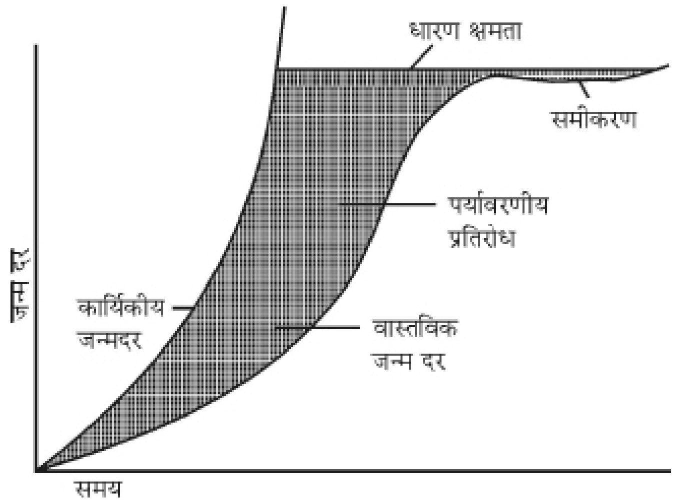

चित्र 2.1 : पर्यावरणीय प्रतिरोध

$$N = \frac{D}{t}$$

समष्टि का अस्तित्व बना रहे इसके लिए मृत्यु दर से भी जीवित दर या जन्म मृत्यु दर महत्वपूर्ण कारक है, अर्थात जन्मे सदस्यों में से कितने सदस्य जीवित रहे।

जीवित दर सामान्यतः जीवित चक्र द्वारा दर्शायी जाती है।

$$\text{जन्म मृत्यु दर (Vital index)} = \left(\frac{\text{जन्म}}{\text{मृत्यु}} \times 100 \right)$$

5. आयु संरचना (Age structure) – सभी प्रजातियों के जीव लगभग सभी आयु वर्गों में पाए जाते हैं तथा प्रत्येक आयु वर्ग में जीवों की संख्या अलग–अलग होती है। साथ ही किसी निश्चित आयु वर्ग में जीवों की अधिकतम संख्या भी जाति विशेष के लिए अभिलाक्षणिक होती है। इस प्रकार किसी जीव संख्या में विभिन्न आयु वर्ग के सदस्यों की तुलनात्मक प्रचुरता को जीव की आयु संरचना (Age structure) या आयु वितरण (Age distribution) कहा जाता है।

सामान्यतः तीव्र रूप से बढ़ती हुई प्रजाति में युवा तथा बाल आयु वर्ग सदस्यों की संख्या अधिक होती है वहीं पतनशील प्रजाति में इसके विपरीत वृद्धावस्था के सदस्यों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

अलग–अलग आयु स्तरों में भी मृत्यु दर अलग–अलग होती है इसके अलावा जिन प्रजातियों में उच्च प्रजनन दर होती है उनमें आरम्भिक अवस्था में मृत्यु दर भी अधिक होती है तथा जिन प्रजातियों में जन्म दर कम होती है उनमें प्रारम्भिक अवस्था में मृत्यु दर कम होती है। किन्तु जिन प्रजातियों में समष्टि स्थिर हो जाती है उनमें जन्म दर व मृत्यु दर समान रहती है तथा आयु वितरण भी लगभग समान रहता है। बोडनीमर (Bodeneimer, 1938) द्वारा आयु संरचना का विवरण तीन श्रेणियों में दिया गया है–

(1) प्रजनन–पूर्व आयु (Pre–reproduction Age)

(2) प्रजनन आयु (Reproductive Age)

(3) प्रजनन–पश्चात् आयु (Post–reproductive Age)

भिन्न–भिन्न प्रजातियों में अलग–अलग प्रजनन–पूर्व आयु, प्रजनन आयु व प्रजनन–पश्चात् आयु पाई जाती है। कुछ जीवों में प्रजनन पूर्व आयु अधिक होती है तो कुछ में प्रजनन आयु या कुछ में प्रजनन पश्चात् आयु अधिक पाई जाती है इस आधार पर भी ऊपर दिखाए अनुसार जीवों का वर्गीकरण किया गया है। मनुष्य में ये तीनों आयु लगभग समान होती है।

आयु स्तूप (Age Pyramids) – किसी जीव की प्रजाति में उसकी आयु के अनेक समूहों के अनुपात को रेखागणितीय रूप से

दिखाने वाले मॉडल को आयु स्तूप (Age pyramid) कहा जाता है। इन आयु स्तूपों में आधार रेखा (x अक्ष पर) किसी विशेष आयु वर्ग में जीवों की संख्या तथा लम्बवत अक्ष (ल) पर आयु को आरेखित किया जाता है, इस प्रकार तीन तरह के आयु स्तूप प्राप्त होते हैं–

(a) वृहद आधार वाला स्तूप

(b) घण्टाकार बहुभुज

(c) कुम्भाकार स्तूप

(a) वृहद आधर वाला स्तूप (A pyramid with broad base) – तीव्र गति से वृद्धि करने वाली समष्टि द्वारा यह स्तूप दर्शाया जाता है अतः समष्टि में वयस्कों की संख्या अधिकतम होती है, मृत्यु दर वृद्धावस्था में ही अधिक होती है। कम समय में ही ये प्रजातियां अपनी संख्या को बहुत अधिक बढ़ा लेती है उदाहरणतः यीस्ट (Yeast), मक्खी (House fly), पैरामीशियम (*Paramecium*) आदि (चित्र 2.2)।

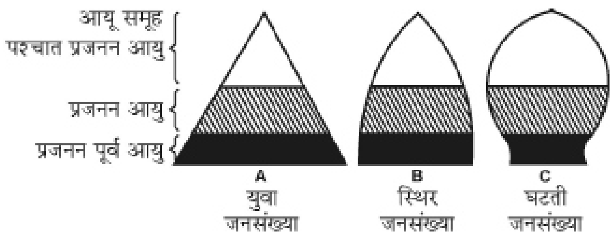

चित्र 2.2 : भिन्न प्रकार के आयु पिरैमिड दर्शाता परिकल्पित

(b) घण्टाकार बहुभुज (A bell shaped polygon) – इस प्रकार का स्तूप दर्शाने वाली समष्टि में वृद्धि दर (Growth rate) कम तथा स्थिर होती है। इनमें वयस्कों की संख्या कम तथा स्थिर होती है। इनमें वयस्कों की संख्या कम परन्तु वृद्धों की संख्या अधिक होती है।

प्रजनन–पूर्व आयु तथा प्रजनन आयु श्रेणी लगभग समान परिमाप की होती है तथा प्रजनन पश्चात आयु का वर्ग सबसे छोटा होता है जिससे स्तूप घण्टाकार (Bell shaped) बनता है।

(c) कुम्भाकार स्तूप (An urn-shaped pyramid) – यह स्तूप किसी पतनशील समष्टि द्वारा दर्शाया जाता है। इसमें प्रारम्भिक आयु वर्ग तुलनात्मक रूप से छोटा होता है तथा वृद्धावस्था वाला वर्ग बड़ा होता है। जिससे जन्म दर कम हो जाती है व प्रजनन–पूर्व आयु श्रेणी का अनुपात प्रजनन व प्रजनन–पश्चात् आयु की तुलना में अत्यन्त कम होता है। फलतः कुम्भाकार आकृति वाला स्तूप बनता है।

आयु स्तूप विभिन्न समष्टियों को आयु वितरण को सरल रूप से प्रदर्शित कर तुलना करने की एक सुगम विधि है, जिससे समष्टि की वृद्धि दर का आंकलन भी किया जा सकता है।

6. आयु एवं लिंग अनुपात (Age and sex ratio) – सभी एक समष्टि वृद्धिशील, पतनशील या स्थिर हो सकती है। आयु वितरण समष्टि की जन्मदर व मृत्युदर को नियंत्रित करता है। समष्टि में आयु अनुपात, प्रमुख रूप से जीव संख्या की कच्ची जन्मदर व मृत्युदर (Crude natality and mortality) से प्रभावित होता है। समष्टि के घनत्व का तब तक वास्तव में कोई अर्थ नहीं है जब तक इसकी आयु संख्या पर विचार न किया जाये। समष्टि को तीन पारिस्थितिकीय कालों में विभाजित किया जा सकता है– (i) पूर्व प्रजनन काल (Pre-reproductive period), (ii) प्रजनन काल (Reproductive period), (iii) पश्च प्रजनन काल (Post-reproductive period)। इन तीनों आयुओं की तुलना भिन्न–भिन्न पाई जाती है व बदलती रहती है। यद्यपि समष्टि घनत्व समान रहता है। एक ऐसी समष्टि जिसमें उत्प्रवास (Emigration) व अप्रवास (Immigration) नहीं हो रहा हो उसमें विभिन्न आयुओं में अनुपात की प्रवत्ति स्थिर (Constant) होने की बनी रहती है जहां जन्मदर मृत्युदर के बराबर हो। आयु अनुपात भविष्य के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रजननता एक निश्चित आयु वर्ग तक ही सीमित रहती है और मृत्युदर दूसरे आयु वर्गों में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

पारिस्थितिकीविद् इस विचारधारा के हैं कि वन्य जीवों के एक तुलनात्मक स्थिर अभयारण्य के मुख्य जन्तुओं के युवा व वयस्क जीवों के मध्य अनुपात करीब 2:1 होता है जो कि स्थिर होता है। यह भी वर्णित है कि वृद्धिशील समष्टि में युवा जीवों की संख्या अधिक होती है। जबकि अवनतिकारी समष्टि में वयस्क जीव अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

नर व मादा जीवों में भिन्नता लिंग कहलाती है। लिंग के आधार पर पादपों को एक लिंगाश्रयी (dioecious) व उभयलिंगाश्रयी (monoecious) वर्गों में विभक्त किया गया है। समष्टि में कुछ प्रजातियों का लिंग अनुपात समष्टि घनत्व परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो सकता है। लिंग का नियंत्रण तापक्रम दीप्तिकाल, खनिज व वृद्धि पदार्थों आदि से भी होता है। जैसे कि इक्वीसीटम (*Equisetum*) के प्रोथैलस सामान्यतया उभयलिंगाश्रयी होते हैं व नर व स्त्री जननांग धारण करते हैं (जबकि पारिस्थितिक परिस्थितियां अनुकूल होती हैं)। पुंधानी व स्त्रीधानी यदा कदा ही एक ही समय पर एक साथ एक ही प्रोथैलस पर पाई जाती है। इक्वीसीटम की कुछ प्रजातियों में प्रोथैलस एकलिंगाश्रयी होते हैं। सामान्यतया सघन विन्यासित व अल्प पोषण स्थिति में पाये जाने वाले प्रोथैलस पर पुंधानी उत्पन्न

होती है जबकि विरल विन्यासित प्रोथैलस पर स्त्री धानियां (Archegonia) उत्पन्न होती है। ऐसे प्रोथैलस जो कि समुचित मात्रा में भोजन संश्लेषित कर सकते हैं पहले स्त्री धानियां (Archegonia) निर्मित करते हैं व बाद में पुंधानियों (Antheridia) का निर्माण करते हैं।

आयु वितरण के अतिरिक्त भिन्न लिंगों के जीवों का अनुपात भी समष्टि आमाप को प्रभावित करता है। अधिकांश पादप प्रजातियों में पादप उभयलिंगाश्रयी होते हैं व यदा कदा ही नर व मादा पादप पृथक–पृथक होते हैं (जैसे कि साइकस, इफीड्रा)। जन्तुओं में कई प्रजातियों के नर व मादा जीवों की संख्या में अत्यधिक विविधता पाई जाती है। उदाहरणार्थ सामाजिक कीट जैसे कि शहद मक्खी (Apies) व दीमक की समष्टि में मात्रा एक ही मक्खी मादा (Queen) होती है जो कि प्रजनन हेतु सक्षम होती है व अन्य मक्खियां नर या नपुंसक (Neutral) होती हैं। लिंग अनुपात में परिवर्तन आयु के साथ भी आता है क्योंकि नर व मादा जीवों की मृत्युदर में भिन्नता पाई जाती है।

लिंग अनुपात किसी विशिष्ट समय पर प्रजाति विशेष के उस अनुपात को दर्शाता है जो कि उस समय के नर व मादा जीवों के मध्य पाया जाता है। मानव समष्टि के संदर्भ में लिंग अनुपात द्वारा किसी राष्ट्र की श्रम संरचना, विवाह की आयु तथा आय के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस अनुपात की गणना हेतु पुरुष संख्या को स्त्री संख्या से भाजित किया जाता है व भाग फल को 1000 से गुणित कर दिया जाता है जिसे सूत्रावत निम्नानुसार लिख सकते हैं –

$$SR = \frac{M}{F} \times 1000$$

सूत्र में

SR = लिंग अनुपात

M = जनगणना में पुरुष संख्या

F = जनगणना में स्त्री संख्या

उदाहरण स्वरूप किसी देश की जनगणना में पुरुषों की संख्या 50 मिलियन व स्त्रियों की संख्या 40 मिलियन है तो

$$SR = \frac{M}{F} \times 1000$$

$$= \frac{50}{40} \times 1000 = 1250$$

अतः लिंगानुपात 1250 पुरुष प्रति हजार स्त्रियां होगा।

यदि लिंगानुपात 1 से अधिक है तो पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक है व जब यह अनुपात 1 से कम है तब पुरुषों की संख्या स्त्रियों से कम होगी, परन्तु यदि यह अनुपात एक है तब पुरुषों तथा स्त्रियों की संख्या बराबर होगी।

सामान्यतः जन्म के समय लिंगानुपात 105 होता है। इसका कारण यह है कि लड़कों का जन्म लड़कियों की तुलना में अधिक होता है। लड़कों की बाल मृत्युदर (Infant mortality of boys) लड़कियों की बाल मृत्युदर (Infant mortality of girls) की तुलना में अधिक होती है। फलस्वरूप विषम लिंगानुपात चार वर्ष की आयु तक बराबर हो जाता है। इस आयु वर्ग के पश्चात् सामान्यतः पुरुषों की संख्या अनेक आयु वर्ग में घटने लगती है तथा 95 वर्ष की आयु में पुरुषों की संख्या स्त्रियों की तुलना में आधी रह जाती है। सामान्यतः लिंगानुपात 90 से कम आयु पर तथा 110 से अधिक आयु पर असंतुलित रहता है।

7. वृद्धि दर (Growth rate) – जनसंख्या की वृद्धि दर अनेक कारणों द्वारा प्रभावित होती है। इसमें जन्म दर, मृत्यु दर, आयु एवं लिंगानुपात आदि का वर्णन अध्याय के पूर्व में कर चुके हैं।

वाइटल इन्डेक्स जो कि जीवों की जन्म व मृत्यु दर का अनुपात होता है, के अनुसार जहाँ जन्म दर ज्यादा हो जनसंख्या में धनात्मक वृद्धि होगी तथा जहाँ मृत्यु दर ज्यादा हो तो जनसंख्या में कमी होगी। जहाँ पर जन्म व मृत्यु दर समान हो तो यह अनुपात स्थिर हो जाता है। जनसंख्या वृद्धि को निम्न कारक भी प्रभावित करते हैं –

(i) बहिःप्रवास या उत्प्रवासन (Emigration) – जब किसी स्थान से जीवों की एक संख्या किसी दूसरे स्थान पर चली जाए तो वह बहिःप्रवास कहलाती है। अगर इस प्रकार के प्रवास में जीव पुनः अपने मूल स्थान पर लौटकर नहीं आता है तो यह एक स्थाई गमन होता है। इससे उस स्थान की जनसंख्या में कमी आ जाती है।

(ii) अन्तःप्रवास या आप्रवासन (Immigration) – किसी एक स्थान पर एक जीव जाति के आगमन को अन्तःप्रवास या आप्रवासन कहते हैं। यहाँ पर भी आये हुए जीव पुनः नहीं लौटते हैं तो इससे जनसंख्या में वृद्धि होती है।

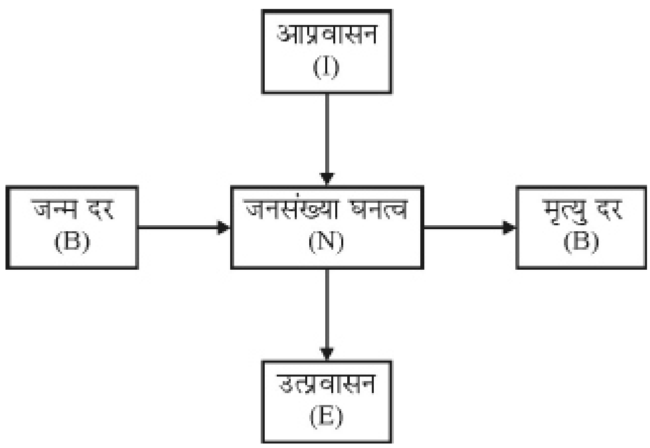

यदि N_1 एक समय पर जनसंख्या घनत्व है, B जन्म दर, I आप्रवासन तथा D मृत्यु दर एवं E उत्प्रवासन है तो इसे निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है –

$$N_1 + I = N_1[(B+I) - (D+E)]$$

उपरोक्त समीकरण द्वारा यह समझा जा सकता है कि यदि जन्म दर एवं आप्रवासन की दर अधिक हो तो जनसंख्या घनत्व बढ़ता है लेकिन अगर मृत्यु दर एवं उत्प्रवासन दर अधिक हो तो जनसंख्या का घनत्व घट जाता है। जब जन्म दर व मृत्यु दर बराबर होती है तो इसे प्लेट्यु अवस्था कहते हैं।

जीव संख्या के वृद्धि के मुख्य प्रतिरूप जीव संख्या वृद्धि आकार है। समष्टि वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप हैं : (चित्र A व B)

(1) 'J' शक्ल का वृद्धि आकार, व

(2) 'S' शक्ल का वृद्धि आकार (चित्र A एवं B)।

1. **'J'** शक्ल का वृद्धि आकार – इस प्रकार के प्रतिरूप में समष्टि का घनत्व तीव्रता से चरघातांकी रूप (Exponential fashion) से वृद्धि करता है व अचानक पर्यावरणीय प्रतिरोध के कारण एकदम रूक होता है। 'J' आकार का वक्र यह दर्शाता है कि जैसे ही समष्टि एसिम्पटोट (Asymptote) अर्थात् जीव संख्या का उच्चतम आकार पर पहुंचती है तो एक सीमाकारी प्रभाव जैसे मौसम, स्थान आदि जीव संख्या को बढ़ने से रोक देता है (चित्र 2.4)। इस आकार को निम्नांकित समीकरण से दर्शाया जा सकता है –

$$\frac{\Delta N}{\Delta t} = rN \qquad \text{या} \qquad r = \frac{\Delta N}{\Delta t/N}$$

समीकरण में

r = वृद्धि दर N = संख्या

t = समय D = परिवर्तन

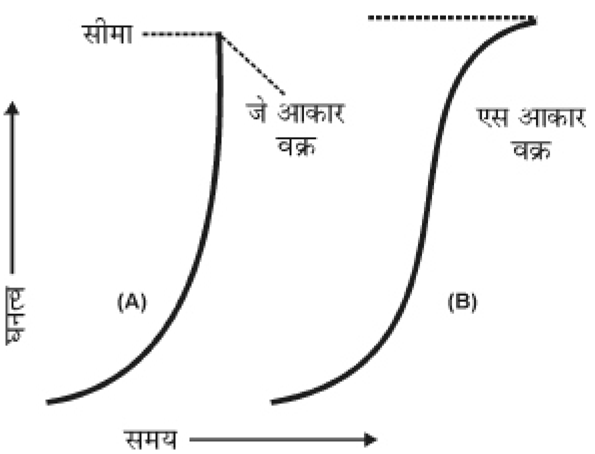

चित्र 2.4 : जीव संख्या वृद्धि आकार

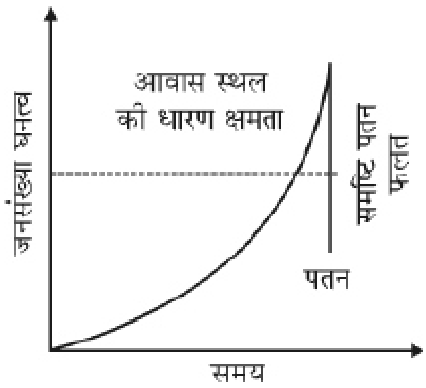

चित्र 2.5 : सैद्धान्तिक समष्टि वृद्धि व फलतः पतन **(Crash)** जबकि समष्टि आवास स्थल **(Habitat)** के धारण क्षमता **(Carrying capacity)** को पारकर जाती है।

2. **'S'** शक्ल या सिग्माइड (Sigmoid) वृद्धि आकार – इस प्रकार के वृद्धि आकार में वृद्धि दर आरम्भ में कम होती है, फिर बढ़ती है जब तक कि उच्चतम सीमा तक नहीं पहुंच जाती। जैसे–जैसे घनत्व बढ़ता जाता है, दर लगातार कम होती जाती है। जब जीव संख्या वहन क्षमता (Carrying capacity) पहुंचती है तो वक्र चपटा (Flattened) हो जाता है (चित्र 2.5)।

'S' आकृति या सिग्मोइड वृद्धि आकार निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है–

$$\frac{\Delta N}{\Delta t} = \frac{rN(K-N)}{K}$$

समीकरण में 'K' वातावरणीय अवस्था में जीवसंख्या का उच्चतम संभव आकार है। इसे ऊपरी एसिम्पटोट (Upper asymptote) या वहन क्षमता (Carrying capacity) भी कहा जा सकता है। समीकरण मात्रा यह इंगित करता है कि समष्टि की वृद्धि दर जीव संख्या की विभव वृद्धि (Potential increase) के बराबर होती है।

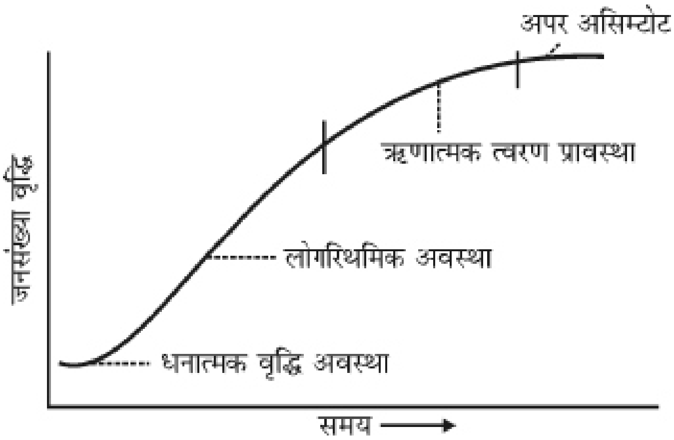

चित्र 2.6 : एक सैद्धान्तिक वृद्धि वक्र **(Growth curve)** समष्टि वृद्धि की विभिन्न प्रावस्थाओं को दर्शाते हुए

सिग्मोइड वक्र में वृद्धि प्रक्रम निम्नानुसार होता है – अनुकूल परिस्थितियों व क्षेत्र में व्याप्त समष्टि सर्वप्रथम शनैः–शनैः वृद्धि करती है। इसे धनात्मक त्वरण प्रावस्था (Positive acceleration phase) कहते हैं। तदुपरान्त बहुत ही तीव्र गति से वृद्धि होती है इसे लॉगेरिथमिक प्रावस्था (Logarithmic phase) कहते हैं (चित्र 2.6)।

अन्त में यह वृद्धि (धीमी हो जाती है जिसका कारण पर्यावरणीय प्रतिरोधकता (Environmental resistance) का बढ़ना होता है। इसे ऋणात्मक त्वरण प्रावस्था (Negative acceleration phase) कहते हैं। ऋणात्मक त्वरण प्रावस्था तब तक चलती है जब तक कि समष्टि की वृद्धि साम्यावस्था को प्राप्त नहीं कर लेती है। वृद्धि वक्र की ऊपरी सतह का स्तर जिसके परे कोई मुख्य वृद्धि नहीं होती, उसे ऊपरी एसिम्पटोट (Upper asymptote) कहते हैं। इसे वहन क्षमता (Carrying capacity) भी कहते हैं (चित्र 2.7)।

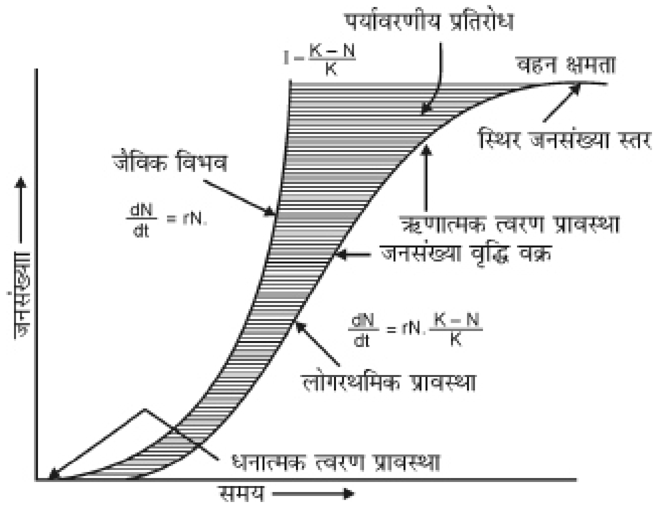

चित्र 2.7 : वृद्धि वक्र के विभिन्न अवयव

'सिग्मॉइड' आकृति का वृद्धि वक्र मुख्यतः यीस्ट (Yeast) की वृद्धि मानव समष्टि, ड्रोसोफिला आदि की समष्टि वृद्धि में दृष्टिगत होता है। जबकि 'J' आकृति का वृद्धि वक्र Lemmings, कुछ कीट जैसे कि गुलाब के Thrimps व Algal blooms द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं।

8. जैविक विभव (Biotic potential) – किसी समष्टि के लिए जब अनुकूल परिस्थितियां होती है तो इस दौरान इसमें अधिकतम जन्म दर तथा न्यूनतम मृत्यु दर होती है इन परिस्थितियों में जीवों की संख्या में बढ़ोतरी हेतु समष्टि में अन्तर्निहित क्षमता को जैविक विभव (Biotic potential) कहा जाता है। या दूसरे शब्दों में किसी जीव की सम्भावित अधिकतम जन्म दर को समष्टि का जैव विभव कहते हैं। हालांकि ऐसी आदर्श परिस्थितियां कभी भी स्थापित नहीं हो सकती क्योंकि इसमें परजीवियों, परभक्षियों, दुर्घटनाओं और परस्पर प्रतिस्पर्द्धा के कारण जीवों की अकाल मृत्यु हो जाती है फलतः मृत्यु दर बढ़ जाती है। मृत्यु के इन सभी कारणों को 'पर्यावरण सम्बन्धी प्रतिरोध' की अवधारणा के अन्तर्गत रखा जाता है।

किसी समष्टि में जीवों की संख्या में तीव्र वृद्धि होना या पतन की ओर बढ़ना समष्टि के जैविक विभव पर ही निर्भर करता है। पर्यावरणीय परिस्थितियां जब सर्वोत्तम होती है तब समष्टि अपने उच्चतम जैविक विभव का उपयोग कर तीव्र गति से समष्टि वर्ग को बड़ा कर लेती है। वहीं पर्यावरणीय परिस्थितियां प्रतिकूल होने पर समष्टि का आकार छोटा होने लगता है।

जैविक विभव या जीवीय क्षमता (Biotic potential) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम चैपमैन द्वारा 1928 में किया गया था। उनके अनुसार, "जीवों में जीवित रहने तथा प्रजनन करके अपनी संख्या में वृद्धि करने का गुण अन्तर्निहित होता है तथा यह जीवीय क्रियाशीलता या जैविक विभव कहलाता है।"

किसी समष्टि को जीवों की संख्या में वृद्धि जैविक विभव तथा पर्यावरणीय प्रतिरोध (Environmental resistance) पर निर्भर करती है। अर्थात इन दोनों के मिले–जुले प्रभाव के द्वारा ही परिणामी रूप से समष्टि के आकार में वृद्धि होती है। किसी असीमित वातावरण में उच्चतम वृद्धि गति को जैविक विभव से प्रदर्शित किया जा सकता है –

$$r = \frac{\Delta N}{\Delta t / N} \quad \text{या}$$

जहाँ– N = संख्या t = समय

r = वृद्धि दर Δ = परिवर्तन।

समुदाय पारिस्थितिकी (Community Ecology)

पादप समुदाय की अवधारणा नई नहीं है। वनस्पति विज्ञान के जनक थियोफ्रेस्टस Theophrastus 370-285 B.C.) ने भिन्न–भिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के पादप समुदायों के अस्तित्व का उल्लेख किया है। कार्ल मोबियस (Carl Mobius, 1880) ने बताया कि एक समुदाय में केवल पौधों का ही समुच्चय नहीं होता बल्कि इनके साथ प्राणियों का भी समुच्चय होता है। अतः ऐसे समुदाय को जैव समुदाय कहना चाहिये क्योंकि पादपों तथा प्राणियों का पृथक–पृथक अस्तित्व सम्भव नहीं है। क्लीमैन्ट्स (Clements) ने पादप समुदाय को एक निश्चित जातीय संगठन (Species composition) तथा जीवन इतिहास (Life history) वाले जीव की संज्ञा दी है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रकृति में विभिन्न जीव एक–दूसरे के साथ रहते हैं। पादपों एवं जन्तुओं की कुछ या अनेक जातियों को, जो पारस्परिक सहनशीलता तथा लाभदायक अन्योन्यक्रियाओं **(Beneficial interactions)** के साथ किसी प्राकृतिक क्षेत्र में साथ–साथ रहती हों, समुदाय कहते हैं, तथा इकोसिस्टम के जैविक घटक के पादप

भाग को पादप समुदाय कह सकते हैं।

पादप समुदाय के लक्षण (Characteristics of a Plant Community)

पादप समष्टि की भांति पादप समुदाय के भी अपने गुण होते हैं जो इसको बनाने वाली व्यष्टि जातियों में वैयक्तिक रूप से नहीं पाये जाते हैं। पादप समुदाय के लक्षण निम्न हैं–

(I) वृद्धि स्वरूप तथा संरचना (Growth form and structure)– किसी समुदाय का वर्णन उसके वृद्धि रूपों के अनुसार किया जाता है जैसे वृक्ष (Tree), क्षुप या झाड़ियां (Shrubs), शाक (Herbs), मोसेज (Mosses) आदि। प्रत्येक वृद्धि रूप में कई प्रकार के पौधे हो सकते हैं, जैसे मुख्य वृद्धि रूप वृक्ष में सदाबहार वृक्ष, बड़ी पत्तियों वाले वृक्ष या छोटी पत्तियों वाले वृक्ष। ये सभी वृद्धि रूप पादप समुदाय के संरचनात्मक ढांचे (Structural pattern) को निर्धारित करते हैं। विभिन्न वृद्धि रूपों की व्यवस्था के आधार पर पादप समुदाय (i) क्षैतिज परतन (Horizontal layering) तथा (ii) उर्ध्वाधर परतन (Vertical layering) दर्शाता है।

(ii) जाति विभिन्नता (Species diversity) – प्रत्येक पादप समुदाय विभिन्न जीवों (पादपों, जन्तुओं, सूक्ष्म जीवों आदि) से गठित होता है जो एक–दूसरे से वर्गिकीय दृष्टि से भिन्न होते हैं। इन सबमें प्रत्येक का अपना जीने का ढंग (Way of life) होता है तथा पादप समुदाय में इनकी अलग–अलग भूमिका होती है। प्रत्येक जाति की पादप समुदाय में भूमिका को 'निशे' (Niche) कहते हैं। किसी भी समुदाय में जातियों की संख्या तथा समष्टि बाहुल्य (Population abundance) इसके अत्यधिक महत्वपूर्ण भिन्नक (Variable) होते हैं।

(iii) पोषक संरचना या आत्म–निर्भरता (Trophic structure) – पोषण की दृष्टि से प्रत्येक समुदाय में स्वपोषी एवं विषमपोषी दोनों प्रकार के जीव सम्मिलित होते हैं। ये सभी मिलकर पादप समुदाय को आत्मनिर्भर तथा पूर्ण सन्तुलित बनाते हैं।

(iv) अनुक्रमण (Succession) – प्रत्येक समुदाय के विकास प्रक्रम का एक इतिहास होता है। सभी समुदायों में समय के साथ दिशात्मक परिवर्तन होते हैं, जिसके फलस्वरूप समुदाय परिवर्धित व परिवर्तित होते हैं। समुदाय का दिशात्मक परिवर्धन ही अनुक्रमण कहलाता है।

(v) प्रभाविता (Dominance)– एक पादप समुदाय की समस्त सदस्य जातियों के पौधे समान महत्ता वाले नहीं होते हैं। कुछ ही पादप, समुदाय की प्रकृति का निर्धारण करते हैं। ये पादप, समुदाय पर नियंत्रणकारी प्रभाव डालते हैं। इनको प्रभावी जातियां कहते हैं। इनका पादप समुदाय में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। कुछ अधिक प्रभाव रखते हैं तो कुछ कम।

जीव समुदाय विवृत (Open) या सवृत (Closed) होते हैं। जिस जीव समुदाय में जीवों की सघनता नहीं होती तथा जिसमें समय–समय पर दूसरे जीव भी स्थापित हो सकते हैं, उसे विवृत समुदाय कहते हैं। जिस समुदाय में जीवों की सघनता होती है एवं नये जीवों का समावेश नहीं हो सकता उसे सवृत समुदाय कहते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जीव समुदाय आत्म–निर्भर, निश्चित संरचना वाला तथा अत्यधिक जाति विभिन्नता के कारण एक जटिल समुदाय है, जिसमें सभी जीव एक–दूसरे से सन्तुलित अवस्था में रहते हैं। जीव समुदाय में विभिन्न जीव एक ही आवास में रहते हैं। इनके बीज एवं बीजाणु दूर–दूर तक फैल सकते हैं, इस सम्भावना के बावजूद भी सभी जातियां सभी जगह नहीं पाई जाती है। प्रत्येक जाति की जैविक क्षमता (Potentiality), पर्यावरणीय स्थितियों को सहन करने के सहनशीलता क्षेत्र (Tolerance range) का निर्धारण करती है, जिसमें अमुक जाति सफलतापूर्वक उग सके। पर्यावरण के प्रसार (Range) को जिसे जीव सहन कर सके, पारिस्थितिक आयाम (Ecological amplitude) कहते हैं। अतः पादप समुदाय की प्रकृति, उसके जातीय प्रकार (Species content), पारिस्थितिकीय आयाम, जलवायु, मृदा तथा जैविक प्रभावों द्वारा निर्धारित होती हैं।

समुदाय में प्रत्येक जीव का अपना एक विशेष स्थान होता है। ग्रिनेल (Grinnel, 1917) के अनुसार किसी जाति या जीव द्वारा आवास स्थल के उस निश्चित भाग (सूक्ष्म आवास) को जिसे वह घेरे रहता है, उस जाति या जीव का कर्मताया निशे (Niche) कहा जाता है। निशे, कारकों का एक विशेष समुच्चय है जो किसी जाति के पर्यावरण का निर्धारण करता है। एल्टन (Elton, 1927) ने निशे शब्द का प्रयोग समुदाय के क्रियात्मक महत्त्व (Functional importance) को दर्शाने के लिये, इसको जाति के पोषण सम्बन्धों से जोड़ा। निशे को अधिक स्पष्ट करने के लिये यह कहना उपयुक्त है कि आवास (Habitat) किसी जीव का पता (Address) है तथा निशे उसका क्रियाशीलता (Activity) है। अतः एक समुदाय में विभिन्न जीव एक ही आवास में रहते हुए विभिन्न क्रियाशीलता के कारण साथ–साथ जीवनयापन करते हैं।

पादप समुदायों का संगठन, संरचना और विकास (Composition, Structure and Development of Plant Community)

हर समुदाय का अपना संगठन, संरचना व निश्चित विकास क्रम होता है।

1. संगठन (Composition) – समुदाय प्रायः बड़ा या छोटा होता है अर्थात् इसका कोई निश्चित क्षेत्र नहीं आता है। समुदाय का आकार (Size) चाहे कितना भी हो लेकिन उसमें विभिन्न

जातियों के जीवों का समावेश रहता है। एक पादप समुदाय में सभी पादप समान महत्ता के नहीं होते। संगठन के दृष्टिकोण से उन्हें दो प्रकार के पादपों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) वे पादप जिनको नष्ट कर देने से पादप समुदाय के संगठन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। (ii) वे पादप जिनको नष्ट कर देने पर पादप समुदाय का संगठन अत्यधिक प्रभावित होता है। दूसरी श्रेणी के पौधे अपनी वृद्धि एवं स्थूलता (Bulk) से आवास को रूपान्तरित (Modify) करके पादप समुदाय की दूसरी जातियों की वृद्धि पर नियंत्रण रखते हैं। इन पौधों को प्रभावी (Dominant) पौधे कहते हैं। समुदाय का नामकरण भी उसकी प्रभावी जातियों के आधार पर ही करते हैं। किसी भी समुदाय में प्रायः एक ही जाति के पौधे प्रभावी होते हैं। कभी–कभी एक से अधिक जातियां भी प्रभावी हो सकती है। अगर एक ही जाति के पादप प्रभावी हों तो उस पादप समुदाय को संसंघ (Consociation) व एक से अधिक प्रभावी जातियां हों तो उसे सहसंघ (Association) कहते हैं।

2. संरचना (Structure) – पादप समुदाय का निर्माण करने वाले विभिन्न पादप एक निश्चित व्यवस्था क्रम में व्यवस्थित होकर पादप समूह की निश्चित संरचना करते हैं। संरचना की दृष्टि से पादप समुदाय में जीवों का दो प्रकार का व्यवस्थाक्रम होता है–

(i) क्षैतिज रूप में (Horizontally) तथा (ii) ऊर्ध्वाधर रूप में (Vertically)

एक पादप समुदाय को क्षैतिज रूप से अनेक उप समुदायों में, जो समान जीवन रूपों (Life forms) तथा पारिस्थितिक संबंधों की इकाई होते हैं, विभक्त कर सकते हैं। यह क्षैतिजीय विभाजन (Horizontal division) पादप समुदाय में अनुक्षेत्र वर्गीकरण (Zonation) का निर्माण करता है। जैसे हिमालय पर्वत पर ऊंचाई के साथ वनस्पति के विभिन्न अनुक्षेत्र (Zone) पाये जाते हैं। घने वन (Dense forest) में भी इसी प्रकार के अनुक्षेत्र पाये जाते हैं। जीवों या पादपों के उदग्र वितरण (Vertical distribution) के अनुसार पादप समुदाय की रचना में स्तरीकरण (Startification) की प्रवृत्ति पाई जाती है। एक समुदाय के सभी पौधे समान ऊंचाई के नहीं होते हैं तथा न ही आवास स्थल में एक ही ऊंचाई पर स्थापित होते हैं। भिन्न–भिन्न जातियां भिन्न–भिन्न ऊंचाई की होती है तथा भिन्न–भिन्न ऊंचाई पर व्यवस्थित होती है। जैसे ऊंचे वृक्षों के नीचे झाड़ियां, झाड़ियों के स्तर के नीचे शाकीय पौधों का स्तर एवं सबसे नीचे मॉस, शैवाल, लाइकेन आदि का स्तर। अतः ऊंचाई के अनुसार या वृद्धि रूपों के अनुसार वनस्पति के भिन्न–भिन्न स्तर बन जाते हैं ताकि समुदाय के सभी सदस्य पादप प्रकाश एवं अन्य कारकों का अधिक से अधिक उपयोग कर सकें।

3. पादप समुदाय का उद्भव एवं विकास (Origin and development of plant community) – पादप समुदाय का उद्भव उस समय आरम्भ होता है जब पौधों के प्रवर्धक अंग, जेम्यूल (Gemmule) जैसे बीज, बीजाणु, स्कंध, मूल स्कंध (Root stock) आदि अनावृत क्षेत्र में प्रवेश (Invasion) करते हैं। इन जेम्यूल्स या प्रवर्ध्यों का गमन (Migration) वायु, जल या जन्तुओं द्वारा होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण इनमें से अधिकांश नष्ट हो जाते हैं तथा शेष अनुकूल समय में अंकुरण करते हैं। उनमें से कुछ छादाधार अवस्था (Prop stage) को प्राप्त होते हैं। प्रवासी नवागन्तुकों को पुरोगामी पादप (Pioneers) कहते हैं। ये नये आवास में जनन तथा प्रवर्धन करते हैं। इस प्रकार पुरोगामी जातियों द्वारा नये क्षेत्र का उपनिवेशन (Colonization) आरम्भ होता है। प्रवास के पश्चात् प्रवासी जातियों के नये क्षेत्र में स्थापन प्रक्रम को आस्थापन (Ecesis) कहते हैं। पादप समुदायों के विकास के लिये आस्थापन प्रक्रम अनिवार्य है। उपनिवेशन के पश्चात् धीरे–धीरे इन पौधों की संख्या बढ़ने से समूहन (Aggregation) प्रारम्भ होने लगता है। फलस्वरूप प्रकाश, स्थान व पोषक तत्त्वों के लिये प्रतिस्पर्धा (Competition) प्रारम्भ हो जाती है जिसके कारण केवल सबल पौधे ही जीवित रह पाते हैं। ये स्थाई पौधे आपस में तथा पर्यावरण से अभिक्रिया (Reaction) करते हैं। इस स्थाई पादप समुदाय में जलवायु के अनुसार अन्य पौधों का भी परिवर्धन हो जाता है। इस प्रकार समस्त वनस्पति में परिवर्तन होते रहते हैं तथा अन्त में वनस्पति तथा वहां की जलवायु के बीच एक सन्तुलन स्थापित हो जाता है। उन वनस्पतियों को जो जलवायु के अनुरूप होती हैं, चरम वनस्पति (Climax vegetation) कहते है। संक्षेप में पादप समुदाय का उद्भव एवं विकास क्रमिक रूप से प्रवेश या संक्रामण, उपनिवेशन, आस्थापन, समूहन, प्रतिस्पर्धा आदि द्वारा सम्पन्न होता है जिसके दौरान पुरोगामी पादप नवीन स्थल पर चरम वनस्पति का विकास करते हैं।

पादप समुदाय संरचना के अध्ययन के लक्षण (Characters for Study of a Plant Community)

किसी भी पादप समुदाय की संरचना के अध्ययन के लिए उस समुदाय के कई पहलुओं (Aspects) का अध्ययन किया जाता है। इनका दो श्रेणियों में अध्ययन कर सकते हैं –

(I) विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical characters)

(II) संश्लेषणात्मक लक्षण (Synthetic characters)

(I) विश्लेषणात्मक लक्षण (Analytical Characters) – विश्लेषणात्मक लक्षण दो प्रकार के होते हैं –

(अ) गुणात्मक लक्षण (Qualitative characters)

(ब) परिमाणात्मक लक्षण (Quantitative characters)

(अ) गुणात्मक लक्षण (Qualitative Characters)

समुदाय के इन लक्षणों का केवल शाब्दिक वर्णन ही सम्भव

है, परिमाणात्मक मापन सम्भव नहीं है। पादप समुदाय के गुणात्मक लक्षण निम्नलिखित हैं –

(i) रूपाकृति (Physiognomy)

(ii) वनस्पति का स्तरण (Stratification of vegetation)

(iii) जीवन–शक्ति (Vitality)

(iv) घटना विज्ञान या आवर्तिता (Phenology or periodicity)

(v) बाहुल्य (Abundance)

;vi) सामाजिकता (Sociability)

(vii) जीवन रूप (Life forms)

(viii) पर्ण आमाप (Size of leaves)

(i) रूपाकृति (Physiognomy) – यह वनस्पति का बाह्य प्रगटन (External appearance) है जो पादप समुदाय की प्रभावी जातियों के वृद्धि रूपों द्वारा निर्धारित किया जाता है। स्वरूप को एक शब्द द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे एक समुदाय जिसमें झाड़ियों के साथ विशाल वृक्ष प्रभावी जातियां हो तो प्रगटन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह वन है। इसी प्रकार प्रगटन (Appearance) के आधार पर पादप समुदाय के स्वरूप को घासस्थल (Grassland), मरुस्थल (Desert) आदि शब्दों से व्यक्त किया जा सकता है।

(ii) वनस्पति का स्तरण (Stratification of vegetation) – स्तरण एक व्यवस्था (Way) है जिसमें विभिन्न जातियों के पादप उपलब्ध भौतिक तथा कार्यिकी सुविधाओं या परिस्थितियों का अधिकतम उपयोग करने के लिए उदग्र परतों में व्यवस्थित रहते हैं। पादप समुदाय में सभी पौधे समान ऊंचाई के नहीं होते। अतः ऊंचाई की दृष्टि से भिन्न–भिन्न पौधे भिन्न–भिन्न स्तरों में व्यवस्थित रहते हैं। उदाहरणार्थ – किसी घने वन में पादपों के कई स्पष्ट स्तर पाये जाते हैं जैसे सर्वाधिक ऊंचाई वाले वृक्षों का स्तर, झाड़ियों का स्तर, शाकीय पौधों का स्तर तथा भूमि पर मॉस, शैवाल, लाइकेन आदि का स्तर। ये स्तर एक निश्चित क्रम में पाये जाते हैं। वनस्पति का यह स्तरीकरण प्रकाश, वायु, नमी व अन्य पर्यावरणीय कारकों का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिये होता है। कई स्तरों वाले वनों को बहुस्तरीय वन (Multistoreyed forest) कहते हैं।

(iii) जीवनशक्ति (Vitality) – पौधे की सामान्य वृद्धि एवं जनन क्षमता को जीवन शक्ति कहते हैं जो किसी जाति के सफलतापूर्वक जीवित रहने के लिये महत्त्वपूर्ण है। जीवनशक्ति के फलस्वरूप ही समुदाय में, पादप अपना प्रमुख स्थान बना सकता है। जीवनशक्ति, जाति (Species) के भार पर निर्भर करती है। पौधों में स्तम्भ की लम्बाई, मूल की लम्बाई, पर्णों की संख्या, पुष्प, फलों तथा बीजों की संख्या तथा भार आदि गुण जीवनशक्ति का निर्धारण करते हैं। कुछ पौधे अच्छी जीवनशक्ति के कारण ही पादप समुदाय में प्रभावी होते हैं। डॉबनमायर (Daubenmire, 1968) ने जीवनशक्ति के आधार पर पौधों के निम्नलिखित समूह बनाये हैं–

V_1 – पौधे अंकुरण के पश्चात् शीघ्र मर जाते हैं।

V_2 – पौधे अंकुरण के पश्चात् कुछ वृद्धि करते हैं लेकिन प्रजनन नहीं कर सकते।

V_3 – पौधे जो केवल कायिक जनन ही करते हैं।

V_4 – पौधे जिनमें लैंगिक जनन तो होता है किन्तु बहुत कम।

V_5 – पौधे जो लैंगिक प्रजनन कर वृद्धि करते हैं।

[यहां V = जीवनशक्ति (Vitality) है।]

(iv) घटना विज्ञान या आवर्तिता (Phenology or periodicity) – प्रत्येक जाति के जीवन इतिहास में कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं होती हैं जैसे बीजांकुरण, पर्णों का झड़ना, फूलों का आना, फलों का बनना, बीजों का प्रकीर्णन आदि। इन घटनाओं के समय व प्रक्रम के अध्ययन को, घटना विज्ञान (Phenology) कहते हैं।

(v) बाहुल्य (Abundance) – पादप समुदाय में बाहुल्य पादपों की सघनता से सम्बन्धित है लेकिन बाहुल्य को परिमाणात्मक रूप से व्यक्त नहीं कर सकते हैं। पौधे किसी भी आवास में समान रूप से वितरित नहीं रहते, बल्कि छोटे–छोटे समूहों में जो संख्या में भिन्न होते हैं, पाये जाते हैं, अर्थात् एक क्षेत्र विशेष के भिन्न–भिन्न स्थानों पर पौधों की संख्या भिन्न–भिन्न होती है। पौधों की संख्या के आधार पर बाहुल्य को पांच अनुमानित वर्गों में विभक्त किया जाता है।

(क) बहुत दुर्लभ (Very rare)

(ख) दुर्लभ (Rare)

(ग) सामान्य (Common)

(घ) अधिक सामान्य (Frequent)

(ङ) बहुत अधिक सामान्य (Much frequent)

(vi) सामाजिकता (Sociability) – सामाजिकता पौधों के आपसी संबंधों (निकटता) की सूचक होती है। समुदाय में पौधे छोटे–बड़े समूहों में रहते हैं। कुछ जातियों के पादप तो पास–पास उगकर सघन समष्टि (Thick population) का निर्माण करते हैं। लेकिन अन्य पौधों के घने समूह में उगने से उनमें विभिन्न पर्यावरणीय कारकों के लिये स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है जिससे ये या तो दुर्बल या नष्ट हो जाते हैं। समुदाय में सामाजिकता से विभिन्न जातियों के क्षैतिज वितरण का ज्ञान होता है। ब्राऊन ब्लेंकट (Braun Blanquet, 1932) ने सामाजिकता को पांच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है, जहां S= सामाजिकता (Sociability)।

S_1 – अकेले पाये जाने वाले पौधे।

S_2 – कुछ पौधों का समूह।

S_3 – छोटे–छोटे चप्पों या क्षेत्रों में वितरित पौधे।

S_4 – बड़े–बड़े चप्पों में वितरित पौधे।

S_5 – बहुत बड़े क्षेत्रों में फैले एक ही प्रकार के पौधे।

सामाजिकता को परिमाणात्मक रूप में निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जाता है –

$$\text{सामाजिकता} = \frac{\text{सघनता (Density)}}{\text{आवृत्ति (Frequency)}} \times 100$$

(vii) जीवन रूप (Life forms) – स्वीडन के पारिस्थितिकविज्ञ राउनकियर (Raunkiaer, 1934) ने स्पष्ट किया कि पादपों में उत्तरजीविता बीजों के अतिरिक्त, चिरकालिक अंगों (Perennating organs) जैसे कायिक कलिकाओं, कंदों, प्रकंदों आदि के द्वारा होती है। ये चिरकालिक अंग पादपों को जलवायु की विषम परिस्थितियों के प्रति सुरक्षित कर जीवित रखते हैं। उनके अनुसार चिरकालिक अंगों की ऊंचाई पौधों की आदिम (Primitive) अथवा विकसित (Advanced) प्रकृति तथा जलवायु के लिये उनकी अनुकूलता को व्यक्त करती है।

राउनकियर ने चिरकालिक अंगों की विविधता के आधार पर पादप समुदाय के पौधों को निम्न पांच जीवन रूपों में बांटा हैं (चित्र 2.8) –

1. उन्मृदोद्भिद या फैनीरोफाइट्स (Phanerophytes) – ये अधिकतर वृक्ष हैं, इनमें चिरकालिक अंग इनके प्ररोह पर ऊंचाई पर लगे रहते हैं जिन पर कभी–कभी शल्की आवरण पाया जाता है। उष्ण कटिबन्धों में इनकी बाहुल्यता पाई जाती है तथा ध्रुवीय क्षेत्रों (Polar regions) में इनकी संख्या कम होती है। ये शल्क युक्त या शल्क विहीन कलिकाओं वाले सदाबहार पौधे या शल्क युक्त कलिका वाले पर्णपाती (Deciduous) भी हो सकते हैं। ऊंचाई के आधार पर ये चार प्रकार के होते हैं।

(अ) गुरु उन्मृदोद्भिद (Megaphanerophyte) – 30 मीटर से अधिक लम्बाई के।

(ब) सम–उन्मृदोद्भिद (Mesophanerophytes) – 8 से 30 मीटर लम्बाई वाले।

(स) लघु उन्मृदोद्भिद (Microphanerophytes) – 2 मीटर से 8 मीटर ऊंचे।

(द) वामन उन्मृदोद्भिद (Nanophanerophytes) – 2 मीटर से कम ऊंचे।

2. भूतलोद्भिद (Chamaephytes) – ये वृक्ष रूप पौधे ठण्डे क्षेत्रों एवं अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर पाये जाते हैं। इन पौधों में

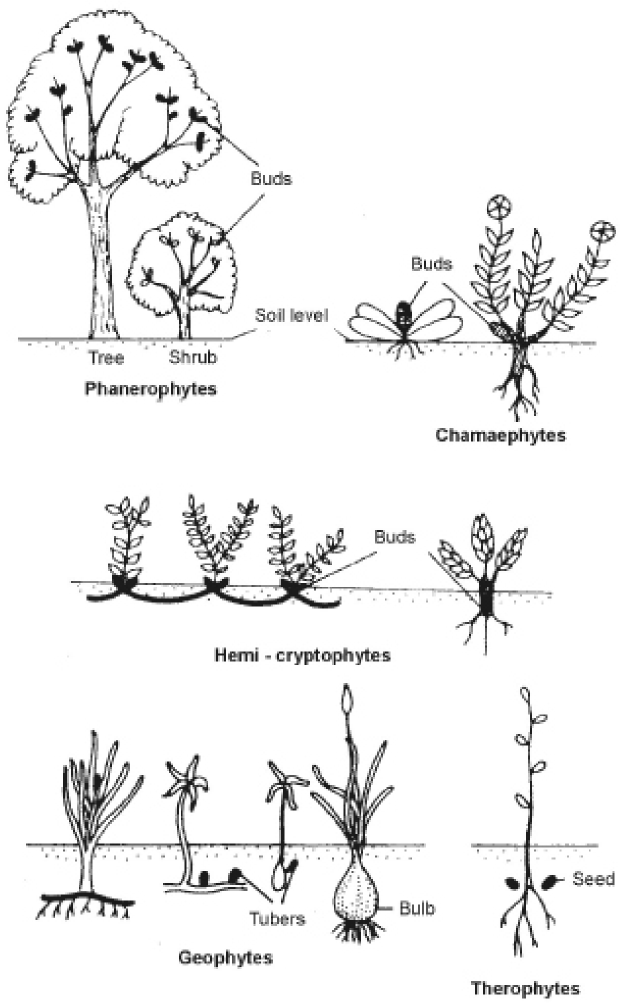

चित्र 2.8 : राउनकियर के अनुसार जीवन रूपों में चिरकालिक अंगों की स्थिति

चिरकालिक अंग भूमि की सतह पर या भूमि के बहुत निकट पाये जाते हैं। इनको भी चार समूहों में विभक्त किया गया है –

(अ) उपक्षुपिल भूतलोद्भिद (Subfruitcose chamae phytes) – इनमें प्ररोह सीधे तथा चिरकालिक अंग आधार पर होते हैं।

(ब) सक्रिय भूतलोद्भिद (Active chamaephytes) – इनमें प्ररोह क्षेतिज तथा चिरकालिक अंग पर्व सन्धियों पर पाये जाते हैं।

(स) निश्चेष्ट भूतलोद्भिद (Passive chamaephytes) – इनमें प्ररोह सीधे तथा चिरकालिक कलियां क्षेतिज प्ररोह पर होती है।

(द) तल्प भूतलोद्भिद (Cushion chamaephytes) – इनमें प्ररोह छोटे होते हैं।

3. हेमीक्रिप्टोफाइट या अर्धगूदोद्भिद (Hemicrypto phytes) – ये शाकीय पौधे होते हैं। इनमें चिरकालिक अंग भूमि

की सतह पर पाये जाते हैं। ये पादप ठण्डे क्षेत्रों में पाये जाते हैं इनके वायव भाग विषम परिस्थितियों में सूख जाते हैं।

4. गूदोद्भिद या क्रिप्टोफाइट (Cryptophytes) – इनमें चिरकालिक कलिकायें (अंग) पूर्ण रूप से भूमि की सतह के नीचे या जल निमग्न होती है। अतः इन पादपों को जियोफाइट (Geophyte) भी कहते हैं। जलोद्भिद एवं मूल परजीवी इसी श्रेणी में आते हैं। इनको तीन उप–समूहों में विभाजित किया गया है –

(अ) भूगर्भोद्भिद (Geophytes)

(ब) लवणमृदोद्भिद (Halophytes)

(स) जलोद्भिद (Hydrophytes)

5. ऋतुद्भिद (Therophytes) – ये एकवर्षी पादप होते हैं जिनका बीज से बीज तक का अपना जीवन–चक्र कुछ सप्ताह से कुछ माह तक होता है। ये पर्यावरण की विषम परिस्थितियों को बीजों के रूप में रहकर व्यतीत करते हैं।

ब्राऊन ब्लेंकट (Braun Blanquet, 1954) ने राउनकियर (Raunkiaer) के उपर्युक्त 5 जीवन रूपों में कुछ परिवर्तन कर इनके दस समूह बनाये हैं।

राउनकियर (Raunkiaer, 1936) ने पत्तियों के आधार पर जीवन रूपों का एक अन्य वर्गीकरण प्रस्तावित किया है। प्रत्येक वर्ग की पत्ती का आकार अपने पीछे वाले वर्ग की पत्तियों के आकार से 9 गुणा अधिक होती है।

पर्ण (पत्ती)	पर्ण आकार
(अ) गुरुपर्ण (Megaphyll)	164025 वर्ग मिमी से बड़े
(ब) वृहत पर्ण (Macrophyll)	18225-164025 वर्ग मिमी
(स) मध्यम पर्ण (Mesophyll)	2025-18225 वर्ग मिमी
(द) लघु पर्ण (Microphyll)	225-2025 वर्ग मिमी
(य) वामन पर्ण (Nanophyll)	25-225 वर्ग मिमी
(र) तनु पर्ण (Leptophyll)	25 वर्ग मिमी से छोटी

किसी पादप समुदाय के उच्च पादपों की सभी जातियां एक या दूसरे जीवन रूप में वर्गीकृत की जा सकती है। एक समुदाय में संख्या या प्रतिशत के रूप में विभिन्न जातियों के जीवन रूपों का अनुपात जैविक स्पैक्ट्रम (Biological spectrum) कहलाता है। चूंकि जीवन रूप पौधों के चारों ओर के पर्यावरण से सम्बन्धित होते हैं, अतः जैविक स्पैक्ट्रम वहां के उपस्थित पर्यावरण (Prevailing environment) का सूचक होता है। जैसे ऋतुद्भिद पादपों (थीरोफाइट्स) की उच्च प्रतिशतता लम्बे शुष्क मौसम का संकेत करते हैं, जबकि विभिन्न क्षेत्रों में समान जैविक स्पैक्ट्रम वहां जलवायु की समान परिस्थितियों का संकेत करता है। पत्तियों के आकार को जलवायु परिस्थितियों से सह–सम्बन्धित किया गया है। आधुनिक समय में इस प्रकार का अध्ययन वृक्षों के सक्रिय उत्पादक क्षेत्रों (Active productive area) से सहसम्बन्धित किया जाता है।

(ब) परिमाणात्मक लक्षण (Quantitative Characters)

पादप समुदाय के वे लक्षण जिनका मापन सम्भव हो तथा जिनको परिमाणात्मक रूप में व्यक्त किया जा सके, परिमाणात्मक लक्षण कहलाते हैं। पादप आवृत्ति (Frequency), पादप सघनता (Density), बाहुल्य (Abundance) तथा आवरण एवं आधारीय क्षेत्र (Cover and basal area) आदि पादप समुदाय के परिमाणात्मक लक्षण कहे जाते हैं।

पादप समुदाय के अध्ययन की विशेष विधियों जैसे प्रतिचयन तकनीकों (Sampling techniques) द्वारा परिमाणात्मक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है, जबकि गुणात्मक लक्षणों के अध्ययन में नमूना इकाई (Sampling unit) की आवश्यकता नहीं होती।

यूरोप के पारिस्थितिकविज्ञों विशेषकर ब्राउन ब्लेंकट (Braun Blanquet) के नेतृत्व में पादप समुदाय के वर्णन तथा वर्गीकरण की एक प्रणाली (System) विकसित की गई है। पारिस्थितिकी के इस पहलू या प्रणाली को पादप सामाजिक विज्ञान (Phytosociology) कहते हैं। पादप समुदायों के पादप समाज विज्ञानीय अध्ययनों के लिये प्रतिचयन या नमूना इकाइयां काम में लेते हैं अर्थात् पादप समुदाय के परिमाणात्मक गुणों के अध्ययन के लिए प्रतिचयन या नमूना इकाइयों की आवश्यकता होती है। पादप सामाजिक विज्ञान विधियों (Phytosociological methods) में प्रतिचयन इकाइयों के 3 रूपों (Forms) का उपयोग किया जाता है। ये हैं – क्षेत्र (Area), कतार (Line) तथा बिन्दु (Point)। क्षेत्र तथा कतार प्रतिचयन इकाइयों में प्रतिचयन के लिए एक निश्चित क्षेत्र होता है परन्तु सघन वनस्पति वाले भागों में एक निश्चित क्षेत्र लेने में कठिनाई आती है अतः ऐसे स्थानों पर बिन्दु (Point) प्रतिचयन इकाई ली जाती है। प्रतिचयन इकाई की प्रकृति के आधार पर पादप समुदाय के अध्ययन की 3 प्रमुख विधियां हैं –

(क) वर्ग जालिका विधि या क्वाड्रेट विधि (Quadrate methods) – इस विधि में नमूना इकाई एक निश्चित क्षेत्र में होता है जो एक वर्ग (Square), आयत (Rectangular) या गोला (Circle) हो सकता है।

किसी भी निश्चित आकार के क्षेत्रफल अथवा प्रतिचयन इकाई (Sampling unit) जिसकी सभी भुजाएं समान हो को वर्ग जालिका (Quadrat) कहा जाता है। क्वाड्रेट का क्षेत्रफल व आकार पादप समुदाय के प्रकार व क्षेत्र पर निर्भर करता है। सामान्यतः इसका क्षेत्रफल एक वर्ग मीटर रखा जाता है। एक वर्ग मीटर क्षेत्रफल का क्वाड्रेट बनाने हेतु मीटर स्केल से माप कर भूमि में एक–एक मीटर की दूरी पर चार कीलों को एक वर्ग के चार कोनों पर गाड़ दिया

जाता है। चारों कीलों के मध्य डोरी बांध कर एक वर्ग मीटर क्षेत्रफल का क्वाड्रेट तैयार कर लिया जाता है। आजकल इस हेतु पहले से तैयार लोहे के फ्रेम भी काम में लिए जाते हैं। उचित पैमाने के अनुसार पेपर पर क्वाड्रेट रेखांकित कर उसमें आने वाली पादप जातियों को चिन्हित कर विभिन्न आंकड़े इकट्ठे कर लिए जाते हैं। इन आंकड़ों का विश्लेषण कर सम्बन्धित स्थल पर उपस्थित विभिन्न पादप जातियों की आवृत्ति (Frequency), सघनता (Density) एवं बाहुल्यता (Abundance) ज्ञात कर ली जाती है।

(ख) ट्रान्सेक्ट विधि (Transect method) – इस विधि में प्रतिचयन इकाई एक निश्चित लम्बाई की कतार (Line) होती है।

अध्ययन की इस विधि में क्षेत्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सीधी डोरी अथवा रेखा खींच दी जाती है। इस लाइन पर स्थित पौधों की विभिन्न जातियों, उनकी आवृत्ति व संख्या ज्ञात कर ली जाती है। इस प्रकार उसी क्षेत्र में अलग–अलग 10–15 ट्रांससेक्ट बराबर दूरी पर लगा कर आंकड़े नोट कर लिए जाते हैं। इस विधि द्वारा किसी संगठन की परिधि से केन्द्र तक पौधों की रचनाकृति और संगठन में परिवर्तन को भी ज्ञात किया जा सकता है।

प्रकृति में सभी पादप सूक्ष्म या व हद् समूह में उगते हैं। एक ही जाति के पादपों के समूह को समष्टि या जनसंख्या (Population) कहते हैं। दो या अधिक प्रकार की समष्टियों या जातियों के समूह को समुदाय (Community) कहते हैं। अतः पादप समुदाय पादपों का एक ऐसा समूह है जिसमें एक से अधिक जातियों के पादप होते हैं। एक समुदाय की पादप जातियां वर्गिकी के दृष्टिकोण (Taxonomically) से भिन्न–भिन्न होती हैं लेकिन पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से ये एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हुए सन्तुलित रहती है।

(ग) बिन्दु या क्षेत्र रहित विधि (Point method or ploties method) – यहां प्रतिचयन इकाई एक बिन्दु होता है।

प्रतिचयन इकाई में आने वाले पौधों के आंकड़े प्राप्त कर पादप समुदाय में सघनता, बाहुल्य, प्रधानता आदि ज्ञात की जाती है।

परिमाणात्मक लक्षणों की विवेचना

(i) पादप आवृत्ति (Plant frequency) – आवृत्ति पादप समुदाय में जाति विशेष के परिक्षेपण या बिखराव (Dispersion) की मात्रा को इंगित करती है। किसी समुदाय में एक जाति के पौधों का समान या असमान वितरण का सूचक आवृत्ति ही होती है। वितरण में भिन्नता पर्यावरणीय भौतिक या जैविक कारकों के कारण हो सकती है। किसी पादप समुदाय के क्षेत्रा में उपयुक्त संख्या में क्वाड्रेट्स डालकर उसमें अमुक जाति की प्रतिशत उपस्थिति ज्ञात की जाती है। किसी समुदाय में एक जाति के प्रतिशत उपस्थिति

$$\text{आवृत्ति (प्रतिशत)} = \frac{\text{क्वाड्रेट्स की संख्या जिनमें वह जाति उपस्थित है}}{\text{अध्ययन किये गये कुल क्वाड्रेट्स की संख्या}} \times 100$$

ज्ञात की जाती है। किसी समुदाय में एक जाति के प्रतिशत परिक्षेपण को उसकी आवृत्ति कहते हैं।

उपरोक्त विधि से प्रत्येक जाति की आवृत्ति ज्ञात की जा सकती है। जब एक जाति, समुदाय के पूरे क्षेत्र में बाहुल्यता से बिखरी हुई है तो वह सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थिति होंगी। अतः इसकी आवृत्ति 100 प्रतिशत होगी अर्थात् किसी जाति की उच्च आवृत्ति इसके एक समान परिक्षेपण का द्योतक है। राउनकियर (Raunkiaer, 1934) ने पादप समुदाय में विभिन्न जातियों के पादपों को पांच आवृत्ति श्रेणियों में विभक्त किया है –

आवृत्ति	आवृत्ति %
A	1-20%
B	20-40%
C	40-60%
D	60-80%
E	80-100%

बाद में राउनकियर (Raunkiaer) ने अपने आठ हजार क्वाड्रेट्स के अध्ययनों के आधार पर आवृत्ति के नियम का प्रतिपादन किया। आवृत्ति श्रेणी A में जातियां की संख्या B श्रेणी से अधिक होगी, B श्रेणी में जातियों की संख्या C श्रेणी से अधिक होगी, C, D के बराबर, कम या अधिक हो सकती है तथा D, E से कम होगी। इसको इस प्रकार भी लिखा जा सकता है –

$$A > B > C \overset{>}{\underset{<}{=}} D < E$$

अर्थात् क्षीण बिखराव या आवृत्ति वाली जातियों की संख्या, उच्च आवृत्ति वाली जातियों की संख्या की अपेक्षा अधिक होती है। किसी जाति की आवृत्ति का, दूसरी जातियों की आवृत्ति से तुलना करने पर आपेक्षित आवृत्ति प्राप्त होती है जिसे निम्नलिखित विधि से ज्ञात कर सकते हैं –

$$\text{आपेक्षिक आवृत्ति} = \frac{\text{एक जाति की आवृत्ति}}{\text{समस्त जातियों की कुल आवृत्ति}} \times 100$$

$$= \frac{\text{Number of Occurrence of a Species}}{\text{Number of Occurrence of all the Species}} \times 100$$

(ii) बाहुल्यता (Abundance) – किसी समुदाय के प्रत्येक इकाई क्षेत्र में उपस्थित विभिन्न जातियों के सदस्यों की संख्या को बाहुल्यता कहते हैं। किसी क्षेत्र में यादृच्छिक (Random) रूप से डाली गई सभी प्रतिचयन इकाइयों या क्वाड्रेट्स में विभिन्न जातियों के सदस्यों की संख्या ज्ञात करके निम्नलिखित सूत्र से बाहुल्यता निकालते हैं –

$$\text{बाहुल्यता} = \frac{\text{अध्ययन किये गये समस्त क्वाड्रेट्स में जाति के पौधों की कुल संख्या}}{\text{कुल क्वाड्रेट्स की संख्या जिसमें वह पाई जाती है}} \times 100$$

बाहुल्यता किसी भी जाति की संख्यात्मक सामर्थ्य (Numerical strength) का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं करती है क्योंकि इसके आकलन में केवल उन्हीं क्वाड्रेट्स को सम्मिलित किया जाता है जिनमें वह जाति उपस्थित है। अध्ययन किये गये सभी क्वाड्रेट्स को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(iii) सघनता (Density) – सघनता किसी जाति की संख्यात्मक प्रबलता का व्यतिकरण (Expression) है। पादप समुदाय के प्रति इकाई क्षेत्रा में पाये जाने वाले एक जाति के पादपों की संख्या को सघनता कहते हैं। इसे निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात किया जाता है –

$$\text{सघनता} = \frac{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में जाति के पौधों की कुल संख्या}}{\text{अध्ययन किये गये कुल क्वाड्रेट्स की संख्या}}$$

आपेक्षिक सघनता में एक जाति की सघनता का पादप समुदाय की सभी जातियों की सघनता के साथ तुलनात्मक अध्ययन होता है।

सघनता के आधार पर एक जाति, प्रभावी (Dominant), बाहुल्य (Abundance), आवृत्त (Frequent), कभी–कभी (Occasional) अथवा विरल (Rare) हो सकती है।

(iv) आवरण तथा आधार क्षेत्र (Cover and basal area) – परिमाणात्मक लक्षण जैसे आवृत्ति, सघनता आदि किसी जाति के वितरण के बारे में पूरी जानकारी नहीं देते हैं। चूंकि विभिन्न जातियां वृद्धि रूपों में भिन्न होती हैं अतः ये लक्षण दूसरे गुणों जैसे आवरण एवं आधारीय क्षेत्र आदि से जुड़े होते हैं (चित्र 2.9)।

आवरण (Cover) – पौधे द्वारा घेरे गये क्षेत्र को आवरण कहते हैं। यह क्षेत्र पर्णिल आवरण (Herbage cover) या आधार क्षेत्र का

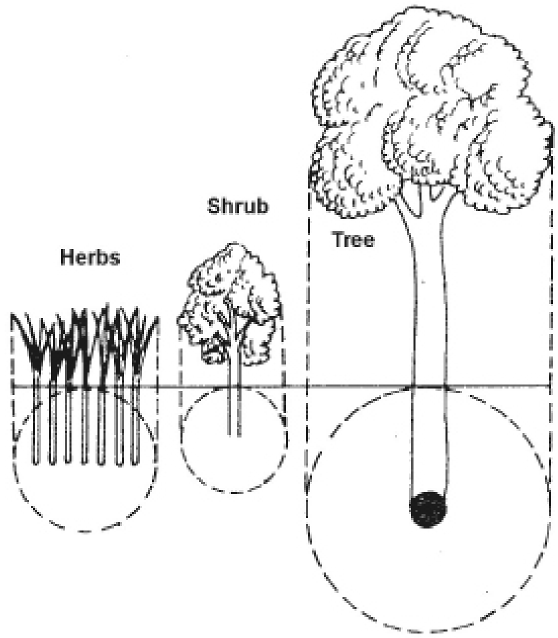

चित्र 2.9 : विभिन्न जीवन रूपों में पर्णिल आवरण व आधारीय क्षेत्र में सम्बन्ध

आवरण (Basal area cover) हो सकता है। पर्णिल आवरण से अर्थ है पादप के वायव भागों द्वारा घेरा हुआ भूमि का क्षेत्र। पर्णिल आवरण पर्णिल उपलब्धता का एक अच्छा मापन है। इसका आकलन चार्ट क्वाड्रेट या पोइन्ट फ्रेम (Point frame) द्वारा किया जाता है।

आधारीय क्षेत्र (Basal area) – आधारीय क्षेत्र से अभिप्राय तने द्वारा वेधित या प्रवेश किये गये भूमि क्षेत्र से है। पर्णिल आवरण के अतिरिक्त तना भी भूमि सतह पर कुछ स्थान को घेरता है अर्थात् तना व मूल सन्धि द्वारा घेरा गया भूमि क्षेत्र, आधारीय क्षेत्र कहलाता है। आधार क्षेत्र के अध्ययन में घासें तथा भूस्पर्शी पौधे कुछ कठिनाईयां उपस्थित करते हैं। ऐसी अवस्था में पौधे के तने का आधार क्षेत्र, मूल के समीप से नापा जाता है। अन्य शाकीय पौधों में भूमि से 2.5 सेमी. ऊपर तथा वृक्षों में भूमि से 1.5 मीटर ऊपर तने के व्यास से ज्ञात किया जाता है।

पर्णिल आवरण के आधार पर पादप जातियां पांच श्रेणियों में विभक्त की गई है –

"A" 5 प्रतिशत से कम पर्णिल आवरण वाली जातियां,

"B" 5–25 प्रतिशत पर्णिल आवरण वाली जातियां,

"C" 26–50 प्रतिशत पर्णिल आवरण वाली जातियां,

"D" 51–75 प्रतिशत पर्णिल आवरण वाली जातियां,

"E" 76–100 प्रतिशत पर्णिल आवरण वाली जातियां।

अधिक पर्णिल आवरण वाले पादप प्रकाश को अधिक रोकते

हैं फलस्वरूप घनी छाया हो जाती है जो सघन वन में सतही पादप जात (Flora) के पादपों के वितरण को प्रभावित करते हैं। आधारीय क्षेत्र कुछ सीमा तक पौधे की आयु के साथ बढ़ता है जो प्ररोह में शुष्क पदार्थ (Dry matter) के संग्रह (Accumulation) को प्रकट करता है।

(v) प्रमुखता (Dominance) – वैसे तो प्रमुखता या प्रधानता संश्लेषणात्मक लक्षण हैं (Anson and Churchil, 1961)। लेकिन डॉबनमायर (Daubenmire) ने इसे विश्लेषणात्मक लक्षण माना है तथा इसकी छः श्रेणियां बनाई हैं। जीवों की संख्या से जाति के बारे में सही जानकारी नहीं मिल पाती है जैसे किसी शाकीय समुदाय में केवल एक झाड़ी या वृक्ष का संख्या के दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं होता लेकिन यदि पादप द्वारा घेरे गये क्षेत्र या जैव भार पर ध्यान दिया जाये तो उसी शाकीय समुदाय में एक झाड़ी या वृक्ष की भी महत्ता हो जाती है। अतः प्रधानता में आवरण को एक महत्त्वपूर्ण लक्षण के रूप में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार शाकीय समुदाय में एक वृक्ष ही काफी बड़े क्षेत्र को घेर सकता है तथा उसमें जैव भार भी अधिक हो सकता है।

(II) **संश्लेषणात्मक लक्षण** (Synthetic Characters) – किसी समुदाय के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक लक्षणों को मिलाकर (Computing) उनके निष्कर्षों के आधार पर जो लक्षण आते हैं या जो लक्षण बनते हैं, उन्हें संश्लेषणात्मक लक्षण कहते हैं। मुख्य संश्लेषणात्मक लक्षण निम्नलिखित हैं –

(i) उपस्थिति तथा स्थिरता (Presence and constance) – इनका सम्बन्ध पादप आवृत्ति से है। ये पादप समुदाय में किसी जाति विशेष के सदस्यों की उपस्थिति की सीमा (Extent of occurrence) को दर्शाते हैं। यदि किसी जाति की आवृत्ति (उस जाति के पौधों का बार–बार पाया जाना) अधिक हो तो वह समुदाय में अधिक उपस्थित एवं स्थायी मानी जाती है। पादपों को प्रतिशत आवृत्ति के आधार पर निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया गया है –

(क) दुर्लभ (Rare) – अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स में 1–20 प्रतिशत उपस्थिति।

(ख) विरल (Occasional) – 21–40 प्रतिशत उपस्थित।

(ग) प्रायः उपस्थित (Often present) – 41–60 प्रतिशत उपस्थित।

(घ) अधिकांश उपस्थित (Mostly present) – 61–80 प्रतिशत उपस्थित।

(ङ) सदैव उपस्थित (Constantly present) – 80–100 प्रतिशत उपस्थित।

किसी जाति की उपस्थिति या स्थिरता का उपयोग दो समुदायों की तुलना में किया जाता है।

(ii) वासनिष्ठा या संलग्नता (Fidelity) – किसी जाति के वितरण की वह सीमा या मात्रा जिसमें वह जाति अपने वितरण में एक ही समुदाय तक सीमित होती है, वासनिष्ठा कहलाती है। कुछ जातियां इतनी सामान्य होती हैं कि प्रायः सभी समुदायों में उपस्थित होती है, लेकिन कुछ जातियां विशेष समुदायों में ही पाई जाती है। इस प्रकार के सम्बन्ध को वासनिष्ठा द्वारा व्यक्त किया जाता है। जो जाति, वितरण में जितनी सीमित होती है उसकी वासनिष्ठा उतनी ही उच्च होती है। अतः जिस जाति की वासनिष्ठा न्यून (Minimum) होती है, वह अनेक समुदायों में पाई जाती है तथा जिसकी वासनिष्ठा अधिक होती है, वह किसी समुदाय विशेष में ही पाई जाती है। वासनिष्ठा का सम्बन्ध उस जाति के पारिस्थितिकीय आयाम (Ecological amplitude) से है। जिस जाति का पारिस्थितिकीय आयाम या सहनशीलता की सीमा अधिक होगी, उसकी वासनिष्ठा कम होगी तथा जिसका पारिस्थितिकीय आयाम कम है, उसकी वासनिष्ठा अधिक होगी, अर्थात् वितरण सीमित होगा। विभिन्न जातियों को वासनिष्ठा के आधार पर निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया गया है – (जहां F = fidelity) है।

(अ) **F_1** – अजनबी (Stranger) – संयोगवश पाई जाने वाली जाति।

(ब) **F_2** – उदासीन (Indifferent) – ये जातियां किसी भी समुदाय में पाई जा सकती है, लेकिन इनका किसी विशेष से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है।

(स) **F_3** – वरीयता वाली जातियां (Preferential) – वे जातियां जो अनेक समुदायों में पाई जाती हैं, लेकिन कुछ समुदायों में बहुलता से मिलती हैं।

(द) **F_4** – चयनात्मक जातियां (Selective) – जो जातियां कुछ विशेष समुदायों में ही पाई जाती हैं, लेकिन कभी–कभी अन्य समुदायों में भी मिल सकती हैं।

(य) **F_5** – विशिष्ट (Exclusive) – ये केवल विशेष समुदाय में ही पाई जाती हैं।

(iii) प्रमुखता (Dominance) – इसका वर्णन परिमाणात्मक लक्षणों में किया जा चुका है, अतः यहां इसे संश्लेषित प्रकार (Synthetic form) या इसके गणितीय पक्ष को प्रस्तुत किया जा रहा है। सघनता, आवृत्ति तथा आवरण के सापेक्ष मानों के आधार पर कर्टिस तथा मैकइन्तोष (Curtis and Mc-Intosh, 1950) ने महत्त्वशील मान घातांक (Importance value index) IVI का विचार प्रस्तावित किया। समुदाय में किसी जाति का महत्त्वशील मान घातांक (IVI) उसकी सापेक्ष महत्ता की जानकारी देता है। किसी भी समुदाय में महत्त्वशील मान घातांक का कुल योग 300 से अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि यह सघनता, आवृत्ति तथा आवरण के सापेक्ष मानों का योग है।

पादप अनुक्रमण (Plant Succession)

किसी स्थान को यदि पूरी तरह से वनस्पति विहिन कर दिया जाए व तत्पश्चात यहां किसी प्रकार की कोई मानव या वन्य जीवों की अन्तःक्रिया नहीं हो तो यहां क्रमशः पुनः नई पादप जातियां विकसित होने लगती है व एक समय ऐसा आता है जब यहां कई प्रकार की विकसित वनस्पति विकसित हो जाती है। अतः किसी वनस्पति विहिन स्थान पर धीरे–धीरे पादप समुदाय के विकसित होने को पादप अनुक्रमण (Plant succession) कहा जाता है। पादप अनुक्रमण शब्द विवर एवं क्लिमेंट्स (Weaver and Clements, 1977) ने दिया था, जबकि इसका सर्वप्रथम अध्ययन किंग (King, 1685) द्वारा किया गया था। ओडम (1983) के अनुसार, ''अनुक्रमण किसी इकाई क्षेत्र के जीव समुदाय में क्रमशः परिवर्तन है।''

दूसरे शब्दों में अनुक्रमण एक जटिल प्रक्रिया है जो शुरू होती है, विकसित होती है और एक उच्चतम स्तर तक पहुंच कर स्थिर हो जाती है।

इस प्रकार विकसित हुआ समुदाय उच्चतम स्तर पर पूर्णतः स्थिर, स्वपोषित व स्वचालित होता है।

नग्न स्थान पर सबसे पहले विकसित होने वाली वनस्पति को अग्रणी (Pioneer), अनुक्रमण की सभी अवस्थाओं को सीरल अवस्थाएं (Seral stages) एवं सम्पूर्ण प्रक्रिया को सिअर (Sere) कहा जाता है।

अनुक्रमण के प्रकार (Types of Succession)

नग्न क्षेत्र के प्रकार के आधार पर पादप अनुक्रमण तीन उपभागों में विभेदित किया गया है–

(i) जलक्रमक (Hydrosere) – जलीय आवास में अनुक्रमण का शुरू होना हाइड्रार्क (Hydrach) तथा अनुक्रमण की सम्पूर्ण प्रक्रिया जलक्रमक (Hydrosere) कहलाती है, उदाहरणतः तालाब, झील या कीचड़ में अनुक्रमण।

(ii) मरुक्रमक (Xerosere) – मरु या शुष्क क्षेत्र में अनुक्रमण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को मरुक्रमक (Xerosere) कहा जाता है, यह पुनः दो प्रकार का होता है–

(a) लिथोसियर – नग्न चट्टानों पर शुरू होने वाला अनुक्रमण।

(b) सेमोसियर – रेतीले नग्न मरु क्षेत्र में होने वाला अनुक्रमण।

एक अन्य आधार पर अनुक्रमण को निम्न दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है –

(i) प्राथमिक अनुक्रमण (Primary succession) – ऐसा स्थान जहां पहले कभी वनस्पति नहीं थी, पर पादप अनुक्रमण होना प्राथमिक अनुक्रमण की श्रेणी में आता है। नग्न चट्टानों, रेतीले टीलों, ज्वालामुखी से निकली राख, लावा वाले क्षेत्रों में अनुक्रमण इसके उदाहरण है।

(ii) द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary succession) – ऐसे क्षेत्र जहां पूर्व में वनस्पति हुआ करती थी लेकिन बाढ़, अग्नि अथवा कटाई या अन्य प्राकृतिक आपदा के कारण पूरी तरह से नष्ट हो गई, उस स्थान पर पुनः पादप अनुक्रमण होना द्वितीयक अनुक्रमण कहलाता है।

अनुक्रमण की सामान्य क्रिया (General Process of Succession)

किसी वनस्पति विहिन नग्न स्थान पर अनुक्रमण निम्न अवस्थाओं से गुजरता है –

1. अनाच्छादन (Nudation) – किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवीय कारकों के कारण सम्पूर्ण वनस्पति का नष्ट हो जाना अनाच्छादन कहलाता है। अनुक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था है।

2. आगमन (Invasion) – अनाच्छादित स्थान पर अन्य हरित क्षेत्रों से बीज, बीजाणु या अन्य जननक्षम पादप भाग का आना आगमन कहलाता है। यहां आने वाली सबसे पहली वनस्पति पुरोगामी या अग्रणी (Pioneer) कहलाती है।

इस अवस्था को निम्न चरणों में वर्गीकृत किया गया है–

(a) प्रवास (Migration) – आक्रमण के प्रथम चरण में बीज बीजाणु या कायिक जननक्षम पादप भाग नग्न स्थान पर प्रवास करता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कई संवेदनशील बीज आदि नष्ट हो जाते है, लेकिन कुछ प्रतिरोधी व सहनशील जननक्षम पादप भाग वायु, जल, जीव–जन्तु या मानव द्वारा अन्य स्थानों पर प्रकीर्णित होते हैं। यहां ये अनुकूल अवस्था पाकर अंकुरित हो जाते हैं।

(b) आस्थापन (Ecesis) – प्रवास के पश्चात जातियां नए क्षेत्र में स्थापित होती है, यह आस्थापन (Ecesis) कहलाता है। स्थापित होने के लिए प्रवासी जाति को कम से कम एक जीवन चक्र उस क्षेत्र में पूरा करना होता है। आस्थापन के पश्चात प्रजातियां उपनिवेशन प्रारम्भ करती है।

(c) समूहन (Aggregation) – आस्थापित जातियां उपनिवेशन के बाद उस क्षेत्र में अपना समूह विकसित करती है इसे समूहन (Aggregation) कहा जाता है।

3. स्पर्धा एवं प्रतिक्रिया (Competition and reaction) – समूहन हो जाने पर पादपों में पोषकों, प्रकाश व स्थान के लिए परस्पर प्रतिस्पर्द्धा (Competition) प्रारम्भ हो जाती है। यह स्पर्द्धा आन्तरजातीय (Intraspecific) तथा अन्तरजातीय (Interspecific) हो सकती है। स्पर्द्धा के फलस्वरूप केवल सबल पौधे ही जीवित रह पाते हैं तथा जनन करते हैं। जिस प्रकार

वातावरण पादपों को प्रभावित करता है, उसी प्रकार पादप भी वातावरण से अन्तःक्रिया करते हैं जिससे पर्यावरण में परिवर्तन होते हैं। पादपों की पर्यावरण के साथ यह अन्तःक्रिया प्रतिक्रिया (Reaction) कहलाती है। पौधों के मृत सड़े–गले भागों से ह्यूमस का निर्माण होता है। इसी प्रकार पौधों की छाया के कारण कुछ सूक्ष्म जलवायवी (Micro-climatic) परितर्वन होने लगते हैं। परिवर्तित जलवायु प्रारम्भिक पुरोगामियों के लिए कम अनुकूल तथा नए आगमनकारों के लिए अधिक अनुकूल बन जाती है। इस प्रकार पुरोगामी जातियों का स्थान नई जातियां ले लेती है। इस कारण शाकीय पौधों का स्थान क्षुप तथा क्षुपों का स्थान वृक्ष लेने लगते हैं।

4. स्थायित्व और चरम वनस्पति (Stability and climax vegetation) – ऊपर वर्णित क्रम के अनुसार क्षेत्र में विकसित वनस्पति आपस में एवं वातावरण से अन्तःक्रिया करती है, इन अन्तःक्रिया के कारण वातावरण में परिवर्तन होता है लेकिन धीरे–धीरे वातावरण में स्थिरता आने लगती है। इस स्थिर अवस्था में वनस्पति जीवन का अन्तिम रूप शाकीय, क्षुपीय या वृक्षीय जलवायु द्वारा निर्धारित होता है। वनस्पति का अन्तिम प्रारूप लगभग स्थायी तथा जलवायु से पूर्णरूपेण संतुलित होता है। यह प्रारूप आवास की विशिष्ट जलवायु के अनुसार उच्चतम होता है तथा इसे चरम वनस्पति (Climax vegetation) कहते हैं। चरम वनस्पति उस जलवायु के लिए पूरी तरह से अनुकूलित होती है। जिससे समुदाय में स्थायित्व आ जाता है तथा वनस्पति में तब तक कोई परिवर्तन नहीं होते जब तक कि कोई बाह्य कारक इस सम्पूर्ण प्रक्रम को प्रभावित न करे। इसके अलावा प्रकाश, स्थान की आर्द्रता, पोषक तत्वों का चक्रीकरण आदि सभी पर्यावरणीय कारक भी पूर्णतः पादप समुदाय के नियंत्रण में होते हैं। इसके कारण नई जातियों के प्रवेश की सम्भावना बहुत कम रह जाती है।

यहां अनुक्रमण के दो महत्त्वपूर्ण प्रकारों का विस्तृत विवरण दिया जा रहा है–

मरुक्रमक (Xerosere)

जल विहिन परिस्थितियों में होने वाले अनुक्रमण को मरुक्रमक (Xerosere) कहा जाता है। यहां पर चट्टानों पर होने वाले अनुक्रमण का विवरण दिया जा रहा है –

1. पुरोगामी अवस्था (Pioneer stage) या पर्पटी लाइकेन अवस्था (Crustose lichen stage) – चट्टानों पर जल विहिन मरु परिस्थितियां पाई जाती है। यहां पर खनिज लवण संचित करने के लिए भी कोई प्रक्रिया या दशा नहीं होती है। चट्टानें जब तेज सूर्य के प्रकाश में देर तक रहती है तो इनका तापमान भी बहुत अधिक बढ़ जाता है ऐसी परिस्थितियों एवं आवास में केवल पर्पटी लाइकेन ही पुरोगामी की भांति उत्पन्न हो सकती है। लाइकेन के बीजाणु, सोरिडिया या टुकड़े हवा के साथ उड़कर इन चट्टानों पर आते हैं। यहां स्थापित होकर पर्पटी लाइकेन कार्बनिक अम्ल का उत्पादन करती है। जिससे चट्टानों की ऊपरी सतह का क्षरण होता है।

$$CO_2 + H_2O \rightleftharpoons H_2CO_3$$

इस प्रकार की पर्पटी लाइकेन के उदाहरण है ग्रेफिस, लिसीडिया, लकोनोसा, राइनेडिना, राइजोकार्पोन आदि।

2. पर्णिल लाइकेन अवस्था (Foliose lichen stage) – पर्णिला लाइकेन वह लाइकेन होती है, जो आधार (Substratum) पर केवल एक बिन्दु पर लगे रहते हैं। इस अवस्था में चट्टानों की सतह पर कुछ मिट्टी भी बन जाती है। धीरे–धीरे पर्पटी लाइकेन को पर्णिल लाइकेन पूरी तरह से ढक लेती है जिससे पर्पटी लाइकेन को सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्राा में नहीं मिल पाता है व यह पूरी तरह से पर्णिल लाइकेन द्वारा प्रतिस्थापित कर दी जाती है। मिट्टी व पर्णिल लाइकेन के संयुक्त प्रभाव से अब अधिक मात्रा में वर्षा जल का ठहराव चट्टानों पर होता है, हवा के साथ बहकर आए मिट्टी के कण यहां जीवन को और अधिक अनुकूल बनाते हैं। जीवित एवं मृत लाइकेन निरन्तर कार्बनिक अम्लों का उत्पादन करती है जिससे चट्टानों का अपघटन होता रहता है। पर्णिल लाइकेन के उदाहरण – डरमेटोकारपीन, पारमेलिया, अम्बिलीकेरिया आदि।

3. मॉस अवस्था (Moss stage) – मिट्टी की पर्याप्त मात्राा की उपलब्धता पर चट्टानों पर मॉस उगने प्रारम्भ हो जाते हैं। ये मरुद्‌भिदी मॉस हवा के साथ उड़ कर आते हैं। चट्टानों की मिट्टी व पर्णिल लाइकेन द्वारा इन्हें रोक लिया जाता है। मॉस के जनन क्षम भागों से राइजोइड्स निकल आते हैं जो पर्णिल लाइकेन से पानी एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्द्धा (Compete) करते हैं। मॉस के अलावा इन परिस्थितियों में क्षुपिल लाइकेन जैसे असनिया एवं क्लैडोनिया भी उत्पन्न होते हैं। ये क्षुपिल लाइकेन व मॉस पर्णिल लाइकेन को ढक लेते हैं, जिससे ये नष्ट होकर मिट्टी में परिवर्तित होने लगती है। यहां उत्पन्न होने वाली मॉस के उदाहरण है – ग्रिम्मीया, टोर्टुला, पोलीट्राइकम आदि।

4. शाक अवस्था (Herbaceous stage) – मॉस आदि के वर्षों तक नष्ट होने एवं उत्पन्न होने से चट्टान पर एक इंच या इससे भी मोटी मिट्टी की तह बन जाती है जहां अब शाक उत्पन्न होने लगती है। यहां सबसे पहले घास या एकवर्षीय शाक अंकुरित होते हैं। चट्टानों की खांचों में शाक की जड़ें फैल जाती है जो चट्टानों के अपघटन को और तीव्र कर देती है। उत्तरोत्तर रूप से मिट्टी की मात्रा, आर्द्रता, ह्यूमस आदि की मात्रा बढ़ने लगती है एवं छाया के कारण वाष्पन कम होने लगता है। ऐसी अवस्था में कम लम्बी जड़ों वाली घास उगती हैं जैसे– अरिस्टिडा, पोआ आदि।

5. क्षुप अवस्था (Shrub stage) – निरन्तर बढ़ती मिट्टी की परतों में अब मरुद्‌भिदी क्षुपों का अंकुरण होता है। इनकी छाया में

शॉक व अन्य पादप मृत हो अपघटित हो जाते हैं। क्षुप की पत्तियों आदि से भी कार्बनिक लवणों की मात्रा मिट्टी में बढ़ती जाती है। फलतः यह मिट्टी पादपों में वृद्धि हेतु क्रमशः अनुकूलित हो जाती है।

6. चरम वनस्पति (Climax forest) – सर्वप्रथम चरम वनस्पति के अन्तर्गत धीमी वृद्धि वाले पेड़ उगते हैं। जिनके मृत भागों के गिरने से, सड़न से, ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है फलतः मृदा की उर्वरा क्षमता और बढ़ जाती है। बड़े पेड़ों की छाया में छोटे समोद्भिद पनपने लगते हैं। ये समस्त वनस्पति यहां उपलब्ध वातावरण व आवास हेतु पूर्णतः अनुकूलित होते हैं। अन्त में वन विकसित हो जाते हैं।

जलक्रमक (Hydrosere)

जलक्रमक को समझने के लिए किसी तालाब या झील का उदाहरण सबसे उपयुक्त है, क्योंकि यहां जल की गहराई मध्य में अधिकतम होती है तथा किनारे की तरफ क्रमशः कम होती जाती है तथा इसी दिशा में उत्तरोत्तर चरम वनस्पति का विकास होता है। इस विकास को निम्न प्रावस्थाओं में समझा जा सकता है (चित्र 2.10) –

1. पादपप्लावक अवस्था (Phytoplankton stage) – किसी तालाब या झील में व्युत्पन्न होने वाले संचक्र में बसाने का कार्य कुछ पादप प्लवक (Phytoplanktons) द्वारा होता है अतः ये पुरोगामी (Pioneer) पादप समूह होते हैं। प्लवक के अलावा पुरोगामी के रूप में तालाबों में नीलहरित शैवाल (Blue green algae), हरे शैवाल (Green algae), डायेटम्स (Diatoms) और जीवाणु (Bacteria) आदि भी उत्पन्न होते हैं। ये समस्त पुरोगामी ज्यादातर जलीय सतह पर या सतह के नजदीक ही पाए जाते हैं, जल की गहराई में इनका अस्तित्व नहीं देखा जाता है।

2. मूलीय निमग्न अवस्था (Rooted submerged stage) – पादपप्लावकों के अपघटन से तालाब जल एक मुलायम कीचड़ में परिवर्तित हो जाता है जिसमें प्रकाश भेदन आसानी से हो जाता है। इस स्थान पर जड़ युक्त निमग्न जलोद्भिद (Submerged hydrophytes) उग आते हैं जैसे इलोडिया (*Elodea*), हाइड्रिला (*Hydrilla*), पोटैमोजेटॉन (*Potamogeton*), वैलिसिनेरिया (*Vallisneria*), यूट्रिकुलेरिया (*Utricularia*) आदि। इन पादपों की मृत्यु व अपघटन से उत्तरोत्तर तल में नए स्तर का होता रहता है फलतः तालाब छिछला होने लगता है।

3. मूलीय प्लावी अवस्था (Rooted floating stage) – इन जलोद्भिदों में जड़ें पाई जाती है तथा ये सतह पर प्लावी पत्तियों द्वारा तैरते रहते हैं। इस अवस्था में जल की गहराई 2 से 5 फीट होती है। ऐसे पादपों के उदाहरण है नीलम्बो (*Nelumbo*), निम्फिया (*Nymphaea*), लिम्नैन्थिमम (*Limnanthemum*), ट्रापा (*Trapa*), मोनोकोरिया (*Monochoria*) इत्यादि। जल में लवण की मात्रा अधिक होने पर कुछ स्वतन्त्र रूप से तैरने वाली जातियां जैसे एजोला (*Azolla*), लैम्ना (*Lemna*), वॉलफिया (*Wolffia*), पिस्टिया (*Pistia*), साल्विनिया (Salvinia) आदि भी विकसित हो जाती है। जो जल्दी ही पुनः विलुप्त हो जाती है।

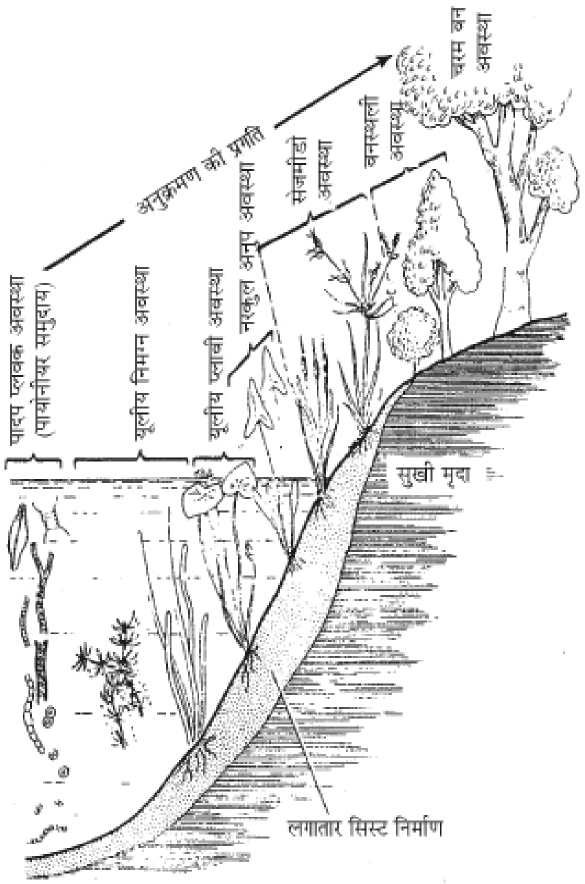

चित्र 2.10 : ताल में प्रारम्भ हुए जलक्रमक की भिन्न अवस्थाओं पर प्रकट होती है भिन्न पादप समुदायों को दर्शाता चित्र

4. नरकुल अनूप अवस्था (Reed swamp stage) – मृदा की बढ़ती स्तरों के कारण जल स्तर अत्यधिक घट जाता है अतः यहां विकसित होने वाली वनस्पति की जड़ें तो पानी से युक्त मृदा में रहती है जबकि तने का अधिकतर भाग वायव स्थिति में रहता है अतः इस अवस्था में उभयचर (Amphibious) प्रकार की वनस्पति का विकास होता है। उदाहरणतः सिरपस (*Scirpus*), टाइफा (*Typha*), सैजिटेरिया (*Sagittaria*), फ्रैग्माइट्स (*Phragmites*) इत्यादि। इनमें राइजोम (Rhizome) अत्यधिक विकसित प्रकार के होते हैं तथा ये घनी वनस्पति को पैदा करने वाले होते हैं।

5. सैज मीडो अवस्था (Sedge meadow stage) – पानी की

निरन्तर घटती मात्रा एवं मिट्टी की बढ़ती हुई मात्रा के कारण अब इन परिस्थितियों में जलीय पादप वृद्धि नहीं कर पाते हैं। अतः यहां केरेक्स (*Carex*), जंकस (*Juncus*), साइप्रस (*Cyperus*) आदि साईपरेसी व ग्रेमीनी कुल के पादपों का विकास होता है। इन परिस्थितियों में पादपों द्वारा अत्यधिक जल अवशोषण एवं वाष्पोत्सर्जन होता है। जिससे मृदा में जल की मात्रा निरन्तर कम होने लगती है फलतः ये परिस्थितियां क्षुप व वृक्षों के विकास के लिए अनुकूल होने लगती है।

6. वनस्थली अवस्था (Woodland stage) – बढ़ती शुष्क अवस्थाओं में झुप व वृक्षों की प्रजातियां विकास करती है इनकी छाया में छोटी प्रजातियां मृत होकर ह्यूमस बना लेती है। फलतः मिट्टी की उर्वरकता भी बढ़ती है।

7. चरम वन (Climax forest) – चरम वनस्पति में उष्णकटिबन्धीय जलवायु में भारी वर्षा के कारण उष्टकटिबन्धीय वन विकसित होते हैं। जबकि शीतोष्ण भागों में एल्मस (*Almus*), एसर (*Acer*) और क्यूरकस (*Quercus*) के मिश्रित वन विकसित होते हैं। मध्यम श्रेणी के वर्षा वाले भागों में उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वन विकसित होते हैं।

इस प्रकार एक जल मग्न तालाब या झील के स्थान पर क्रमशः चरम वनस्पति का विकास हो जाता है। चरम वनस्पति का प्रकार वातावरण के प्रकार पर निर्भर करता है।

जैव आक्रमण – जब कोई किसी अन्य क्षेत्र की प्रजाति, किसी दूसरे क्षेत्र में जाए एवं वहां वृद्धि करने लगे तथा इससे वहां की किसी प्रजाति को कोई प्रतिकूलता महसूस करने लगे तो वह जैव आक्रमण कहलाती है।

उदाहरण के लिए– यूक्लेप्टिस या सफेदा का वृक्ष भारतीय मूल का नहीं है एवं यहां पनप कर भूमि के जल स्तर को हानि पहुंचा रहा है। वि. बबूल भारतीय मूल का पादप नहीं, यह यहां पर पनप करके अन्य भारतियों पादपों की प्रजातियों को पनपने से रोक रहा है। गाजर घास भी विदेशी मूल का पादप है तथा यहां पनप कर अन्य प्रजातियों के पादपों को हानि पहुंचाता है तथा अन्य जीवों को भी रोगी करता है।

इसी तरह जलकुम्भी भी विदेशी मूल का पादप है जो भारतीय जल स्रोतों को नुकसान पहुंचाता है। पर्यावरण एवं प्रकृति प्रेमियों के साथ–साथ सर्वसामान्य व्यक्तियों को इनसे भारतीय भूमि को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जनसंख्या – किसी विशेष समय और स्थान पर प्रजाति विशेष के समूह को वहां की जनसंख्या कहते हैं।
2. जन्म दर – किसी समष्टि में इकाई समय में जन्मे नये सदस्यों की संख्या जन्म दर कहलाती है।
3. मृत्यु दर – इकाई समय में किसी समष्टि में मरने वाले जीवों की संख्या मृत्यु दर कहलाती है।
4. आयु संरचना – किसी भी जनसंख्या में विभिन्न आयु वर्ग के सदस्यों की तुलनात्मक प्रचुरता को जीव की आयु संरचना कहते हैं।
5. आयु स्तूप – किसी भी जीव प्रजाति में उसकी आयु के अनेक समूहों के अनुपात को रेखागणितीय रूप से दिखाने वाले मॉडल को आयु स्तूप कहते हैं।
6. वाइटल इन्डेक्स – किसी भी स्थान पर जन्म व मृत्यु दर का अनुपात वाइटल इन्डेक्स कहलाता है।
7. आक्रमण – बाहर से अनेक नई जातियों का अनुक्रमण के क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश आक्रमण कहलाता है।
8. बहिप्रवास – जब किसी स्थान से जीवों की एक संख्या एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाए तो वह बहिप्रवास कहलाती है।
9. अन्तःप्रवास – किसी एक स्थान पर एक जीव जाति के आगमन को अन्तःप्रवास कहते हैं।
10. अनुक्रमण – किसी इकाई क्षेत्र के जीव समुदाय में क्रमशः परिवर्तन अनुक्रमण कहलाता है।
11. जलक्रमक – जलीय आवास में अनुक्रमण की सम्पूर्ण प्रक्रिया जलक्रमक कहलाती है, उदाहरण तालाब, झील।
12. मरुक्रमक – शुष्क क्षेत्र में अनुक्रमण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को मरुक्रमक कहा जाता है।
13. प्राथमिक अनुक्रमण – ऐसा स्थान जहां पहले कभी वनस्पति नहीं थी वहां पर पादप अनुक्रमण होना प्राथमिक अनुक्रमण कहलाता है।
14. द्वितीयक अनुक्रमण – ऐसे क्षेत्र जहां पर पूर्व में वनस्पति हुआ करती थी लेकिन प्राकृतिक आपदा या वन कटाई आदि से पूरी तरह नष्ट हो गई। उस स्थान पर पादप अनुक्रमण होना द्वितीयक अनुक्रमण कहलाता है।
15. जैव आक्रमण – जब कोई किसी अन्य क्षेत्र की प्रजाति, किसी दूसरे क्षेत्र में जाए एवं वहां वृद्धि करने लगे तथा इससे वहां की किसी प्रजाति को कोई प्रतिकूलता महसूस करने लगे तो वह जैव आक्रमण कहलाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. किसी समय में किसी क्षेत्र में किसी जाति की जन्म दर मापने का सरल सूत्र है –

(अ) $N=\frac{B}{t}$ (ब) $N=\frac{t}{B}$

(स) $t=\frac{B}{N}$ (द) $N=t+B$

2. किसी समय में किसी क्षेत्र में किसी प्रजाति की मृत्यु दर मापने का सरल सूत्र है –

(अ) मृत्यु दर= $\frac{t}{D}$ (ब) मृत्यु दर= $\frac{D}{t}$

(स) मृत्यु दर $= D+t$ (द) मृत्यु दर $= D\times t$

3. किसी जीव का वाइटल इन्डेक्स होता है –

(अ) वाइटल इन्डेक्स = $\frac{\text{जन्म दर}}{100} \times$ मृत्यु दर

(ब) वाइटल इन्डेक्स = $\frac{\text{जन्म दर}}{\text{मृत्यु दर}} \times 100$

(स) वाइटल इन्डेक्स = जन्म दर + मृत्यु दर × 100

(द) वाइटल इन्डेक्स = $\frac{\text{जन्म दर + मृत्यु दर}}{100}$

4. लिंगानुपात दर्शाने हेतु किस सूत्र का प्रयोग करते हैं –

(अ) $SR=\frac{M+F}{1000}$ (ब) $SR=\frac{M}{F}\times 1000$

(स) $SR=\frac{F}{M}\times 1000$ (द) $SR=\frac{1000}{M+F}$

5. तीव्र गति से वृद्धि कर रही समष्टि को किस आयु स्तूप द्वारा दर्शाया जाता है –

(अ) कुम्भाकार स्तूप

(ब) घण्टाकार स्तूप

(स) वृहत् आधार वाला स्तूप

(द) इनमें से कोई नहीं

6. कुम्भाकार स्तूप द्वारा किस प्रकार की समष्टि को दर्शाया जाता है –

(अ) तीव्र गति से वृद्धि कर रही

(ब) पतनशील

(स) स्थिर वृद्धि कर रही

(द) कम वृद्धि कर रही

7. किसी स्थान पर किसी निश्चित समय पर जीव की किसी प्रजाति के जीव वहां ओर आ जाते हैं तो उस समय उस स्थान पर जीव की जनसंख्या –

(अ) घट जायेगी

(ब) बढ़ जायेगी

(स) कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा

(द) नर जनसंख्या खत्म हो जायेगी

8. किसी भी स्थान पर उपस्थित विभिन्न जीव जातियों का समूह कहलाता है –

(अ) जनसंख्या (ब) समुदाय

(स) निशे (द) इनमें से कोई नहीं

9. किसी भी पादप जाति की प्रतिशत आवृत्ति ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाते हैं –

(अ) $\frac{\text{क्वाड्रेट्स की संख्या जिनमें जाति उपस्थित}}{\text{अध्ययन किये गये कुल क्वाड्रेट्स}} \times 100$

(ब) $\frac{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स की संख्या}}{\text{सभी क्वाड्रेट्स में कुल जातियां}} \times 100$

(स) $\frac{\text{सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थित कुल जातियां}}{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स की संख्या}} \times 100$

(द) $\frac{\text{सभी क्वाड्रेट्स में उपस्थित जातियां}}{\text{अध्ययन किये गये क्वाड्रेट्स की कुल संख्या}}$

10. जनसंख्या वृद्धि के कारण है –

(अ) जन्म दर अधिक (ब) आप्रावासन

(स) मृत्यु दर कम (द) उपरोक्त सभी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. समष्टि क्या है?
2. जन्म दर किसे कहते हैं?
3. मृत्यु दर क्या है?
4. आयु स्तूप क्या होते हैं?
5. लिंगानुपात किसे कहते हैं?
6. जैविक विभव से क्या तात्पर्य है?
7. वाइटल इन्डेक्स ज्ञात करने का क्या सूत्र है?
8. अनुक्रमण क्या है?
9. प्राथमिक व द्वितीयक अनुक्रमण में क्या अन्तर है?
10. समुदाय की परिभाषा दीजिए?

11. संक्रमिका क्या है?
12. पादप बाहुल्यता क्या है?
13. सघनता व बाहुल्यता में क्या अन्तर है?
14. पादप आवृत्ति क्या है?
15. जलक्रमक किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. जन्म दर व मृत्यु दर में क्या अन्तर है?
2. समष्टि के क्या प्रमुख लक्षण है?
3. वृद्धि आकार को किन प्रतिरूपों द्वारा दर्शाया जा सकता है?
4. आयु स्तूप किसे कहते हैं। इसे पिरामिड द्वारा कैसे दर्शाया जाता है?
5. लिंगानुपात की गणना किस प्रकार की जाती है?
6. जैविक विभव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. पादप समुदाय के प्रमुख लक्षण क्या है?
8. पादप समुदाय के अध्ययन की विभिन्न विधियां क्या है?
9. अनुक्रमण क्या है? इसके विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
10. जलक्रमक व मरुक्रमक में क्या अन्तर होता है? समझाइए।
11. जैव आक्रमण क्या है? समझाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. निम्न पर टिप्पणी लिखिए –

   (अ) जन्म दर (ब) मृत्यु दर

   (स) लिंगानुपात (द) आयु स्तूप
2. समष्टि के विभिन्न लक्षणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. जलक्रमक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
4. मरुक्रमक अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए?
5. पादप समुदाय के परिमाणात्मक व गुणात्मक लक्षणों को समझाइए।

उत्तरमाला: 1. (अ) 2 (ब) 3 (ब) 4 (ब) 5 (स) 6 (ब) 7 (ब) 8 (ब) 9 (अ) 10 (द)

इकाई – 3
पारिस्थितिकी तंत्र
(Ecosystem)

परिचय (Introducation)

पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीवों के चारों ओर जो वातावरण पाया जाता हैं उसे पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण के मुख्य घटक हैं: (1) वायु, (2) जल, (3) मृदा, (4) प्रकाश, (5) वनस्पति और (6) जन्तु आदि। इन्हें जैविक (Biotic) व अजैविक (Abiotic) श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इन्हीं घटकों के मध्य होने वाली विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप पृथ्वी पर अनेक प्रकार की भिन्नतायें पाई जाती है। इसलिए पृथ्वी पर मरूस्थल, घास के मैदान, वन, नदियाँ, झीलें, सागर और महासागर बने हैं। इन सभी को हम प्रकृति के नाम से पुकारते हैं। प्रकृति के सभी प्रकार के घटकों के बीच निरंतर अर्न्तसम्बन्ध (Interrelationship) क्रियाशील रहते हैं और इसी कारण भिन्न–भिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। सभी घटक परस्पर अन्तनिर्भर (Mutually Dependent) होते हैं तथा इनका संतुलित चक्र चलता रहता है। प्रकृति की यह व्यवस्था सदैव एक निश्चित दिशा की ओर संचालित होती है।

पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा

(Definition of ecosystem)

प्रकृति के विभिन्न घटकों की क्रियाशीलता से उत्पन्न सम्पूर्ण संतुलित व्यवस्था को पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) कहते हैं। इकोसिस्टम की संकल्पना ए.जी. टेन्सले (A. G. Tansley) ने 1935 में प्रस्तुत की तथा उसे निम्न रूप में परिभाषित किया:–

''इकोसिस्टम वह तंत्र है जो पर्यावरण के संपूर्ण जैविक व अजैविक कारकों के पारस्परिक संबंधों तथा प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप प्रकट होता है'' अथवा ''इकोसिस्टम प्रकृति का वह तंत्र है जिसमें जैविक व अजैविक घटकों की संरचना व कार्यो का पारिस्थितिक संबंध निश्चित नियमों के अनुसार गतिज संतुलन में रहता है तथा ऊर्जा व पदार्थो का प्रवाह सुनियोजित मार्गो से होता रहता है।''

बहुत ही सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि इकोसिस्टम एक ऐसी इकाई है जिसमें सभी जीव अपने अजैविक या भौतिक वातावरण के साथ एक क्रमबद्ध रूप से (orderly) आत्मनिर्भर क्रम में रहते हैं।

अंग्रेजी में हम उसे ऐसे परिभाषित कर सकते हैं :– The Term "eco" means the environment and "system" means an interacting and interdependent complex.

पारिस्थितिक तंत्रों के प्रकार

(Kinds of Ecosystems)

पारिस्थितिक तंत्रों को मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया गया है, वे है:–

(अ) प्राकृतिक (Natural) (ब) कृत्रिम (Artificial)

(अ) प्राकृतिक (Natural): ये तंत्र प्राकृतिक दशाओं में स्वत: प्रचलित (operate) होते है। इनमें मानवीय हस्तक्षेप बहुत कम होता है। आवास (habitat) के आधार पर इन्हें दो प्रकारों में विभक्त किया जाता है :–

(i) स्थलीय (Terrestrial): इसमें वन, घासस्थल और मरूस्थलीय इत्यादि सम्मिलित हैं।

(ii) जलीय (Aquatic): इसमें स्वच्छ जलीय (Fresh water) व समुद्री (marine) पारिस्थितिक तंत्र सम्मिलित हैं।

इन सभी प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों का परिचयात्मक वर्णन यहां दिया जा रहा है।

सीलीय पारिस्थितिकी तंत्र

(Terrestrial Ecosystem)

इसमें अनेक प्रकार के उप तंत्र पाये जाते हैं उनमें से यहां पर वन तंत्र, घास के मैदानों का तंत्र तथा मरूस्थलीय तंत्रों का

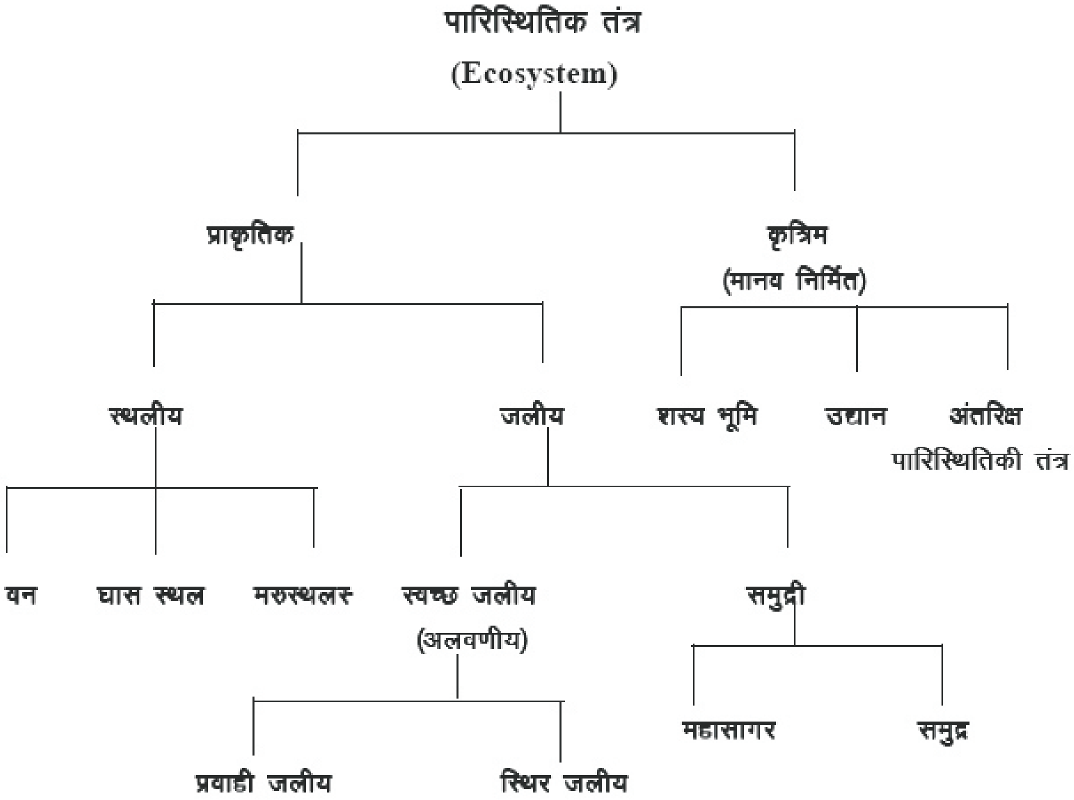

वर्णन दिया गया है।

1. वन पारिस्थितिक तंत्र (Forest Ecosystem)

पृथ्वी तल पर एक अनुमान के अनुसार 40 प्रतिशत भाग पर वन है। इस पारिस्थितिक तंत्र के मुख्य घटक इस प्रकार है :–

अजैविक घटक (Abiotic components): मृदा व वायुमण्डल में उपस्थित अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थ इस घटक में सम्मिलित है। इनके अलावा धरातल पर उपस्थित पौधों के मृत भाग भी इसी में आते हैं।

जैविक घटक (Biotic components): इनका क्रम निम्नानुसार है :–

उत्पादक (Producers): वनों में मुख्य उत्पादक वृक्ष (trees) हैं, जिनकी ऊँचाई, विविधता और वितरण वहां उपस्थित जलवायु पर निर्भर करता है। वृक्षों की प्रकृति व जलवायु के अनुसार वनों के कई प्रकार हैं, जिनमें मुख्य है :–

(i) भूमध्यरेखीय वन

(ii) मानसूनी वन

(iii) उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार चौड़ी पत्ती वाले वन

;iv) टैगा यास कोणधारी वन और

(v) मिश्रित वन

वृक्षों के अतिरिक्त वनों में कुछ झाड़ियां तथा काष्ठलताएँ (liana) भी, धरातलीय वनस्पति के साथ पाई जाती है। मुख्य वृक्ष हैं, टेक्टोना ग्रान्डिस, ब्युटिया फ्रोन्डोसा, शोरिया रोबस्टा अन्य वृक्ष जो वनों में पाये जाते हैं उनमें मुख्य है :– करकस, ऐसर, बिटुला (भोजपत्र), थूजा, पाइसिया, पाइनस (चीड़), सीड्रस (देवदार), रोडोडेन्ड्रोन।

उपभोक्ता (consumers) : ये निम्न है :–

प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers): इनमें वे सभी शाकाहारी प्राणी सम्मिलित हैं जो वृक्षों की पत्तियां खाकर जीवित रहते हैं। इनमें चींटियां (ants), मक्खियां (flies), भृंग (beetles), पातफुदक (leafhoppers), कीट (bugs) और मकड़ी (spiders) इत्यादि सम्मिलित हैं, इनमें हाथी, नीलगाय, हिरण, गिलहरी, श्रू (shrews), उड़नलोमड़ी (flying foxes) व नेवला (mongooses) इत्यादि मुख्य है।

द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers): ये वे मांसाहारी है जो शाकाहारी जीवों का भक्षण करते हैं। इनके कुछ उदाहरण है :– सांप, चिड़िया, छिपकली आदि।

तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumers) : इसमें शीर्षस्थ मांसाहारी जीव सम्मिलित है जैसे– शेर, सिंह, तेंदुआ आदि।

अपघटक (Decomposers): इसमें कई प्रकार के सूक्ष्मजीव, कवक, एक्टिनोमाइसिटीज व जीवाणु सम्मिलित हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करके तत्वों व खनिजों को पौधों को पुनः उपलब्ध करवाते है।

2. घास स्थल पारिस्थितिक तंत्र (Grassland Ecosystem)

यह स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का एक प्रकार है। पृथ्वी तल के 19 प्रतिशत भाग पर घास पाई जाती है। घास स्थल के घटक निम्न है :–

अजैविक घटक (Abiotic components): इनमें मृदा और वायुवीय पर्यावरण में उपस्थित पोषक सम्मिलित है। कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व गंधक आदि तत्व वायु व मृदा में उपस्थित CO_2, पानी, नाइट्रेटस, फॉफेस्टस् और सल्फेटस् द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं।

जैविक घटक (Biotic components) : ये निम्न है :–

उत्पादक (Producers): ये मुख्य रूप से घास (gress) है। इनमें साएनोडोन, डिजिटेरिया, डाइकेन्थियम, सिटेरिया, ब्रेकिएरिया और स्पाइरोबोलस की जातियां प्रमुख हैं। इनके अलावा कुछ झाड़ियां (shrubs) व फोर्ब्स (forbes) भी प्राथमिक उपत्पादन में सहायक होते है।

उपभोक्ता (Consumers) : इनमें तीन श्रेणियां है :–

(अ) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers) : इस श्रेणी में घास खाने वाले पशु जैसे गाय, भैंस, हिरण, भेड़, खरगोश व चूहे आते हैं। इनके अलावा घास की पत्तियों को खाने वाले कुछ कीट व दीमक (termites) भी उपस्थित होती है।

(ब) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers): इस श्रेणी में शाकाहारी प्राणियों का भक्षण करने वाले मांसाहारी जीव आते हैं। इनमें चिड़ियां, छिपकली, सांप, मेंढ़क, गीदड़ व लोमड़ी सामान्य रूप से सम्मिलित है।

कभी–कभी बाज इनमें से कुछ द्वितीयक उपभोक्ताओं को खा जाते हैं। अतः बाज (hawk) तृतीयक श्रेणी का उपभोक्ता माना जाता है।

(स) अपघटक (Decomposers): इनमें कवक, एक्टिनोमाइसिटीज व कई प्रकार के जीवाणु सम्मिलित हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करते हैं। अपघटन से कई तत्व स्वतंत्र होते हैं, जो पौधों के पोषण में काम आते हैं।

3. मरूस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (Desert Ecosystem)

मरूस्थल दुनिया के स्थलीय भू–भाग का लगभग 17 प्रतिशत भाग बनाते हैं। मरूस्थल ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं जहां वर्षा का वार्षिक औसत 25 सेन्टीमीटर से भी कम होता है। उच्च तापमान, कम वर्षा, उच्च वायु गति (high wind velocity) ऐसे स्थानों की प्रमुख विशेषताएँ है। भारत के पश्चिमी भाग में विशाल मरूस्थलीय भू–भाग हैं, इसे थार का मरूस्थल (Thar desert) कहते हैं। इसके प्रमुख घटक है :–

उत्पादक (Producers) : इसमें झाड़ियां, कुछ घास व कुछ वृक्ष सम्मिलित हैं। यहां पर कुछ मांसल (succulent) व काटेंदार वनस्पति बहुतयात में मिलती है। अधिकांश पौधे सीमित वर्षाकाल में ही अपना जीवन पूरा कर लेते हैं।

उपभोक्ता (Consumers): इसमें सामान्यतः सरीसृप वर्ग (reptiles) व कीट प्रजातियां सम्मिलित है। जो शुष्क परिस्थितियों में जीवित रहते हैं। यहां पर ऐसे जीव बहुतायत में मिलते हैं जो बिलों में रहते हैं और रात्रि में बाहर निकलते हैं। मरूभूमि का मुख्य पशु ऊँट है। यहां पर भेड़ व बकरी पालन मुख्य व्यवसाय है।

अपघटक (Decomposers): इनमें ऐसे जीवाणु व कवक सम्मिलित हैं जो उच्च तापमान में जीवित रहते हैं, बहुत ही कम मात्रा में बने मृत कार्बनिक पदार्थो का अपघटन करते हैं।

जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Aquatic Ecosystem)

1. ताल पारिस्थितिक तंत्र (Pond Ecosystem)

स्वच्छ जल (Fresh water) का ताल (pond) एक स्वयं–संपूर्ण (self-sufficient) व स्वतः नियामक तंत्र (self-regulating system) है। ताल में उपस्थित जन्तु एवं पादप उसके भौतिक रासायनिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं और अपने अनुकूलनों से सफलतापूर्वक जीवन–यापन भी करते हैं। ताल पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न घटक (componments) निम्न है:–

अजैविक घटक (Abiotic components): ताल के अजैविक घटकों में प्रकाश, ऊष्मा, जल का pH मान तथा उसके पानी में उपस्थित CO_2, O_2, कैल्सियम, नाइट्रोजन, फॉस्फेट व ह्युमिक अम्ल इत्यादि मुख्य हैं।

स्थायी अवस्था (Standing state): ताल के जल में किसी भी समय उपस्थित खनिजों की मात्रा को स्थायी अवस्था कहते हैं।

आविलता सूचकांक (Turbidity index): जल की विभिन्न गहराइयों की आविलता (विभिन्न प्रकार के कणों के कारण निर्मित) को सेची डिस्क से नापते हैं।

प्रकाश तीव्रता (Light intensity): जल की भिन्न गहराई तक पहुँचने वाले प्रकाश की तीव्रता। इसे लक्स मीटर द्वारा नापते हैं। इसी प्रकार ताल जल में उपस्थित O_2 की मात्रा, CO_2 की मात्रा, उसका pH मान भी यंत्रों की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है।

पानी में इन विभिन्न प्रकार के कारकों की उपस्थिति व उनकी मात्रा इसके जैविक घटकों का निर्धारण करती है।

जैविक घटक (Biotic components): जल में उपस्थित विभिन्न प्रकार के पादप व जन्तु उसका जैविक घटक कहलाते हैं। ये हैं :–

1. उत्पादक (Producers): सभी हरें पौधे व कुछ प्रकाश संश्लेषी जीवाणु जो स्वयंपोषी होते हैं, उत्पादक कहलाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते है :–

(अ) गुरूप्लवक (Macrophytes): ये जड़ वाले बड़े पौधे निम्न प्रकारों के होते हैं :–

(i) स्वतंत्र तैरने वाले (Free-floating): उदाहरण ट्रापा (सिंघाड़ा), एजोला, वुल्फिया व जलकुंभी।

(ii) पानी में तैरने वाले (submerged floating): ये पानी के अन्दर ही तैरते रहते हैं। उदाहरणः– हाइड्रिला।

(iii) जल निमग्न जड़ों वाले (Rooted submerged): इन पौधों की जड़ें नीचे पंक या मिट्‌टी (mud) में होती है और पत्तियाँ पानी के अन्दर ही तैरती रहती हैं। उदाहरण – वेलिस्नेरिया।

(iv) जड़ों वाले–तैरती पत्तियों वाले (Rooted with floating leaves) : ऐसे पौधे की जड़े पंक या कीचड़ (mud) में तथा पत्तियां पानी की सतह पर तैरती रहती है। उदाहरणः– कमल।

(ब) पादप प्लवक (phytoplanktons) : ये प्रायः सूक्ष्म पौधे होते हैं जो स्वतंत्र रूप से तैरते रहते हैं। इनमें शैवाल मुख्य हैं। उदाहरण : वॉलवॉक्स, क्लेमाइडोमोनास, माइक्रोसिस्टिस, ऑसिलेटोरिया, युलोथ्रिक्स आदि।

2. उपभोक्ता (consumers) : ये परपोषी होते हैं, और अपना पोषण उत्पादकों से प्राप्त करते हैं, ये निम्न प्रकार के हैं:–

(i) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers) : शाकाहारी पौधों से अपना पोषण प्राप्त करते हैं। ये दो प्रकार के होते है :–

(अ) नितल जीवजात (Benthos): ये अधस्तल या पैंदे पर पड़े पादप अवशेषों को खाते हैं। इनमें मछली, लारवा, भृंग (beetles) व चिंचड़ी (mites) आदि आते हैं।

(ब) प्राणिप्लवक (Zooplanktons): ये सूक्ष्म जीव (जन्तु) हैं जैसे कोलेप्स, युग्लीना, साइक्लोप्स आदि। ये पादप प्लवकों को अपना आहार बनाते हैं।

(ii) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers): ये कीट और मछली होते हैं जो शाकाहारियों से भोजन प्राप्त करते हैं।

(स) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumers): ये मांसाहारी है। जैसे– आखेट मीन (Gamefish)।

3. अपघटक (Decomposers) : इन्हें सूक्ष्म उपभोक्ता भी कहते हैं। ये सिर्फ अपघटित कार्बनिक पदार्थो के अंश का अवशोषण करते हैं। ये मुख्यतः जीवाणु, एक्टिनोमाइसिटीज व कवक होते हैं। उदाहरण है:– एस्पर्जिलस, राइजोपस, ट्राइकोडर्मा, फ्युजेरियम आदि।

2. सागरीय पारिस्थितिकी तन्त्र (Marine Ecosystem)

महासागर एक विशाल पारिस्थितिकी तन्त्र का रूप है। सागरीय पारिस्थितिकी तन्त्रों के भौतिक घटकों जैसे उनकी रासायनिक संरचना, रासायनिक गुणवत्ता, घुलनशील गैसों की मात्रा, सूर्य प्रकाश, तापमान, लवणता का स्तर, जल की स्थिरता आदि भिन्न–भिन्न होते हैं। इस पारिस्थितिकी तन्त्र में लवणों की मात्रा सामान्यतः 35 भाग प्रति हजार से अधिक पाई जाती है। नदियों के मुहानों पर जल में लवणता की मात्रा कम और तटों से दूर सागरीय लवणता बढ़ती जाती है। सागरीय पारिस्थितिकी तन्त्र पर जल की गहराई, तट से दूरी, नदियों व हिम नदियों से जल व हिम की आवक, पवन की दिशा व गति, जलीय संचरण आदि का प्रभाव पड़ता है। सागरीय पारिस्थितिकी तन्त्र लगभग 2.5 लाख विभिन्न प्रजातियों के पादप व जीव जन्तुओं को आश्रय प्रदान करता है। इनमें से अधिकांश एककोशीय पादप प्लैंकटोन (Phytoplankton) व जैव प्लैंकटोन (Zooplankton) जैसे पादप व जीव है। ये विभिन्न प्रकार एवं आकार के जीवों का मुख्य आहार हैं तथा जैविक उद्‌भव एवं विकास का मुख्य आधार है। जैविक उद्‌भव एवं विकास का मुख्य आधार प्रकाश की उपलब्धता होती है। किन्तु तट से दूर जाने पर महासागरीय गहराई बढ़ते जाने के साथ–साथ सूर्य प्रकाश की मात्रा कम होती जाती है। इसलिये इस पारिस्थितिकी तन्त्र को प्रकाशहीन क्षेत्र (Aphotic zone) भी कहते हैं। यहां प्रकाश के अभाव में उत्पादकों का उद्‌भव व विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। सागरीय पारिस्थितिकी तन्त्र के मुख्य उत्पादक विभिन्न प्रकार के प्लैंकटोन, शैवाल व अन्य वानस्पतिक रूप होते हैं जो विविध प्रकार के जीवों का आहार बनते हैं। अतः ये प्राथमिक उत्पादक हैं जो इस पारिस्थितिकी तन्त्र में प्रथम पोषक स्तर की भूमिका निभाते हैं। इनके मुख्य उपभोक्ता तैरने वाले घोंघे, जैलीफिश, झींगा मछली व अन्य प्रकार की मछलियां होती है। जलीय पारिस्थितिकी तन्त्र में जीव जन्तुओं के मृत शरीर पर विभिन्न प्रकार के जीवाणु व फफूंद अपघटक के रूप में कार्य करते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना (Structure of an Ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र के दो घटक होते हैं– जैविक घटक (Biotic components) तथा अजैविक घटक (Abiotic

components)।

1. जैविक घटक (Biotic Components) – ये निम्न प्रकार के हैं–

(i) स्व–पोषित अथवा उत्पादक (Autotrophs or producers)

(ii) उपभोक्ता या परपोषित घटक (Consumer or Heterotrophic components)

   (a) प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of the first order)

   (b) द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of the second order)

   (c) तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता या शीर्ष मांसाहारी (Consumers of the third order or top carnivores)

(iii) अपघटक (Decomposers)

2. अजैविक घटक (Abiotic Components)

   1. अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic materials)

      (i) जल (Water)

      (ii) तत्व (Elements) – K, Mg, Ca, N, P एवं आदि।

      (iii) गैसें (Gases) – O_2, CO_2, H_2, N_2 एवं NH_3 आदि।

   2. कार्बनिक पदार्थ (Organic materials)

      (i) कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates)

      (ii) प्रोटीन्स (Proteins)

      (iii) वसा (Fats)

      (iv) जीवांश (ह्यूमस) तथा यूरिया (Humus and Urea)

   3. भौतिक अथवा जलवायवीय घटक (Physical or Climatic Components)

      (i) प्रकाश

      (ii) ताप (Temperature)

      (iii) वायु (Wind)

      (iv) वर्षा (Rainfall)

      (v) नमी या आर्द्रता (Humidity)

1. जैविक घटक (Biotic Components)

हरे पौधे (Green plants) जो सूर्य के प्रकाश में भोजन बनाते हैं, प्राथमिक उत्पादक (Primary producers) कहलाते हैं। इस क्रिया में पौधों से ऑक्सीजन (O_2) निकलकर वातावरण में मिल जाती है जो जीवधारियों के श्वसन में काम आती है। जैविक घटक अग्रलिखित होते हैं –

(i) स्व–पोषित अथवा उत्पादक (Autotrophs or producers) – वे हरे सजीव पादप सदस्य जो साधारण अकार्बनिक (Inorganic) पदार्थों को प्राप्त कर प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया द्वारा जटिल पदार्थ भोजन के रूप में निर्माण करने में सक्षम होते हैं, स्व–पोषित कहलाते हैं। ये जीव प्रमुख रूप में सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त करते हैं जिसके लिए इनमें पर्णहरित (Chlorophyll) नामक पदार्थ होता है। इस प्रकार के घटक उत्पादक कहलाते हैं, क्योंकि ये उत्पादित खाद्य पदार्थों का विभिन्न प्रकार से संचय भी करते हैं। यही संचित खाद्य पदार्थ सभी प्रकार के जीवों के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भोजन का स्रोत होता है।

(ii) उपभोक्ता या परपोषित घटक (Consumer or Heterotrophic components) – इस घटक के सदस्यों में पर्णहरित के अभाव के कारण भोजन बनाने की क्षमता नहीं होती है, अतः ये अपने भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं, इसलिए इन्हें उपभोक्ता (Consumer) भी कहते हैं। ये उपभोक्ता, उत्पादकों द्वारा उत्पादित या संचित भोजन का उपयोग करते हैं। उपभोक्ता तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं (चित्र 3.1)

(a) प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of first order or

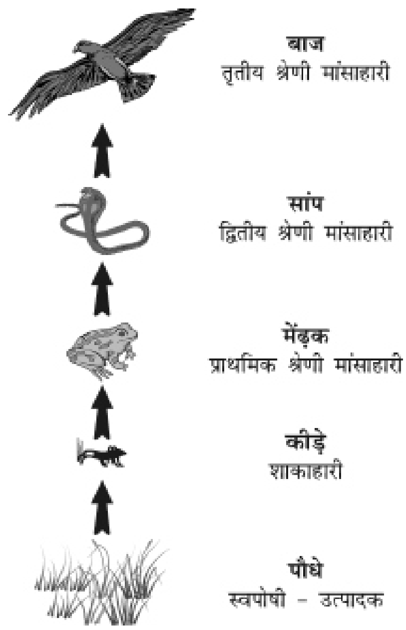

चित्र 3.1 : पारिस्थितिक तंत्र में पोषी स्तर

Primary consumers) – ये जीव अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष रूप से हरे पौधों अर्थात् उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं, अतः ये मुख्य रूप से शाकाहारी (Herbivores) होते हैं जैसे – चूहा,

कीट, बकरी, गाय, खरगोश, हिरण आदि।

(b) द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of second order or secondary consumers) – वे उपभोक्ता जो अपना भोजन प्राथमिक उपभोक्ताओं से प्राप्त करते हैं, द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं जैसे – सांप, मेंढक आदि।

(c) तृतीयक श्रेणी के उपभोक्ता या शीर्ष मांसाहारी (Consumers of the third order or top consumers) – वे जीव जो मांसभक्षी प्राणियों अर्थात् द्वितीयक श्रेणी (उपभोक्ताओं) का भक्षण करे वे तृतीय श्रेणी उपभोक्ता कहलाते हैं। ये सर्वहारी व शाकाहारी का भी भक्षण कर लेते हैं। ये वे जीव हैं जो अन्य जीवों का तो भक्षण कर लेते हैं, किन्तु इन्हें कोई भी प्राणी नहीं खा सकता। अतः इन्हें शीर्ष उपभोक्ता (Top consumers) भी कहते हैं। उदाहरणार्थ – चीता, शेर, बाज (Hawk), गिद्ध (Vulture) आदि।

(iii) अपघटक (Decomposers) – अपघटक वे मृतपोषी कवक तथा जीवाणु हैं जो जीवों के मरने पर उनके मृत शरीरों या शरीर के अवशेषों को अपघटित (Decompose) करके उनके अवयवों को फिर से कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि खनिज तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार भोजन को जिसे प्राथमिक रूप में उत्पादकों ने संचित किया था तथा अन्य उपभोक्ताओं ने प्रयोग किया उसे वातावरण में वापस लौटाने का कार्य अपघटक ही करते हैं। अतः पारिस्थितिक तंत्र के सन्तुलित संचालन के लिए अपघटकों की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि उत्पादकों की या उपभोक्ताओं की। अपघटन प्रक्रिया के समय अति संक्षिप्त मात्रा में कुछ कार्बनिक पदार्थों को ये सूक्ष्म जीव अपने भोजन के रूप में भी ग्रहण कर लेते हैं। संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं कि अपघटक पारिस्थितिक तंत्र में खनिज लवण व अन्य कच्ची सामग्री (Raw material) के पुनः चक्रण (Recycling) का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

2. अजैविक घटक (Abiotic Components)

अजीवीय घटकों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है–

(i) अकार्बनिक (Inorganic) पदार्थ – जैसे – नाइट्रोजन, कार्बन, कैल्शियम, सल्फर, फॉस्फोरस एवं जल इत्यादि। वातावरण में इन सबके अपने चक्र होते हैं।

(ii) कार्बनिक (Organic) पदार्थ – जैसे – प्रोटीन्स (Proteins), कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) एवं लिपिड्स (Lipids), जो जैविक अंश को अजैविक अंश से जोड़ता है।

3. भौतिक अथवा जलवायवीय (Physical or Climatic) घटक

जैसे – ताप, जल एवं वायु इत्यादि।

पारिस्थितिक तंत्र के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि खनिज पदार्थों का परिभ्रमण (Circulation) लगातार होता रहे। ये मृदा के द्वारा जीवित कारकों में प्रवेश पाते हैं और पौधों तथा जन्तुओं की मृत्यु व गलने पर फिर से मृदा व वायुमण्डल मिल जाते हैं। पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए बहुत से तत्व आवश्यक है, परन्तु छः तत्व क्रमशः कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भौतिक तत्वों के परिसंचरण क्रम का अध्ययन करने से हमें पारिस्थितिक तंत्र में पाये जाने वाले वायु, जल एवं लवणों के वातावरण से जीव के शरीर में मिलने एवं शरीर की अनेक क्रियाओं द्वारा पुनः वातावरण में मिल जाने का ज्ञान होता है।

पारिस्थितिकीय पिरेमिड (Ecological Pyramids)

"किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में एक खाद्य श्रृंखला के विभिन्न पोषण स्तरों की संख्या (Number), जीव भार (Biomass) तथा ऊर्जा (Energy) के आलेखी निरूपण को पारिस्थितिक पिरेमिड कहते हैं।"

पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न पोषण स्तरों (Trophic levels) का पारस्परिक सम्बन्धों का चित्रात्मक रूपों में निरूपण किया जा सकता है। इन चित्रात्मक निरूपणों की आकृति पिरेमिड जैसी होती है। इसलिए इन्हें पारिस्थितिक पिरेमिड कहते हैं। ऐसे चित्रात्मक निरूपणों के पिरेमिडों का विचार सर्वप्रथम चार्ल्स एल्टन (1927) ने रखा, अतः इन्हें "एल्टोनियन पिरेमिड" भी कहते हैं।

पिरेमिडों के प्रकार (Type of Pyramids)

पारिस्थितिकीय पिरेमिड निम्न तीन प्रकार के हैं–

1. जीव–संख्या का पिरेमिड (Pyramid of numbers)
2. जीव–भार का पिरेमिड (Pyramid of biomass)
3. ऊर्जा का पिरेमिड (Pyramid of energy)

1. जीव–संख्या का पिरेमिड (Pyramid of numbers)

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में उपस्थित भोजन श्रृंखला में पाये जाने वाले विभिन्न पोषण स्तरों (Trophic levels) में उपस्थित जीवों की संख्या को दर्शाने के लिए जिस पिरेमिड का उपयोग करते हैं, उसे संख्या का पिरेमिड कहते हैं। एक पारिस्थितिक तंत्र जैसे घास–स्थल (Grassland) में प्रायः उत्पादकों (Producers) की संख्या सबसे अधिक होती है प्राथमिक उपभोक्ताओं (Primary consumers) की संख्या उत्पादकों की संख्या से कम होती है तथा जो उपभोक्ता प्राथमिक उपभोक्ता से पोषण प्राप्त करते हैं उनकी संख्या और कम होती है। इस प्रकार प्रत्येक पोषक स्तर पर जीवों की संख्या क्रमशः कम होती जाती है। यदि संख्या को एक चित्रण द्वारा दर्शाया जाये तो एक सीधा (Upright) पिरेमिड बनता है। ऐसे पिरेमिड में, आधार पर

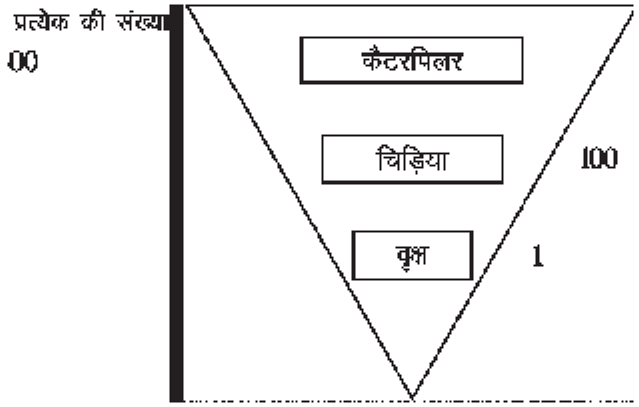

चित्र 3.2 : संख्याओं का पिरामिड

उत्पादकों की संख्या तथा उत्तरोत्तर क्रम में प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक उपभोक्ताओं की संख्या दर्शाते हैं।

उत्पादक → प्राथमिक उपभोक्ता → द्वितीयक उपभोक्ता → तृतीय उपभोक्ता → शीर्षस्थ उपभोक्ता

ऐसे पिरेमिड कभी–कभी उल्टे भी हो सकते हैं– जैसे उदाहरण के लिए एक विशाल वृक्ष (प्राथमिक उत्पादक) के ऊपर फल खाने वाले बहुत से पक्षी (प्राथमिक उपभोक्ता) रहते हैं; जिनके शरीर में बहुत से छोटी कीटाणु (द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ता) रहते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर पोषण स्तरों में जीवों की संख्या बढ़ती जाती है। इसलिए ऐसे वृक्ष के पारिस्थितिक तंत्र की संख्या का पिरेमिड उल्टा होता है (चित्र 3.2)।

2. जीव–भार का पिरेमिड (Pyramid of biomass)

जीव–भार (Biomass) – किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में जीवों का इकाई क्षेत्र (Unit area) में सम्पूर्ण शुष्क भार (Dry weight) जीव–भार कहलाता है।

घास पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न पोषण स्तरों का जीव–भार

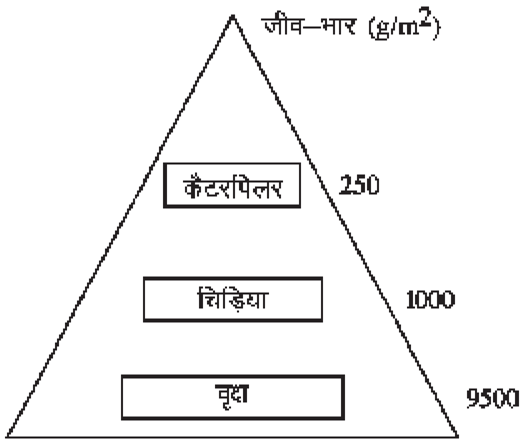

चित्र 3.3 : जीव–भार का पिरामिड

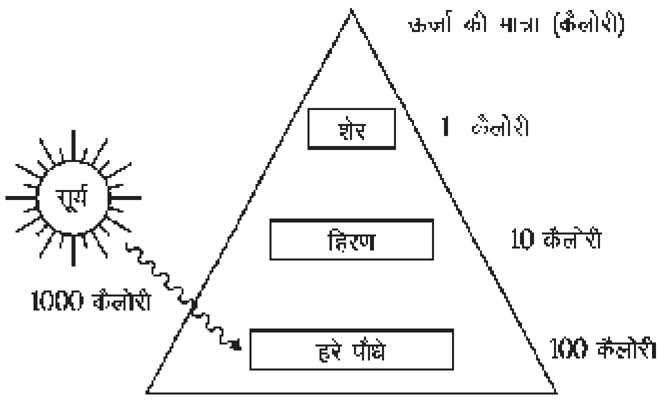

चित्र 3.4 : ऊर्जा का पिरामिड

निकालकर उसका चित्रीय निरूपण करें तो यह सीधा पिरेमिड बनाता है। प्राथमिक उत्पादकों का जीव–भार सबसे अधिक होता है और उत्तरोत्तर पोषक स्तरों पर उपस्थित उपभोक्ताओं (Consumers) का जीव–भार कम होता जाता है और शिखर पर उपस्थित जीवों का जीव–भार सबसे कम होता है।

एक विशाल वृक्ष के पारिस्थितिक तंत्र में भी जीव–भार का पिरेमिड सीधा (Upright) होता है चूंकि प्राथमिक उत्पादक का जीव–भार सबसे अधिक होता (चित्र 3.3)। एक जलाशय (Pond) पारिस्थितिक तंत्र में जीवभार का पिरेमिड उल्टा होता है।

3. ऊर्जा का पिरेमिड (Pyramid of energy)

इस प्रकार के पिरेमिड से भोजन श्रृंखला के प्रत्येक पोषण स्तर पर उपस्थित जीवों में उपलब्ध कुल ऊर्जा का पता चलता है (चित्र 3.4)। प्रत्येक पोषण स्तर पर उपस्थित ऊर्जा का केवल दस प्रतिशत भाग ही अगले या उच्च पोषण स्तर पर स्थानान्तरित होता है, इसलिए उत्पादकों से विभिन्न पोषण स्तरों पर ऊर्जा क्रमशः कम होती जाती है। इसलिए ऊर्जा के आधार पर किये गये निरूपण का पिरेमिड सदैव सीधा (Erect) होता है। इस प्रकार के पिरेमिड में समय और क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। ऊर्जा पिरेमिड ऊष्मा विज्ञान (Thermodynamics) के नियमों का पालन करती है।

पारिस्थितिक तंत्र के कार्य (Functions of Ecosystem)

इसमें पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता, खाद्य–श्रृंखला, खाद्य–जाल व ऊर्जा प्रवाह तथा जैव भू–रासायनिक चक्रों पर चर्चा का उल्लेख दिया जा रहा है।

पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता (Productivity of Ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता उसमें होने वाली उत्पादन की दर (rate of production) को कहते हैं। एक इकाई समय में एकत्रित होने वाले कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को ही उत्पादकता कहते हैं। उत्पादकता के निम्न प्रकार है :–

1. प्राथमिक उत्पादकता (Primary productivity): उत्पादकों (producers) द्वारा प्रकाश संश्लेषी (photosynthetic) व रसायन संश्लेषी (chemosynthethic) क्रियाओं द्वारा जिस दर से विकिरण ऊर्जा (radiant energy) का संग्रह होता है, उसे प्राथमिक उत्पादकता कहते हैं। उत्पादकों में हरे पादप, पादपप्लवक (phytoplanktons) और कुछ जीवाणु उत्पादकों की श्रेणी में आते हैं। प्राथमिक उत्पादकता के दो प्रकार है :–

(अ) सकल प्राथमिक उत्पादकता ;Gross primary productivity): इसे कुल प्रकाश संश्लेषण या कुल स्वांगीकरण (total assimilation) भी कहते हैं। यह क्लोरोफिल की मात्रा पर निर्भर करता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है :– CO_2 की स्थिर की गई मात्रा / ग्राम क्लोरोफिल / घंटा।

इसे प्रकाश संश्लेषण की कुल दर भी कहा जाता है (जिसमें श्वसन में काम आने वाले कार्बनिक पदार्थ भी सम्मिलित हैं) इसे सामान्यतः GPP नाम से बोलते हैं।

(ब) शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता (Net primary productivity या NPP) : पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण में संचित कार्बनिक पदार्थो में से जब श्वसन (वृद्धि व जनन में हुआ ह्रास) में काम आने वाली मात्रा को निकाल देते हैं तो शेष मात्रा शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता कहलाती है। इसका सूत्र है :– NPP = कुल प्रकाश संश्लेषण – श्वसन + वृद्धि व जनन में हुआ ह्रास अथवा NPP = GPP – R

2. द्वितीयक उत्पादकता (Secondary productivity): इसका संबंध परपोषियों (heterotrophs) व उपभोक्ताओं (consumers) से है। परपोषी व उपभोक्ता, उत्पादकों द्वारा भोजन प्राप्त कर उनसे श्वसन द्वारा ऊर्जा का उपयोग अपने शरीर के विभिन्न उत्तकों के निर्माण में करते हैं। द्वितीयक उत्पादकता चल (mobile) होती है।

3. शुद्ध उत्पादकता (Net Productivity) : कार्बनिक पदार्थो के संचय की दर (Rate of storage of organic matter) शुद्ध उत्पादकता कहलाती है। इस प्रकार यह प्राथमिक उत्पादकों के जीवभार की बढ़ती दर है जो मांसभक्षियों द्वारा उपयोग में नहीं ली जाती है। इसका सूत्र है – Centi gm/m_2/day।

पारिस्थितिक तंत्र की खाद्य–श्रृंखलाएँ (Food Chains in Ecosystem)

उत्पादकों द्वारा पर्णहरित और प्रकाश की उपस्थिति में सौर या विकिरण ऊर्जा (radiant energy) का स्थिरीकरण (fixation) कार्बनिक पदार्थो के रूप में होता हैं। प्रकृति में यह खाद्य ऊर्जा विभिन्न पोषण स्तरों में उत्तरोत्तर निम्न क्रम में निरन्तर स्थानांतरित होती रहती है :– उत्पादक ——> शाकाहारी ——> मांसभक्षी ——> अपघटक (decomposers)। एक पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों द्वारा खाद्य के रूप में संचित ऊर्जा का विभिन्न पोषण स्तरों (trophic levels) में निरंतर स्थानांतरण एक श्रृंखला के रूप में होता है अतः इसे खाद्य–श्रृंखला (food chain) कहते हैं। इसका सही क्रम है :–

प्रथम पोषण स्तर ↓	प्राथमिक उत्पादक (खाद्य श्रृंखला का प्राथमिक स्तर) ↓
द्वितीय पोषण स्तर ↓	शाकाहारी (herbivores) या प्राथमिक उपभोक्ता ↓
तृतीय पोषण स्तर ↓	मांसाहारी (carnivores) या द्वितीयक उपभोक्ता ↓
चतुर्थ पोषण स्तर ↓	मांसाहारी या सर्वभक्षी (omnivores) या तृतीयक / शीर्षस्थ उपभोक्ता

सर्वभक्षी वे जीव हैं जो मांसाहारी और शाकाहारी दोनों भी हो सकते हैं। इसलिए एक से अधिक पोषण स्तर ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा का स्थानांतरण एक क्रमबद्ध रूप से निरंतर चलता रहता है। कई प्रकार की खाद्य श्रृंखलाएँ होती है। जैसे :– 1. घास स्थल पारिस्थितिकी तंत्र की खाद्य–श्रृंखला या चारण खाद्य श्रृंखला, 2. अपरद (detritus) खाद्य श्रृंखला।

1. चारण खाद्य श्रृंखला (Grazing food chain): इसका क्रम है :–

हरे पादप – चारण शाकाहारी – मांसाहारी

घास और शाक
(Grasses and forbs)
↓
टिड्डा
(Grasshoppers)
↓
मेंढ़क (Frog)
↓
सांप (Snake)
↓
बाज (Hawk)

चित्र : 3.5 चारण खाद्य–श्रृंखला

उपरोक्त चित्र 3.5 से स्पष्ट है कि घास (हरे पादप) सौर ऊर्जा को कार्बनिक पदार्थो को बनाकर स्थिर करते हैं। घास के पत्तों को टिड्डे (शाकाहारी कीट) खाते हैं। टिड्डों को मेंढ़क भोजन के रूप में खाते हैं। मेंढ़क को सांप और सांप का भक्षण बाज करता है। इस प्रकार एक पोषण स्तर के जीवों का भक्षण, दूसरे पोषण स्तर के जीवों द्वारा किया जाता है। यह क्रम सर्वोच्च मांसभक्षी (top carnivore) तक निरंतर क्रमशः चलता रहता है।

2. अपरद खाद्य श्रृंखला (Detritus food chain) : इस प्रकार की खाद्य–श्रृंखला मृत कार्बनिक पदार्थो (dead organic matter) से प्रारंभ होती है। इसका क्रम निम्न है (चित्र 3.6):–

मृत कार्बनिक पदार्थ ——> सूक्ष्मजीवी ——> अपरदाहरी

इस प्रकार की खाद्य श्रृंखला शीतोष्ण वनों (temperate forests) में पाई जाती है जहां यह अपघटित संचित करकट (decomposed litter) पर प्रारंभ होती है। इस प्रकार की खाद्य–श्रृंखला प्रत्यक्ष रूप से सौर ऊर्जा पर निर्भर नहीं करती है।

अपरद खाद्य–श्रृंखला का सबसे अच्छा उदाहरण है मेंग्रोव वनस्पति की पत्तियों से (mangrove leaves) प्रारंभ होने वाला राइजोफोरा मेंगल (Rhizophore mangle) एक ऐसा पादप है जो समुद्री किनारे पर छिछले पानी में उगता है। इस पौधे की पत्तियां जब पानी में गिर जाती है तो पत्तियों पर मृतपोषी कवक जीवाणु व प्रोटोजोआ (एक प्रकार के जन्तु) क्रिया करते हैं। इन्हें छोटे जीव खाते हैं। ये प्राणी शमलभोजी (coprophagus) कहलाते हैं। इन प्राणियों में केंकड़े (crabs), अरियवाद (copepods) कीटों के विभिन्न लारवा (larvae), सूत्रकृमि (nematodes) द्विकपाटी मोलस्का (bivalve molluscus) इत्यादि प्रमुख हैं। ये प्राणी अपरद उपभोक्ता (detritus consumers) कहलाते हैं। इन प्राणियों को छोटी आखेट मछली (small game fish) खाती है। छोटी मछली, बड़ी आखेट मछली या मछली भक्षक पक्षियों द्वारा खाई जाती है।

इस प्रकार खाद्य श्रृंखला में खाद्य ऊर्जा का प्रारंभ अपघटित पत्तियों से प्रारंभ होता है।

वनस्पति की मेन्ग्रूव पत्तियां

↓

कवक, जीवाणु, प्रोटोजोआ द्वारा अपघटन

↓

मृत कार्बनिक पदार्थ

↓

अपरद उपभोक्ता
(केंकड़े, लार्वा, कोपीपोड, सूत्रकृमि इत्यादि)

↓

छोटी आखेट मछली

बड़ी आखेट मछली / मछली भक्षी पक्षी (शीर्ष मांसाहारी)

चित्र 3.6 : अपरद खाद्य श्रृंखला (detritus food chain)

पोषण स्तर (Trophic Levels)

पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों द्वारा संश्लेषित कार्बनिक पदार्थों का क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय व सर्वोच्च उपभोक्ताओं द्वारा भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। पारिस्थितिक तंत्र की इस उत्पादक–उपभोक्ता व्यवस्था की प्रत्येक कड़ी या जीव को पोषण तल या पोषण स्तर कहते हैं। जैसे किसी एक चारागाह पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्रकार की घासें उत्पादक होती है। यह प्रथम पोष स्तर (T_1) का निर्माण करती है। इनके द्वारा निर्मित भोजन शाकाहारी जन्तु टिड्डा, खरगोश आदि के लिए उपलब्ध होता है जो द्वितीय पोष स्तर (T_2) का निर्माण करती है। टिड्डे को मेंढक एवं खरगोश को शेर खा जाते हैं। मेंढक एवं शेर तृतीय पोष स्तर (T_3) का निर्माण करती है।

विभिन्न पोष स्तरों में जीवित पदार्थ की मात्रा अप्रवाही शस्य (Standing crop) कहलाती है। इसे इकाई क्षेत्र में उपस्थित जीवों की कुल संख्या व अशुष्क (Fresh) या शुष्क (Dry) भार के रूप में व्यक्त करते हैं। जब अप्रवाही शस्य को भार के रूप में व्यक्त करते हैं तब यह जैव भार (Biomass) कहलाता है।

खाद्य–जाल (Food Web)

जब एक से अधिक खाद्य श्रृंखलाएँ (food chains) एक पारिस्थितिक तंत्र में एक दूसरे से बंधी रहती हुई क्रियाशील होती है तो उसे खाद्य–जाल कहते हैं। प्रकृति में एक खाद्य श्रृंखला के एक या अधिक पोषण स्तर अन्य खाद्य श्रृंखला के पोषण स्तर से जुड़े होते हैं इस प्रकार एक जाल का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, पौधे (उत्पादक) चूहे द्वारा खाये जाते हैं। चूहे को सांप खा

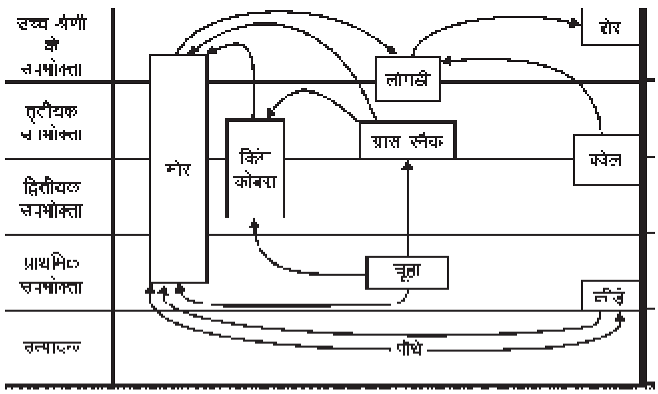

चित्र 3.7 : खाद्य जाल का आरेख

लेता है। सांप को उल्लू एवं बाज खा लेते हैं। वास्तव में यह क्रम अधूरा है (चित्र 3.7)। यह क्रम यह नहीं दर्शाता कि वे ही पौधे, चूहे के अतिरिक्त खरगोश द्वारा या अन्य पर्णभक्षी जन्तुओं द्वारा भी खाये जा सकते हैं और चूहों को सांप के अतिरिक्त दूसरे जन्तु और सांप को बाज के अतिरिक्त दूसरे जन्तु भी खा सकते हैं। खाद्य जाल वास्तव में एक सम्पूर्ण समुदाय के सभी जीवित प्राणियों का एक–दूसरे से भोजन के सम्बन्ध स्थापित करता है। खाद्य जाल में, खाद्य ऊर्जा के स्थानान्तरण का मार्ग बहुदिशीय (Multidirectional) होता है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

ऊर्जा का प्रवाह हमेशा एकदिशीय (unidirectional) होता है। पारिस्थितिक तंत्र की क्रियाशीलता, जैविक उद्‌भव, विकास तथा अपघटन के लिए ऊर्जा एक आधारभूत आवश्यकता है। पारिस्थितिक तंत्र के सभी घटकों के लिए ऊर्जा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रधान स्त्रोत सूर्य है। सूर्य की सतह पर तापमान लगभग 6000° C है। सूर्य से चारों ओर अंतरिक्ष में लगातार ऊर्जा का विकिरण होता रहता है। सौर्य विकिरण का दो अरबवाँ भाग ही पृथ्वी तक पहुंचता है। जो पृथ्वी पर समस्त जीवन का आधार है। ऊर्जा के मापन की इकाई अर्ग (erg) है।

एक ग्राम वजन को एक सेन्टीमीटर ऊँचाई तक ले जाने में जितना कार्य किया जाता है वह 981 अर्ग्स के बराबर होता है। एक करोड़ अर्ग (10^7 ergs) = एक जूल (one joule) होता है। सभी प्रकार की ऊर्जा को ऊष्मा ऊर्जा (heat energy) में परिवर्तित किया जा सकता है। ऊष्मा को कैलोरी (calories) में नापा जाता है।

कैलोरी: एक ग्राम पानी का तापमान 14.50 से 15.50 सैल्शियस बढ़ाने में जितनी ऊष्मा ऊर्जा खर्च होती है, उसे एक कैलोरी कहते हैं।

1 कैलोरी = 4.2 जूल (= 4.2 × 10^7 ergs)

1000 कैलोरी = 1 किलो कैलोरी (Kcal)

सूर्य के पृथ्वी तल पर पहुँचने वाली ऊर्जा की परिगति निम्न प्रकार है :–

सौर ऊर्जा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है :–

- सौर ऊर्जा का स्थानान्तरण विकिरण तरंगों (waves) के रूप में होता है।
- 1/50 दस लाख (millonth) भाग ही कुल विकिरण का पृथ्वी के वायुमंडल तक पहुंचता है।
- पृथ्वी तक पहुँचने वाली ऊर्जा दृश्य प्रकाश (visible light) (300–760nm) के रूप में व कुछ अवरक्त (infra-red) तरंगों के रूप में होती है।
- एक साफ दिन में सूर्य विकिरण ऊर्जा जो पृथ्वी की सतह पर पहुंचती है उसमें 10 प्रतिशत UV, 45 प्रतिशत दृश्य और 45 प्रतिशत अवरक्त (infra-red) होती है।
- हरे पौधे नीले (400–500nm) व लाल प्रकाश (600–700nm) में प्रकाश का अवशोषण करते हैं।

  पौधे दृश्य प्रकाश का हरा भाग (green light) सर्वाधिक परावर्तित करते हैं।

  पृथ्वी तल पर पहुँचने वाले प्रकाश (एक से पांच प्रतिशत) का 0.02 प्रतिशत भाग ही हरे पौधें प्रकाश संश्लेषण में उपयोग करते है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह दो महत्वपूर्ण ऊष्मा गतिकी के नियमों (Two laws of thermodynamics) द्वारा नियंत्रित होता है वे नियम है :–

1. **ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम (The first law of thermodynamics)** : इस नियम के अनुसार इस ब्रह्माण्ड (universe) में ऊर्जा की मात्रा स्थिर (constant) है। ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो सकती है लेकिन न तो यह उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है।

2. **ऊष्मागतिकी का द्वितीय नियम (The second law of thermodynamics)** : इस नियम के अनुसार ऊर्जा के एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन पर ऊर्जा का कुछ भाग अनुपयोगी व्यर्थ ऊष्मा के रूप में बदल जाता है। यह ऊष्मा ऊर्जा उपस्थित पर्यावरण में चली जाती है।

ऊर्जा प्रवाह का क्रम होता है :– स्वपोषीविषमपोषी उत्पादकउपभोक्ता उत्पादकशाकाहारीमांसाहारी।

इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम सौर ऊर्जा पर्णहरितयुक्त पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होती है। जब इन हरे पौधों को विषमपोषी खाते हैं तो कार्बोहाइड्रेट्स, वसा और

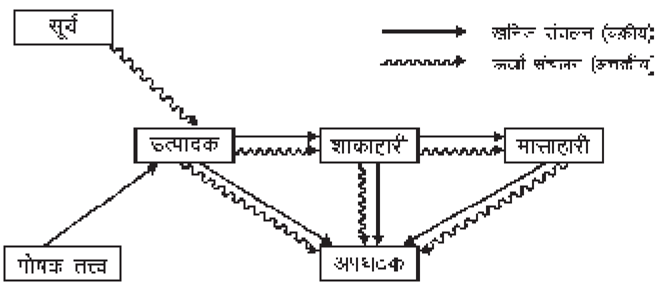

चित्र 3.8 : ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रण का आरेख

प्रोटीन्स में उपस्थित ऊर्जा इनके ऊत्तक निर्माण में काम आती है। ऊर्जा का कुछ भाग ऊष्मा के व्यर्थ रूप में बदल जाता है। यह प्रक्रिया प्रत्येक पोषण स्तर पर होती है। यह पूरी प्रक्रिया चित्र 3.8 में स्पष्ट की गई है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि :–

- ऊर्जा का प्रवाह स्वपोषी से विषमपोषी जीवों को होता है।
- इस एकदिशीय ऊर्जा प्रवाह से ही पारिस्थितिक तंत्र अपने आप में बना रहता है।
- प्रत्येक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर जब ऊर्जा का रूपान्तरण होता है तो कुछ ऊर्जा कार्बनिक पदार्थों (organic matter) में एकत्रित हो जाती है। अपघटकों द्वारा ये कार्बनिक पदार्थ जीवों की मृत्यु पश्चात् टूटते हैं। इस प्रक्रिया में स्वतंत्र हुए पदार्थ पुनः स्वपोषी पादपों को उपलब्ध होते हैं।
- तंत्र के तीन घटक क्रमशः उत्पादक, उपभोक्ता और अपघटक (सूक्ष्म उपभोक्ता) प्रकृति के तीन क्रियाशील जगत हैं जो तीन प्रकार के ऊर्जा स्त्रोतों पर निर्भर हैं। संतुलित दशा में प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में स्वनियंत्रित संरचनात्मक घटकों की उपस्थिति अनिवार्य है। ये घटक ही संतुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

जैव भू रासायनिक चक्र (Biogeochemical Cycles)

जीवों को ठीक प्रकार की वृद्धि और विकास के लिए लगभग 30 से 40 तत्वों (elements) की आवश्यकता होती है। इसमें कुछ हैं– कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, कैल्शियम, मैग्निशियम, जिंक एवं लोहा (C, H, O, N, P, K, S, Ca, Mg, Zn and Fe) इत्यादि। ये पदार्थ अजैविक से जैविक घटकों और पुनः अजैविक घटकों में एक चक्रीय रूप से चलते रहते हैं। इस चक्रीय रूप से विभिन्न प्रकार के तत्वों के चक्रण को जैवभूरासायनिक चक्र के नाम से पुकारते हैं। जैवभूरासायनिक चक्र निम्न प्रकार के होते हैं :–

(1) जलीय चक्र (Hydrological or water cycle) उदाहरण – जल चक्र

(2) गैसीय चक्र (Gaseous cycle) उदाहरण– (i) ऑक्सीजन चक्र (ii) कार्बन चक्र (iii) नाइट्रोजन चक्र।

(3) अवसादी चक्र (Sedimentary cycle) उदाहरण – (i) फॉस्फोरस चक्र (ii) गंधक चक्र।

पी.डी. शर्मा (2015–2016) के अनुसार इन चक्रों को नीचे दिए गये चार्ट के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

नाइट्रोजन चक्र (N_2–चक्र) (Nitrogen Cycle)

पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्वों में मृदा से प्राप्त तत्वों में नाइट्रोजन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यह सबसे अधिक मात्रा में आवश्यक होता है। नाइट्रोजन की आवश्यकता अमीनों, प्रोटीन, एन्जाइम्स, क्लोरोफिल व न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण में होती है। हरे पादप नाइट्रोजन को मृदा विलयन से अमोनियम, नाइट्रेट और नाइट्रेट आयनो के रूप में प्राप्त करते हैं। इन सभी योगिकों के लिए नाइट्रोजन वायुमण्डलीय नाइट्रोजन से प्राप्त होती है। कुछ प्रोकेरियोटिक जीवों (जैसे नील हरित शैवाल) को छोड़कर सभी जीवों को नाइट्रोजन प्रत्यक्ष रूप से सीधे ही नहीं मिलती है।

नाइट्रोजन चक्र के मुख्य चरण निम्न है :–

1. नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation)
2. नाइट्रोजन स्वांगीकरण (Nitrogen assimilation)
3. अमोनीकरण (Ammonification)
4. नाइट्रीकरण (Nitrification) और

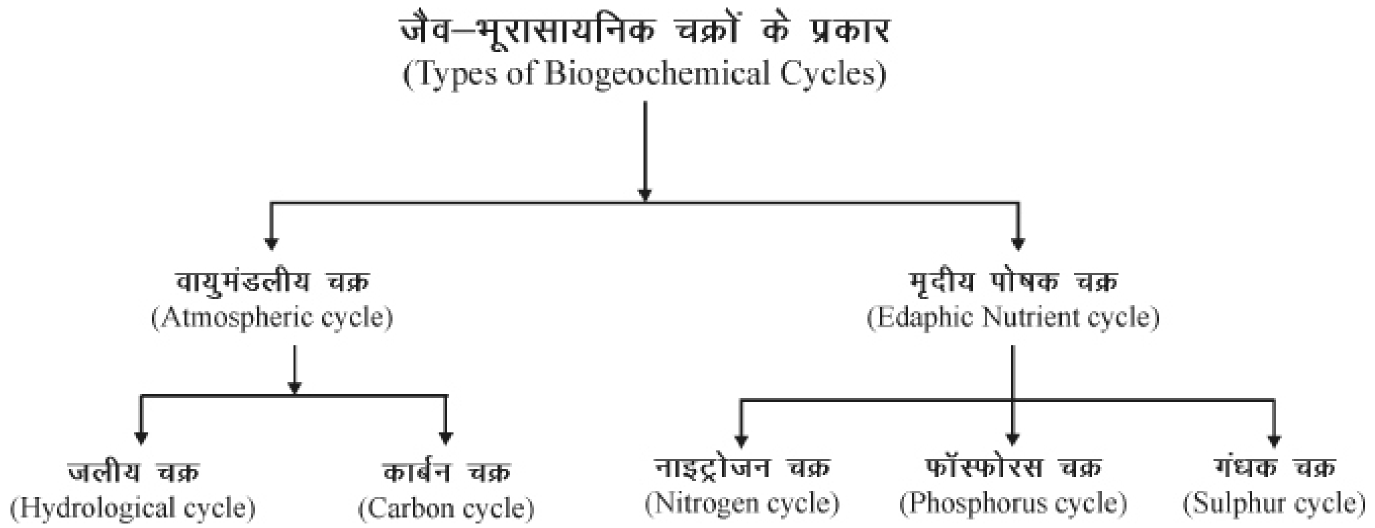

5. अवसादीकरण (Sedimentation)

(1) नाइट्रोजन स्थिरीकरणः वायुमंडल में उपस्थित स्वतंत्र नाइट्रोजन के नाइट्रीकारी यौगिकों में बदलने को नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। ऐसे यौगिकों को पौधे आसानी से अवशोषित कर, उपयोग में ला सकते हैं। यह प्रक्रिया दो प्रकार की होती हैः– (i) भौतिक रासायनिकी या अजैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण व (ii) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण।

(i) अजैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Non-biological N_2 fixation) : इस प्रक्रिया में वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन (N_2), आकाशीय विद्युतीकरण या बिजली की चमक से नाइट्रोजन के साथ क्रिया करके नाइट्रोजन ऑक्साइडस बनाती है।

विद्युत चमक

$$N_2 + (2O) \longrightarrow 2NO$$
$$2NO + (2O) \longrightarrow 2NO_2$$
$$2NO_2 + O \longrightarrow N_2O_2$$

(N_2 = Nitrogen)] (O_2 = Oxygen)

नाइट्रोजन के ऑक्साइड वर्षा के पानी में घुलकर पृथ्वी की सतह पर पहुँचते हैं जहां पर वे खनिजों (minerals) के साथ क्रिया कर नाइट्रेट व अन्य नाइट्रीकारी यौगिक बनाते हैं।

$N_2O_2 + H_2O \longrightarrow 2HNO_3$ (नाइट्रिक एसिड)

$2HNO_3 + CaCO_3 \longrightarrow Ca(NO_3)_2 + CO_2 + H_2O$
(कार्बनडाइऑक्साइड + पानी)

नाइट्रीकारी यौगिक पानी में घुलकर, मिट्टी में मिल जाते हैं, जहां से पौधे जड़ों द्वारा अवशोषित कर सकते हैं।

(ii) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Biological N_2 fixation) :

- नील हरित शैवाल (जैसे नॉस्टॉक, एनाबिना, स्पाइरूलिना) हवा में उपस्थित नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं।
- सहजीवी जीवाणु (जैसे : राइजोबियम), लेग्युमीनी (Leguminous) पादपों की जड़ों में नोडूल्यस (Nodules) में उपस्थित होते हैं जो हवा में उपस्थित नाइट्रोजन को नाइट्रेट्स के रूप में स्थिर करते हैं।
- कुछ स्वतंत्र जीवी जीवाणु (जैसे क्लोस्ट्रिडियम, एजोटोबेक्टर आदि) हवा में उपस्थित नाइट्रोजन को नाइट्रेटस् के रूप में स्थिर करते हैं।
- एक्टिनोमाइसिटीज (जैसे फ्रेन्किया) अलनस व केजुरिना वृक्षों की जड़ों में रहकर N_2 स्थिर करते हैं।
- इस विधि द्वारा 140–700 mg/m$_2$/year नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है जो N_2 स्थिरीकरण का प्रमुख स्त्रोत (major source) है।

(2) नाइट्रोजन स्वांगीकरण (Nitrogen assimilation) : हरे पादप नाइट्रेट्स, नाइट्राइट्स और अमोनिया को अवशोषित कर नाइट्रीकारी कार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित कर देते हैं। पौधे नाइट्रेटस से पहले अमोनिया बनाते हैं जो कार्बनिक अम्लों के साथ क्रिया कर अमीनो अम्लों (Amino acids) में परिवर्तित हो जाती है। अमीनो अम्लों के उपयोग से प्रोटीन, एन्जाइम, क्लोरोफिल व न्युक्लिक अम्लों का संश्लेषण होता है। जन्तु पशु (Animals) अपनी नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति पादपों से प्राप्त प्रोटीन्स से करते हैं।

(3) अमोनीकरण (Ammonification): मृत पादप व जन्तुओं के शरीर और अपशिष्ट (Excreta) पर कई सूक्ष्मजीव (जैसे बेसिलस बुल्गेरिस व बेसिलस रेमोसस जीवाणु) क्रिया कर अमोनिया स्वतंत्र करते हैं।

(4) नाइट्रीकरण (Nitrification): अमोनिया से नाइट्राइट व नाइट्राइट्स से नाइट्रेट बनने को नाइट्रीकरण कहते हैं। कुछ जीवाणु जैसे नाइट्रोमोनास, नाइट्रोकोकस व नाइट्रोस्पोरा इस क्रिया को पूरी करते हैं।

(i) $2NH_4 + 2O_2 \longrightarrow NO_2^- + 2H_2O$ + ऊर्जा
(अमोनिया) (नाइट्राइट)

(ii) $2NO_2^- + O_2 \longrightarrow 2NO_3^-$ + ऊर्जा
(नाइट्राइट) (नाइट्रेट)

(5) विनाइट्रीकरण (Denitrification) : अमोनिया और नाइट्रेट्स को स्वतंत्र नाइट्रोजन में परिवर्तित करने को विनाइट्रीकरण कहते हैं। यह क्रिया कुछ सूक्ष्मजीवों जैसे थायोबेसिलस डिनाइट्रीफिकेन्स, स्युडोमोनास एरिजिनोसा (विनाइट्रीकरण जीवाणु) द्वार सम्पन्न होती है।

$$2NO_3^- \longrightarrow 2NO_2^- \longrightarrow 2NO \longrightarrow N_2O \longrightarrow N_2$$

(6) अवसादीकरण (Sedimentation) : मृदा में उपस्थित नाइट्रेट्स पानी के साथ गहरे पृथ्वी तलों या समुद्र में चले जाते हैं, जहां वे चट्टानों के रूप में संग्रहित होते रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हवा से नाइट्रोजन पौधों, जन्तुओं व सूक्ष्मजीवों में स्थिर होती हैं औरा वापस स्वतंत्र होकर हवा में मिलती रहती है। यह चक्र निरंतर एक संतुलित (Balanced) रूप में चलता रहता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. वातावरण के जैविक व अजैविक घटकों के मध्य अन्तरसंबंध पारिस्थितिकी तंत्र कहलाता है।
2. वातावरण के अजैविक घटकों में कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ एवं भौतिक घटक सम्मिलित किये जाते हैं।
3. वातावरण के जैविक घटकों में उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक आते हैं।
4. जो सूर्य के प्रकाश में अपना भोजन निर्मित करते है, प्राथमिक

उत्पादक कहलाते हैं, जैसे पौधे।

5. ऐसे घटक जो अपने भोजन के लिए प्राथमिक उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं, उपभोक्ता कहलाते हैं।
6. वे जीव जो अपना भोजन हरे पौधों से प्राप्त करते हैं, शाकाहारी या प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं, उदाहरण बकरी, गाय, खरगोश आदि।
7. वे उपभोक्ता जो अपना भोजन प्राथमिक उपभोक्ताओं से प्राप्त करते हैं, द्वितीयक उपभोक्ता कहलाते हैं, उदाहरण सांप, मेंढक आदि।
8. वे उपभोक्ता जो द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ता का भक्षण करते हैं, वे तृतीय श्रेणी उपभोक्ता कहलाते हैं, उदाहरण चीता, शेर, बाज आदि।
9. पारिस्थितिक तंत्र में आवश्यक खनिज पदार्थों एवं गैसों का चक्रण जैव भू–रासायनिक चक्रण कहलाता है।
10. जलीय चक्र में जल, गैसीय चक्र में गैसों व अवसादी चक्र में खनिज तत्वों का चक्रण होता है।
11. उष्मागतिकी का प्रथम सिद्धांत ऊर्जा के संरक्षण का सिद्धांत है जिसके अनुसार ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है, न ही नष्ट किया जा सकता है।
12. उष्मागतिकी के द्वितीय नियम के अनुसार ऊर्जा के एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित होने पर ऊर्जा का ह्रास होता है जो उष्मा के रूप में वायुमण्डल में विकरित हो जाता है।
13. खाने व खाये जाने के शृंखला को खाद्य शृंखला कहते हैं। इसमें ऊर्जा का एकदिशीय प्रवाह होता है।
14. खाद्य शृंखला चारण, परजीवी व अपरद प्रकार की होती है।
15. खाद्य शृंखला के विभिन्न पोष स्तरों के मध्य पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्ध खाद्य जाल कहलाता है।
16. किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य शृंखला के विभिन्न पोष स्तरों के आलेखी निरूपण को पारिस्थितिक पिरामिड कहते हैं।
17. पारिस्थितिक पिरामिड जीवसंख्या, जीव भार एवं ऊर्जा का पिरामिड प्रकार का होता है जिसमें पोष स्तरों में जीवों की संख्या, जैवभार एवं ऊर्जा की उपस्थिति को आधार माना जाता है।
18. जीवसंख्या व जैवभार का पिरामिड सीधे या उल्टा हो सकता है लेकिन ऊर्जा का पिरामिड सदैव सीधा होता है।
19. वन पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक वृक्ष व उपभोक्ता हाथी, हिरण, गिलहरी, शेर, बाघ आदि पाये जाते हैं।
20. मरूस्थल पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक केक्टस, यूफोर्बिया, नागफणी, केर, खेजड़ी होते हैं जबकि उपभोक्ता भेड़, बकरी, ऊंट, सांप, छिपकली आदि होते हैं।
21. घास पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक विभिन्न प्रकार की घास एवं उपभोक्ता सांप, खरगोश, चूहा, चिड़िया, हिरण व बारहसिंघा होते हैं।
22. स्वच्छजलीय एवं समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक शैवाल, जलीय पादप व उपभोक्ता छोटी–बड़ी मछलियाँ, क्रस्टेशिया व मोलस्का के सदस्य होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिकी तंत्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया–
   (अ) हेकल (ब) टेन्सले
   (स) डाबनमेयर (द) राइटर
2. सूर्य के प्रकाश में भोजन बनाने वाले पौधे कहलाते हैं–
   (अ) प्राथमिक उत्पादक (ब) प्राथमिक उपभोक्ता
   (स) द्वितीयक उपभोक्ता (द) तृतीयक उपभोक्ता
3. अपघटक होते हैं–
   (अ) स्वपोषी (ब) परजीवी
   (स) मृतजीवी (द) उपरोक्त सभी
4. चारण खाद्य शृंखला है–
   (अ) घास टिड्डी पक्षी बाज
   (ब) टिड्डी पक्षी सांप बाज
   (स) चूहा सांप टिड्डी घास
   (द) केंचुआ सांप बाज
5. चारण खाद्य शृंखला का प्राथमिक उपभोक्ता होता है–
   (अ) शाकाहारी (ब) मांसाहारी
   (स) अपघटक (द) सर्वजीवी
6. विशाल वटवृक्ष के लिए संख्या का पिरामिड होता है–
   (अ) सीधा (ब) उल्टा
   (स) सीधा व उल्टा दोनों (द) अनुपस्थित
7. स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में जीवभार का पिरामिड होता है–
   (अ) सीधा (ब) उल्टा
   (स) अनुपस्थित (द) सीधा व उल्टा दोनों
8. अपरद खाद्य शृंखला किससे शुरू होती है–
   (अ) घास (ब) पौधों
   (स) अपरद (द) परजीवी
9. अपरद खाद्य शृंखला है–
   (अ) घास टिड्डी पक्षी बाज
   (ब) मृत कार्बनिक पदार्थ केंचुआ मेंढक सर्प
   (स) हरित वृक्ष पक्षी परजीवी
   (द) केंचुआ मेंढक सर्प चिड़िया
10. ऊर्जा का पिरामिड होता है–
    (अ) सीधा (ब) उल्टा
    (स) सीधा या उल्टा (द) अनुपस्थित
11. खाद्य जाल में ऊर्जा का स्थानान्तरण मार्ग होता है–

(अ) एकदिशीय (ब) द्विदिशीय
(स) बहुदिशीय (द) दिशाहीन

12. मरूस्थल में वार्षिक वर्षा होती है–
(अ) 25 सेमी से कम (ब) 25–50 सेमी
(स) 50–75 सेमी (द) 100 सेमी से अधिक

13. घास पारिस्थितिकी स्थल में प्राथमिक उपभोक्ता है–
(अ) सांप (ब) चिड़िया
(स) बकरी (द) लोमड़ी

14. निम्न में से स्वतंत्र तैरने वाला पौधा है–
(अ) वेलीसनेरिया (ब) कमल
(स) हाइड्रिला (द) एजोला

15. राजस्थान के मरूस्थल का मुख्य वृक्ष है–
(अ) आक (ब) बबूल
(स) कत्था (द) खेजड़ी

16. विशाल वृक्ष के पारिस्थितिकी तंत्र में जैव भार का पिरामिड होता है–
(अ) सीधा (ब) उल्टा
(स) सीधा व उल्टा दोनों (द) अनुपस्थित

17. भू जैव रासायनिक चक्रों में भाग लेते हैं–
(अ) अजैविक घटक
(ब) जैविक घटक
(स) दोनों अजैविक व जैविक घटक
(द) इनमें से कोई नहीं

18. नीली व्हेल समुद्र के किस क्षेत्र में मिलती है–
(अ) नितस्थल (ब) वेलापवर्ती
(स) नेरिटाचंली (द) वेलांचली

19. नेरिटाचंली क्षेत्र की गहराई कितनी होती है–
(अ) 200 मीटर (ब) 100 मीटर
(स) 50 मीटर (द) 10 मीटर

20. जलाशयों के किनारे जलाक्रांत मृदा में पाये जाते हैं–
(अ) ट्रापा (ब) टाइफा (स) कारा (द) वुल्फिया

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा दीजिए।
2. पारिस्थितिकी तंत्र के घटक कौन–कौनसे है?
3. उत्पादक क्या है?
4. उपभोक्ता कितने प्रकार के होते हैं?
5. अपघटक किसे कहते हैं?
6. खाद्य श्रृंखला क्या है?
7. खाद्य जाल किसे कहते हैं?
8. चारण खाद्य श्रृंखला किसे कहते हैं?
9. अपरद खाद्य श्रृंखला में कौन–कौनसे पोष स्तर होते हैं?
10. परजीवी खाद्य श्रृंखला को परिभाषित कीजिए।
11. पारिस्थितिकी स्तूप क्या है?
12. अप्रवाही शस्य किसे कहते हैं?
13. पोषण स्तर क्या है?
14. जीव संख्या का पिरामिड किसे कहते हैं?
15. जैव भार के पिरामिड से क्या तात्पर्य है?
16. शीर्ष मांसाहारी क्या है?
17. उष्मागतिकी का प्रथम नियम क्या है?
18. मेन्ग्रोव वनस्पति क्या है?
19. उष्मागतिकी के दूसरे नियम को स्पष्ट कीजिए।
20. स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र कितने प्रकार का होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. खाद्य श्रृंखला क्या है?इसके विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
2. पारिस्थितिकी स्तूप क्या है?इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. जैव भू–रासायनिक चक्र क्या है?नाइट्रोजन चक्र का वर्णन कीजिए।
4. चारागाह पारिस्थितिक तंत्र पर टिप्पणी लिखिए।
5. वन पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न घटकों पर प्रकाश डालिए।
6. मरूस्थल पारिस्थितिकी तंत्र के अजैविक व जैविक घटक कौन–कौनसे हैं?समझाइए।
7. पारिस्थितिक तंत्र क्या है?इसके जैविक घटकों को समझाइए।
8. अवसादी चक्र क्या है?फास्फोरस चक्र को विस्तार से समझाइए।
9. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र क्या है?स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र पर टिप्पणी लिखिए।
10. समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न घटकों पर विस्तार से लेख लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र की संरचना क्या होती है?आप द्वारा अध्ययन किये गये किसी एक पारिस्थितिकी तंत्र को विस्तार से समझाइए।
2. पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह के नियमों का वर्णन करते हुए उसकी ऊर्जिकी को समझाइए।
3. खाद्य श्रृंखला व खाद्य जाल में क्या अन्तर है?विभिन्न प्रकार की खाद्य श्रृंखलाओं का वर्णन कीजिए।
4. एक पारिस्थितिकी तंत्र के भू जैव रासायनिक चक्रों का वर्णन कीजिए।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–
(अ) वन पारिस्थितिकी तंत्र (ब) चारागाह पारिस्थितिकी तंत्र
(स) मरूस्थल पारिस्थितिकी तंत्र

उत्तरमाला: 1 (ब) 2 (अ) 3 (स) 4 (अ) 5 (अ)
6 (ब) 7 (ब) 8 (स) 9 (स) 10 (अ)
11 (स) 12 (अ) 13 (स) 14 (द) 15 (द)
16 (अ) 17 (स) 18 (ब) 19 (अ) 20 (ब)

इकाई – 4
जैवविविधता एवं वन्य जीवन
(Biodiversity and Wild Life)

परिचय (Introduction)

जैवविविधता में जैव का अर्थ जीव से है तथा विविधता का अर्थ है भूमण्डल, जलमण्डल, तथा वायुमण्डल में पाई जाने वाली जीवों की विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों की विविधता। प्रकृति में विशाल जैवविविधता पायी जाती है, जिसमें एक सूक्ष्म प्लवक से लेकर विशाल जीव तथा सूक्ष्म लाइकेन से विशाल रेडवुड तक वृक्ष मिलते हैं। जैवविविधता एवं उनका संरक्षण मानव जाति के लिए अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मानव इनसे प्राप्त होने वाले भोजन, दवाइयाँ, आदि पर आश्रित रहता है। यहाँ तक की सूक्ष्मजीवों तक का अस्तित्व भी हमारे लिए एवं सम्पूर्ण जीव जगत के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। सम्पूर्ण जैवमण्डल के क्रियाकलाप अस्तित्व एवं स्थायित्व इन्हीं वृहद् विभिन्नताओं (variabilities) के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित होता है। जीवन रूपों (Life forms) की इन्हीं वृहद् एवं विशाल विविधताओं को वैज्ञानिक रूप में ''जैवविविधता'' कहा जाता है। सामान्य अर्थों में सम्पूर्ण जैवमण्डल (Biosphere) में उपस्थित जीवों की भिन्न–भिन्न प्रजातियों एवं उपप्रजातियों में उपस्थित विविधता को ''जैवविविधता'' का नाम दिया गया है। सम्पूर्ण भूमण्डल पर पाई जाने वाली प्रजातियों का विवरण विलसन (Wilson, 1988) के अनुसार तालिका 4.1 में दिया गया है।

जैवविविधता के प्रकार

1. **आनुवांशिक जैवविविधता (Genetic Biodiversity)**
2. **प्रजातीय जैवविविधता (Species Biodiversity)**
3. **पारिस्थतिकी जैवविविधता (Ecosystem Biodiversity)**

जैवविविधता के प्रकार (Types of Biodiversity)

जीवों की प्रकृति के आधार पर जैवविविधता को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता हैं –

तालिका 4.1: भूमण्डल पर पाई जाने वाली ज्ञात प्रजातियों की संख्या

जीव जगत	ज्ञात प्रजातियाँ
विषाणु (Virus)	1,000
मोनेरा (Monera)	4,700
कवक (Fungi)	46,983
शैवाल (Algae)	26,900
पादप जगत (Plantae)	2,48,428
प्रोटोजोआ (Protozoa)	30,800
प्राणी जगत (Animalia)	9,89,761
कशेरूकी (Chordata)	43,853
कुल	1,392,425

I- आनुवंशिक जैव विविधता (Genetic Biodiversity)

एक ही प्रजाति में मिलने वाले जीनों की विभिन्नता को 'आनुवांशिक विविधता' कहा जाता है। आनुवांशिक जैवविविधता को दो रूपों में देखा जा सकता है–

;i) एक ही प्रजाति की भिन्न–भिन्न समष्टियों (Population) में– जैसे भारत में धान की हजारों किस्में।

(ii) एक ही समष्टि की आनुवांशिक विभिन्नताओं में – जैसे दो व्यक्तियों के गुण, रूप इत्यादि एक जैसे नहीं होते हैं।

प्रत्येक जीव के विशिष्ट गुणों का निर्धारण उसकी कोशिका में उपस्थित विशेष जीन (Genes) द्वारा होता है। अर्थात् जिस जीव में जीनों की विभिन्नता जितनी अधिक होगी उसमें व उसकी सन्तान (Progeny) में विशिष्ट गुणों की संख्या उतनी ही अधिक होगी।

II- प्रजातीय जैवविविधता (Species Biodiversity)

पारिस्थितिकी तंत्र या समुदाय विशेष में पाई जाने वाली उपजातियों का अध्ययन प्रजातीय जैवविविधता कहलाती है। इनमें अपने–अपने वातावरण के अनुकूल जीवित रहने की क्षमता होती है।

किसी क्षेत्र विशेष में मिलने वाली प्रजातियों की विभिन्नता को 'प्रजातीय जैवविविधता' कहा जाता है। प्रजातीय जैवविविधता को तीन स्तर पर पारिभाषित किया जा सकता है–

(i) अल्फा विविधता (Alpha Diversity): अल्फा विविधता क्षेत्र विशेष में प्रजातीय समानता (Species Evenness) एवं प्रजाति सम्पन्नता (Species richness) पर निर्भर करती है।

(ii) बीटा विविधता (Beta Diversity): इकाई आवास में हुए परिवर्तन के फलस्वरूप प्रजाति संख्या में होने वाले परिवर्तन की दर को बीटा विविधता (Beta diversity) कहा जाता है। आवासीय विविधता के साथ बीटा विविधता बढ़ती है।

(iii) गामा विविधता (Gama Diversity): यह सार्वभौमिक विविधता है।

III- पारिस्थितिकी तंत्र जैवविविधता

(Ecosystem Biodiversity)

समष्टि (Population), समुदाय (Community) उनकी आपसी अन्तर्सबन्धों की जटिलता जैसे पोषण सम्बन्ध (Trophic Relations), पोषक तत्त्वों का चक्रण (Nutrient Cycling) आदि की विभिन्नताओं को 'पारिस्थितिकी तंत्र जैवविविधता' कहा जाता हैं।

जैवविविधता के उपयोग (Uses of Biodiversity)

मनुष्य अपने भोजन, निवास, कपड़े, दवाइयों इत्यादि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जैवविविधता पर आश्रित है। हमारी सांस्कृतिक विविधता यहाँ तक कि हमारे बौद्धिक व धार्मिक ज्ञान की प्रेरणा भी जैवविविधता पर निर्भर है। निःसन्देह जैव विविधता मानव जीवन का आधार है।

जैवविविधता के महत्त्व (चित्र 5.1) को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं–

I. उपभोगात्मक उपयोग (Consumptive Use)

प्रकृति में पाये जाने वाले जीव एवं वनस्पति हमारे लिए अनेक

चित्र : 5.1 जैवविविधता के विभिन्न उपयोग

प्रकार से लाभदायक हैं। प्रागैतिहासिक काल से मानव जैवविविधता का दोहन करता आया है अतः अनेक प्रजातियाँ तो मानव की पहचान से पूर्व ही विलुप्त हो चुकी है। जैवविविधता हमारे लिए खाद्य पदार्थों एवं दवाईयों, सौन्दर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ–साथ पारिस्थितिकी दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

जैव विविधता उपभोगात्मक रूपों में निम्नांकित प्रकार से महत्त्वपूर्ण है।

1. भोजन

हमारे भोजन का समस्त भाग जीव जगत से ही प्राप्त होता है। जंगली पौधों की अनेक प्रजातियाँ मानव भोजन के रूप में मुख्य योगदान देती हैं।

(i) खाद्य पदार्थः मनुष्य अपनी भोजन पूर्ति हेतु विभिन्न वनस्पतियों व जन्तुओं पर निर्भर है। कुल 3,50,000 वनस्पति प्रजातियों में से लगभग 3,000 प्रजातियां भोजन प्राप्ति के उद्देश्य से उगाई जाती हैं, इनमें से केवल 100 प्रजातियों का वृहद् स्तर पर उपयोग होता है। सम्पूर्ण विश्व की भोजन आपूर्ति मुख्य रूप से 20 फसलों पर निर्भर है। ये निम्नलिखित हैं–

1.	गेहूं	11.	चावल
2.	मक्का	12.	आलू
3.	जौ	13.	शकरकन्द
4.	कसावा	14.	सोयाबीन

5.	जवी	15.	ज्वार
6.	बाजरा	16.	गन्ना
7.	चुकन्दर	17.	राई
8.	मूंगफली	18.	फिल्डबीन्स
9.	चिकबीन्स	19.	अरहर
10.	केला	20.	नारियल

आम, नाशपाती, अमरूद, नींबू, केला, शरीफा, बेर, अंजीर, पपीता, चीकू, अनार, अन्नानास, बेल, सेव, सन्तरा, अंगूर, तरबूज, खरबूजा आदि मनुष्य के लिये महत्त्वपूर्ण फलदार पादप हैं।

मटर, मूंग, सेम, टमाटर, बैंगन, गोभी, भिण्डी, प्याज, मूली, गाजर, मिर्च आदि मुख्य भोजनोपयोगी फसलें हैं।

(ii) पेय पदार्थ – चाय, कॉफी, कोका आदि पेय वनस्पति प्रजातियों से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अंगूर, महुआ, जौ, काजू, सेव आदि एल्कोहल युक्त पेय बनाने में प्रयुक्त होते हैं।

(iii) मसाले – अनेक पादप प्रजातियाँ जैसे धनिया, मेथी, हींग, अदरक, हल्दी, दालचीनी, लौंग, केसर, लाल मिर्च, काली मिर्च, सौंफ, जीरा, अजवायन, सोया, इलायची, राई, जावित्री, तेजपता, पुदीना आदि को पूरे विश्व में मसालों के रूप में उपयोग किये जाते हैं।

(iv) चबाने योग्य पदार्थ – तम्बाकू, सुपारी, पान, कोला, नट्स आदि चबाने योग्य पदार्थ वनस्पति प्रजातियों से प्राप्त होते हैं।

अनेक शाकाहारी जन्तु प्रजतियां जैसे – गाय, भैंस, बकरी आदि को दुग्ध उत्पादन हेतु उपयोग में लिया जाता हैं। इसी प्रकार मछलियां, मुर्गियां इत्यादि खाद्य आपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. औषधियाँ

जीव जगत से हमें अनेक महत्त्वपूर्ण औषधियाँ प्राप्त होती है। वर्तमान में उपयोग में आने वाली दवाईयों का 50 प्रतिशत योगदान प्राकृतिक उत्पादों का हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने औषधियों व दवाइयों के मूल्यों का आकलन कर बताया कि है कि तीसरी दुनिया से प्रतिवर्ष 30 बिलियन अमेरिकन डॉलर मूल्य के पादप, जन्तु तथा सूक्ष्मजीव दवाईयों के निर्माण के लिए उपयोग किये जाते हैं। मेडागास्कर पेरिविंकल (*Medagaskar periwinkle*) एवं कैथरेन्थस रोजीयस (*Catharanthus roseus*) नामक पौधों से क्रमशः विनब्लास्टीन एवं विन्क्रिस्टीन नामक कैंसर रोधी एल्केलॉइड प्राप्त किये जाते हैं।

प्राकृतिक औषधियों के उत्पादन स्त्रोत एवं उपयोग निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं–

तालिका 4.2: प्राकृतिक औषधियों के उत्पाद, स्रोत एवं उपयोग

उत्पाद	स्त्रोत	उपयोग
पेनीसीलिन	कवक	प्रतिजैविक
बेसीट्रासीन	बैक्टीरिया	प्रतिजैविक
टेट्रासायक्लीन	बैक्टीरिया	प्रतिजैविक
एरिथ्रोमाइसीन	बैक्टीरिया	प्रतिजैविक
डिजिटेलिन	पादप	हृदय उत्तेजक
कुनैन सिनकोना	पादप	मलेरिया
डायोस्गेनिन	मेक्सिकन याम	जन्मदर नियन्त्रण
कोर्टाइसन	मेक्सिकन याम	एण्टी इन्फ्लामेशन
साइटरेबिन	स्पोंज	ल्यूकेमिया
विनब्लास्टीन एवं विन्क्रिस्टीन	परविकंल प्लांट	एण्टी कैंसर

इसी प्रकार प्रमुख औषधीय उपयोग की पादप प्रजातियों को तालिका 4.3 में दिखाया गया हैं।

II. उत्पादनात्मक उपयोग (Productive Use)

विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं प्राणियों से अनेक प्रकार के मानवोपयोगी उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं। जिनमें से महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं–

(i) आवासीय निर्माण, कृषि, रेल्वे मार्ग के निर्माण व अन्य उपयोग हेतु इमारती लकड़ियां बबूल (*Acacia nilotica*), शीशम (*Dalbergia sissoo*), सागवान (*Tectona grandis*), साल (*Shorea robusta*), देवदार (*Cedrus deodara*), चीड़ (*Pinus roxburghii*) आदि पादप प्रजातियों से प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त, मनुष्य खिलौनों से लेकर अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों व खेल सामग्रियों के लिए वृक्षों की लकड़ियों का उपयोग करता है।

(ii) अनेक प्रकार के मानवोपयोगी रंजक (Dyes) उत्पादक पादप प्रजातियाँ जैसे नील (*Indigofera tinctoria*), मेहन्दी (*Lawsonia inermis*), कुसुम (*Carthamus tinctorius*), केसर (*Crocus sativus*), सिन्दूरी (*Annato orellana*), खैर (*Acacia catechu*) आदि बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

(iii) बांस की अनेक प्रजातियों को कागज निर्माण हेतु उपयोग में लिया जाता है।

(iv) कपड़ा उद्योग में कपास (*Gossypium hirsutum*), रेशम आदि महत्त्वपूर्ण हैं। दैनिक जीवन में उपयोग हेतु अनेक प्रकार के रेशे अलसी (*Linum utatissimum*), जूट (*Corchorus capsularis*), सन (*Crotolaria juncea*) से मिलते हैं।

(v) इसके अतिरिक्त रबर, विभिन्न प्रकार के तेल व तेल

तालिका 4.3 : औषधीय उपयोग की कुछ महत्त्वपूर्ण पादप प्रजातियां

पादप प्रजाति	रोग	उपयोगी पादप भाग
मुलहटी (*Glycyrrhiza glabra*)	कफ व अस्थमा	जड़
सर्पगन्धा (*Rauvolfia serpentina*)	उच्च रक्तचाप	जड़
मन्जिष्ठा (*Rubia cardifolia*)	पीलिया, लकवा	जड़
अश्वगंधा (*Withania somnifera*)	टानिक, गठिया, जोड़ों का दर्द	जड़
हींग (*Ferula asafoetida*)	पाचन सम्बन्धी बीमारियां, कफ, अस्थमा आदि	जड़
हल्दी (*Curcuma longa*)	डायरिया, बुखार, चोट, टानिक	भूमिगत तना
आमा हल्दी (*Curcuma amada*)	मोच	भूमिगत तना
प्याज (*Allium cepa*)	कफ, पीलिया, पाइल्स आदि	भूमिगत तना
लहसुन (*Allium sativum*)	कफ, बुखार, कान दर्द तथा तंत्रिका व श्वसन तंत्र सम्बन्धी बीमारियां	भूमिगत तना
अदरक (*Zingiber officinale*)	गठिया, पाइल्स, कफ, अस्थमा	भूमिगत तना
कुनैन (*Cinchona calilsaya*)	मलेरिया	छाल
अर्जुन (*Terminalia arjuna*)	ह्रदय की बीमारियां	छाल
चन्दन (*Santalum album*)	दर्द निवारक, ह्रदय की बीमारियां, गोनोरिया आदि	तना
खैर (*Acacia catechu*)	डायरिया, पेचिस, पाईल्स, ल्यूकोरिया	तना
अडुसी (*Adhatoda vasica*)	डायरिया, पेचिस, जोड़ों का दर्द, चर्मरोग	पत्ती
ब्राह्मी (*Centella asiatica*)	टानिक, चर्मरोग, अल्सर, कोलरा, पीलिया आदि	पत्ती
बेल (*Aegle marmelos*)	डायरिया, पेचिस व पाचन सम्बन्धी बीमारियां	फल
अफीम (*Papaver somniferum*)	गठिया, आंख की बीमारियां, अल्सर, पेचिस, टिटनस आदि	फल
बहेड़ा (*Terminalia bellerica*)	सरदर्द, डायरिया, पाइल्स, ड्राप्सी आदि	फल
करंज (*Pongamia pinnata*)	चर्मरोग व गठिया	बीज

उत्पाद, स्टार्च रेजिन इत्यादि के उत्पादन हेतु विभिन्न प्रकार की वनस्पति प्रजातियों का उपयोग किया जाता हैं।

सूक्ष्मजीवों (Microoganisms), जैसे जीवाणुओं व फफूंदी की अनेक प्रजातियां, विभिन्न औषधियों, भोज्य पदार्थ, रसायन इत्यादि के उत्पादन में प्रयोग में ली जाती हैं। जन्तुओं की अनेक प्रजातियां चर्म उद्योग, औषधियां व अन्य मानवोपयोगी उत्पाद हेतु उपयोग में लायी जाती हैं।

III. पारिस्थितिकीय उपयोग (Ecological Use)

तकनीकी विकास के कारण पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। पर्यावरण में रहने वाले विभिन्न जीव पारिस्थितिकीय दृष्टि से मानव जीवन को सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। मृदा निर्माण, अपशिष्ट निस्तारण, वायु एवं जल शुद्धिकरण, पोषक तत्वों का चक्रीकरण, सौर ऊर्जा का अवशोषण एवं जैव–भूरासायनिक व जलीय चक्रों का प्रबन्धन इत्यादि सभी जैवविविधता पर निर्भर करते हैं। इन सभी सेवाओं का प्रतिवर्ष का पारिस्थितिकीय मूल्य लगभग 33 ट्रिलियन अमेरिकन डॉलर आंका गया है।

IV. सौन्दर्यात्मक उपयोग (Aesthetic Use)

पृथ्वी पर जैवविविधता हमारे लिए सौन्दर्यात्मक महत्त्व रखती है। सघन वन, जीवजन्तु, कोरल रीफ इत्यादि प्राकृतिक सुन्दरता द्वारा विश्व स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा मिलता है, जो वर्तमान समय में महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्रोत है। वन्य जीवों को उनके प्राकृतिक आवासों में विचरण करते देखना इकोटूरिज्म (Ecotourism) कहलाता है, जो आधुनिक टूरिज्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

अनेक प्रकार के पक्षी, बड़े स्तनधारी कई समुद्री जीव एवं पुष्पी पादपों की सुन्दरता हमें आकर्षित करती हैं। सालों पुराने जीव–जन्तुओं की चित्रकारिता मानव सभ्यता में जैवविविधता के महत्त्व को प्रकट करती है। ऐतिहासिक कृतियां, साहित्य,

आधुनिक उपन्यास, सिनेमा जगत, टी.वी. पर प्रस्तुत कार्यक्रम आदि जैवविविधता के सौन्दर्यात्मक महत्त्व का प्रकटीकरण है। ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि जैव विविधता अपने सौन्दर्यात्मक स्वरूप में मानव जीवन में खुशहाली ही नहीं लाती वरन् यह एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्त्रोत भी है।

V. नैतिक उपयोग (Ethical Use)

वर्ष 1982 में संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा (U.N. General Assembly World Charter on Nature) में यह घोषणा की गयी कि ''हर प्रजाति को स्वतंत्र रूप से जीने का नैतिक अधिकार है।'' नैतिक उपयोग का आधार हमारे धर्म, हमारी सभ्यता एवं समाज से जुड़ा है।

VI. सामाजिक उपयोग (Social Use)

आज भी विश्व में कई ऐसे विकासशील देश हैं जहां जनजातियों का आवास, भोजन परम्परा, औषधियां, आर्थिक विकास, सामाजिक व धार्मिक उत्सव पूर्णतया वनस्पतियों एवं वन्य जीवों पर ही निर्भर हैं।

अनेक जन्तु एवं वनस्पति प्रजातियों या उनके उत्पादों का उपयोग पारिवारिक सामाजिक समारोहों एवं धार्मिक उत्सवों आदि पर किया जाता है।

हमारे यहाँ सामाजिक समारोहों, उत्सवों, स्वागत कार्य, पूजा, यज्ञ आदि में गेंदे, गुलाब, कमल, ग्लैडियोलस आदि के फूलों का उपयोग किया जाता है।

तुलसी, पीपल, केला, नीम, खेजड़ी, बेल आदि धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण पादप हैं जिनकी या तो पूजा की जाती है या उनके विभिन्न भाग (पत्ते, फल, लकड़ी आदि) पूजा, यज्ञ आदि में उपयोग में लाये जाते हैं। विवाह, यज्ञ आदि समारोहों में आम, अशोक आदि के पत्तों की बान्दनवार बनायी जाती है। मानव संस्कृतियों का विकास अपने पर्यावरण के साथ–साथ हुआ हैं जिससे जैवविविधता, विविध समुदायों को एक अलग पहचान प्रदान करती है। प्राकृतिक वातावरण सभी संस्कृतियों–समुदायों के लोगों की आध्यात्मिक, शैक्षिक एवं सौन्दर्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

VII. शिक्षा एवं अनुसंधान (Education and Research)

जैविक संसाधनों का समुचित उपयोग, जैविक संसाधनों का आनुवांशिक आधार को बनाए रखना एवं विकृत पारितंत्रों का पुर्नवास हेतु अभी भी अनेक अनुसंधानों एवं अध्ययन की आवश्यकता हैं। जैवविविधता के प्राकृतिक क्षेत्र इस प्रकार के अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए उत्कृष्ट जीवित प्रयोगशाला उपलब्ध कराते हैं।

जैवविविधता की पारिस्थितिकी सेवाएं (Ecological Services of Biodiversity)

जीवधारियों की विविधता अनेक प्रकार की पारिस्थितिकी सेवाएं निःशुल्क उपलब्ध कराती है, जो कि पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। अर्थात जैवविविधता पारितंत्र सहित व्यष्टि प्रजाति से वस्तुओं एवं सेवाओं के रख–रखाव व सतत् पोषणीय उपयोग हेतु अति आवश्यक है। महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकी सेवाएं निम्नलिखित प्रकार से हैं–

I- जलवायु स्थिरता

वनस्पति सूक्ष्म एवं वृहत स्तर पर जलवायु को प्रभावित करती है। बढ़ते हुए प्रमाण यह बताते हैं कि सघन वन जल–वाष्प को एक स्थिर दर से पुर्नचक्रण करके आस–पास के क्षेत्रों में वर्षा को बनाए रखने में सहायता करते हैं। वनस्पति सूक्ष्मजलवायु पर भी मन्द प्रभाव डालती है। वनस्पति का शीतलन प्रभाव एक सामान्य अनुभव है जो जीवन को आरामदायक बनाता है। कुछ जीव अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए इस प्रकार की सूक्ष्म जलवायु पर निर्भर रहते हैं।

II- पारिस्थितकीय प्रक्रियाओं का रख–रखाव

पक्षियों एवं परभक्षियों की विभिन्न स्पीशीज कीट पीड़कों को नियंत्रित करने में सहायता करती है, पर इस प्रकार नियंत्रण उपायों की आवश्यकता एवं लागत को कम करती हैं। पक्षी एवं मकरंद प्रिय कीट जो कि प्राकृतिक पर्यावासों में बसेरा एवं जनन करते हैं, फसल एवं जंगली पादपों के लिए महत्वपूर्ण परागण कराने वाले कारक हैं। कुछ प्राकृतिक पर्यावास मेंग्रोव एवं आर्द्रभूमियों में वन्यजीवों की आबादी के अत्यन्त महत्वपूर्ण चरणों जैसे अण्डे देने की जगहों को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

III- प्रदूषण में कमी

पारितंत्र एवं पारिस्थितिकीय प्रक्रियाएं वायुमंडल के गैसीय संगठन को बनाए रखने, अपशिष्ट पदार्थों के अपघटन एवं प्रदूषकों के निष्कासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ पारितंत्रों विशेषकर आर्द्रभूमियों में प्रदूषकों के अपघटन एवं उन्हें अवशोषित करने की क्षमता होती है। प्राकृतिक एवं कृत्रिम आर्द्रभूमियों का उपयोग बर्हिःस्त्रावों से पोषकों, भारी धातुओं, निलंबित ठोसों को पृथक करने, BOD को कम करने एवं हानिकारक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करने के लिए किया जा रहा है। यद्यपि प्रदूषकों की अधिक मात्रा पारितंत्र एवं उनके जीवजात् (पादप एवं प्राणी) की अखंडता के लिए हानिकारक हो सकती है।

IV- मृदा संरक्षण

जैविक विविधता मृदा के संरक्षण तथा नमी एवं पोषकों को बनाए रखने में सहायता करती है। वनस्पति ढ़के हुए विशाल क्षेत्रों

को वनस्पतिहीन करने के कारण प्रायः मृदा अपरदन में तेजी आने लगती है। उत्पादकता में कमी हो जाती है तथा आकस्मिक बाढ़ जैसी घटनाएं घटने लगती है। जड़–तंत्र जल को उपमृदा तक पहुंचाने में सहायता करता है। जड़–तंत्र पोषक पदार्थों को जमीन के ऊपर तक पहुँचाकर खनिज पोषकों को सतह तक भी लाता है।

V- पोषकों का संग्रहण एवं चक्रण

पारितंत्र वायुमण्डल एवं मृदा में पाये जाने वाले पोषकों के पुनःचक्रण का महत्त्वपूर्ण जैविक कार्य करता है। पादप पोषकों को ग्रहण करने में सक्षम होते हैं तथा ये पोषक खाद्य श्रृंखलाओं के आधार की रचना कर सकते हैं, जिन्हें विभिन्न प्रकार के जीवों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। मृदा में पोषक पदार्थ फिर से आ जाते हैं। यह मृत अथवा अपशिष्ट पदार्थों को सूक्ष्म जीवों द्वारा रूपांतरित कर किया जाता है। इसके पश्चात् इन पदार्थों को केंचुए जैसे अन्य प्राणियों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है जो मृदा को मिश्रित एवं वायवीय बनाते है तथा पोषकों की सहज उपलब्धता को सुनिश्चित करते हैं।

VI- जल संसाधनों का संरक्षण

प्राकृतिक वनस्पति आच्छादन की सहायता से जल चक्रों को बनाए रखने के साथ बाढ़ एवं अनावृष्टि अकाल जैसी चरम परिस्थितियों के विरुद्ध बफर के तौर पर तथा अपवाह के नियमन एवं स्थायीकरण में सहायक होता है। वनस्पति के हट जाने के कारण बांधों एवं जलमार्गों में गाद इकट्ठी हो जाती है। आर्द्र भूमि तथा वन जल परिष्कृत तंत्रों के रूप में कार्य करते हैं। जबकि मेंग्रोव पादप गाद को रोक कर समुद्री पारितंत्रों पर इसके प्रभाव को कम करते हैं।

जैवविविधता द्वारा उपलब्ध पारिस्थितिकी के अभाव में शुद्ध वायु, भोजन, इत्यादि मानवोपयोगी सामग्री की प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकेगी तथा सम्पूर्ण जैवमण्डल अपशिष्ट पदार्थों के ढ़ेर में ढ़क जायेगा।

जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र (Hot Spots of Biodiversity)

हॉट स्पॉट्स या जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्रों से तात्पर्य विश्व के ऐसे स्थानों से है, जहाँ पर जैव जातियों की अत्यधिक बहुतायत, क्षेत्रविशेषी जातियों की अधिकता तथा जैव जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर बढ़ता हुआ संकट विद्यमान होता है। सम्पूर्ण विश्व में ऐसे 34 हॉट स्पॉट्स हैं।

ब्रिटिश पारिस्थितिकीविद् नार्मन मायर्स (Norman Mayers ने जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र (Hot Spots of Biodiversity) की अवधारणा को यथास्थान संरक्षण (Insitu conservation) हेतु क्षेत्रों को नामित करने के उद्देश्य से 1988 में प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार संवेदशनील क्षेत्र पृथ्वी पर जैवविविधता के सबसे समर्थ परन्तु संकटापन्न स्थान हैं। संवेदनशील क्षेत्र निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित मानदण्ड है–

(अ) इस क्षेत्र विशेष में 1500 से अधिक स्थानिक प्रजातियाँ होनी चाहिए।

(ब) इस क्षेत्र का 70 प्रतिशत से अधिक मूल प्रवास नष्ट हो चुका हो।

विश्व में अध्ययन जानकारी के अनुसार 34 जैवविविधता संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान की गई है।

तालिका 4.4 में विश्व के 34 संवेदनशील क्षेत्रों के नाम प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका 4.4: विश्व के 34 जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र

1. केलिफोर्निया फ्लोरिडा प्रोविंस
2. मेडरियन पाइन–ओक कुडलेण्ड्स
3. मेजोअमेरिका
4. करेबियन आइलेन्ड्स
5. अटलान्टिक फोरेस्ट
6. केराडो
7. चिलियन विंटर रेतफाल वाल्डिवियन फोरेस्ट
8. टेम्बेस चोको मागडेलेना
9. ट्रोपिकल एन्डिज
10. मेडिटेरियन बेसिन
11. केप फ्लोरिस्टिक रीजन
12. कॉस्टल फोरेस्ट ऑफ ईस्टर्न अफ्रीका
13. ईस्टर्न एफ्रोमोन्टे
14. गिनिअन फोरेस्ट ऑफ वेस्ट अफ्रीका
15. हॉर्न ऑफ अफ्रीका
16. मेडागास्कर एवं इण्डियन ऑशियन आइलेण्ड्स
17. मपुटालेण्ड – पोन्डोलेण्ड एल्बेनी
18. सकुलेन्ट कारू
19. माउन्टेन्स ऑफ सेन्ट्रल एशिया
20. ईस्टर्न हिमालया, नेपाल
21. इण्डो–बर्मा, इंडिया एण्ड म्यांमार

22. वेस्टर्न घाट्स, इंडिया–श्रीलंका
23. इरानो–एंटोलियन
24. ईस्टर्न मलेशियन आइलेण्ड्स
25. न्यू केलेडोनिया
26. न्यूजीलेण्ड
27. फिलिपीन्स
28. पॉलिनेशिया–माइक्रोनेशिया
29. साउथवेस्ट ऑस्ट्रेलिया
30. संडालेण्ड
31. वॉलेशिया
32. जापान
33. माउन्टेन्स ऑफ साउथवेस्ट चाइना
34. कॉकेशस

असाधारण उच्च जैवविविधता इन संवेदनशील क्षेत्रों की विशेषता है। इन 34 हॉट स्पॉट का कुल क्षेत्रफल सम्पूर्ण भूभाग का 1.4 प्रतिशत है। जबकि इन क्षेत्रों में विश्व के 44 प्रतिशत पादप प्रजातियाँ एवं 35 प्रतिशत स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

उपरोक्त हॉट स्पॉट्स में से चार हॉट स्पॉट भारतीय भू–भाग पर स्थित हैं (चित्र 5.2)। भारत के पश्चिमी घाट (Western Ghats)

चित्र 5.2 : भारत में तप्त स्थल

पहला हॉट स्पॉट क्षेत्र है। दूसरा क्षेत्र पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayas) है, जो कि म्यांमार तक फैला हुआ है। अण्डमान व निकोबार (Andoman & Nicobar) द्वीप समूह व उत्तरपूर्व (North east) क्षेत्र कुछ समय पूर्व ही भारत के हॉटस्पॉट्स की सूची में जोड़े गये हैं।

पश्चिमी घाट हॉटस्पॉट भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट के समानान्तर महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल में लगभग 1600 किलोमीटर तक के विस्तार के क्षेत्र है। कम ऊँचाई पर (समुद्री तल से लगभग 500 मीटर ऊपर) अधिकतर सदाबहार वन उपस्थित है।

पूर्वी हिमालय हॉट स्पॉट उत्तर पश्चिम भारत से भूटान व म्यांमार तक फैले हुए है। 1780–2500 मीटर ऊँचाई तक समशीतोष्ण वन पाये जाते हैं। कई गहरी एवं अर्धप्राकृत घाटियाँ असाधारण रूप से स्थानिक पादप प्रजातियों से सम्पन्न हैं।

संकटापन्न प्रजातियाँ (Endangered Species)

वर्तमान में अनेक पादपों एवं जन्तुओं की संख्या तीव्रता से कम हो रही है तथा कई प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं। ऐसी पादप या जन्तु–प्रजातियां संकटान्न (Endangered) कहलाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संसाधन संरक्षण संगठन (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources, IUCN) के उत्तरजीविता आयोग (Servival Service Commission) द्वारा वर्ष 1966 में किये गये के सर्वेक्षण के आधार पर विश्व के संकटापन्न जीव–जन्तु तथा पादपों की सूची को लाल आंकड़ों की पुस्तक (Red Data Book) में प्रकाशित किया गया है। दो खण्डों (Volume) में प्रकाशित इस पुस्तक में वर्णित सूची के अनुसार विश्वभर में अनुमानतः 25000 जातियाँ संकटापन्न हैं।

विश्व के प्रमुख वनस्पतिज्ञों ने चेतावनी दी है कि लगभग 1500 पादप प्रजातियाँ अति दुर्लभ हैं जो लुप्त होने के कगार पर हैं। मिसोरी वानस्पति उद्यान (Missouri Botanic Garden) के निदेशक डॉ. पीटर रेर्वन के अनुसार 40,000 पादप जातियों को संरक्षित नहीं किया गया तो ये आगामी शताब्दी के मध्य तक जैवमण्डल से लुप्त हो सकती हैं।

जहाँ तक पादप जातियों व वंशों की विविधता का प्रश्न हैं, भारत विश्व का एक अत्यन्त समृद्ध राष्ट्र है। दुर्भाग्य से प्रकृति में मानव के हस्तक्षेप के कारण आज देश का लगभग 24 प्रतिशत (2015) भू–भाग ही वनों से आच्छादित है। भारत के पर्यावरण विभाग ने संकटग्रस्त जीव जातियों की एक पुस्तक प्रकाशित की है। इसे लाल आँकड़ों की पुस्तक (Red data book) का नाम दिया गया है। इस पुस्तक के दो खण्डों में 450 संकटग्रस्त जातियों के नाम प्रकाशित किये गये हैं।

भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण (Botanical Survey of India; BSI) द्वारा भारत में संकटग्रस्त पादपों की सूची तैयार की गई है। इस सूची में राजस्थान से गुगल (*Commiphora wightii*), जंगली गुलाब (*Rosa involucrata*), डाईक्लीप्टेरा आबूएन्सिस (*Dicliptera abuensis*) तथा स्ट्रोबिलेन्थस हॉलबर्गी (*Strobilanthus halbergii*) को सम्मिलित किया गया है, परन्तु कई अन्य संवहनी पादप भी इसी श्रेणी में आते हैं। राजस्थान के कुछ अन्य संकटग्रस्त पादप है – एसप्लीनियम पूमिलम किस्म हाइमिनाफिलोइडिस (*Asplenium pumilum var. hymenophylloides*), सिलेजिनैला राजस्थानेन्सिस (*Selaginella rajasthanensis*), ऑफियोग्लोसम ग्रेमिनियम (*Ophiglossum gramineum*), एरियोस्टिजिया स्यूडोसिस्टोप्टरिस, (*Araiostegia pseudocystopteris*), मार्सिलिया एजिप्टियाका (*Marsilea aegyptiaca*) तथा आइसोइटिज रेटिकुलेटा (*Isoetes reticulata*)। इसी प्रकार बोम्बेकेसी कुल का विशाल वृक्ष, कल्पवृक्ष (*Adansonia digitata*) भी संकटग्रस्त है। इन सभी जातियों के संरक्षण की आवश्यकता है।

भारत के कुछ प्रमुख संकटग्रस्त पादपों के नाम निम्नांकित हैं–

- हिरण तूतिया — *Colchicum Iuteum*
- सर्पगन्धा — *Rauvolfia serpentina*
- बलंग — *Aconitum deinorrihizum*
- गुगल — *Commiphora wightii*
- साग अंगुर — *Atropa acuminata*
- चन्दन — *Santalum album*
- बुरन्स — *Botrychium virginianum*

Red Data Book के अनुसार स्तनधारी जन्तुओं की 305, पक्षियों की 400, मछलियों की 193 तथा उभयचरी व सरीसृपों की 138 प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर हैं।

आंकड़ों के अनुसार भारत में मिलने वाली 81000 जन्तु प्रजातियों में 2546 प्रजातियां मछलियों, 1228 पक्षियों, 4000 कीड़े–मकोड़ों, 428 सरीसर्पों, 372 स्तनधारियों तथा 204 उभयचरों की हैं। भारतीय जन्तु सर्वेक्षण विभाग एवं राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय के अनुसार भारत में 137 जन्तु प्रजातियाँ संकटापन्न हैं। आज तक भारत में अनुमानतः लगभग 200 जन्तु प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। भारत के संकटापन्न जन्तुओं की सूची अभी भी पूर्ण नहीं है। भारत में प्राइमेट्स की 19 में से 12 प्रजातियां, मांस भक्षियों की 36 में से 28 प्रजातियाँ संकटापन्न हैं। कीड़े–मकोड़ों की 55 में से 14 दुर्लभ प्रजातियाँ हैं। हमारे देश में संकटग्रस्त कुछ जन्तु प्रजातियां निम्नलिखित हैं –

- हंसावर (Flamingo)
- बाघ (Tiger)
- मगरमच्छ (Crocodile)
- कृष्णसार (Black buck)
- भारतीय पैन्गोलिन (Indian Pangolin)
- घूसर बगला (Grey heron)
- गिद्ध (Vulture)
- नीलगाय (Nilgai)
- लाल पाण्डा (Red panda)
- कछुआ (Tortoise)
- डॉल्फिन (Dolphin)
- उड़ने वाली गिलहरी (Flying squirrel)
- गिर सिंह (Gir lion)
- बारहसिंगा (Antilope)
- हवासील (Pelican)
- चीतल (Chinkara)
- भारतीय भेड़िया (Indian wolf)
- पर्वतीय बटेर (Mountain quail
- गोड़ावण / सारंग (Godawan)
- जंगली गधा (Wild ass)
- गेम बर्ड्स (Game birds)
- अजगर (Python)
- गैंडा (Rhinoceros)

विशेष क्षेत्रीय प्रजातियाँ (Endemic Species)

पादपों व जन्तुओं का वितरण क्षेत्र भिन्न–भिन्न होता है। कुछ प्रजातियां विस्तृत क्षेत्री होती हैं तो कुछ सीमित क्षेत्रों में ही पायी जाती हैं।

''जब कोई कुल, जाति या प्रजाति किसी सीमित क्षेत्र में ही वितरित होती है तो इस प्रकार के वितरण को विशेष क्षेत्री (Endemic) कहा जाता है।'' जातियों या प्रजातियों का क्षेत्र विशेष में ही सीमित रहना विशेष क्षेत्रीयता (Endemism) कहलाता है।

भारत एक सुनिश्चित भौगोलिक इकाई है जो कि भूमध्य रेखा के उत्तर में लगभग 8°4" से 37°6" उत्तरी अक्षांश रेखाओं तथा लगभग 68°7" से 97°25" पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य स्थित है। यह दक्षिण, पूर्व, पश्चिम दिशा में गहरे समुद्रों, उत्तर में विश्व की

सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला–हिमालय तथा उत्तर पश्चिम में शुष्क मरुस्थल जैसी प्राकृतिक प्रवास बाधाओं (Barriers) से घिरा है। विश्व की सम्पूर्ण जलवायु का संयोग अकेले भारतवर्ष में पाया जाता है। भारत अतीत में गौण्डवाना प्रदेश (Gondwana region) का एक अंश रहा है। महाद्वीपीय विस्थापन (Continental drift) द्वारा हिमालय की ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं की उत्पत्ति अत्यंत नूतन युग प्लीस्टोसीन युग (Pleistocene) से कुछ पहले ही होना माना गया है। ऐसी स्थिति में भारतीय पादपजात (Flora) की अपनी कोई निजी विशेषता नहीं है बल्कि आसपास के स्थानों के अतिरिक्त सुदूर स्थलों के पादपी तत्त्व भी इसमें मिलते हैं।

भारत की विशेष भौगोलिक परिस्थिति एवं जलवायु के कारण यहाँ भारत के अलावा भूमध्यसागरीय, अफ्रीकी, मलयाई, चीनी, ऑस्ट्रेलियाई व अमेरिकी पादप तत्त्व भी पाये जाते हैं। भारत में पुष्पी पादपों की लगभग 21000 जातियाँ (विश्व का लगभग 10 प्रतिशत) तथा टेरिडोफोइट्स की लगभग 600 जातियाँ पाई जाती हैं। पुष्पी पादपों में कोई भी कुल (Family) भारतवर्ष के लिए विशेष क्षेत्री नहीं है। पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में 61.5 प्रतिशत द्विबीजपत्री जातियाँ एवं 20 प्रतिशत एकबीजपत्री जातियाँ विशेषक्षेत्री पादप हैं। जिनमें से 1000 जातियाँ हिमालय क्षेत्र में तथा 500 जातियाँ दक्षिण भारत में पाई जाती हैं। इन दोनों भू–भागों की जलवायु में अत्यधिक विविधता व शिवालिक पहाड़ियों की उपस्थिति इसका कारण है।

चटर्जी (1939 व 1962) ने भारत के विशेष क्षेत्रीय पादपों का विस्तृत अध्ययन किया है। उनके अनुसार भारत में पाई जाने वाली द्विबीजपत्री पौधों की 11,124 प्रजातियों में से 61.5 प्रतिशत विशेष क्षेत्री हैं। द्विबीजपत्रियों में सर्वाधिक विशेष क्षेत्री पौधे हिमालय में (3169 प्रजातियां 28.8 प्रतिशत) पाये जाते हैं। दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप में 2048 प्रजातियां (18.2 प्रतिशत) पायी जाती है तथा 4.9 प्रतिशत द्विबीजपत्री प्रजातियां पूरे भारतीय महाद्वीप में विशेष क्षेत्री हैं। भारत में पायी जाने वाली एकबीजपत्री पौधों में 20 प्रतिशत प्रजातियां विशेष क्षेत्री हैं। जिनमें से 1000 प्रजातियां हिमालय तथा 500 प्रजातियां दक्षिण भारत में पायी जाती है।

भारत के कुछ विशेष क्षेत्री पादप निम्नलिखित हैं:

फाइकस इलास्टिका, जैसमीन ग्रांडीफ्लोरम, वैन्डा सीरुलिया, केलोट्रापिस जाइजेन्टिया, बोम्बेक्स मेलेबेरिकम, डायोस्पाइरोस एबेनम, हिबिस्कम एबेलमोशकस, आर्टोकार्पस नोबेलिस, केरियोटा यूरेन्स, इलेटेरिया रेपेन्स, वाइटेक्स नेगुन्डा, पाइपर लोंगम, फेरोनियां एलीफेन्टम, मुराया कोपनिगाई, प्टेरोकार्पस सेटलाइनम, सीसेमम इन्डिकम, कोरकोरस केप्सुलेरिस, फाइकस रिलिजिओसा, इगल मारमिलास, धतूरा स्ट्रामोनियम, ब्यूटिया मोनोस्पर्म, इन्डिगोफेरा टिंक्टोरिया, फाइकस बेंगालेन्सिस।

जन्तु प्रजातियों में 39 मत्स्य, 31 उभयचर एवं 60 सरीसृप प्रजातियां पश्चिमी तट (Western Ghats) पर विशेष क्षेत्री हैं।

विश्वव्यापी स्तर पर जैवविविधता (Biodiversity at Global Level)

विश्वव्यापी जैवविविधता में जीवमण्डलों में मिलने वाली

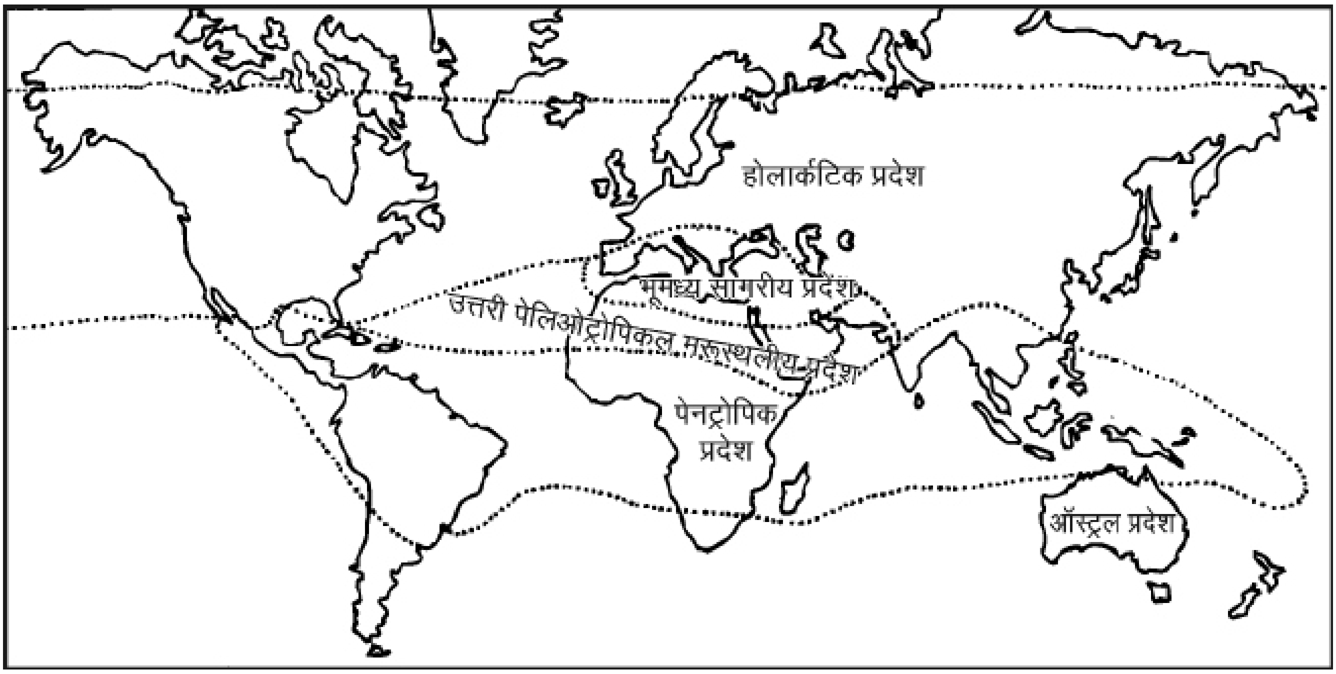

चित्र 5.3 : विश्व के वनस्पति भौगोलिक प्रदेश

जैवविविधता को सम्मिलित किया जाता है। इसका क्षेत्रीय विस्तार अधिक होने के कारण भौगोलिक कारकों में बदलाव में भिन्नता अधिक मिलती है। विश्वव्यापी जैवविविधता में लगभग 21 मिलियन ज्ञात जीवित जातियाँ तथा 50 मिलियन कुल जातियाँ होने का अनुमान लगाया जाता है। इनमें अनेक एकाकी वर्ग मिलते हैं, जो अपने परिवेश के अनुसार अनुकूल हैं। सम्पूर्ण प्रकृति में मिलने वाली जैव विविधता में जलवायु कटिबन्ध एक सीमा का कार्य करते हैं। जैसे भूमध्यरेखीय वर्षा वन प्रदेशों की जैव विविधता, टेगा वन प्रदेशों तथा टुण्ड्रा प्रदेशों की जैवविविधता से, जलवायु के कारण भिन्नता रखती है। इस प्रकार सर्वाधिक सम्पन्न जैवविविधता भूमध्यरेखीय वर्षा वन प्रदेशों में है, जो विश्वव्यापी जैवविविधता में मुख्य भूमिका रखते हैं। पृथ्वी के भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न प्रकार की वनस्पति तथा जन्तु पाये जाते हैं।

जैवविविधता एवं संरक्षण

जैव भूगोलवेत्ता न्यूबेगिन ने पृथ्वी पर पाई जाने वाली वनस्पति के आधार पर इसे पांच जैव वनस्पति प्रदेशों में विभक्त किया है (चित्र 5.3) –

1. पेनट्रापिक प्रदेश– ये भूमध्य रेखा के दोनों ओर विस्तृत है। इसमें विषुवत रेखीय वर्षा वन, उष्णकटिबंधीय पतझड़ व सवाना घास के मैदान सम्मिलित है।

2. उत्तरी पेलिओट्रापिकल मरूस्थलीय प्रदेश– इसमें सहारा, अरब तथा थार मरुस्थल सम्मिलित है। यहाँ मरुद्भिदीय वनस्पति मिलती है।

3. भूमध्य सागरीय प्रदेश– यह भूमध्यसागर के चारों ओर विस्तृत है। यहाँ मिश्रित वन पाये जाते हैं।

4. होलार्कटिक प्रदेश– यह युरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका में फैला है। यहाँ कोणधारी वन मिलते हैं।

5. ऑस्ट्रल प्रदेश– इसमें ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका का निचला भाग आता है।

विश्व में पाये जाने वाले प्राणियों के आधार पर ए.आर. वालेस ने पृथ्वी को छः भागों में विभक्त किया है, जो निम्नांकित हैं–

1. पेलिआर्कटिक प्रदेश– यह युरोप, उत्तरी तथा उत्तरी एशिया में विस्तृत है। यह सबसे बड़ा प्राणी भौगोलिक प्रदेश है। यहाँ 135 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

2. निआर्कटिक प्रदेश– यह उत्तरी अमेरिका तथा ग्रीनलैण्ड में फैला है। यहाँ 155 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

3. निओट्रोपिकल प्रदेश– यह दक्षिणी अमेरिका, मध्य अमेरिका, दक्षिणी मैक्सिको तथा पश्चिमी द्वीप समूहों में विस्तृत है। यहाँ भी 155 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

4. इथियोपियन प्रदेश– सहारा मरूस्थल, मेडागास्कर, मॉरिशस तथा दक्षिणी अफ्रीका के प्रदेश इसमें सम्मिलित है। यहाँ 161 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

5. ओरिएण्टल प्रदेश– यह हिमालय पर्वत तथा शिंगलिंगशान पर्वत के दक्षिण में एशिया में विस्तृत है। यहाँ 153 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

6. ऑस्ट्रेलियन प्रदेश– यह ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, न्युगिनी तथा तस्मानिया में फैला है। यहाँ 134 वंशों के स्थलीय कशेरूकी प्राणी पाये जाते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता (Biodiversity at National Level)

राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता का अध्ययन किसी देश की राजनैतिक सीमा के आधार पर किया जाता है। लेकिन जन्तु एवं वनस्पति प्रजातियों का वितरण राजनैतिक सीमाओं द्वारा निर्धारित नहीं होता। किसी एक राष्ट्र में पायी जाने वाली जन्तु या वनस्पति प्रजाति दूसरे राष्ट्रों में भी पायी जा सकती है। वे प्रजातियां जो लगभग सभी जलवायु प्रदेशों में वितरित होती हैं, विश्वव्यापी प्रजातियां (Cosmopolitian Species) कहलाती हैं। अतः राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता सार्वभौमिक जैवविविधता का ही एक भाग है। उदाहरण के तौर पर, भूमध्य रेखीय वर्षा वनों में स्थित राष्ट्र तीन महाद्वीपों में आते हैं। ये हैं – अमेजन बेसिन के सेल्वा प्रदेश, कांगो बेसिन तथा पूर्वाच्च एशिया के द्वीप समूह वाला क्षेत्र। इसी प्रकार मानसूनी जलवायु प्रदेश में भारत तथा चीन की जैवविविधता मिलती है।

भारत एक सुस्पष्ट भौगोलिक इकाई है। जलवायु एवं भूआकृतिक विविधता के कारण भारत एक जैवविविधता सम्पन्न राष्ट्र है। वर्षा विभिन्नता के आधार पर भारत को चार जलवायु प्रदेशों (Climatic regions) में विभक्त किया गया है।

भारत एक वृहद् विविधता का देश (India as a Mega Diversity Nation)

भारत पारिस्थितिकी तंत्र, स्पीशीज तथा आनुवंशिक जैवविविधता सहित जैवविविधता के सभी पहलुओं में विशिष्ट रूप से समृद्ध है। पूरे विश्व में यह शायद अपनी उष्णकटिबंधीय स्थिति, परिवर्तनशील भौतिक विशेषताओं एवं विविध जलवायु के गुण के कारण परिस्थितियों का सबसे बड़ा शृंखला समूह है। भारत में विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत भूभाग है परन्तु यहां संसार की 7–8 प्रतिशत जीवित जातियाँ पाई जाती हैं। भारत में पादपों की 45000 से अधिक जातियाँ और जन्तुओं की 81000 से अधिक जातियाँ पायी जाती हैं। साथ ही यह खेती के पौधों के उद्‌गम के आठ प्राथमिक केन्द्रों में से भी एक है। भारत की कृषिक जैवविविधता बहुत समृद्ध है।

किसी स्थान की जैव एवं सांस्कृतिक विविधता मुख्य रूप से उसके जलवायवीय विविधता पर निर्भर करती है। विश्व में पायी जाने वाली लगभग सभी प्रकार की जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियां भारत में पायी जाती हैं।

I- सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity)

देश में जम्मू–कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा पं. बंगाल से लेकर राजस्थान के रेतीले धोरों तक विभिन्न संस्कृतियाँ मिलती है। पुरातन काल में भी यहां विकसित सभ्यताएं पायी जाती थी। सिन्धु घाटी एवं मोहनजोदड़ों इसके उदाहरण हैं। यहाँ पर दक्षिण भारत में भरतनाट्यम है जबकि पंजाब के गिद्दा व भांगड़ा नृत्य प्रसिद्ध है। राजस्थान में भील तथा बस्तर में आदिवासियों की संस्कृतियां मिलती है। यहाँ विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध आदि लोग रहते हैं। यहां के लोगों के खान–पान में भी अत्यधिक विविधता पाई जाती हैं।

पंजाब में शाक आदि पर निर्भरता अधिक है तो कश्मीर में फलों की प्रचुरता है। यहां पूर्ण मांसाहारी एवं शाकाहारी लोग रहते हैं। मसालों के क्षेत्र में यह प्राचीन सभ्यता में भी विश्व प्रसिद्ध एवं अग्रणी रहा है। इस प्रकार भारत एक सांस्कृतिक एवं खान–पान विविधता प्रधान देश भी है।

II- भौगोलिक विविधता (Geographical Diversity)

भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भारत में स्पष्ट भौगोलिक विविधता पाई जाती है। यहाँ एक ओर लम्बे–चौड़े सपाट मैदानों में गंगा के क्षेत्र आते हैं तो दूसरी ओर शीत प्रदेशों में हिमालय क्षेत्र। हिमालय के क्षेत्र में अधिक ऊँचाई वाले हिमाच्छादित क्षेत्र है, जो वर्ष भर हिम से ढके रहते हैं।

हिमालय की तराई के क्षेत्र असमतलीय हैं। दक्षिण में पठार है। समुद्रतटीय क्षेत्र भी बहुत विस्तृत क्षेत्र है। विषम परिस्थिति के शुष्क तथा कम वर्षा वाले उष्ण रेगिस्तान भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित है तथा शीत शुष्क मरूस्थलीय प्रदेश सिक्किम तथा लद्दाख में है। यहाँ वर्षा वन भी है। अतः विश्व में पाई जाने वाली लगभग सभी प्रकार की जलवायवीय तथा भौगोलिक विविधता भारत में पाई जाती है।

उत्तर–पूर्व में घने वर्षा वन हैं तो उत्तर–पश्चिम में शुष्क पर्णपाती वन तथा कंटीली झाड़ियों का विस्तार क्षेत्र है।

III- आवासीय विविधता (Habitat Diversity)

भारत एक वृहद् आवासीय विविधता का क्षेत्र है। ऊंचे पर्वत, पहाड़ियां, समतल मैदान, पठारी भाग, तराई क्षेत्र एवं रेगिस्तान स्थलीय पादप एवं जन्तु प्रजातियों को उनकी भोजन प्राप्ति एवं सुरक्षा के अनुसार आवास प्रदान करते हैं। इसी प्रकार नदी–नाले, तालाब, स्वच्छ एवं खारे पानी वाली झीलें, समुद्र आदि जलीय वनस्पतियों एवं जन्तु प्रजातियों के लिए आवास प्रदान करते हैं।

एक प्रगतिशील देश होने के कारण यहाँ न केवल बड़े मेट्रो शहर हैं बल्कि अभी भी जंगलों में रहने वाले लोगों के बाहुल्य के क्षेत्र भी है। जहाँ एक ओर यहां शहरी सभ्यता तेजी से बढ़ रही है, बड़ी–बड़ी गगनचुम्बी इमारतें है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में यहाँ के निवासी झोंपड़ियों में भी रहते हैं। जहाँ देश में ओटोमोबाइल और मेट्रो रेल भी है, वहीं पर बैलगाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में घोड़ा, टट्टू, आदि को सवारी के काम में लिया जाता है। जहाँ एक ओर ग्राम प्रेमी लोग भी हैं, वहीं दूसरी ओर शहरीकरण भी अत्यधिक तेजी से हो रहा है।

इसी तरह भारत प्राणी, पादप, मानव, आवासों की दृष्टि से विविधता सम्पन्न देश है।

IV- जलवायवीय विविधता (Climatic Diversity)

सम्पूर्ण विश्व में पायी जाने वाली लगभग सभी प्रकार की जलवायवीय परिस्थितियां भारत में मिलती है। जलवायवीय परिस्थितियों के मुख्य घटक हैं– तापमान व वर्षा। भारत में न्यून तापमान वाले शीत प्रदेशों में हिमालय क्षेत्र है जहां अनेक हिमाच्छादित पर्वत चोटियां है तो उच्चताप क्षेत्रों में राजस्थान का उष्ण रेगिस्तान सम्मिलित है। वर्षा के आधार पर भारत को चार जलवायवीय प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है–

1. मरुक्षेत्र (Arid Zone): पंजाब का दक्षिण–पश्चिमी भाग, पश्चिमी राजस्थान, उत्तर–पश्चिमी गुजरात तथा दक्षिण सिंध के मैदान मिलकर विशाल मरुस्थलीय व अर्धमरुस्थलीय क्षेत्र का निर्माण करते हैं। यहां वर्ष में 50 से.मी. से भी कम वर्षा होती है। यहां कंटीले वन व झाड़ियां मिलती हैं।

2. शुष्क क्षेत्र (Dry Zone): इस क्षेत्र में वर्ष में 50–100 से.मी. तक वर्षा होती है। इसके अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब के कुछ भाग, दिल्ली, गुजरात, पश्चिमी राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा दक्षिण आन्ध्र प्रदेश आते हैं। यहां शुष्क पर्णपाती वन तथा कंटीले झाड़ (Thorny Shrubs) की बहुलता है।

3. मध्यवर्ती क्षेत्र (Intermediate Zone): यह 100 से 200 से. मी. तक वार्षिक वर्षा का क्षेत्र है। इसमें चैन्नई, उत्तर प्रदेश, पूर्वी मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू तथा पंजाब सम्मिलित है। यहाँ मुख्यतया पर्णपाती वन पाये जाते हैं।

4.नम क्षेत्र (Wet Zone): यह 200 से.मी. से अधिक वार्षिक वर्षा का क्षेत्र है जिसमें केरल, कर्नाटक, मुम्बई के पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र, बंगाल, बिहार, आसाम, मेघालय, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तथा मध्य प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में

उष्ण आर्द्र सदाबहार वन तथा उष्ण नम पर्णपाती वनों की बहुलता है।

V- खानपान की विविधता – भारत देश में खानपान की विविधता पाई जाती है। यहाँ पूर्ण माँसाहारी एवं शाकाहारी लोग रहते हैं। मूंगफली की गुजरात में अच्छी पैदावार होती है। यहाँ पर मूंगफली के व्यंजन तैयार किये जाते हैं। दक्षिण में नारियल व केले बहुतायत से होने से वहाँ पर नारियल के उत्पाद बनाये जाते हैं तथा भोजन एवं व्यंजन नारियल के तेल में ही पकाये जाते हैं। पंजाब में शाक आदि पर निर्भरता अधिक है तो कश्मीर में फलों की प्रचुरता है। तटवर्तीय क्षेत्रों में काजू आदि की अधिक पैदावार होती है तो गर्म प्रदेशों में मसाले जैसे इलायची, काली मिर्च आदि बहुतायत में प्रयोग किये जाते हैं। मसालों के लिए भारत विश्व प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन सभ्यता में भी मिश्र तथा अरब के देशों में मसालों का भारत से निर्यात होता था।

VI- जैवविविधता (Biodiversity): भारत एशिया के चार वृहद् विविधता वाले देशों में से एक है। इसकी यह पहचान मुख्य रूप से चार अति महत्वपूर्ण जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्रों (Hot Spots) के कारण है। पहला संवेदनशील क्षेत्र है हिमालय, जिसके अन्तर्गत उत्तर–पूर्व का पहाड़ी भाग आता है। दूसरा संवेदनशील क्षेत्र है दक्षिण–पश्चिम तक फैला पश्चिमी घाट। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा उत्तर–पूर्वी क्षेत्र को कुछ समय पूर्व ही हॉट–स्पोट्स में शामिल किया गया है। भारत में अति शीत प्रदेश, अति गर्म प्रदेश, समजलवायवीय प्रदेश, शीतोष्ण प्रदेश आदि यहां के भिन्न–भिन्न पादप समूहों एवं वनों के वितरण को निर्धारित करते हैं। जन्तु जगत अपने भोजन एवं आवास के लिए पादप जगत पर निर्भर है। अतः वृहद् पादप विविधता के साथ–साथ भारत एक वृहद् जन्तु विविधता का भी देश है।

हिमालय–पार के क्षेत्र में विरल वनस्पति होने के बावजूद संसार के भेड़–बकरियों के सबसे समृद्ध समुदाय यहां पाये जाते हैं। यहां हिम तेंदुए (पैन्थेरा अनसिया) और काली गर्दन वाले सारस (ग्रुस नाइग्रिकोलिस) पाये जाते हैं। ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (आरडियोटिस नाइग्रिसेप्स) जो भारत में पाया जाने वाला अत्यधिक संकटापन्न पक्षी है, गुजरात जो विस्तृत घास के मैदानों में सम्पन्न है, में पाया जाता है।

उत्तर–पूर्व भारत देश का सर्वाधिक जैवविविधता सम्पन्न क्षेत्र है। यह विशेष रूप से आर्किड, बाँस, फर्न, सिट्रस (संतरा), केला, आम तथा जूट से समृद्ध है।

भारत मूंगा चट्टानों (कोरल रीफ) के मामले में भी समृद्ध है। भारतीय समुद्रों में मुख्य मूंगा संरचनाएं मन्नार की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी, पाल्क खाड़ी, अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप में पायी जाती हैं। मेंग्रोव वृक्षों (दलदली भूमि में उग रहे) एवं मूंगा चट्टानों (कोरल रीफ) को बाजार की मांग को पूरा करने के लिए सतत् मछली पकड़ने, आस–पास के क्षेत्रों में भूमि–उपयोग में परिवर्तन और जल प्रदूषण इत्यादि से खतरा है।

जैवविविधता एवं वन्य जीव संकट (Biodiversity and Threats to Wildlife)

पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति करोड़ों वर्ष पूर्व हुई। उस समय वहाँ भिन्न–भिन्न पारिस्थितिक–तंत्रों को भिन्न–भिन्न जीवों ने अपना आवास बनाया। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में मानव की अत्यधिक प्रगति के कारण जंतु तथा वनस्पति जगत नष्ट होने से जैवविविधता के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। कई जीव जातियाँ विलुप्त हो गई है तथा कई अन्य जीव जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए संघर्ष कर रही है एवं विलुप्त होने के कगार पर पहुंच गयी हैं। इन्हें संकटग्रस्त प्रजातियां (Endangered Species) कहते हैं। जन्तु एवं वनस्पति जैवविविधता के विनाश के मानवीय कारण निम्न हैं–

I. आवासों का विनाश (Habitat Loss)

II. वन्य जीवों का शिकार (Poaching of Wildlife)

III. मानव तथा वन्य जीवों में संघर्ष (Man-wildlife Conflicts)

I. आवासों का विनाश (Habitat Loss)

मानव जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, मानव सभ्यता में आये परिवर्तनों एवं तीव्र आर्थिक विकास के फलस्वरूप जन्तु एवं वनस्पतियों के प्राकृतिक आवास नष्ट होने लगे हैं। प्राकृतिक आवासों के नष्ट होने से कई प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं एवं कई अन्य अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए संघर्ष कर रही हैं। प्राकृतिक आवासों के विनाश के मानवीय कारण निम्नलिखित है (चित्र 5.4) –

1. अत्यधिक पशुचारण (Overgrazing)
2. शहरीकरण (Urbanization)
3. अपशिष्टों का निष्पादन (Wastes Disposal)
4. बांधों का निर्माण (Constructions of Dams)
5. कृषि विस्तार (Agricultural Extension)
6. जल संसाधनों का दोहन (Exploitation of Water Resources)
7. औद्योगीकरण (Industrialization)
8. खनन (Mining)
9. वनों की आग (Forest Fire)
10. वन विनाश (Deforestation)

11. सुपोषणीकरण (Eutrophication)

उपर्युक्त कारणों में से शहरीकरण, औद्योगीकरण, खनन, वन विनाश, कृषि विस्तार एवं मानवजनित वनों की आग के फलस्वरूप प्राकृतिक वनों का एक बड़ा क्षेत्र नष्ट हो चुका है। वन मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। वनों से मनुष्य को न केवल इमारती लकड़ी बल्कि खाद्यान्न, जलाने के लिए लकड़ी तथा कई अन्य बहुमूल्य सामग्रियाँ प्राप्त होती है। इस कारण वह वनों का विनाश कर रहा है। पिछले कुछ वर्षों में वनों के विनाश के कारण वन्य जीवों के समक्ष कई समस्याएं उत्पन्न हुई है। वन ही जीव जंतुओं के आवास स्थल है। कम संख्या में मिलने वाले जीव वंशवृद्धि करने में पर्याप्त सक्षम नहीं है। जिससे उनके विलुप्त होने की सम्भावना बढ़ गई है।

इसी प्रकार सुपोषणीकरण (Eutrophication) तथा मनुष्य द्वारा जल संसाधनों का दोहन, बांधों का निर्माण, जल स्त्रोतों में अपशिष्टों का अनियंत्रित निष्पादन आदि गतिविधियों ने जलीय जीवों के आवासों का रूप ही परिवर्तित कर दिया है, जिसके फलस्वरूप अनेक जलीय वनस्पति एवं जन्तु प्रजातियां या तो विलुप्त हो चुकी है या विलुप्त होने की कगार पर है।

II. वन्य जीवों का शिकार (Poaching of Wildlife)

वन्य जीवों से मनुष्य को फर, खाल, सींग, दाँत आदि बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। इस कारण उनका शिकार किया जाता है। किसी भी राष्ट्र में वहां की सरकार द्वारा कुछ क्षेत्रों को शिकार निषेध स्थल घोषित कर दिया जाता है। इन क्षेत्रों में यदि शिकार किया जाता है तो उसे अवैध शिकार की श्रेणी में रखा जाता है। वन्य जीवों के अवैध शिकार तथा व्यापार के कारण उनके विलुप्त होने का संकट उत्पन्न हो गया है। भारत में बहुत अधिक संख्या में बाघों का शिकार किया गया है, जिससे पिछले 5 दशकों में इनकी संख्या में तेजी से कमी आई है। इसी प्रकार अफ्रीका में हाथी का सर्वाधिक शिकार हुआ है। 1980 में अफ्रीका में इनकी संख्या 1.3 मिलियन थी, 1990 में इसकी आधी रह गई। भारत में वन्य जीवों के संरक्षण के लिये 1972 में वन्य जीव संरक्षण कानून पारित किया गया।

आई.यू.सी.एन. (IUCN) के अनुसार विगत् 500 वर्षों में 75 प्रतिशत पक्षियों एवं स्तनधारियों के विलुप्त होने का कारण स्वयं मनुष्य है। केवल मानव द्वारा शिकार से 42 प्रतिशत पक्षियों एवं 33 प्रतिशत स्तनधारियों की प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है।

III. मानव तथा वन्य जीवों में संघर्ष (Man-wildlife Conflicts)

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मनुष्य तथा वन्य जीवों में आवास तथा भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा होने लगी है। मनुष्य अपने आवास, कारखानों तथा कृषि क्षेत्रों के विकास के लिए वनों का विनाश करता है। इस कारण वन्य जीवों को अपने प्राकृतिक आवासों से बाहर निकलना पड़ता है। जहाँ मनुष्य द्वारा उन्हें मार दिया जाता है।

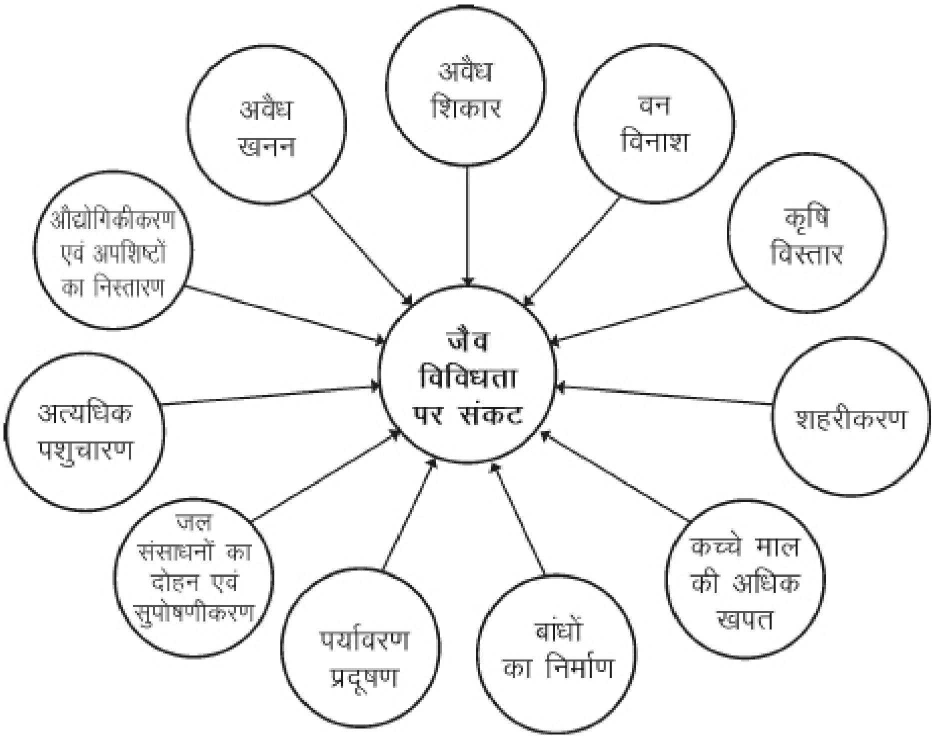

चित्र संख्या 5.4 : जैवविविधता पर संकट के कारण

मनुष्य द्वारा भोजन प्राप्ति हेतु किये गये शिकार के फलस्वरूप मांसाहारी वन्य जीवों के शिकार (भोजन) समाप्त हो रहे हैं। फलस्वरूप पर्याप्त भोजन की कमी से अनेक वन्य जीवों की अकाल मृत्यु हो जाती है।

जैविक प्रजातियों की उत्पत्ति एवं विलुप्त होना एक घटना है, किन्तु मानव का बढ़ती गतिविधियों से अनेक प्रजातियों के असामयिक विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है। संकटाधीन दृष्टि से जैविक प्रजातियों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) संकटग्रस्त प्रजातियाँ (Endangered Species): ऐसी प्रजातियाँ जिनके सदस्यों की संख्या गम्भीर रूप से कम हो गयी है तथा वे विलुप्त होने की कगार पर हैं।

(ii) विलुप्तप्रायः प्रजातियाँ (Threatened Species): ऐसी प्रजातियाँ जिनके सदस्यों की संख्या कम होने की सम्भावना है।

(iii) सुभेद्य प्रजातियाँ (Vulnerable Species): ऐसी प्रजातियाँ जिनका निकट भविष्य में संकटग्रस्त प्रजातियों की श्रेणी में चले जाने की सम्भावना है।

(iv) दुर्लभ प्रजातियाँ (Rare Species): वे प्रजातियाँ जिनकी कुल संख्या बहुत कम हो या छोटे क्षेत्रों में ही सीमित हों।

जैवविविधता संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

प्रकृति का प्रत्येक जीव किसी न किसी रूप में पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने में सहयोग करता है। अतः किसी भी एक प्रजाति का भी आकस्मिक रूप से विलुप्त हो जाना प्राकृतिक सन्तुलन के लिए एक खतरा बन सकता है। अतः हमारे वेदों में भी 'पर्यावरण पूर्णता' (Environmental Totality) की बात कही गयी है।

विगत लगभग दो दशकों में डब्ल्यू. आर. आई. (World Resource Institute, WRI), आई.यू.सी.एन. (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources, IUCN) तथा विश्व बैंक के संयुक्त तत्वावधान में जैव विविधता के संरक्षण हेतु सराहनीय प्रयास किये गये हैं।

लुप्त हो रही जंतु तथा पादप जातियों को संरक्षित करने के लिए मुख्य रूप से दो तरीके उपयोग में लिये जाते हैं। ये निम्न है–

I. स्वस्थाने संरक्षण (In-situ Conservation)

स्वस्थाने संरक्षण को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार के संरक्षण के अन्तर्गत पादपों व जंतुओं को उनके प्राकृतिक आवास में संरक्षित किया जाता है। इस कारण उनका विकास उत्तम तरीके से होता है। इन क्षेत्रों को सरकार द्वारा सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है। प्राकृतिक रिजर्व, राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण आदि पौधों तथा जंतुओं के प्राकृतिक आवासों के संरक्षण के उदाहरण है।

1. राष्ट्रीय उद्यान (National Parks): ये प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा वन्य जीवों की संरक्षण स्थली हैं। भारत में सर्वप्रथम 1936 में हैली राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना की गई। वर्तमान में इसे जिम कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान कहा जाता है। राष्ट्रीय उद्यान में दो क्षेत्र होते है– आघात सह क्षेत्र तथा आंतरिक क्षेत्र। आघात सह क्षेत्र में जैविक हस्तक्षेप हो सकता है जबकि आंतरिक क्षेत्र में जैविक हस्तक्षेप प्रतिबंधित होता है। भारत में राष्ट्रीय उद्यानों की कुल संख्या 87 है। भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान निम्न हैं–

राजस्थान	–	1. रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान
		2. केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान
असम	–	1. काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान
बिहार	–	1. हजारीबाग राष्ट्रीय उद्यान
		2. बेतला राष्ट्रीय उद्यान
गुजरात	–	1. गिर राष्ट्रीय उद्यान
		2. वेलावाडार राष्ट्रीय उद्यान
मध्य प्रदेश	–	1. संजय गाँधी राष्ट्रीय उद्यान
		2. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान
		3. शिवपुरी राष्ट्रीय उद्यान
		4. बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान
		5. सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान
उत्तर प्रदेश	–	1. जिम कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान
		2. दूधवा राष्ट्रीय उद्यान
उड़ीसा	–	1. सिम्पलीपाल राष्ट्रीय उद्यान
महाराष्ट्र	–	1. टारोबा राष्ट्रीय उद्यान
कर्नाटक	–	1. बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान
		2. नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान
सिक्किम	–	1. कंचनजंगा राष्ट्रीय उद्यान

2. अभ्यारण (Sancturies): राष्ट्रीय उद्यानों से अलग यहाँ केवल वन्य जीवों का संरक्षण किया जाता है। वर्तमान में भारत में 485 अभ्यारण हैं। भारत में सर्वाधिक अभ्यारण क्षेत्र मध्यप्रदेश में है। भारत के प्रमुख अभ्यारण निम्न है–

राजस्थान	–	1.	सरिस्का अभ्यारण
		2.	दर्रा अभ्यारण

3. रामगढ़ विषधारी अभ्यारण
4. ताल छापर अभ्यारण
5. राष्ट्रीय मरुउद्यान अभ्यारण
6. माउण्ट आबू अभ्यारण
7. कुम्भलगढ़ अभ्यारण
8. सीतामाता अभ्यारण
9. वन विहार अभ्यारण
10. शेरगढ़ अभ्यारण
11. जयसमन्द अभ्यारण
12. नाहरगढ़ अभ्यारण
13. सवाईमान सिंह अभ्यारण
14. जवाहर सागर अभ्यारण
15. टाडगढ़ रावली अभ्यारण
16. भैंसरोड़गढ़ अभ्यारण
17. केलादेवी अभ्यारण
18. बस्सी अभ्यारण
19. जमवा रामगढ़ अभ्यारण
20. राष्ट्रीय चम्बल घड़ियाल अभ्यारण
21. बंधबारेठा अभ्यारण
22. फुलवारी की नाल अभ्यारण
23. सज्जनगढ़ अभ्यारण

इसमें सीतामाता अभ्यारण उड़न गिलहरी के संरक्षण हेतु प्रसिद्ध है।

तमिलनाडु –	1.	मुडुमलाई अभ्यारण
	2.	मुण्डनथुराई अभ्यारण
	3.	वेदान्थगल अभ्यारण
उत्तर प्रदेश –	1.	नंदा देवी अभ्यारण
असम –	1.	सोनै–रूपा वन्यजीव अभ्यारण
कर्नाटक –	1.	बांदीपुर अभ्यारण
पंजाब –	1.	अबोहर अभ्यारण

3. जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves): 'मानव एवं जैवमण्डल कार्यक्रम' (Man and Biosphere Programme, MAB) के अन्तर्गत यूनेस्को (UNESCO) द्वारा वर्ष 1971 में सम्पूर्ण विश्व में बायोस्फीयर रिजर्व नेटवर्क प्रोग्राम की स्थापना की गयी। रामाडे (Ramade, 1984) के अनुसार ''प्राकृतिक अथवा मानव द्वारा परिवर्तित वे क्षेत्र जो पारिस्थितिक तंत्रों की सुरक्षा हेतु निर्धारित हों एवं जहां वैज्ञानिक शोध हेतु पारिस्थितिक साक्ष्यों की सुरक्षा की जा सके, जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserve) कहलाते हैं।''

बायोस्फीयर रिजर्व का मुख्य उद्देश्य जैवविविधता संरक्षण के साथ–साथ ऐसे सुरक्षित क्षेत्र की स्थापना करना है जहां पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जीव विज्ञान के आधारभूत एवं विशिष्ट शोध कार्य किये जा सकें।

जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र में निम्न क्षेत्र होते हैं– (क) कोर क्षेत्र (Core Zone) ये पूर्णतया सुरक्षित है तथा मानव गतिविधियों द्वारा कम से कम बाधित प्राकृतिक क्षेत्र हैं। यह कानूनी तौर पर संरक्षित ऐसा पारितंत्र है जिसमें किसी विशेष उद्देश्य के लिए, अनुमति को छोड़कर प्रवेश की अनुमति नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए विनाशकारी नमूना निषेध है। (ख) बफर क्षेत्र (Buffer zone) से कोर क्षेत्र के चारों तरफ का क्षेत्र है (ग) संक्रमण क्षेत्र (Transition zone) जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र का सबसे बाहरी भाग है, क्षेत्र प्रबंधन एवं स्थानीय लोगों के मध्य सक्रिय सहयोग का ऐसा क्षेत्र है, जिसमें बस्तियां, फसल उगाना, वानिकी, मनोरंजन जैसी गतिविधियां एवं अन्य आर्थिक क्रियाकलाप संरक्षण के उद्देश्यों के साथ सामंजस्य बनाते हुए सम्पन्न किए जाते हैं। (चित्र 5.5) आज तक 107 देशों में 533 जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र स्थापित हो चुके हैं।

भारत में जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र नंदादेवी, मानस, सुन्दरबन, नीलगिरी, मन्नार की खेड़ी आदि (चित्र 5.6) है।

जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के मुख्य कार्य निम्नांकित हैं :

संरक्षणः प्रतिनिधियों एवं भूदृश्यों के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों एवं उनमें पायी जाने वाली सभी प्रजातियों एवं अनुवंशिक संसाधनों का दीर्घकालीन संरक्षण।

विकासः पारम्परिक संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहन देना तथा सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय रूप से सतत्

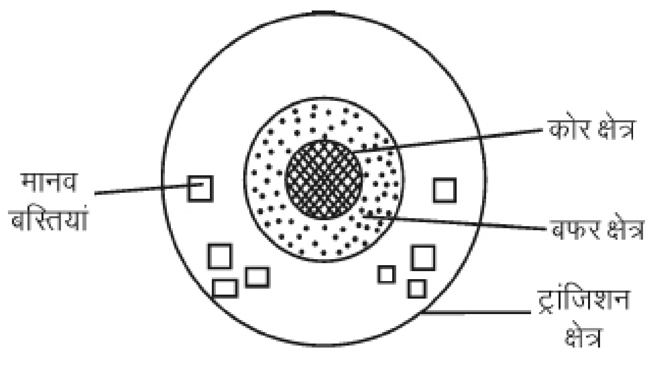

चित्र 5.5 : एक स्थलीय जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र

चित्र 5.6 : भारत के जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र

पोषणीय आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।

वैज्ञानिक अनुसंधान, निगरानी एवं शिक्षाः संरक्षण अनुसंधान निगरानी, स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक पर्यावरणीय तथा संरक्षण के मुद्दों से सम्बन्धित शिक्षा एवं सूचना के आदान–प्रदान को सहारा देना।

प्रजाति उन्मुख परियोजनाऐं: कुछ प्रजातियों की ठोस एवं विशेष रूप से निर्देशित प्रयासों की आवश्यकता के तौर पर पहचान की गई है। प्रोजेक्ट टाइगर, प्रोजेक्ट एलिफेन्ट एवं प्रोजेक्ट क्रोकोडाइल इनके वास स्थान के संरक्षण के माध्यम से एकल प्रजातियों पर ध्यान केन्द्रित करने के उदाहरण हैं।

जनवरी 1995 तक विश्व के 82 देशों में 324 बायोस्फीयर रिजर्व की स्थापना की गयी। भारत में 2001 तक 13 बायोस्फीयर रिजर्व स्थापित हुए जो 55,550 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। भारत का पहला जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र नीलगिरि बायोस्फीयर रिजर्व (Nilgiri Biosphere Reserve) है, जो 1986 में पश्चिमी घाट तट (Western Ghats) पर स्थापित हुआ। यह 5520 कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। राजस्थान के थार रेगिस्तान को भी जैव मंडल आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है।

II. उत्स्थाने संरक्षण (Ex-situ Conservation)

इस विधि में जन्तुओं एवं पादपों को उनके प्राकृतिक आवास से बाहर संरक्षित किया जाता है। पादपों या जन्तुओं को ऐसे आवासों (Habitats) में जहां से वे विलुप्त हो चुके हों, पुनःस्थापित करना भी संरक्षण की इसी श्रेणी में आता है।

इस विधि में संरक्षण हेतु निम्नलिखित क्षेत्र/ तरीके काम में लाये जाते हैं–

1. वनस्पति उद्यान (Botanical Gardens)
2. जन्तु उद्यान (Zoological Parks)
3. एक्वेरिया (Aquaria)
4. जीन बैंक (Gene Banks)
5. डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी (DNA Technology)
6. उत्तक संवर्धन (Tissue Cultrue)

1. वनस्पति उद्यान (Botanical Gardens): पादपों की मूलभूत वैज्ञानिक सूचनाओं, उनके तुलनात्मक अध्ययन, उनके शरीर रसायनों, सौन्दर्य बोध, विशिष्ट वानस्पतिक गुणों आदि के अध्ययन के लिए वनस्पति उद्यानों की उपयोगिता है।

वर्ष 1980 में IUCN ने WWF (World Wildlife Fund) के साथ मिलकर 'वनस्पति उद्यान संरक्षण युक्ति' (Botanical Garden Conservation Strategy) का प्रकाशन किया जिसमें पादप आनुवांशिकी संसाधनों (Plant Genetic Resources) के संरक्षण में वनस्पति उद्यानों के योगदान को प्रतिपादित किया गया। सम्पूर्ण विश्व में स्थित लगभग 1500 वनस्पति उद्यानों में पौधों की 3500 प्रजातियां विद्यमान हैं, जो विश्व वनस्पति जगत की 15 प्रतिशत से भी अधिक है।

भारत में प्रमुख रूप से निम्न वनस्पति उद्यान हैं–

(अ) इण्डियन बोटेनिक गार्डन, कोलकाता

(ब) नेशनल बोटेनिक गार्डन, लखनऊ

(स) लाल बाग उद्यान, बैंगलोर

(द) कम्पनी उद्यान, मसूरी

(य) लॉयड बोटेनिक गार्डन, दार्जिलिंग

वनस्पति उद्यानों का उपयोग संरक्षण के अतिरिक्त वैज्ञानिक सूचनाओं, शोध, विशिष्ट वानस्पतिक गुणों के अध्ययन हेतु भी किया जाता है।

2. जन्तु उद्यान (Zoological Parks): पूरे विश्व में लगभग 5,00,000 स्तनधारी, पक्षी, सरीसृप व उभयचर वर्ग के प्राणियों का संरक्षण जन्तु उद्यानों में होता है। संरक्षण के अतिरिक्त इस विधि से

शोध कार्यों एवं जन्तु सुरक्षा हेतु जन–चेतना को बढ़ावा मिलता है।

3. एक्वेरिया (Aquaria): एक्वेरिया का उपयोग मुख्य रूप से खतरे के बिन्दु पर स्थित या विलुप्त होने वाली स्वच्छ जलीय प्रजातियों के संरक्षण हेतु किया जाता है। इसका उपयोग मछलियों के अध्ययन हेतु भी किया जाता है।

4. जीन बैंक (Gene Banks): जीन बैंक वे स्थान है जहाँ पौधों के जननद्रव्य को संरक्षित एवं अंकुरणक्षम अवस्था में रखा जाता है। जननद्रव्य को संरक्षित रखने का सबसे आसान तरीका, बीजों को उनकी उपयुक्त अवस्था में रखना है। बीजों के अतिरिक्त फल, पराग, बीजाणु, अण्ड आदि को भी संरक्षित रखा जाता है। भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (National Bureau of Plant Genetic Resources, NBPGR, New Delhi) में दुर्लभ तथा विलुप्त पादपों के जननद्रव्यों को संरक्षित किया गया है। राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो के क्षेत्रीय केन्द्र आकोला, जोधपुर शिमला, त्रिपुरा तथा भुवाली में है।

जीन बैंक में वनस्पतियों के बीज व शाकीय दोनों भागों को संरक्षित किया जाता है। शुष्क बीजों को कम ताप व निर्वात में सुरक्षित रखते हैं। कुछ प्रजातियों के जीवित हिस्से को 130 डिग्री सेन्टीग्रेड से नीचे ताप पर सैंकड़ों साल तक जीवित रखा जा सकता है। इन सुरक्षित जननद्रव्यों से न सिर्फ खतरे के बिन्दु पर पहुंच चुकी प्रजातियों का संरक्षण होता है, बल्कि इसका प्रयोग वैज्ञानिकों द्वारा अधिक उपयोगी उप–प्रजातियों को विकसित करने के लिए भी किया जाता है।

5. डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी (DNA Technology): इसके अन्तर्गत किसी जन्तु या वनस्पति कोशिका के सम्पूर्ण डी.एन.ए. या उसके कुछ हिस्से को संरक्षित किया जाता है। संरक्षित डी.एन.ए. से उपयुक्त जीन का चुनाव कर ऐच्छिक आनुवांशिक गुणों वाले प्राणी या वनस्पति का विकसित किया जा सकता है। ये प्रयोग सूक्ष्मजीवों (Microorganisms) जैसे बैक्टीरिया, यीस्ट आदि के साथ अधिक सफल सिद्ध हुए हैं।

6. ऊत्तक संवर्धन (Tissue Cultrue): ऐसे पादपों, जिनमें बीज न बनते हों (जैसे गन्ना) बीज कम या अनुपयुक्त हों या बीज जनित संतानें (Progeny) परिवर्तनशील हों, के संरक्षण हेतु ऊतक संवर्धन तकनीकी (Tissue Cultrue Technique) एक उपयुक्त विधि है। ऐसे पादपों के तनों के वृद्धि युक्त ऊपरी भाग (Growing Tips) को संरक्षित किया जाता है, जिससे आवश्यकतानुसार पूरे पौधे को पुनः विकसित किया जा सकता है। दुर्लभ जन्तुओं की जनन कोशिकाओं या भ्रूण ऊतक या पूरे भ्रूण को भी अत्यधिक न्यून ताप (–196°C तरल नाइट्रोजन) पर सुरक्षित (Cryopreservation) रखा जा सकता है व पुनः संवर्धन विधि के द्वारा पूर्ण प्राणी को विकसित किया जा सकता है।

चिपको आन्दोलन (Chipko Movement)

इस आन्दोलन की शुरूआत सन् 1731 में जोधपुर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित खेजड़ली ग्राम की विश्नोई महिला अमृता देवी द्वारा की गई। यह आन्दोलन वृक्ष काटने की राजाज्ञा के विरोध में प्रदर्शित किया गया था। विश्नोई समाज के उन्तीस (बीस + नो) धर्म सिद्धान्तों में से एक के अनुसार खेजड़ी (*Prosopis cinereria*) उनका धर्म वृक्ष है, तथा पेड़ काटना धर्म के विरूद्ध समझा जाता है। अतः सैनिकों द्वारा काटे जा रहे खेजड़ी के वृक्षों को बचाने के लिए अमृता देवी के नेतृत्व में विश्नोई समाज के लोगों ने पेड़ों से चिपक कर विरोध प्रदर्शित किया। इसके दौरान स्वयं अमृता देवी, उनके पति रामोजी सहित लगभग 363 विश्नोइयों ने अपने प्राणों की आहुति देकर खेजड़ी के वृक्षों की रक्षा की। इससे प्रभावित होकर तत्कालीन राजा अजीत सिंह को राज्य में खेजड़ी के वृक्ष को काटने पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। आन्दोलन में शहीद विश्नोइयों की याद में आज भी खेजड़ली क्षेत्र में मेला आयोजित किया जाता है।

इस आन्दोलन से प्रभावित होकर देश के विभिन्न राज्यों में वृक्ष बचाने एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए कई आन्दोलन चलाए गए। जैसे बांसवाड़ा क्षेत्र में "रूंख भाइला", कर्नाटक "अप्पिको चालूवल्लि आन्दोलन" जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उदयपुर में अरावली बचाओ, दार्जिलिंग क्षेत्रों में एकल प्रजाति वृक्ष रोपण विरोध। इसी प्रकार चमोली जिले के मलारी घाटी में वनों की नीलामी के विरोध में चण्डी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में किया गया संघर्ष भी उल्लेखनीय है। खेजड़ली के आन्दोलन की तर्ज पर ही टेहरी गढ़वाल के रेणी गांव में 1974 में गौरादेवी के नेतृत्व में कई महिलाओं ने वृक्षों से चिपक कर सरकारी ठेकेदारों, मजदूरों से संघर्ष किया। अगली घटना टेहरी गढ़वाल के अडवाणी गांव की है। यहाँ आन्दोलनकारी महिलाओं पर पुलिस ने गोलीबारी की व कई आन्दोलनकारियों को जेल में डाल दिया गया। 'चिपको आन्दोलन' को पहले सुन्दरलाल बहुगुणा व बाद में चण्डी प्रसाद भट्ट के साथ संयुक्त कुशल नेतृत्व प्राप्त हुआ। फलतः कुछ ही समय में यह आन्दोलन सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में फैल गया। इन सभी प्रयासों से दबाव में आकर उत्तर प्रदेश सरकार ने वन संरक्षण के पक्ष में कई सकारात्मक प्रतिबंध लगाए।

चिपको आन्दोलन के उद्देश्य (Objectives of Chipko Movement)

इस आन्दोलन के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गए हैं–

1. आर्थिक स्वावलम्बन के लिए वृक्षों के व्यावसायिक कटाव पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना।
2. वनों का सर्वेक्षण कर लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर उनके अधिकारों का पुर्ननिर्धारण करना।

3. बंजर भूमि को हरा–भरा करने के काम में स्थानीय लोगों की भागीदारी तथा वृक्ष खेती को प्रोत्साहन देना।

4. ठेकेदारी प्रथा समाप्त कर वन गतिविधियों के लिए ग्रामीण समितियाँ गठित करवाना।

5. वनाधारित कुटीर उद्योगों की स्थापना करना और इसके लिए कच्चा माल, अर्थ तथा तकनीक उपलब्ध करवाना।

6. स्थानीय पारिस्थितिकी और आवश्यकताओं पर आधारित प्रजातियों का संवर्धन करवाना।

7. वृक्षारोपण।

इन उद्देश्यों के अलावा 1977 में आन्दोलनकारी महिलाओं ने एक नारा दिया –

''क्या है जंगल के उपकार, पानी, मिट्टी ओर बयार
पानी, मिट्टी और बयार, जिन्दा रहने के आधार।''

इस आन्दोलन ने घोषणा की कि वनों का मुख्य उत्पाद ईमारती काष्ठ नहीं होकर मृदा, जल और ऑक्सीजन है। साथ ही आन्दोलन की दृष्टि में वनीकरण के लिए निम्न 5F को ध्यान में रखा जाता है–

(i) ईंधन (Fuel) (ii) चारा (Fodder)

(iii) खाद (Fertilizer) (iv) भोजन (Food)

(v) रेशा (Fibre)

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पृथ्वी पर पाई जाने वाली जीवों की विविधता जैवविविधता कहलाती है।

2. एक ही प्रजाति में मिलने वाले जीनों की विभिन्नता आनुवंशिक विविधता कहलाती है।

3. किसी क्षेत्र विशेष में मिलने वाली प्रजातियों की विभिन्नता प्रजातीय विविधता कहलाती है।

4. समष्टि, समुदाय व इनकी आपसी कार्यकलापों की जटिलता व पोषक तत्वों के चक्रण आदि की विभिन्नताएं पारिस्थिकी तंत्र विविधता कहलाती है।

5. भारत में जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र पश्चिमी घाट, इन्डो बर्मा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह एवं उत्तर पूर्वी भाग है।

6. जैव विविधता के संकटग्रस्त होने के कारण आवासों का विनाश, वन्य जीवों का शिकार एवं मानव व वन्य जीवों में संघर्ष है।

7. जब कोई कुल, जाति या प्रजाति सीमित क्षेत्र में ही वितरित होती है तो विशेषक्षेत्री कहलाती है।

8. ऐसी जातियाँ जिनके सदस्यों की संख्या गंभीर रूप से कम हो गयी है तथा वे विलुप्त होने के कगार पर हो संकटग्रस्त जातियाँ कहलाती हैं।

9. ऐसी जातियाँ जिनकी कुल जनसंख्या बहुत कम या छोटे क्षेत्रों में ही सीमित हो, दुर्लभ प्रजातियाँ कहलाती हैं।

10. विश्व के संकटापन्न जीव–जन्तु एवं पौधों की सूची लाल आंकड़ों की पुस्तक में प्रकाशित की गयी है।

11. जब पादप व जन्तुओं को उनके प्राकृतिक आवास में ही संरक्षित किया जाता है तो इसे स्वस्थाने संरक्षण कहते हैं।

12. विश्व का पहला राष्ट्रीय उद्यान यलोस्टोन राष्ट्रीय उद्यान अमेरिका 1872 में घोषित किया गया जबकि भारत में हेली या जिम कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान प्रथम राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया।

13. किसी जाति विशिष्ट के संरक्षण हेतु घोषित क्षेत्र वन्य जीव अभ्यारण कहलाता है। जहाँ पर वन्य जीवों को पकड़ने, मारने व शिकार करने जैसी गतिविधियाँ निषेध होती हैं।

14. राष्ट्रीय उद्यानों का उद्देश्य किसी विशेष वन्य जन्तु, पादपों, ऐतिहासिक वस्तुओं व प्राकृतिक दृश्यों को उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित करना है।

15. बाघों को आरक्षित करने के लिए भारत में टाइगर प्रोजेक्ट की स्थापना की गई। राजस्थान में प्रथम टाइगर रिजर्व सरिस्का में स्थापित किया गया था।

16. मानव व जैवमण्डल कार्यक्रम के तहत प्राकृतिक या मानव निर्मित क्षेत्रों को पारिस्थितिक–तंत्रों की सुरक्षा हेतु निर्धारित किये गये उन्हें जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र कहते हैं।

17. पादप या जन्तुओं को उनके प्राकृतिक आवासों से बाहर संरक्षित करना बाह्यस्थाने संरक्षण कहलाता है।

18. बाह्यस्थाने संरक्षण में जन्तु उद्यानों में जन्तुओं, वानस्पतिक उद्यानों में वनस्पतियों एवं एक्वेरिया में दुर्लभ एवं विलुप्त होने वाली मछलियों का संरक्षण किया जाता है।

19. जीन बैंक वह स्थान है जहाँ उन पौधों के जननद्रव्यों (बीज, परागकण व बीजाणु) को संरक्षित किया जाता है।

20. भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली में दुर्लभ या विलुप्त प्राय पादपों के जनन द्रव्यों को संरक्षित किया गया है।

21. राजस्थान में NBPGR के क्षेत्रीय केन्द्र जोधपुर में स्थित है। भारत में इसके कुल 5 क्षेत्रीय केन्द्र शिमला, त्रिपुरा, आकोला, भुवाली एवं जोधपुर में है।

22. खेजड़ली गांव में पेड़ों को बचाने के लिए विश्नोई समाज के

लोगों व उत्तराखण्ड के लोगों ने पेड़ों से चिपक कर विरोध प्रदर्शित किया इसलिए इनको 'चिपको आन्दोलन' कहा गया।

23. चिपको आन्दोलन की दृष्टि में वनीकरण के लिए 5F ईंधन (Fuel), चारा (Fodder), खाद (Fertilizer), भोजन (Food) एवं रेशा (Fibre) को ध्यान में रखा जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. लाल आंकड़ों की पुस्तक किसके लिए प्रसिद्ध है–
   (अ) विलुप्त पादपों के लिए
   (ब) संकटग्रस्त पादपों के लिए
   (स) संकटग्रस्त पादपों व प्राणियों के लिए
   (द) संकटग्रस्त प्राणियों के लिए

2. संकटग्रस्त जातियों के बाह्यस्थाने संरक्षण की विधि है–
   (अ) जैवमण्डल रिजर्व (ब) वन्यजीव अभ्यारण
   (स) राष्ट्रीय उद्यान (द) निम्नतापसंरक्षण

3. सीतामाता अभ्यारण किस जीव के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है–
   (अ) गोडावन (ब) अजगर
   (स) उड़न गिलहरी (द) हंगुल

4. राजस्थान के खेजड़ली गांव की वीरांगना जिसने हरे खेजड़ी के वृक्षों को बचाने के लिए अपनी ज़िन्दगी कुर्बान कर दी–
   (अ) अमृता देवी (ब) गौरा देवी
   (स) अहिल्या देवी (द) सुमित्रा देवी

5. 5 जून को मनाया जाता है–
   (अ) विश्व जनसंख्या दिवस
   (ब) विश्व स्वास्थ्य दिवस
   (स) विश्व पर्यावरण दिवस
   (द) विश्व एड्स दिवस

6. चिपको आन्दोलन किससे संबंधित है–
   (अ) पादप प्रजनन
   (ब) प्रोजेक्ट टाइगर
   (स) प्राकृतिक संसाधन संरक्षण
   (द) पादप या वन संरक्षण

7. राजस्थान का राज्य वृक्ष है–
   (अ) रोहिड़ा (ब) खेजड़ी
   (स) सागवान (द) नीम

8. बाह्यस्थाने संरक्षण की तकनीकी नहीं है–
   (अ) वनस्पति उद्यान (ब) जर्मप्लाज्म बैंक
   (स) राष्ट्रीय उद्यान (द) एक्वेरियम

9. राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR) कहाँ स्थित है–
   (अ) चेन्नई (ब) नई दिल्ली
   (स) बम्बई (द) बैंगलोर

10. जीवों का उनके प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षण कहलाता है–
    (अ) बाह्यस्थाने (ब) स्वस्थाने
    (स) जननद्रव्य संरक्षण (द) इनमें से कोई नहीं

11. राजस्थान की संकटग्रस्त जातियाँ हैं–
    (अ) चिंकारा (ब) गोडावन
    (स) काला हिरण (द) उपरोक्त सभी

12. ऐसी जातियाँ जो लुप्त होने के कगार पर हो, कहलाती है–
    (अ) संकटग्रस्त (ब) विलुप्त
    (स) सुभेद्य (द) दुर्लभ

13. कौनसी पादप जातियों का वर्णन लाल आंकड़ों की पुस्तक में किया जाता है–
    (अ) सुन्दर पुष्पीय (ब) संकटग्रस्त
    (स) औषधियुक्त (द) आर्थिक महत्व

14. भारत में प्रथम राष्ट्रीय उद्यान है–
    (अ) गिर राष्ट्रीय उद्यान
    (ब) काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान
    (स) जिम कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान
    (द) डाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान

15. चिपको आन्दोलन के प्रणेता है–
    (अ) बाबा आमटे (ब) लाडली देवी
    (स) गौरा देवी (द) सुन्दर लाल बहुगुणा

16. राजस्थान का जैवमण्डल है–
    (अ) रन ऑफ कच्छ (ब) सरिस्का
    (स) रणथम्भौर (द) थार रेगिस्तान

17. जैवमण्डल होते हैं–
    (अ) जाति विशिष्ट (ब) आवासीय विशिष्ट
    (स) पारितंत्र विशिष्ट (द) उपरोक्त सभी

18. एण्डेमिक पौधे होते हैं–
    (अ) सर्वव्यापी (ब) युथी
    (स) आर्कटिक क्षेत्री (द) सीमित क्षेत्री

19. राजस्थान में वन्य जीव संरक्षण करने वाला प्रमुख समुदाय है–

(अ) भील (ब) मीणा

(स) विश्नोई (द) गुर्जर

20. भारत में वन्य जीव संरक्षण कानून कब पारित हुआ था–

(अ) 1970 (ब) 1972

(स) 1981 (द) 1989

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न
(Very Short Answered Questions)

1. डब्लू डब्लू एफ का पूरा नाम क्या है?
2. स्वस्थाने संरक्षण क्या है?
3. निम्न ताप संरक्षण किसे कहते हैं?
4. एन बी पी जी आर का पूरा नाम क्या है?
5. जातियों के विलुप्त होने के प्रमुख कारण क्या है?
6. गौरा देवी ने वन संरक्षण पर क्या काम किया?
7. चिपको आन्दोलन क्या है?
8. राजस्थान के तीन वन्य जीव अभयारण्य के नाम लिखिए।
9. वन्य जीव अभ्यारण की क्या विशेषताएं होती हैं?
10. जीन बैंक क्या है?
11. बाघों के संरक्षण की परियोजना के नाम बताइये।
12. भारत की किन्हीं दो संकटग्रस्त पादप जातियों के नाम बताइये।
13. बाह्यस्थाने संरक्षण क्या है?
14. राष्ट्रीय उद्यान क्या है?
15. जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र किसे कहते हैं?
16. जैवविविधता क्या है?
17. भारत में जैवविविधता के हॉट स्पॉट कहाँ स्थित है?
18. भारत के किन्हीं दो संकटग्रस्त प्राणी जात के नाम बताइये।
19. बांसवाड़ा में वृक्ष बचाने के लिए कौनसा आन्दोलन हुआ?
20. भारत के किन्हीं तीन प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों के नाम लिखिए?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. जैवविविधता क्या है?इसके महत्व को समझाइये।
2. जैवविविधता के संवेदनशील क्षेत्र क्या है?
3. जैवविविधता के संकटग्रस्त होने के क्या कारण है?
4. भारत की संकटग्रस्त एवं लुप्त प्रायः जातियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. जैवविविधता के संरक्षण की विधियाँ कौनसी हैं?
6. राष्ट्रीय उद्यान क्या है?संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. वन्य जीव अभ्यारण की क्या विशेषताएं होती हैं?
8. बाघ आरक्षित क्षेत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. भारत में जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्रों को समझाइये।
10. राष्ट्रीय उद्यान एवं जैव मण्डल में क्या अन्तर होते हैं?स्पष्ट कीजिए।
11. जन्तु उद्यान क्या है? संक्षेप में समझाइये।
12. जननद्रव्य बैंक क्या होते हैं?
13. वनस्पति उद्यान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
14. चिपको आन्दोलन पर लेख लिखिए।
15. राजस्थान की जैवविविधता पर लेख लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. जैव विविधता एवं इसके महत्व तथा संकट के कारणों पर विस्तृत लेख लिखिए।
2. स्वस्थाने संरक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
3. बाह्यस्थाने संरक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

   (अ) राष्ट्रीय उद्यान (ब) विशेष क्षेत्री जातियाँ

   (स) वन अभ्यारण (द) बाघ आरक्षित क्षेत्र
5. जैवविविधता के संरक्षण को विस्तार से समझाइये।

उत्तरमालाः 1 (स), 2 (द), 3 (स), 4 (अ), 5 (स), 6 (द), 7 (ब), 8 (स), 9 (ब), 10 (अ), 11 (द), 12 (अ), 13 (ब), 14 (स), 15 (द), 16 (द), 17 (स), 18 (द), 19 (स), 20 (ब)

इकाई – 5
प्राकृतिक संसाधन
(Natural Resources)

परिचय (Introduction)

मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर है। भूमि, सूर्य का प्रकाश, मिट्टी, वायु, कोयला, वन तथा वन्य जीव अन्य सभी प्राकृतिक घटक है जो मानव जीवन में कहीं न कहीं उपयोगी होते हैं तथा जीवन को सुखमय एवं निरापद बनाते हैं।

संसाधन का अंग्रेजी शब्द Resource दो शब्दों क्रमशः Re + Source से मिलकर बना है। Re का अर्थ दीर्घ अवधि एवं Source का अर्थ है 'साधन'। इस प्रकार संसाधन का अर्थ वे स्त्रोत जिन पर दीर्घ अवधि तक मानव समाज निर्भर रहता है।

प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

ऐसे संसाधन जो उपयोग करने के लिए परोक्ष रूप से प्रकृति से प्राप्त होते हैं। प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।

प्रकृति के वे प्राकृतिक पदार्थ जो पृथ्वी पर सतत् जीवन एवं आर्थिक रूप से लाभकारी हो प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। प्रमुख प्राकृतिक संसाधन निम्न प्रकार हैं–

1. वायु
2. जल
3. सूर्य का प्रकाश
4. मृदा
5. वन संसाधन
6. खनिज संसाधन
7. खाद्य संसाधन
8. ऊर्जा संसाधन

कुछ प्राकृतिक संसाधनों का विस्तृत विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

वन संसाधन
(Forest Resources)

प्राकृतिक संसाधनों में वनों का प्रकृति के स्वरूप को निखारने में महत्वपूर्ण योगदान है। वनों से मानव को अनेक उत्पाद प्राप्त होते हैं तथा साथ–साथ अनेक जीवों को जीवन भी प्रदान करते हैं। वनों का महत्व निम्न प्रकार है–

(i) वनों से ईंधन एवं जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है।

(ii) वनों से इमारती लकड़ी प्राप्त होती है।

(iii) वनों से गोंद, रेजिन, फल आदि प्राप्त होते हैं।

(iv) वनों से हमें अनेक औषधियाँ प्राप्त होती हैं।

(v) वनों से वन्य जीवों को आवास एवं पशुओं का चारा उपलब्ध होता है।

(vi) उद्योगों के लिए कच्चा माल (फर्नीचर, कागज एवं दियासलाई) प्राप्त होता है।

(vii) वन भूस्खलन रोककर मृदा का संरक्षण करते हैं।

(viii) भूक्षरण को रोककर बाढ़ नियंत्रण में सहायक होते हैं।

(ix) वन वर्षा एवं जलवायु को नियंत्रित करते हैं।

उपरोक्त महत्व से यह निष्कर्ष निकलता है कि वन जहाँ एक ओर आर्थिक दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण उत्पाद प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर पर्यावरण संतुलन द्वारा जीवों के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

वनों का वर्गीकरण (Classification of Forests)

वर्ष 2013 की वन रिपोर्ट के अनुसार (आंकड़े सेटेलाइट से उपलब्ध है) देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 21.23 प्रतिशत भाग ही वनों से आच्छादित है। इसके अनुसार देश के 69.79 मिलियन हैक्टेयर भूमि पर वन क्षेत्र है। हालांकि इनका वितरण अत्यन्त असमान है। उदाहरणार्थ अरूणाचल प्रदेश में 79%, असम में 42.4%, मध्यप्रदेश में 38% प्रतिशत, बिहार में 18% एवं उत्तर प्रदेश में 15% है जबकि राजस्थान में यह केवल 4% है। पूर्वी हिमालय एवं तराई क्षेत्रों में सदाबहार वन पाये जाते हैं जबकि राजस्थान, पश्चिमी पंजाब एवं उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में शुष्क वन पाये जाते हैं।

प्रशासनिक व्यवस्था व जलवायवीय विषमता के आधार पर वनों को तीन प्रकारों में बांटा गया है–

(i) संरक्षित वन (Protected forest) – सरकार के अधीन इन वनों के उपयोग का अधिकार कुछ शर्तों पर व्यक्तियों को दे दिया जाता है। वनों का 30 प्रतिशत भाग इसके अन्तर्गत आता है।

(ii) रक्षित वन (Reserved forest) – ये भी सरकार की सम्पत्ति होते हैं। इस प्रकार के वनों को प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए साधन के रूप में सुरक्षित बनाये रखते हैं। इसके अन्तर्गत 53% वन भाग आता है।

(iii) अवर्गीकृत वन (Unclassified forest) – इस प्रकार के वनों को सरकार निजी व्यक्तियों के ठेके पर देती है। वे वनों की उपज को बेचते हैं, पशु चराई के लिए प्रयोग करते हैं। सरकार को इससे आमदनी होती है। इसके अन्तर्गत 17% वन आते हैं।

भारत की जलवायवीय विषमता एवं प्राकृतिक कारणों से वन वितरण के आधार पर वन निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) सदाबहार वन (Evergreen forest) – इस प्रकार के वनों में 200 से.मी. अधिक वार्षिक वर्षा होती है। ये वन सदैव हरे–भरे रहते हैं। ये वन पश्चिमी घाट, असम, अण्डमान निकोबार, उड़ीसा, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल में पाये जाते हैं। इनमें रबर, चंदन, बांस, नारियल व बेंत के वृक्ष पाये जाते हैं।

(ii) मानसूनी वन (Rain forest) – इस प्रकार के वनों में वार्षिक वर्षा 100–200 से.मी. तक होती है। भारत का अधिकांश वन क्षेत्र इसी के अन्तर्गत आता है। इन्हें मानसूनी एवं पतझड़ वन या उष्णकटिबंधीय शुष्क पतझड़ वन कहते हैं। ये वन यू.पी., बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश व केरल में पाये जाते हैं। इन वनों में साल, शीशम, सागवान, नीम, चंदन, जामुन व सेमल के वृक्ष पाये जाते हैं।

(iii) मरूस्थलीय या शुष्क वन (Desert or Dry forests) – वे वन क्षेत्र जहाँ पर वार्षिक वर्षा 100 से.मी. से कम होती है। ये वन राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, यू.पी. के मैदानी भाग एवं कर्नाटक में पाये जाते हैं। इन वनों में बबूल, नागफनी, आक, कंटीली झाड़ियाँ, बेर व ताड़ के वृक्ष पाये जाते हैं।

(iv) पर्वतीय वन (Hilly forest) – पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाने वाले वन जिन्हें अर्ध उष्ण या शीतोष्ण वन भी कहते हैं। पहाड़ों की विभिन्न ऊंचाइयों पर भिन्न–भिन्न आकार के वन पाये जाते हैं। हिमालय, नीलगिरी की पहाड़ियों आसाम एवं पश्चिमी बंगाल में ये वन पाये जाते हैं। इनमें औषधीय वृक्ष पाये जाते हैं।

(v) डेल्टाई वन (Delta forest) – ये वन गंगा, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा आदि के डेल्टाई क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसके अन्तर्गत उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, गुजरात, केरल, आंध्र प्रदेश आदि क्षेत्र आते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– पुलिन वन एवं ज्वारीय वन।

(vi) नदी तट वन (River bank forest) – ये वन नदी के तटों पर पाये जाते हैं तथा इनमें आने वाली बाढ़ से पोषित होते हैं। इनमें इमली, जामुन, शीशम एवं खैर आदि के वृक्ष आते हैं।

वनों से लाभ (Benefits from Forests)

वनों से अर्थव्यवस्था व समाज को बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

(i) वन पर्यावरणीय संतुलन को ठीक करने के साथ–साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

(ii) वनों से ईंधन एवं जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है।

(iii) साल, सागवान, देवदार, शीशम, चंदन आदि से औद्योगिक लकड़ियाँ प्राप्त होती है।

(iv) वनों से लाख, गोंद, कत्था, मोम, बांस, बेंत व जड़ी–बूटियाँ भी प्राप्त होती हैं।

(v) वनों पर कागज, दियासलाई, रबर, वार्निश, रंग व तेल आदि उद्योग भी आश्रित है।

(vi) वनों से प्राप्त वस्तुओं से लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास होता है।

(vii) वनों से पशुओं को पौष्टिक आहार प्राप्त होता है जिससे पशुधन के अन्य लाभ प्राप्त होते हैं।

(viii) वन भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने में सहायक है।

(ix) मानसून की अनिश्चितता को नियंत्रित करके अनावृष्टि व अल्पवृष्टि से बचाते है।

(x) जलवायु को सम करते हैं और बाढ़ की विभीषिका से बचाते हैं। वन क्षेत्रों की नदियों में बाढ़ कम आती है।

(xi) मरूस्थलीकरण को रोकने के लिए वनों का प्रसार आवश्यक होता है।

(xii) वनों के कारण सतही एवं भूमिगत जल संसाधन भी सुरक्षित रहते हैं।

(xiii) प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये रखकर पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

राष्ट्रीय वन नीति (National Forest Policy)

1988 में प्रदत्त इस नीति के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित है–

(i) पर्यावरणीय स्थिरता बनाये रखना एवं पारिस्थितिक संतुलन का पुनर्निर्माण।

(ii) प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण।

(iii) भूक्षरण को रोककर भूसंरक्षण करना।

(iv) वनों का विस्तार बढ़ाना।

(v) ईंधन, पशु चारा और इमारती लकड़ी की आवश्यकता पूरी करना।

(vi) वनोपज को बढ़ाना।

(vii) वनोपज की उपयोगिता को प्रोत्साहित करना एवं उनके विकल्पों की उपलब्धि को बढ़ाना।

(viii) महिलाओं के सहयोग से वन संरक्षण हेतु जन चेतना द्वारा वन संरक्षण को आन्दोलन के रूप में चलाना।

राष्ट्रीय वन नीति का मुख्य उद्देश्य 33 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र को वनों से आच्छादित करना है। इसी प्रकार की नीति राजस्थान सरकार ने भी बनाई है जो वनों के संरक्षण एवं विस्तार पर कार्य कर रही है।

निर्वनीकरण (Deforestation)

वनों के विनाश या निरन्तर कटाई से निर्वनीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है। निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वृक्षों की कटाई की जाती है–

(i) इमारती लकड़ी

(ii) कृषि योग्य भूमि का विकास

(iii) औद्योगिक विकास

(iv) परिवहन हेतु सड़क निर्माण

(v) जलाऊ लकड़ी

(vi) कागज निर्माण

(vii) खनन कार्य

(viii) भवन निर्माण सामग्री

वनों के विनाश के कारण पर्यावरण पर निम्न प्रभाव पड़ते हैं–

(i) वन्य जीवों एवं वनस्पतियों के आवासों का नष्ट होना।

(ii) मृदा अपरदन से शीर्ष उपजाऊ मृदा का विनाश।

(iii) मृदा अपरदन एवं अतिवृष्टि की स्थिति में बाढ़ आना।

(iv) घास के मैदानों का नाश।

(v) वनोपज जैसे गोंद, औषधी, रेजिन, फल आदि में कमी।

(vi) पर्यावरण असंतुलन से अनावृष्टि।

वनों के विनाश को रोकने के उपाय

वनों के विनाश को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करना अत्यन्त आवश्यक है–

(i) सुरक्षित वन क्षेत्रों में खनन की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

(ii) इमारती लकड़ी के साथ लोहे व अन्य निर्माण सामग्री का उपयोग करना।

(iii) पौधों के औषधिय एवं धार्मिक महत्व का प्रचार प्रसार करना ताकि मनुष्य उनकी कटाई न करें।

(iv) जितने वृक्ष काटे जाएं उनसे कई गुना अधिक संख्या में वृक्ष लगाये जाएं।

(v) जलाऊ लकड़ी के लिए तीव्र गति से बढ़ने वाले वृक्षों का रोपण करना।

(vi) घरों में रसोईघरों में बायोगैस एवं एल.पी.जी. गैस के उपयोग को बढ़ावा देना।

(vii) वन संरक्षण कानूनों की सख्ती से पालना करवाना।

खाद्य संसाधन (Food Resources)

प्राकृतिक एवं कृत्रिम रूप से उत्पादित पदार्थ जिन्हें मनुष्य अपने भोजन के रूप में काम में लेता है, खाद्य संसाधन कहलाते हैं। मूल रूप से मनुष्य के खाद्य आपूर्ति स्त्रोत निम्न है–

;पद्ध कृषि फसलें (Agricultural crops) – सम्पूर्ण विश्व की खाद्य आपूर्ति का अधिकतम भाग कृषि फसलों से आता है। वनस्पतियों की लगभग तीन हजार जातियाँ कृषि उपयोग हेतु परखी जा चुकी है। इनमें से 300 जातियाँ ही भोजन प्राप्ति हेतु उगाई जाती है। लगभग 100 जातियों का बड़े स्तर पर उत्पादन होता है। लेकिन 20 फसलों पर ही सम्पूर्ण विश्व की खाद्य आपूर्ति निर्भर है।

(ii) पालतू पशु (Domestic animals) – प्राचीन काल से ही आदिमानव अपना भोजन पशुओं से प्राप्त करता रहा है। आधुनिक विश्व में भी खाद्य आपूर्ति के लिए गाय, भैंस, ऊंट, भेड़, बकरी, सुअर आदि से प्राप्त विभिन्न उत्पादों पर निर्भर है। इसके अलावा मुर्गी एवं अन्य पक्षियों का उपयोग भी भोजन प्राप्ति हेतु किया जाता है।

(iii) मछली (Fish) – विश्व का बड़ा हिस्सा मछली आधारित खाद्य पर निर्भर है। एशिया व यूरोप के कई देश इस प्रोटीन युक्त भोजन का मुख्य आधार है। इसके लिए अनेक प्राकृतिक व कृत्रिम जल स्त्रोतों में मछलियों व अन्य खाने योग्य जल जीवों का उत्पादन किया जाता है। यह उत्पादन स्वच्छजलीय या समुद्री जलीय हो सकता है जिसमें कैटफिश, मिल्क फिश, मिनों, क्रेफिश आदि मछलियों का उत्पादन करते हैं।

अतिचारण के प्रभाव (Effects of Overgrazing)

पशुओं का चारागाह में चारण सामान्य प्रक्रिया है लेकिन चारण जन्तुओं के कम घनत्व पर चारण का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता अपितु व्यवस्थित चारण एवं जन्तुओं के अपशिष्ट, खाद के रूप में मिलने के कारण पौधों की वृद्धि होती है। लेकिन चारण जन्तुओं का घनत्व अधिक हो तो पर्यावरण पर अनेक विपरीत प्रभाव पड़ते हैं। विश्व के भूमध्यसागरीय देशों विशेषकर तुर्की, यूनान, उत्तरी अफ्रीकी तट एवं पश्चिमी एशिया में अत्यधिक

पशुचारण का प्रभाव देखने को मिलता है। भारत में हिमालय के ढालों, दक्षिण के पठारी भाग एवं राजस्थान में अनियंत्रित पशुचारण से पर्यावरण को काफी क्षति हो रही है। अतिचारण के कारण पड़ने वाले प्रभाव निम्न हैं–

(i) अतिचारण के फलस्वरूप मृदा अपरदन की दर बढ़ जाती है तथा मृदा की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

(ii) अतिचारण से संवेदनशील पौधों की प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती है तथा उनके स्थान पर कंटीली झाड़ियों एवं अनुपयोगी प्रजातियों का प्रभुत्व बढ़ जाता है।

(iii) दूरदराज से आये पशु कभी–कभी अपने साथ नये खरपतवार एवं बीमारियाँ लाते हैं जो अन्य पशुओं के लिए घातक होती है।

(iv) पशुओं को खुले चारागाहों में छोड़ने पर उनके द्वारा त्यागा हुआ अपशिष्ट एकत्रित हो वर्षा जल के साथ बहकर जल स्त्रोतों में पहुंच जाता है। तथा इन्हें प्रदूषित कर देता है।

(v) पशुओं का अपने आवासों से चारागाहों तक पंक्तिबद्ध विचरण करने से उनके खुरों से मिट्टी धीरे–धीरे कट जाती है जो वर्षा जल के साथ बहकर गली (Gullies) का निर्माण कर देती है। मृदा की समतलता खत्म हो जाने से भूमि कृषि योग्य नहीं रहती।

(vi) अत्यधिक पशुचारण से धरातल की परिवर्तनशीलता बढ़ जाती है। फलस्वरूप धरातलीय वातावरण ठण्डा हो जाता है। तथा वर्षा की मात्रा घट जाती है।

कृषि के प्रभाव (Effects of Agriculture)

कृषि विश्व का सबसे पुराना एवं बड़ा उद्योग है। मानव की जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ कृषि में भी तीव्र विस्तार हुआ। विश्व की आधे से अधिक जनसंख्या का जीवनयापन कृषि आधारित है। कृषि का विकास मूलतः दो रूपों में हुआ – (i) कृषि क्षेत्र का विस्तार (ii) प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ खाद्य उत्पादन में वृद्धि हुई तो दूसरी ओर वन क्षेत्र एवं मृदा की गुणवत्ता का ह्रास हुआ। कृषि का पर्यावरणीय प्रभाव मूलतः निम्न कारणों से पड़ता है–

(i) कृषि क्षेत्र में विस्तार (Expansion of agricultural area) – कृषि क्षेत्र में विस्तार के परिणामस्वरूप वनों का विनाश, मृदा अपरदन, अतिचारण, मरुस्थलीकरण जैसे कुप्रभाव पड़ते हैं।

(ii) कृषि प्रक्रियाएं (Agricultural processes) – प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हेतु कृषि प्रक्रिया में अनेक परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप मृदा अपरदन में वृद्धि, जल स्त्रोत एवं मृदा का निम्नीकरण, मरुस्थलीकरण, उर्वरता का ह्रास, लवणता, विषाक्त रसायनों का एकत्रण, जल प्रदूषण, सुपोषीकरण आदि अनेक प्रभाव पड़ते हैं।

(iii) कृषि उत्पादों का वितरण –आधुनिक कृषि में उत्पादों के वितरण हेतु ट्रक, मालगाड़ी आदि प्रयोग में लाये जाते हैं जिनसे प्रदूषण की समस्या बढ़ती है। प्राचीन कृषि में कृषि उत्पादों का वितरण बैलगाड़ी, ठेलागाड़ी आदि से किया जाता था जो प्रदूषण रहित थे।

आधुनिक कृषि वैज्ञानिक तरीकों से की जा रही है जिससे कृषि उत्पादन में क्रान्ति आ गई है। प्राचीन समय में कृषि अवैज्ञानिक तरीकों से की जाती थी तो उत्पादन भी कम था। हरित क्रान्ति के प्रथम 35 वर्षों में कृषि उत्पादन दुगुना हो गया लेकिन इससे पर्यावरण को भी काफी क्षति हुई है। भारत में जो कभी गेहूँ, चावल जैसे खाद्यानों का आयात करता था वहीं आज इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर है। आधुनिक कृषि में निम्नलिखित वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग किया जाता है–

(i) उन्नत बीजों का उपयोग

(ii) पोषक तत्वों एवं उर्वरकों का उपयोग

(iii) फसलों की कीटों एवं पीड़कों से सुरक्षा

(iv) फसलों की कवक, जीवाणु, विषाणु जनित बीमारियों से रक्षा

(v) आधुनिक तरीकों से सिंचाई

(vi) पर्याप्त ऊर्जा संसाधनों का उपयोग।

आधुनिक कृषि में विभिन्न वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पर्यावरण पर उत्पन्न होता है जो निम्न प्रकार है–

(i) कृषि विस्तार क्षेत्र में वृद्धि के कारण प्राकृतिक वन एवं वनस्पतियाँ नष्ट हो गयी जिसके कारण मृदा अपरदन में वृद्धि हुई। मृदा के अपरदन के कारण ऊपरी सतह से उपस्थित पोषक तत्व बह कर चले गये जिससे मृदा की उर्वरता में कमी आ गई।

(ii) अपरदन के परिणामस्वरूप विभिन्न जल स्त्रोतों झीलों, तालाबों, नदियों आदि में भारी मात्रा में मृदा तलछट जमा हो जाते हैं। इसके कारण जल की गुणवत्ता में कमी हो जाती है। जल स्त्रोतों की गहराई कम हो जाती है। मत्स्य उद्योग पर भी प्रभाव पड़ता है।

(iii) आधुनिक कृषि में पैदावार बढ़ाने हेतु प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर की दर से 30–250 किग्रा नाइट्रोजन एवं 15–125 किग्रा फॉस्फोरस उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। इनका आधा भाग फसलों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। तथा कुछ हिस्सा वाष्पित हो वायुमण्डल में मिल जाता है। शेष उर्वरक भूमि प्रदूषण के साथ–साथ जल को प्रदूषित कर जल स्त्रोतों का सुपोषीकरण करते हैं। इसके अतिरिक्त उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा की उर्वरता एवं रासायनिक गुणवत्ता जैसे क्षारीयता व अम्लीयता भी परिवर्तित हो जाती है।

(iv) कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु कृषि फसलों को कीटों,

पीड़कों आदि से बचाने के लिए विभिन्न कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। ये कृषि रसायन पौधों व मनुष्यों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। वायु, जल व मृदा प्रदूषण करते हैं तथा जैव आवर्द्धन द्वारा खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जीवों तक पहुंच जाते हैं।

(v) कृषि संबंधी कारकों से रेगिस्तान का विस्तार भी होता है। जिसमें अतिचारण, उपयुक्त कृषि पद्धति प्रयोग न करना, चारागाहों को कृषि भूमि में बदलना, अत्यधिक सिंचाई, विषैले कृषि रसायनों का प्रयोग आदि कारक प्रमुख है।

(vi) कृषि विस्तार के फलस्वरूप जैव विविधता में कमी आई है इसके कारण अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। कई संकटग्रस्त हो गयी है।

(vii) कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग, वनों के विनाश व मृदा अपरदन के कारण प्राकृतिक जैव भू रासायनिक चक्रों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(viii) आधुनिक कृषि में जीवाश्मीय ईंधन का उपयोग, खरपतवार जलाना, वनों में आग आदि से ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप वायुमण्डल के तापक्रम में वृद्धि हुई है।

विश्व खाद्य समस्याएं एवं इसके कारण
(World food Problems and its reasons)

विश्व में हरित क्रान्ति के प्रथम 35 वर्षों में कृषि खाद्य उत्पादन में लगभग दुगुनी वृद्धि हुई। लेकिन इसके साथ–साथ पर्यावरण की क्षति भी हुई। उदाहरणार्थ फिलीपीन्स के अन्तर्राष्ट्रीय चावल शोध संस्थान में चावल की विशिष्ट उप प्रजाति को हरित क्रान्ति द्वारा एक उच्च उत्पादक किस्म के रूप में विकसित किया गया लेकिन इसके लिए भारी मात्रा में उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती है जो पर्यावरण के लिए नुकसानदायक है। इसी क्रम में अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ सुधार संस्थान मेक्सिको में मक्का की रोगरोधी प्रजाति विकसित की गई। हरित क्रान्ति द्वारा गेहूँ की बौनी किस्में विकसित कर भारत में गेहूँ का रिकार्ड उत्पादन किया गया। इस प्रकार की सफलताओं के बाद भी आज भी विश्व के कई देश खाद्य की अपर्याप्तता का सामना कर रहे हैं। कुपोषण की समस्या विश्वव्यापी है जिसके प्रमुख दो कारण है–

(i) उपलब्ध भोजन में पर्याप्त ऊर्जा की कमी।

(ii) उपलब्ध भोजन में पौष्टिक तत्वों जैसे विटामिन्स, प्रोटीन, खनिज लवणों का अभाव या कमी।

इनके कारण बच्चों का विकास बाधित होता है तथा उनमें बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

विश्व खाद्य समस्या के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित है–

(i) जनसंख्या वृद्धि (Population growth) – विश्व में बढ़ती जनसंख्या खाद्य आपूर्ति समस्या एवं कुपोषण का सबसे बड़ा कारण है। विश्व खाद्य उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि भी हो रही है। इस कारण से प्रति व्यक्ति खाद्य आपूर्ति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तथा आज भी खाद्यानों की कमी महसूस की जा रही है।

(ii) भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical conditions) –अनेक देशों व क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियाँ इस प्रकार की है कि वहाँ पर खाद्यानों के उत्पादन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं है। जैसे भारत में पश्चिमी राजस्थान।

(iii) प्राकृतिक आपदाएं (Natural calamities) – विनाशकारी बाढ़, भूकम्प, सूखा, तूफान, कीटों व बीमारियों आदि से कृषि उत्पादन अत्यधिक प्रभावित होता है।

(iv) वितरण प्रणाली (Distribution system) – अनाजों के पर्याप्त भण्डारण के पश्चात् भी खाद्य वितरण प्रणाली के दोषपूर्ण अव्यवस्थित होने से खाद्य समस्या यथावत बनी रहती है।

विश्व खाद्य आपूर्ति में वृद्धि के लिए निम्न उपाय किये गए हैं–

(i) कृषि योग्य भूमि का लगातार विस्तार।

(ii) सिंचाई के साधनों एवं सिंचाई की व्यवस्था में सुधार।

(iii) जैव उर्वरकों की पर्याप्त व्यवस्था।

(iv) जल संवर्धन का उपयोग।

(v) उन्नतशील उच्च गुणवत्ता युक्त बीजों का प्रयोग।

(vi) उचित वितरण प्रणाली।

जल संसाधन
(Water Resources)

जीवन का आधार जल है। जल का 97.3 प्रतिशत भाग महानगरों एवं अन्तर्देशीय सागरों में तथा शेष 2.7 प्रतिशत हिमनदी, बर्फ शीर्षो एवं मीठे पानी की झीलों, नदियों तथा भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। जल के वितरण एवं प्राप्ति के अनुसार इसे दो प्रकारों में बांटा जा सकता है–

I. स्थलीय जल संसाधन II. महासागरीय जल संसाधन

I. स्थलीय जल संसाधन
(Terrestrial Water Resources)

संसार की समस्त जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग नदियों की घाटियों, डेल्टाओं, नहरों के प्रवाह क्षेत्रों तथा झील प्रदेशों में बना रहता है। इन जल संसाधनों में नदी, नालें, झीलें, तालाब व तलैया आदि सम्मिलित होते हैं।

महत्व (Importance)

स्थलीय जल संसाधनों का महत्व निम्न प्रकार है–

(i) पीने के पानी हेतु

(ii) सिंचाई हेतु

(iii) भोज्य पदार्थ एवं मछली प्राप्ति

(iv) कारखानों के लिए पानी

(v) जल विद्युत परिवहन

(vi) वाष्प शक्ति उत्पादन

(vii) वर्षा से प्राप्त जल की निकासी हेतु

(viii) नौपरिवहन मार्ग की उपलब्धि

(ix) मृदा निर्माण

(x) वायुमण्डलीय आर्द्रता में वृद्धि

(xi) प्राकृतिक सौन्दर्यता का निर्माण

(xii) नदियों द्वारा देश–प्रदेश के मध्य सीमा निर्धारण

(xiii) बस्तियों का बसाव

(xiv) स्वास्थ्य के विकास में सहायता।

जल संसाधन जहाँ उपयोगी है वहीं पर कभी–कभी विनाश या रोगों का कारण भी बन जाते हैं। नदियों में बाढ़ से जन–धन दोनों की हानि होती है।

महासागरीय जल संसाधन (Oceanic Water Resources)

हमारी पृथ्वी का लगभग 72% भाग महासागरीय जल से आच्छादित है जिसकी औसत गहराई 3.5 कि.मी. है। प्रशान्त महासागर में पृथ्वी का लगभग आधा जल समाया हुआ है। अन्य महासागर अंध महासागर, हिन्द महासागर एवं आर्कटिक महासागर।

महासागरीय जल की मुख्य विशेषताएं

(i) इस जल में लगभग 3.5% मात्रा लवण की होती है। इसमें सोडियम क्लोराइड सबसे प्रमुख है।

(ii) सामान्य जल से इसका घनत्व कुछ अधिक होता है।

(iii) महासागरों में गतियाँ, लहरें व ज्वार भाटा होता है।

(iv) इसमें अनेक जन्तु व कई प्रकार के पौधें पाये जाते हैं।

(v) स्थल व समुद्र की सम्पर्क रेखा को समुद्र तल कहते हैं।

महासागरों का मनुष्य के लिए उपयोग (Uses of Oceans for Man)

(i) जलवायु को प्रभावित कर वर्षा कराते हैं।

(ii) खाने के लिए मछलियाँ प्राप्त होती हैं।

(iii) पेट्रोल, प्राकृतिक गैस व अभ्रक जैसे कुछ खनिज पदार्थ प्राप्त होते हैं।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन (98%) इसी जल द्वारा होता है।

(v) लहरों व ज्वार भाटे से शक्ति उत्पन्न की जाती है।

(vi) महासागरों से प्राप्त वनस्पति तटीय प्रदेश के निवासियों द्वारा भोजन के रूप में काम में ली जाती है।

भूमिगत जल (Underground Water)

भूमिगत जल पीने एवं सिंचाई के रूप में काम आता है। इसका उपयोग अब उद्योगों में भी होने लगा है। वर्षा के द्वारा भूमिगत जल स्तर में वृद्धि होती है तथा विभिन्न कार्यों हेतु पानी आसानी से सुलभ होने लगता है। कई वर्षों से वर्षा काल के दौरान कम व अनियमित वर्षा एवं अनियमित भूजल दोहन के कारण भूमिगत जल स्तर गिरता जा रहा है। इसके अतिरिक्त खनन, हैडपम्प, बोरिंग, कृषि हेतु जल के लिए गहराई तक खुदाई भी भूमिगत जल स्तर गिरने के प्रमुख कारण है। भारत में भूमिगत जल स्तर को गिरने से रोकने के लिए निम्न उपाय है–

(i) कम पानी में अधिक उपज देने वाली फसलें उगाना।

(ii) नदियों के पेंदें में कुएं बनाकर जल स्तर बढ़ाना।

(iii) जल के अनावश्यक उपयोग को घटाना।

(iv) गांव के तालाब, नाडियों आदि का पुनरुद्धार।

(v) वर्षा जल को छत पर रोक कर संचयन करना।

(vi) जल ग्रहण क्षेत्र का प्रबंधन करना।

भारत में वार्षिक पुनः चार्ज रेट 24 मिमी./वर्ष से 198 मिमी./वर्ष है। अगर समय रहते पानी की लम्बी अवधि तक उपयोग की योजना नहीं बनाई गई तो मनुष्य आपस में पानी के लिए लड़ेंगे और समाज में अशांति उत्पन्न होकर गृहयुद्ध जैसी भयावह स्थिति बनेगी। हमारे देश में विभिन्न राज्यों में भूमिगत जल का उपयोग का प्रतिशत निम्न तालिका में प्रदर्शित है–

खनिज संसाधन (Mineral Resources)

खनिज संसाधन का अर्थ (Meaning of Mineral Resources)

सामान्य शब्दों में वे सभी पदार्थ जो खनन (mining) द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, खनिज कहलाते हैं। जैसे– कोयला, पेट्रोलियम एवं धात्विक अयस्क (ores)। वैज्ञानिक शब्दावली में खनिज का तात्पर्य एक ऐसे अजैव (inorganic) पदार्थ से है जो एक विशिष्ट रासायनिक संगठन (composition) रखता हो तथा उसके कणों के मिश्रण से शैल रचना होती हो। सामान्यतः सभी खनिज रवेदार (crystalline) होते हैं। कुछ खनिज एक ही तत्व से निर्मित होते हैं, जैसे– हीरा, कार्बन आदि, परन्तु अधिकांश खनिज दो तत्वों वाले होते हैं, जैसे– लोहे और सल्फर आदि के पाइराइट्स (Pyrites)। खनिज के अनेक गुणधर्म (properties) होते हैं– क्रिस्टलीय रूप, कठोरता, विशिष्ट घनत्व (specific gravity), रंग, चमकीलापन या

चमक (lustre) और पारदर्शिता (transparency), रेखित (streak), विभंगित एवं विदलनी (cleavage) संरचना, आदि।

मानव और खनिज संसाधन
(Man and Mineral Resources)

हमारी सभ्यता धात्वीय खनिजों (Metallic minerals) पर आधारित है। खनिज पदार्थ संसार के सबसे अधिक मूल्यवान संसाधनों में से हैं। किसी न किसी रूप में वे मनुष्य के लिये परमावश्यक हैं। नमक, आयोडीन और फ्लुओरीन जैसे खनिज तो मनुष्य के भोजन के अंग हैं; इनके बिना मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। हमारी मशीनें धातुओं की बनी हैं, और वे खनिज ईंधनों से चलती हैं। संसार के रेलमार्गों द्वारा जितना वजन खनिज पदार्थों का ढोया जाता है, इतना वजन संसार के अन्य सभी संसाधनों का भी मिलकर रेल द्वारा नहीं ढोया जाता।

मानव सभ्यता के इतिहास में, अब से लगभग 8 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य फिंलट (flint) प्रस्तर के औजार बनाने लगा था। बहुत लम्बे समय तक प्रस्तर शिल्प (stone tools) का प्रयोग करने के बाद अब से लगभग 20 हजार वर्ष पूर्व मनुष्य धातुओं का प्रयोग करना सीख गया था। सबसे पहले मनुष्य ताँबे के छोटे औजार बनाना जानता था। वह काल ताम्र–युग (Copper-age) कहलाता है। उसके पश्चात् मनुष्य ने कांसे का प्रयोग करना सीखा; वह काल कांस्य का युग (Bronze age) कहलाया। वर्तमान काल को यंत्र–युग कहा जाता है। आज की सभ्यता, शक्ति और यंत्रों की सभ्यता है। आज कोयला, खनिज तेल और विद्युत के कारखाने चल रहे हैं; तथा आण्विक खनिजों (atomic minerals) ने मनुष्य के हाथों में अपार शक्ति सौंप दी है। इस प्रकार वर्तमान सभ्यता 'खनिज सभ्यता' (mineral civilization) कहलाती है।

भारत में खनिजों के खनन एवं उपयोग का इतिहास सैंकड़ों वर्ष पुराना है। प्राचीन काल में हमारे देश में लोहा, तांबा, सीसा, जस्ता, स्वर्ण, चांदी एवं कोबाल्ट का उत्पादन किया जाता था। प्राचीन खनन कार्य एवं धातु निष्कर्षण के चिह्न आज राजस्थान, बिहार, एवं दक्षिणी भारत में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। वर्तमान में भारत में कोयला, लौह–अयस्क, मैगनीज, अयस्क, अभ्रक, स्वर्ण, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, ताम्र अयस्क, सीसा एवं जस्ता अयस्क, कांच बालू (Glass sand), क्रोमाइट, कायनाइट, मेग्नेसाइट, सिलिमेनाइट, स्टीएटाइट, जिप्सम, मोनेजाइट, बेरिल, चूना–पत्थर, डोलोमाइट, मुल्तानी मिट्टी एवं बॉक्साइट का उत्पादन किया जाता है। इनके अतिरिक्त अल्प मात्रा में उपलब्ध कई अन्य खजिनों जैसे– एन्टिमनी, ऐपाटाइट, बेराइट, ऐस्बेस्टोस, फेल्सपार, ग्रेफाइट, टंगस्टन एवं जरकॉन आदि का उत्पादन भी होता है।

भारत के प्रमुख आर्थिक खनिज

भारत में निम्न खनिजों के विशाल निक्षेप पाये जाते हैं:–

1. लौह अयस्क एवं मैगनीज अयस्क
2. ऐल्युमिनियम–मैग्नीशियम एवं टाइटेनियम के अयस्क
3. उच्चताप सह खनिज
4. दुर्लभ मृदा धातु (Rare earth)
5. अभ्रक
6. थोरियम एवं रेडियोऐक्टिव खनिज

उपर्युक्त खनिजों के मामले में भारत की स्थिति सुखद है।

अल्प मात्रा में पाये जाने वाले आर्थिक महत्व के खनिज : ऐसे खनिज जो अल्प मात्रा में पाये जाते हैं, परन्तु उनका आर्थिक महत्व काफी होता है, वे हैं–

1. बिस्मथ	2. केडमियम	3. सीसा
4. ग्रेफाइट	5. पारा	6. निकल एवं कोबाल्ट
7. प्लेटिनम	8. चांदी	9. गंधक
10. टिन	11. टंगस्टन	12. जस्ता
13. पेट्रोलियम		

इस वर्ग में आने वाले खनिजों के संबंध में भारत की स्थिति निराशाजनक है। इन खनिजों का अन्य देशों से आयात करना पड़ता है।

सामरिक खनिज : ये आवश्यक खनिज जिनकी देश के भीतर पूर्ति अपर्याप्त अथवा स्थितिज रूप से अपर्याप्त (Potentially inadequate) होती है उन्हें सामरिक खनिज कहते हैं। प्रत्येक देश के लिए सामरिक खनिज भिन्न हो सकते हैं।

खनिजों का वर्गीकरण
(Classification of Minerals)

खनिजों के गुण धर्म एवं उपयोग के अनुसार खनिजों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है:–

(अ) धात्विक खनिज (ब) अधात्विक खनिज

(अ) धात्विक खनिज (Metallic minerals) : धातुएं खनिज अयस्कों के परिष्करण से प्राप्त होती है और धात्विक खनिजों को उनके गुणों के अनुसार निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है:–

(i) बहुमूल्य खनिज–सोना, चांदी
(ii) लौह खातु खनिज–लोहा, टंगस्टन

(iii) अलौह धातु खनिज–सीसा–जस्ता, तांबा, ऐल्युमिनियम

(iv) रेडियोधर्मी खनिज–यूरेनियम

(v) अन्य धातु खनिज–मैग्नीशियम, बेरिलियम, केडमियम।

(ब) अधात्विक खनिज : अधात्विक खनिजों का अत्यधिक औद्योगिक उपयोग है। ये सीधे ही उपयोग में लिये जा सकते हैं और ये औद्योगिक उपयोग के अनुसार ही वर्गीकृत किये गये हैं:–

(i) औद्योगिक खनिज

(अ) उच्चतापसह एवं ताप प्रतिरोधी खनिज : कायनाइट, सिलीमैनाइट, एण्डालूसाइट, ग्रेफाइट, डोलोमाइट, फायर क्ले, ऐस्बेस्टॉस, अभ्रक

(ब) कांच एवं सिरेमिक खनिज : क्वार्ट्ज, फैल्सपार, वोलैस्टोनाइट, केओलिन क्ले

(स) उर्वरक एवं रासायनिक खनिज : रॉक फॉस्फेट, पायराइट, बैराइट, फ्लुओराइट

(द) फिलर, अपघर्णी एवं अन्य उपयोगी खनिज : फिलर, सोपस्टोन, पायरोफाइलाइट, बेन्टोनाइट, फुलर्स अर्थ, सिलिसियस अर्थ, कैल्साइट, अपघर्षी–गारनेट, कोरण्डम, अन्य उपयोगी–लाइमस्टोन, रेड ऑकर, वर्गीक्युलाइट आदि।

(ii) रत्न खनिज : गारनेट, पन्ना, कोरण्डम, एक्वामेराइन, एमिथिस्ट एवं क्वार्ट्ज मणिभ

(iii) सजावटी एवं इमारती शैल समूह : मार्बल, ग्रेनाइट, लाइमस्टोन, शैल, स्लेट, सेण्डस्टोन, पट्टी कातला आदि

(iv) ईंधनोपयोगी खनिज : लिग्नाइट, प्राकृतिक तेल एवं गैस।

कुछ खनिजों का विस्तृत वर्णन यहाँ किया जा रहा है:–

लौह धातु खनिज (Ferrous Mineral)

इस वर्ग में लोहा, मैगनीज, निकल, क्रोमियम, कोबाल्ट, टंगस्टन, मोलिब्डेनम, टाइटेनियम आदि खनिजों को सम्मिलित किया जाता है। इन खनिजों में से राजस्थान में टंगस्टन के महत्त्वपूर्ण एवं लोहा व मैगनीज के अयस्क अल्प मात्रा में पाये जाते हैं।

टंगस्टन (Tungsten)

इस धातु का गलनांक सभी धातुओं से अधिक 1350°C होता है। अतः यह उच्चताप पर भी नहीं पिघलती है। विद्युत की सुचालक होने से विद्युत बल्बों में फिलामेंट इसी धातु के बनाये जाते हैं। लोहे एवं टंगस्टन से बनी मिश्र धातु से इस्पात काटने से यंत्र, टंगस्टन कार्बाइड से छिद्रण बिट्स (drilling bits) आदि बनाये जाते हैं। इस धातु से राडार, भारी बन्दूकों की नलियां, टैंक भेदी यंत्र, जेट इंजिन के कल–पुर्जे, प्रक्षेपास्त्र आदि बनाये जाते हैं। अतः इसका सामरिक महत्त्व है। इनके अतिरिक्त एक्स किरण मशीनों, विद्युत संयंत्रों, रंगाई–छपाई उद्योगों में भी यह धातु प्रयुक्त होती है। सही मायने में यह औद्योगिक उपयोग की धातु न होकर, सामरिक महत्त्व की धातु है।

खनिज अयस्क

टंगस्टन के प्रमुख अयस्क निम्न हैं:–

वुलफ्रेमाइट (wolframite) $(Fe, Mn) WO_4$

शीलाइट (scheelite) $CaWO_4$

फर्बराइट (ferberite) $FeWO_4$

हुबनेराइट (hubnerite) $MnWO_4$

व्यावसायिक उत्पादन के लिए अयस्क में टंगस्टन की मात्रा 60-70% होनी चाहिए।

वितरण

देश में टंगस्टन के व्यावसायिक निक्षेप राजस्थान में ही पाये जाते हैं। राजस्थान के अतिरिक्त महाराष्ट्र, हरियाणा एवं पश्चिमी बंगाल राज्यों में यह खनिज अल्प मात्रा में मिलता है। राजस्थान में टंगस्टन के प्रमुख निक्षेप नागौर जिले के डेगाना एवं सिरोही जिले के बाल्दा क्षेत्र में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त डूंगरपुर जिले के अमरतिया, उदयपुर जिले के कुण, पाली जिले के बराठियां, अजमेर जिले के लादेरा–साकून क्षेत्र में टंगस्टन अयस्क होने के संकेत मिले हैं।

लौह खनिज (Iron Minerals)

मनुष्य के जीवन में लोहे का अत्यधिक उपयोग है। यह उद्योग के लिए आधार धातु है। कोई भी कारखाना, यंत्र, उपकरण लोहे के उपयोग के बिना निर्मित नहीं हो सकते हैं। इस्पात के रूप में यह सर्वत्र उपयोग में आता है। प्राचीन काल और आधुनिक युग में युद्ध के लिए प्रयुक्त अस्त्र–शस्त्र एवं हथियार इसी धातु से बनते हैं। इसके अतिरिक्त वनस्पति उद्योग, वेल्डिंग रोड, कोयले के शुद्धिकरण आदि के लिए उपयोग में आता है।

पटलित लौह अयस्क (spathic iron ore) जिसे सिडेराइट कहते हैं, वनस्पति उद्योग में अत्यधिक उपयोग में लिया जाता है। माइकामय हेमाइट (micaceous hematite) वेल्डिंग रोड बनाने, दलदली लौह अयस्क (iron ore bog) लिमोनाइट कोयले से गैस शुद्धिकरण के काम में एवं मैग्नेटाइट कोयले को साफ करने के काम में लिया जाता है।

भारत में उच्च कोटि के लौह अयस्कों के निक्षेप हैं जिनमें Fe

की मात्रा 65 से 85 प्रतिशत तक है।

खनिज अयस्क

लोहे के निम्न खनिज अयस्क हैः–

1.	मैग्नेटाइट (magnetite) Fe_3O_4	72.4% Fe
2.	हेमेटाइट (hematite) Fe_2O_3	70% Fe
3.	लिमोनाइट (limonite) $Fe_2O_3H_2O$	59-63% Fe
4.	सिडेराइट (siderite) $FeCO_3$	48.2% Fe

उपर्युक्त खनिज अयस्कों में हेमेटाइट एवं मैग्नेटाइट का महत्त्व अत्यधिक है। इनके साथ कभी–कभी अवांछनीय खनिज जैसे क्वार्ट्ज, गंधक, फास्फोरस, मैगनीज, टंगस्टन, टाइटेनियम आदि मिलते हैं।

वितरण

देश में उच्चकोटि के एवं महत्त्वपूर्ण खनिज निचय मिलते हैं। दुनिया के कुल निचयों के 60% से ज्यादा निचय भारत देश में हैं। जो प्रमुखतः उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गोवा, आसाम, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में हैं। देश में लौह खनिज कैम्ब्रियन पूर्व के शैलों में प्रमुखता से एवं कभी–कभी तृतीय महाकल्प के अवसादों में मिलते हैं।

राजस्थान में लौह निक्षेपों में जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, झुंझुनू, सीकर, करौली एवं दौसा के निक्षेप महत्त्वपूर्ण हैं।

अलौह धातु खनिज (Non-Ferrous Minerals)

इस वर्ग के अन्तर्गत सीसा, जस्ता, तांबा, टिन, ऐल्युमिनियम धातुओं के अयस्कों का अध्ययन किया जाता है। सीसा, जस्ता, तांबा के अयस्कों के राजस्थान में अच्छे निक्षेप हैं। ऐल्युमिनियम के अयस्क भी कुछ मात्रा में मिलते हैं, किन्तु टिन के अयस्क राजस्थान में अभी तक नहीं पाये गये हैं।

राजस्थान में इन खनिजों के दोहन एवं परिशोधन की प्रक्रिया बहुत प्राचीन है जिसके प्रमाण राज्य में फैली पुरानी खदानों व धातुमल ढेरों (slag heep) से मिलते हैं।

इन धातुओं का दैनिक जीवन में उपयोग सर्वविदित है। मानव विकास के क्रम में पत्थर युग के बाद ताम्र युग का कांस्य युग इन धातुओं के प्राचीन समय से हो रहे उपयोग को स्पष्ट करता है।

राज्य में इन धातु अयस्कों के जमाव आर्कियन व प्रोटेरोजोइक काल के भीलवाड़ा, अरावली व देहली महासंघ की शैलों में पाये जाते हैं। जो मुख्यतः द्वि–खनिजी (bi metal) या बहुखनिजी (multi metal) जमाव हैं। राज्य के प्रमुख धात्विक खनिज पट्टियों को स्तरिकी अनुक्रम में निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है–

देहली महासंघ	– ताम्बा	– खेतड़ी ताम्र पट्टी झुंझुनू, दरीबा, अलवर
	– ताम्बा–जस्ता	– चांग–चित्तौड़, नया खेड़ा, पाली, अजारी–बसन्तगढ़, गोलिया, पिपेला, पट्टी सिरोही
	सीसा–जस्ता	– डेरी–अम्बाजी पट्टी सिरोही व साबरकांटा (गुजरात) कायर – घूघरा घाटी पट्टी अजमेर
अरावल महासंघ	– सीसा–जस्ता	– जावर पट्टी उदयपुर ताम्बा–पादर की पाल, डूंगरपुर, अंजनी, उदयपुर, भूखिया, जगपुरा, आनन्दपुरी बांसवाड़ा
भीलवाड़ा महासंघ	–सीसा–जस्ता	– राजपुरा–दरीबा–सिंदेसर बेटूमी, राजसमंद आगुचा पट्टी, भीलवाड़ा व सांवर पट्टी, अजमेर
	ताम्बा–जस्ता	पुर–बनेड़ा पट्टी भीलवाड़ा

उत्पत्ति

सीसा–जस्ता–ताम्बा की उत्पत्ति मुख्यतः आग्नेय स्त्रोतों से होती है।

ताम्र खनिज (Copper Minerals)

ताम्बे का उपयोग प्राचीन काल से होता रहा है और समय के अनुसार इसकी मांग व उपयोग बढ़ रहा है। वर्तमान में मुख्य रूप से बर्तन, विद्युत उपकरण, विद्युत वितरक तारों, रेडियो, टेलीविजन, वातानुकूलित यंत्रों, टेलीफोन तारों, मशीनरी उपकरण, वायुयानों, हथियारों व युद्ध संबंधी उपकरण आदि बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।

खनिज अयस्क

ताम्बे के महत्त्वपूर्ण खनिज अयस्क निम्न हैं–

1.	प्राकृत ताम्बा (native copper) Cu	100% Cu
2.	केल्कोसाइट (chalcocite) Cu_2S	79.8% Cu
3.	केवेलाइट (covellite) CuS	64.4% Cu
4.	बोर्नाइट (bornite) Cu_5FeS_4	63.6% Cu
5.	टेनेनटाइट (tennanite) $(CuFe)_{12}As_4S_{13}$	66.4% Cu
6.	टेट्राहेड्राइट (tetrahedrite) $(CuFe)_{12}Sb_4S_{13}$	57% Cu
7.	एनार्जाइट (anargite) Cu_3AsS_4	48.3% Cu
8.	केल्कोपाईराइट (chalcopyrite) $CuFeS_2$	34.5% Cu
9.	मैलेकाइट (malachite) $CuCO_3Cu(OH)_2$	57.3% Cu
10.	क्यूप्राइट (cuprite) Cu_2O	88.8% Cu
11.	एजूराइट (azurite) $2CuCO_3Cu(OH)_2$	55.1% Cu

ताम्र अयस्कों के साथ कई गैंग खनिज जैसे – क्वार्ट्ज, डोलोमाइट, कैल्साइट, सिडेराइट, सिलेकेंट खनिज व अन्य धातुओं के खनिज अयस्क मिलते हैं।

वितरण

देश में ताम्र अयस्क प्रमुखतः बिहार के सिंहभूमि – मौसाबानी, राजस्थान में खेतड़ी–सिगाना, मध्यप्रदेश में मलाजखण्ड क्षेत्रों में फैले हैं। इन राज्यों के अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात राज्यों में भी इस धातु के निक्षेप हैं।

राजस्थान में ताम्र अयस्क प्रमुखतः देहली महासंघ में पाये जाते हैं जो सिरोही से झुंझुनू तक फैले हुए हैं जिसमें खेतड़ी सिगाना पट्टी, झुंझुनू, चांग–चितार कालाघाट, पाली व अजारी बसन्तगढ़–पिपेला पट्टी, सिरोही प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त इन्हीं युग की चट्टानों में सीकर व अलवर जिलों में भी ताम्र अयस्क मिलते हैं।

सीसा–जस्ता खनिज (Lead-Zinc Minerals)

रासायनिक व भौतिक गुणों में अत्यधिक अन्तर होने के बावजूद सीसा–जस्ता प्रकृति में सल्फाइड के रूप में मिलते हैं। प्राकृतिक सहचर्य के कारण इन अयस्कों का वर्णन एक साथ ही किया गया है।

सीसे का उपयोग मिश्र धातु बनाने, रासायनिक विद्युत कार्यों, मशीनरी व युद्ध संबंधी सामग्री बनाने में किया जाता है। जस्ते का उपयोग लोहे के चादरों पर जस्ता चढ़ाने, पीतल के बर्तन बनाने, हस्तशिल्प की वस्तुएं व मिश्रधातु बनाने में किया जाता है।

खनिज अयस्क

सीसे जस्ते के महत्त्वपूर्ण अयस्क निम्न हैं–

1.	गैलेना (galena) PbS	86.6%Pb
2.	सिरूसाइट (cerussite) $PbCO_3$	75.5%Pb
3.	ऐंगलीसाइट (anglesite) $PbSO_4$	68.3%Pb

जस्ते के अयस्क

1.	जिंक ब्लेण्ड–स्फैलेराइट (sphalerite) ZnS	67%Zn
2.	स्मिथसोनाइट (smithsonite) $ZnCO_3$	52%Zn
3.	विलेमाइट (willemite) Zn_2SiO_4	58.3%Zn
4.	जिन्काइट (zincite) ZnO	80.3%Zn
5.	हैमीमार्फाइट (hemimorphite) $Zn_4Si_2O_7[OH]_2H_2O$	86.6%Pb

भारत में सीसे जस्ते के निक्षेप देश की मांग के मुकाबले बहुत ही कम हैं। जो महत्त्वपूर्ण निक्षेप उपलब्ध हैं वे भी राजस्थान में ही हैं। यह गौरव राजस्थान को प्राप्त है। राजस्थान के अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा आदि राज्यों में अल्प मात्रा में इन खनिजों के निक्षेप हैं।

ऐल्युमिनियम (Aluminium)

इस धातु का प्रयोग दैनिक जीवन में बढ़ता जा रहा है। सफेद रंग की यह धातु ताप व विद्युत की सुचालक होती है। वजन में हल्की, लचीली व मुलायम होने से इस धातु से मिश्र धातु बना प्रक्षेपास्त्रों, राकेटों, वायुयानों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त कई उद्योगों के यंत्र निर्माण व बर्तन भी इसी धातु से बनाये जाते हैं।

इस धातु का प्रमुख खनिज अयस्क बॉक्साइट (Bauxite) $(Al_2O_3H_2O)$ है।

उत्पत्ति

बॉक्साइट व लेटेराइट का निर्माण उष्ण व उपोष्ण (tropical and sub tropical) क्षेत्रों में ऐल्युमिनियम सिलिकेट वाली चट्टानों के अपक्षय से होता है जो प्रमुखतः आवरण निक्षेप (blanket deposits), अन्तस्तरित (intercalate deposits) निक्षेप के रूप में मिलते हैं।

वितरण

भारत में बॉक्साइट के प्रमुख निक्षेप मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र व बिहार में पाये जाते हैं। राजस्थान में कहीं पर भी व्यावसायिक खनन योग्य बॉक्साइट निक्षेप नहीं है, किन्तु कोटा व चित्तौड़गढ़ जिलों में लौहमय व ऐल्युमिनियम लेटेराइट के आवरण मिलते हैं।

रेडियोधर्मी / विद्युतनाभिक खनिज

परमाणु ऊर्जा से सम्पन्न धातुओं को रेडियोधर्मी खनिज या रेडियोएक्टिव धातुओं के नाम से जाना जाता है। इन धातुओं में

छुपी अपार ऊर्जा के रहस्य को जानना और उसका उपयोग करना एक महान उपलब्धि है। शांतिकाल में यह मान जाति के लिए 'परमाणु ऊर्जा' के रूप में वरदान है तो युद्ध काल में 'परमाणु बम' के रूप में अभिशाप है। परमाणु ऊर्जा से हो रहे विद्युत उत्पादन से औद्योगिक विकास तेजी से रहा है। वहीं हिरोशिमा व नागासाकी (जापान) परमाणु बम से हुए विनाश के प्रत्यक्ष उदाहरण है। रेडियोधर्मी खनिजों की खोज का कार्य देश में भारतीय परमाणु ऊर्जा विभाग (ए.एम.डी.) द्वारा किया जाता है।

खनिज अयस्क

रेडियोधर्मी धातुओं में यूरेनियम व थोरियम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यूरेनियम के प्रमुख अयस्क यूरेनिनाइट (uraninite) व पिचब्लैण्ड (pitchblende) हैं। जिनमें यूरेनियम ऑक्साइड (UO_2) व थोरियम की मात्रा 50 से 58% तक पायी जाती है।

उत्पत्ति

यूरेनियम के निक्षेप उष्ण जलीय प्रक्रम द्वारा शिराओं के रूप में शैल व फॉस्फेट निक्षेपों के साथ व प्लेसर के रूप में मिलते हैं।

वितरण

भारत में यूरेनियम के निक्षेप बिहार राज्य के जादुगुड़ा क्षेत्र में मिलते हैं जहां इनका खनन होता है। इनके अतिरिक्त राजस्थान व आन्ध्रप्रदेश में भी यह खनिज मिलता है। थोरियम के निक्षेप केरल राज्य के दक्षिणी पश्चिमी समुद्री किनारे पर क्विलान के पास फैले रेत के साथ मोनेजाइट के रूप में मिलते हैं। इस रेत में औसत 4 से 5% की मोनेजाइट की मात्रा है। यहां पर 14 लाख टन संभावित मोनेजाइट के निक्षेप हैं। संसार में यह सबसे अच्छे मोनोजाइट के निक्षेप हैं। केरल के अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश के वाल्टेयर व पट्नम् में भी मोनोजाइट के निक्षेप रेत के साथ मिलते है। राजस्थान में यूरेनियम के अयस्क होने के संकेत उदयपुर, भीलवाड़ा व सीकर जिलों में मिलते हैं, किन्तु कहीं पर भी व्यावसायिक निक्षेप नहीं मिलते हैं।

अधात्विक खनिज (Non-Metallic Minerals)

अधात्विक खनिज सामान्यतः उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं जिस रूप में इनका खनन किया जाता है। खनिज के उपयोग प्राप्त होने के तरीकों एवं रासायनिक संरचना के आधार पर इन्हें निम्न वर्गों में विभक्त किया गया है:–

(अ) औद्योगिक खनिज (Industrial Minerals)

(ब) रत्न खनिज (Gem Minerals)

(स) इमारती सजावटी एवं अन्य शैल समूह (Dimensional, Decorative and Shale Rocks)

(द) ईंधनोपयोगी खनिज (Fuel Minerals)

औद्योगिक खनिज (Industrial Minerals)

अधात्विक खनिजों का महत्त्व उनके रासायनिक घटकों और भौतिक गुणों से होता है। एक ही खनिज कई उद्योगों में प्रयुक्त होता है और रासायनिक घटकों में परिवर्तन होने पर यह एक उद्योग के बजाय कई दूसरे उद्योगों के लिये उपयुक्त होता है। खनिजों के उपयोग के आधार पर इन्हें निम्न वर्गों में विभक्त किया गया है:–

1. उच्चतापसह एवं ताप प्रतिरोधी खनिज – उदाहरण ग्रेफाइट, डोलामाइट, फायर क्ले, बॉक्साइट आदि।
2. कांच एववं सिरेमिक उद्योग के खनिज
3. उर्वरक एवं रासायनिक खनिज
4. फिलर, अपघर्णी एवं अन्य उपयोगी खनिज।

ग्रेफाइट

प्रकृति में ग्रेफाइट दो रूपों में मिलता है। एक क्रिस्टलीय एवं दूसरा अक्रिस्टलीय। क्रिस्टलीय ग्रेफाइट पत्रकों (Flakes) में पाया जाता है। ग्रेफाइट अपने विशिष्ट गुणों, उच्चताप सह गुणधर्म, ताप एवं विद्युत की सुचालकता तथा नरम एवं कम कठोर होने के कारण विभिन्न उद्योगों में उपयोग में लिया जाता है। यह अम्लों एवं अन्य अभिकर्मकों के साथ कोई क्रिया नहीं करता है और इसका गलनांक 3000 डिग्री सेण्टीग्रेड है इस कारण से इसका उपयोग उच्चतापसह पदार्थों, ढलाई के कार्यों (Foundry works), क्रुसिबल (Crucible), पेण्ट, स्नेहक (Lubricant), परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों, डायनमों के बुश, पेन्सिल, बैटरी आदि बनाने में किया जाता है।

फायर क्ले (Fire Clay)

यह क्ले हाइड्रस ऐल्यूमिनियम सिलिकेट है जिसमें प्लास्टीसिटी का गुण होता है। क्ले कई प्रकार की होती है जिनमें से मुख्य है – चाइना क्ले, बाल क्ले, फायर क्ले। क्ले के उपयोग उनके भौतिक गुणों जैसे प्लास्टीसिटी, सिकुड़न के गुण, ताप सहन करन की शक्ति, गर्म करने के बाद रंग, सान्द्रता, पानी सोखने की मात्रा आदि पर निर्भर करती है।

अन्य तापप्रतिरोधी खनिज–ऐस्बेस्टॉस एवं अभ्रक

ऐस्बेस्टॉस (Asbestos)

सर्पेन्टीन एवं ऐम्फिबोल के कुछ खनिजों के ऐस्बेस्टॉस का नाम दिया गया है। यह प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रेशे वाला खनिज है जिस पर ताप एवं अम्लों का प्रभाव नहीं पड़ता है और जो 2650 डिग्री सेण्टीग्रेड तक ताप सहन कर सकने का गुण रखता

है। इसके रेशे कोमल, नाजुक एवं लचीले होते हैं। इसके रेशे से कपड़े बुने जा सकते हैं। यह खनिज ताप, उष्मा, विद्युत व ध्वनि का कुचालक होता है जिसके कारण इस खनिज का महत्त्व अत्यधिक है।

ऐस्बेस्टॉस उत्पत्ति के अनुसार ही व्यावसायिक नामों से जाना जाता है।

1. ऐम्फिबोल ऐस्बेस्टॉस
2. सर्पेन्टीन ऐस्बेस्टॉस

ऐम्फिबोल ऐस्बेस्टॉस के प्रमुख खनिज हैं – क्रोसिडोलाइट (Crocidolite), ऐन्थोफिलाइट (Anthophyllite) एवं एमोसाइट (Amosite)। सबसे अच्छे श्रेणी के ऐस्बेस्टॉस के रूप में क्रिसोटाइल (Crysotile) को ही जाना जाता है जिसके रेशे लम्बे, कोमल, नाजुक किन्तु मजबूत होते हैं। यह सर्पेन्टीन में मिलता है।

अभ्रक (Mica)

अभ्रक के ताप एवं विद्युत के कुचालक व वजन में हल्का होने के कारण इसके कई औद्योगिक उपयोग हैं। इसके आधार विदलन (Basal cleavages) होते हैं जिसके कारण यह पतली–पतली शीट के रूप में अलग–अलग की जा सकती है एवं पतली–पतली परतें होने के बावजूद इसकी मजबूती एवं नम्यता (Flexibility) बनी रहती है।

उपयोग

अभ्रक का महत्वपूर्ण उपयोग विद्युत उपकरणों में कुचालक के रूप में होता है।

कांच एवं सिरेमिक उद्योगों के खनिज

इस वर्ग में मुख्य रूप से क्वार्ट्ज, फैल्सपार, वोलैस्टोनाइट एवं क्ले खनिजों को सम्मिलित किया गया है जिनका अधिकतर उपयोग कांच व सिरेमिक उद्योग में किया जाता है। कुछ अन्य खनिज जैसे फ्लूओराइट, बैराइट डोलोमाइट, लीथियम खनिज, सिलीमैनाइट, मैग्नेसाइट, सोडा एश, टैल्क, पायरोफाइलाइट आदि खनिजों का भी इन उद्योगों में उपयोग होता है, किन्तु इन खनिजों की बहुत कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

फैल्सपार

फैल्सपार रासायनिक दृष्टि से सोडियम, पोटेशियम एवं कैल्सियम के सिलिकेट हैं। भू–पर्पटी में यह सर्वाधिक पाया जाने वाला खनिज है और आग्नेय शैलों में प्रमुखता से मिलता है। फैल्सपार में सोडियम एवं पोटेशियम की मात्रा आर्थिक दृष्टि से उपयोगी होती है। फैल्सपार के साथ अल्प मात्रा में भी यदि लोहा, मैगनीज, सेरिसाइट, कैल्सियम की मात्रा हो तो वह औद्योगिक दृष्टि से अनुपयुक्त होता है।

उत्पत्ति

व्यावसायिक महत्त्व का फैल्सपार मुख्य रूप से जोन पेग्माटाइट शैल में मिलता है। आग्नेय एवं कायान्तरित चट्टानों में पेग्माटाइट भित्ति (Pegmatite Daykes) अथवा लेंस (Lenses) की आकृति में पाई जाती है। क्वार्ट्ज एवं फैल्सपार का उत्पादन प्रायः साथ–साथ होता है और यह उत्पादन मुख्य रूप से जोन पेग्माटाइट भित्तियों से ही होता है।

फैल्सपार का प्रमुख उपयोग सिरेमिक उद्योग में है। एलबाइट (फैल्सपार की किस्म) का उपयोग कृत्रिम दांत बनाने में किया जाता है।

उर्वरक एवं रासायनिक खनिज

उर्वरक खनिज

उर्वरक बनाने में काम आने वाले खनिजों को इस वर्ग में सम्मिलित किया गया है। जिनमें मुख्य है – रॉक फॉस्फेट शैल, जिप्सम, पाइराइट आदि। राजस्थान में ये सभी खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इस वर्ग में रॉक फॉस्फेट एवं पाइराइट खनिजों का विवेचन किया गया है। रासायनिक खनिजों में बैराइट एवं फ्लूओराइट को इस वर्ग में परिभाषित किया गया है।

रॉक फॉस्फेट

रॉक फॉस्फेट, फॉस्फेट या फॉस्फोराइट एक या एक से अधिक फॉस्फेट खनिजों का समूह है जो कैल्सियम फॉस्फेट $\{Ca(PO_4)\}$ है। जिसमें P_2O_5 की मात्रा 30 प्रतिशत या इससे अधिक होने पर यह सीधे ही उर्वरक बनाने के लिये उपयुक्त होता है। कम मात्रा होने पर इसे परिष्कृत कर उपयोगी बनाया जा सकता है।

रॉक फॉस्फेट मुख्य रूप से सिंगल सुपर फॉस्फेट, ट्रिपल सुपर फॉस्फेट आदि उर्वरक बनाने के लिये प्रमुख कच्चा माल है। इसके अतिरिक्त यह कई रासायनिक उद्योगों में भी उपयोगी है।

जिप्सम

जिप्सम हाइड्रस कैल्सियम सल्फेट है जिसमें 20 प्रतिशत पानी होता है। इसका रासायनिक सूत्र $CaSO_4.4H_2O$ है। यह खनिज साधारणतः सफेद धूसर, हल्के पीले रंग का होता है।

उपयोग

वर्तमान में इसका उपयोग प्रमुखतः सीमेन्ट जमाव के समय को नियंत्रित करने हेतु, उर्वरक (अमोनियम सल्फेट) एवं प्लास्टर ऑफ पेरिस बनाने में किया जाता है। इसके अन्य उपयोग कीटणुनाशक दवाइयों, कागज, पेन्ट उद्योगों में है। जिप्सम को 100°-125° सेण्टीग्रेड तक गर्म करने से प्लास्टर ऑफ पेरिस

निर्मित होता है जो चिकित्सालयों, कारखानों, सांचे बनाने, ध्वनि प्रतिरोधक, अग्निसह पदार्थों के निर्माण में काम में लिया जाता है।

सेलिनाइट का उपयोग सफेद सीमेन्ट बनाने एवं सूक्ष्मदर्शी यंत्र में होता है। निम्न कोटि का जिप्सम क्षारीय भूमि को सुधार कर भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के काम में लिया जाता है।

फिलर, अपघर्षी एवं अन्य उपयोगी खनिज

इस वर्ग में फिलर, अपघर्षण (एमरी स्टोन) एवं अन्य उपयोग में आने वाले खनिजों को सम्मिलित किया गया है। फिलर के रूप में काम में लिये जाने वाले खनिजों में (टैल्क) सोपस्टोन, बेण्टोनाइट, फुलर्स अर्थ, सिलिसियस अर्थ, पायरो फाइलाइट एवं कैल्साइट प्रमुख हैं। अपघर्षण के लिये प्रयुक्त खनिजों में कोरण्डम, गारनेट, ऐगेट प्रमुख हैं। अन्य उपयोगी खनिजों में लाइमस्टोन, वर्मीक्युलाइट, ऐस्बेस्टॉस, आंकर खनिजों को सम्मिलित किया गया है।

ईंधनोपयोगी खनिज (Fuel Minerals)

खनिज ईंधन के रूप में कोयला, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस को सम्मिलित रूप से जाना है। प्राकृतिक ईंधन का उपयोग एवं महत्त्व कई अन्य ऊर्जा के स्त्रोत जैसे विद्युत ऊर्जा (जल, तापीय एवं परमाणु ऊर्जा), अक्षय ऊर्जा, गैर परम्परागत, सूर्य ऊर्जा आदि के ज्ञात होने के उपरान्त भी कम नहीं हुआ है और ऊर्जा के नये स्त्रोत अभी भी खनिज ऊर्जा प्राकृतिक ईंधन का स्थान नहीं ले पाये हैं। खनिज ईंधनों को प्रमुखतः ऊर्जा के उत्पादन के लिये या कार्बनिक यौगिकों के निर्माण के लिये उपयोग में लाया जाता है।

खनिज ईंधनों का उपयोग ओटोमोबाइल उद्योग, आवागमन के साधनों में, चिकनाईयुक्त पदार्थ के रूप में, खाना पकाने, प्रकाश करने के लिए, कल–कारखानों को चलाने आदि में होता है। प्राकृतिक खनिज ईंधनों की प्रमुखतः निम्न दो श्रेणियां हैं–

(अ) कोयला व लिग्नाइट खनिज

(ब) पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस (हाइड्रोकार्बन)

प्राकृतिक तेल एवं गैस (Petrolium and Natural Gas)

काले सोने के नाम से जाना जाने वाला यह खनिज राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति को सर्वाधिक प्रभावित करता है और यंत्रीकरण के इस युग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ग्रीस निवासी पेट्रोलियम के स्त्रोतों से ईसा से 450 वर्ष पूर्व परिचित थे। चीन में ईसा के 221 वर्ष पूर्व इसका उपयोग प्रारम्भ हो गया था। पिछले कई वर्षों से इसे प्रकाश हेतु उपयोग में लिया जाता रहा है। पेट्रोलियम भू–तल से कई सौ मीटर नीचे पाया जाता है जिसे तेल के कुओं द्वारा प्राप्त किया जाता है और उनके परिशोधन से कई उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं।

रासायनिक संघटन

पेट्रोलियम कई हाइड्रोकार्बन यौगिकों का मिश्रण है जिनके साथ ऑक्सीजन, नाइट्रोजन एवं गंधक भी अल्प मात्रा में होते हैं। पेट्रोलियम में पेराफीन वर्ग में कई सदस्य सामान्य ताप, दाब पर ठोस, द्रव एवं गैस के रूप में पाये जाते हैं। पेट्रोलियम में निम्न कार्बनिक पदार्थ अलग–अलग मात्रा में पाये जाते हैं–

1. पेराफिन वर्ग (C_nH_{2n+2}) के सदस्य
2. असंतृप्त हाइड्रोकार्बन
3. बेन्जीन (C_6H_6)
4. पॉरफिरिन्स (Porphyrins)
5. नैफ्थीन श्रृंखला (Nephthene series)
6. एसिटिलीन एवं उच्चतर सदस्य (Acetylene and Higher member)

किन्हीं दो स्थानों पर पाये जाने वाले पेट्रोलियम का रासायनिक संघटन एक–सा नहीं होता है। पेट्रोलियम का रंग गहरा पीला, गहरा भूरा एवं हल्के रंग का होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व 0.8 से 0.98 होता है।

पेट्रोलियम की उत्पत्ति

पेट्रोलियम के निक्षेप कैम्ब्रियन कल्प से प्लायोसीन काल (तृतीय कल्प) की अवसादी शैलों के साथ मिलते हैं। कायान्तरित एवं आग्नेय शैलों के साथ इसकी उत्पत्ति साधारणतः नहीं पायी जाती है। पेट्रोलियम समुद्र में जैव पदार्थों (Organic matter) के दब जाने से एवं उसके बाद ऑक्सीजन रहित अपघटन के कारण हाइड्रोकार्बन का निर्माण होता है। जैव पदार्थों के दो वर्गों को पेट्रोलियम निर्माण के लिये उत्तरदायी माना जाता है। ये जैव पदार्थ निम्नलिखित हो सकते हैं:–

1. पादपों (पौधों) के अवशेष (Remains of Plants)
2. अधोप्लवक प्राणियों के अवशेष (Remains of Lower Plantonic animals) जैसे – डायटम एवं शैवाल (Diatom and Algae)।

तेल व गैस के निचय वितरण

भारत में पेट्रोलियम के निचय तृतीय कल्प की अवसादी शैलों में मिलते हैं। आसाम के डिगबोई, मोरेन, नहरकटिया क्षेत्रों में, गुजरात के खंभात बेसिन में अंकलेश्वर, कलोल नवगांव क्षेत्रों में महाराष्ट्र के बोम्बे हाई, क्षेत्रों में पेट्रोलियम के निचय मिलते हैं और

उनका वहाँ से दोहन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त गोदावरी बेसिन, ब्रह्मपुत्र बेसिन एवं नर्मदा, बेसिन में भी पेट्रोलियम के निचय मिलने की संभावनाओं का पता चला है।

खनिजों के दोहन/खनन का पर्यावरण पर प्रभाव

विश्व में बढ़ते औद्योगिकीकरण के कारण सभी प्रकार के खनिजों का दोहन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जिसके दुष्प्रभाव प्रकृति में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। खनन से प्रकृति का रूप ही विकृत होता नजर आता है। खनन के दुष्प्रभावों का संक्षिप्त अध्ययन निम्न बिन्दुओं/शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:—

(1) खनन व वनों का ह्रास

(2) खनन व कृषि भूमि में कमी

(3) खनन व अपशिष्ट निस्तारण

(4) खनन व वायु प्रदूषण

(5) खनन व जल प्रदूषण

(6) खनन व ध्वनि प्रदूषण

(7) खनन व जल स्तर

1. खनन व वनों का ह्रास : विश्व में खनिज अयस्कों के निक्षेप प्रायः वनों में पाये जाते हैं और जब खनिज उत्पादन हेतु प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं तो खनन व खनिज उत्पादों को परिवहन द्वारा अन्य स्थानों पर ले जाने के लिए वनों को काट दिया जाता है। पूरी अरावली पर्वत श्रृंखला में दिन प्रतिदिन बढ़ते खनन के कारण जंगल लगातार कटते जा रहे हैं और उनमें निरन्तर ह्रास से इस क्षेत्र का पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ना प्रारम्भ हो गया है। इसी का परिणाम है कि इस क्षेत्र में लगातार तापक्रम बढ़ रहा है और वार्षिक वर्षा कम होती जा रही है। गहराता जल संकट इसी का एक परिणाम है। इसके साथ ही वृक्षों के कटने से मृदा का क्षरण भी बढ़ता जा रहा है तथा तेज वर्षा के समय बाढ़ आना भी इसी का परोक्ष परिणाम है। वनों के कटते जाने से वहां के निवासियों के लिए आज भोजन प्रबन्ध कठिन हो रहा है तथा लोग अपने निवास को छोड़कर शहरों की ओर मजदूरी के लिए पलायन कर रहे हैं। इसलिए शहरी आबाद निरन्तर बढ़ती जा रही है।

2. खनन व कृषि भूमि में कमी : जब खनिजों के निक्षेप समतल भूमि पर मिलते हैं तो खनन कार्य से कृषि भूमि में कमी आ जाती है। तत्पश्चात् वहां के निवासियों के लिए पलायन ही एक मात्र विकल्प बचता है।

3. खनन व अपशिष्ट निस्तारण : विभिन्न प्रकार के खनिज अयस्कों के शोधन की प्रक्रिया के कारण अनुपयोगी पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं जिनकी मात्रा धात्विक, अधात्विक व ईंधन के रूप में उपयोगी खनिजों से बहुत अधिक होती है। इसलिए इन अपशिष्टों को सही स्थान पर निस्तारण खनिज उद्योगों की सबसे बड़ी विकट समस्या है। उदाहरण के लिए मार्बल खनन व प्रक्रिया से जो स्लरी बनती है, उसकी मात्रा दिनों दिन बढ़ती जा रही है, स्लरी को यहां—वहां बेतरतीब डाल दिया जाता है जिससे कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। मार्बल स्लरी धीरे—धीरे वायु प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण बनती जा रही है। खनिजों के शोधन प्रक्रिया से उत्पन्न कई गौण उत्पाद आने वाले समय में कई भयंकर प्रदूषक का रूप लेंगे और मानव सभ्यता के लिए सबसे बड़ा खतरा साबित होंगे। इनमें परमाणु अस्त्र भी एक है।

4. खनन व वायु प्रदूषण : खनिज के समय विस्फोटों (Blasting) से उत्पन्न धुआं कई प्रकार के वायु प्रदूषक उत्पन्न करता है। इस पर कोई प्रभावी नियंत्रण नहीं होने से भविष्य में मनुष्य को श्वसन संबंधी कई रोगों का सामना करना पड़ेगा।

5. खनन व जल प्रदूषण : खनिज उत्पादों की प्रक्रिया में हमेशा जल की आवश्यकता रहती है और प्रयुक्त जल में गौण उत्पाद सम्मिलित हो जाते हैं जिससे जल प्रदूषित होता है। खनन के कारण निकला अपशिष्ट जब वर्षा जल के साथ बहकर पानी में मिल जाता है तो नदियों, नालों व झीलों में प्रदूषण फैलता है। इसी प्रदूषण से कई प्रकार के जलीय पौधे व जीवों की मृत्यु हो जाती है।

6. खनन व ध्वनि प्रदूषण : खनन में प्रयुक्त मशीनों से तेज ध्वनि निकलती है जिससे वहां काम करने वाले लोगों में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

7. खनन व जलस्तर : खनन से बनी गहरी खदानों से पानी का स्तर धीरे—धीरे गहरा होता जा रहा जिससे जल स्तर गिरता जा रहा है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि खनिजों के बढ़ते उत्पादन से मनुष्य को कई प्रकार के खतरे हैं जिनसे उसे सावधान रहना चाहिये। समय रहते अगर इस समस्या के समाधान की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह मानव सभ्यता की समाप्ति का कारण बनेगा।

खनिजों के सांस्कृतिक प्रभाव

1. खनिज क्षेत्रों और खानों तक सड़कें, रेलमार्ग, मोटर मार्ग आदि बनाने आवश्यक होते हैं। खानों के समीप बड़े नगर बस जाते हैं। ऐण्डीज पर्वत पर, तांबे, टिन आदि के खनिजों

को प्राप्त करने के लिए मशीनरी तथा आवश्यक सामग्री वायुयानों द्वारा पहुंचाई गई थी। उसके लिये पर्वत पर भी वायुयानों के हवाई अड्डे बनाने पड़े थे।

2. खनिज सम्पत्ति के समाप्त हो जाने पर खानों को छोड़ दिया जाता है। वहां पर बसी हुई मानव–बस्ती को जीविका निर्वाह का कोई अन्य साधन अपनाना पड़ता है, वरना उस बस्ती को छोड़ना होता है। इस प्रकार खनन व्यवसाय एक प्रकार की चलवासिता (Nomadism) है। कृषि, उद्योग और व्यापार पर आधारित नगरों की अपेक्षा खनिज कस्बे अस्थाई होते हैं। खनिज समाप्ति पर वे प्रायः उजाड़ 'भुतहा नगर' (Ghost towns) बन जाते हैं। लोग वहां से स्थानान्तरण करके जीविका–निर्वाह हेतु दूसरे क्षेत्रों को चले जाते हैं।

3. खनिजों के खनन और उपयोग संबंधी आविष्कारों और खोजों से विभिन्न देशों में ज्ञान वृद्धि होती रहती है। एक देश में हुई वैज्ञानिक और टेक्नोलॉजिकल उन्नति से दूसरे देश भी लाभ उठाते हैं। इससे पारस्परिक सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ते हैं।

खनिजों के राजनीतिक प्रभाव

1. खनिज संसाधनों का वितरण इतना विषम है कि कोई भी राष्ट्र यह नहीं कह सकता है कि उसके पास सभी खनिज आवश्यक मात्रा में मौजूद है। इसलिए राष्ट्रों में परस्पर व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता रहती है।

2. कोयला, पेट्रोलियम, लोहा तथा अन्य युद्धनीतिक महत्त्व के खनिजों के स्वामी राष्ट्र बलवान होते हैं। कोई भी राष्ट्र तब तक सबल नहीं हो सकता है, जब तक कि उसके भारी उद्योगों (लोहा–इस्पात और रसायनों) का विकास नहीं हुआ हो।

3. कुछ देश ऐसे होते हैं कि उनमें खनिज सम्पत्ति तो प्रचुर मात्रा में होती है, परन्तु आवश्यक पूंजी, वैज्ञानिक दक्षता और प्रबन्धक क्षमता नहीं होती है। दक्षिण अफ्रीका में रोडेशिया तथा दक्षिण अफ्रीका संघ में प्रचुर सोना, कोयला, प्लेटिनम, हीरा आदि सम्पत्ति थी, परन्तु विज्ञान और पूंजी की कमी थी। इस प्रकार के देशों में विदेशी आक्रान्ताओं, उपनिवेशकों या व्यापारियों के द्वारा खनिजों को मानव उपयोग में लाया जाता है।

खनिज संसाधन तथा युद्ध

1. प्रत्येक राष्ट्र की औद्योगिक, सैनिक तथा सामरिक शक्ति खनिज संसाधनों पर निर्भर करती है। यदि कोई राष्ट्र अपने लोहे–इस्पात के आधार पर भारी संख्या में युद्ध के टैंक, तोपें, कवच–गाड़ियां, ट्रक, मोटर गाड़ियां आदि बना लेता है, ऐल्युमिनियम से वायुयान बना लेता है, परन्तु यदि उस राष्ट्र के पास पेट्रोलियम नहीं है, तो चालक शक्ति के अभाव में टैंक और वायुयान बेकार पड़े रहेंगे। उसकी सैनिक शक्ति निर्बल रहेगी।

2. द्वितीय महायुद्ध वायुयानों द्वारा लड़ा गया था। इस महायुद्ध में नाजी जर्मनी की हार का सबसे बड़ा कारण पेट्रोलियम की कमी थी, क्योंकि उसके वायुयानों तथा भूमि पर लड़ने वाली सेनाओं के लिये प्रत्येक डिवीजन को प्रतिदिन 15,300 गैलन पेट्रोलियम की आवश्यकता होती थी।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन संसार के अधिकांश तेल क्षेत्रों पर अधिकार के लिये लगातार प्रयत्न करते रहे हैं। उन्होंने अरब, कुवैत, इराक, ईरान, वेनेजुएला आदि के तेल क्षेत्रों के ठेके लिये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ के अधिकार में भी पेट्रोलियम के विशाल भण्डार हैं, फिर भी वह अपने पड़ौसी राज्यों (पोलैण्ड, रोमानिया, हंगरी, अल्बानिया और ईरान) के तेल क्षेत्रों में भी अपनी रुचि रखता है। इन तथ्यों से प्रकट होता है कि पेट्रोलियम के स्वामित्व से आत्म–रक्षा और औद्योगिक सुरक्षा बनी रहती है।

4. कभी–कभी खनिजों की प्राप्ति के लिये युद्ध हो जाते हैं। जर्मनी के पास कोयले का भण्डार है, परन्तु लोहे की कमी है। जर्मनी ने पड़ौसी देश लक्जमबर्ग के लोहे का अपने आधिपत्य में कर लिया था।

ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

पृथ्वी पर उपस्थित प्रत्येक जीव को अपनी जैविक क्रियाएं के संचालन हेतु ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्राणी होने के कारण ऊर्जा का उपयोग अपने जैविक क्रियाओं के अतिरिक्त अपने जीवन स्तर को बढ़ाने एवं आराम प्राप्ति हेतु भी करता है।

कार्य करने की क्षमता ऊर्जा कहलाती है।

ऊर्जा नियंत्रण के नियम (Laws of Energy Control)

ऊर्जा नियंत्रण उष्मागतिकी के नियमों पर आधारित है। उष्मागतिकी का प्रथम नियम ऊर्जा संरक्षण के बारे में बताता है। इसके अनुसार ऊर्जा का न तो निर्माण किया जा सकता है ना ही उसको नष्ट किया जा सकता है। इसे केवल एक रूप से दूसरे रूप में बदला जा सकता है। उदाहरणार्थ हरित पादप सौर ऊर्जा को अवशोषित कर इसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर जैवभार के रूप में संचित कर लेते हैं।

उष्मागतिकी की द्वितीय नियम के अनुसार ऊर्जा रूपांतरण में कुछ ऊर्जा का क्षय उष्मा के रूप में होता है। यह उष्मा वातावरण में चली जाती है। ऊर्जा को कैलोरी में मापा जाता है। एक ग्राम

कैलोरी ताप का वह परिमाण है जो एक ग्राम पानी के तापमान को एक डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ाने के लिए आवश्यक होती है। इस मात्रक का प्रयोग खाद्य पदार्थों एवं अन्य जैविक पदार्थों का ऊर्जा का मान प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। यद्यपि अब इसका स्थान जूल ने ले लिया है।

जूल कार्य का व्यावहारिक मात्रक है। यह ऊर्जा की व्युत्पन्न SI इकाई है जिसका अर्थ है वह कार्य जो एक न्यूटन के बराबर बल किसी बिन्दु को एक मीटर तक विस्थापित करने के लिए किया जाता है।

ऊर्जा के स्त्रोत (Sources of Energy)

ऊर्जा के स्त्रोतों को दो रूपों में बांटा जा सकता है–

I. नवीकरणीय ऊर्जा II. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत

I. नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत (Renewable Energy Resources)

ऐसे ऊर्जा संसाधन जिनकी आपूर्ति कमी खत्म नहीं होती है तथा इन्हें बार–बार उत्पन्न किया जा सकता है। इनका प्रयोग अगर विवेकपूर्ण तरीके से किया जाए तो वे अपने आप को यथावत बनाये रखते हैं, नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन कहलाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) सौर ऊर्जा

(2) पवन ऊर्जा

(3) समुद्री ऊर्जा

(4) भूतापीय ऊर्जा

(5) जैवभार आधारित ऊर्जा

1. सौर ऊर्जा (Solar energy) – सूर्य ऊर्जा का सबसे बड़ा स्त्रोत है। सम्पूर्ण ऊर्जा का 99.98% भाग सौर ऊर्जा से प्राप्त होता है लेकिन इसका बहुत सूक्ष्म अंश ही मानवोपयोगी ऊर्जा के रूप में प्रयोग हो पाता है। यह प्रदूषण रहित ऊर्जा का एक असीमित स्त्रोत है। सौर ऊर्जा सभी ऊर्जा का प्राथमिक स्त्रोत है इसे यांत्रिक, विद्युत या रासायनिक ऊर्जा में बदल दिया जाता है। इसके निम्न उपयोग है–

(i) पानी गर्म करना

(ii) भोजन पकाने में

(iii) सौर भट्टी के रूप में

(iv) इमारतों को गर्म करने में

(v) ग्रीन हाउस में

(vi) बीज उपचार में

(vii) ताप विद्युत ऊर्जा

(viii) जल पम्प

(ix) सोलर आसवन में।

सोलर कुकर से जिसमें एक वर्ग मीटर एकत्रण क्षेत्र में 17.3 प्रतिशत की दक्षता से सौर ऊर्जा एकत्रित हो रही है, 663 किग्रा ईंधन लकड़ी की बचत की जा सकती है।

प्रकाशवोल्टिक सेल द्वारा सौर ऊर्जा को सीधे ही विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। जिसका उपयोग सामुदायिक प्रकाश, रेडियो, टी.वी., घरेलू प्रकाश हेतु किया जाता है।

नेशनल सोलर फोटोवॉल्टिक एनर्जी डिमोनस्ट्रेशन प्रोग्राम के तहत गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत विभाग द्वारा 1980 के पश्चात् अनेक ऐसे संयंत्रों की स्थापना की गई जिसका उपयोग जल पम्प, टी.वी. एवं ग्रामीण विद्युतीकरण हेतु किया जाता है। हरियाणा में प्रथम सौर हीटर 1982 में हरियाणा ब्रीवरीज लिमिटेड, मुरथाल में लगाया गया जिसके द्वारा प्रतिदिन 15000 लीटर पानी को 65 डिग्री सेन्टीग्रेड पर गर्म किया जा सकता है। हरियाणा सौर ऊर्जा संयंत्रों में देश में अग्रणी है।

2. पवन ऊर्जा (Wind energy) – पवन ऊर्जा एक नवीनकरणीय ऊर्जा स्त्रोत है जो पृथ्वी की सतह के प्रतिदिन ठण्डे व गर्म होने की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। गतिशील वायु को हवा या पवन (Wind) कहते हैं। हवा की इसी ऊर्जा को मानव उपयोग में लिया जाता है। वायु में ऊर्जा निम्न कारणों से होती है–

(i) वायु की गति (Velocity of air)

(ii) वायु का घनत्व (Density of air)

(iii) गतिशील वायु क्षेत्र (Area of moving air)

किसी स्थान विशेष पर गतिशील वायु की शक्ति निम्न प्रकार से प्रदर्शित करती है–

$$P = 0.5\ PAV^3$$

P = वायु का घनत्व, A = गतिशील वायु क्षेत्र, V = वायु की गति

भारत में गुजरात, पश्चिमी घाट, मध्य भारत एवं दक्षिणी भारत के कई हिस्सों में वर्ष के 5–7 माह वायु का औसत घनत्व 4 किलोवाट प्रति वर्गमीटर प्रतिदिन से अधिक रहता है। शरद ऋतु में वायु घनत्व 10 किलोवाट प्रति वर्गमीटर प्रतिदिन से भी अधिक रहता है। उच्च घनत्व की गतिशील वायु को यांत्रिक या विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है।

पवन ऊर्जा परिवर्तन तंत्र दो प्रकार के होते हैं–

(i) समानान्तर अक्ष मशीन (Horizontal axis machine) – इसमें घूर्णन अक्ष गतिशील वायु की दिशा के समानान्तर होता है। इसी कारण इस प्रकार के तंत्र मे वायु की दिशा में परिवर्तन के साथ–साथ पवन ऊर्जा परिवर्तन तंत्र की दिशा को भी परिवर्तित करना पड़ता है।

(ii) लम्बवत अक्ष मशीन (Vertical axis machine) – इसमें घूर्णन अक्ष भूतल एवं वायु की दिशा दोनों से समकोण (90°) पर होता है। इसलिए इस तंत्र में वायु की दिशा में परिवर्तन के साथ–साथ पवन ऊर्जा परिवर्तन तंत्र की दिशा को परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं रहती। यह मशीन जल पम्प चलाने व कम मात्रा में विद्युत उत्पादन में उपयुक्त होती है। इसकी दक्षता 10–15% तक होती है।

पवन ऊर्जा के उपयोग (Uses of Wind Energy)

पवन ऊर्जा का प्रयोग आदिकाल से होता रहा है। चीन में लगभग 3000 वर्ष पुराने पवन ऊर्जा आधारित मशीनों के प्रमाण मिले हैं। आधुनिक समय में पवन ऊर्जा का प्रयोग जल पम्प चलाने, विद्युत उत्पादन एवं अनाज चक्कियों में किया जाता है।

(i) विद्युत उत्पादन (Electricity production) – विश्व में लगभग 4500 मेगावाट विद्युत का उत्पादन पवन ऊर्जा द्वारा किया जाता है। भारत में लगभग 1000 मेगावाट क्षमता का वायु ऊर्जा विद्युत उत्पादन संयंत्र स्थापित किया जा चुका है। गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत विभाग के अनुसार 3.3 मेगावाट माण्डवी, 1.1 मेगावाट कच्छ में, 550 किलोवाट ओखा, टुटिकोरिन एवं पुरी में स्थापित किया जा चुका है। इन क्षेत्रों में जहाँ औसत वार्षिक वायु वेग कम से कम 18 किमी. प्रति घण्टा या 2000 किलोवाट घण्टा प्रति वर्ष हो ऐसे संयंत्र अधिक सफल होते हैं।

(ii) पवन ऊर्जा आधारित जल पम्प (Water pump based on wind energy) – इस प्रकार के जल पम्प का आकार 1–8 मीटर रोटर व्यास तक होता है। वायु की गतिशीलता के आधार पर इसमें 1 किलोवाट तक की ऊर्जा प्राप्त की जाती है। अधिक ऊर्जा हेतु पवन विद्युत पम्पिंग तंत्र का उपयोग किया जा सकता है। आज ऐसे पम्प उपलब्ध हैं जो 5–6 कि.मी. प्रति घण्टा या अधिक वायुवेग पर प्रयोग में लाये जा सकते हैं। वायु पम्प द्वारा प्रति घन मीटर पानी को पम्प करने में लगभग 20 रुपये का खर्च आता है।

(iii) बैटरी चार्जर (Battery charger) – यह एक पवन मशीन है जिसमें रोटर का व्यास 1–2.5 मीटर तक होता है। जिसके द्वारा 10 मीटर/सैकण्ड की वायु गति पर 50–500 वाट की शक्ति प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार चार्ज बैटरी का प्रयोग प्रकाश, रेडियो संचार, अस्पताल के उपकरण आदि चलाने में किया जाता है।

(iv) पवन जनरेटर (Wind generator) – इसमें एक स्टील का टावर लगा रहता है एवं पवन को पकड़ने के लिए प्रोपेलर ब्लेड होते हैं तथा एक जनरेटर होता है। अलग–अलग पवन जेनेरेटर खेतों व घरों के पास लगे रहते हैं। लेकिन ये समूह में या पवन फार्म के रूप में व्यवस्थित होते हैं। बहती हुई पवन टर्बाइन में लगे ब्लेडों को ठीक एक बड़े हवा खिलौनानुमा पिन व्हील (Toy pin wheel) की सतह घुमाती है। इस यंत्र को पवन टर्बाइन कहते हैं।

टर्बाइन के ब्लेड एक से जुड़े रहते हैं जो एक टर्निंग शाफ्ट के ऊपर टिका रहता है। यह शाफ्ट एक गीयर ट्रांसमिशन बॉक्स के भीतर जाता है जहाँ उसके घूमने की गति बढ़ जाती है। ट्रांसमिशन बॉक्स एक उच्च गति वाले शाफ्ट से जुड़ा रहता है जो एक जनरेटर को घुमाता है, उससे विद्युत उत्पन्न होती है। पवन टर्बाइन जैसे पवन चक्कियाँ एक टावर पर लगाई जाती है जिससे अधिक से अधिक ऊर्जा संचित की जा सके। 30 मीटर से अधिक ऊंचाई पर ये तेज या कम तूफानीय हवाओं का लाभ ले सकते हैं।

भूतापीय ऊर्जा
(Geothermal Energy)

वह ऊर्जा जो भूमि के नीचे चट्टानों एवं तरल पदार्थों में छिपी होती है। पृथ्वी का आंतरिक ताप 1000–4000 डिग्री सेन्टीग्रेड तक होता है तथा दाब किसी–किसी स्थान पर 20000 पाउण्ड प्रति वर्ग इंच तक हो जाता है। भूतापीय ऊर्जा मुख्य रूप से पृथ्वी के अन्तर में उपस्थित रेडियोधर्मी थोरियम, पोटेशियम एवं यूरेनियम के विघटन का परिणाम है।

पृथ्वी के अन्दर छिद्रित स्थानों में भरे हुए अति गर्म जल, वाष्प या दोनों जलतापीय संसाधन कहलाते हैं। ये छिद्रित चट्टानें अपारगम्य चट्टानों की एक परत से घिरी होती है। जलतापीय संसाधनों का तापमान 100 से 240 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है। मध्यम ताप ब्राइन्स जिसमें मिथेन घुली रहती है, भू दाब संसाधन कहलाते हैं। इनका दाब 1500–15000 मीटर गहराई पर 5000–2000 psi होता है तथा तापमान 90–200 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है। गर्म शुष्क चट्टानों का ताप 90–950 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है। लावे का ताप 700–1600 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है।

भूतापीय ऊर्जा का प्रयोग स्टीम टर्बाइन को शक्ति प्रदान करने व विद्युत उत्पादन करने के लिए होता है। इसका प्रयोग घरों व इमारतों को गर्म करने के लिए भी किया जाता है।

जैवभार आधारित ऊर्जा (Biomass Based Energy)

जैव ऊर्जा एक ऐसी ऊर्जा है जो जैविक पदार्थों जैसे वनस्पति, जन्तु अपशिष्ट, नगरीय कचरा, औद्योगिक कचरा,

प्राकृतिक वनस्पति, वन अवशेष आदि से प्राप्त होती है।

हरित पादप सूर्य के प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण द्वारा विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं जो पौधों में संचित हो जाती है। जन्तु जब पेड़–पौधों को खाते हैं तो रासायनिक ऊर्जा उनके शरीर में एकत्र हो जाती है। इनमें से कुछ खाद एवं अन्य अवशिष्टों के रूप में रह जाती है। जैवभार ईंधन नवीनकरणीय होते हैं क्योंकि इसका कच्चा माल ज्यादा फसल उगाकर या ज्यादा जैविक कचरा एकत्र कर फिर से बनाया जा सकता है।

जैवभार वर्गीकरण (Classification of Biomass)

जैवभार का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. पेट्रो पादप (Petro plants) – आदिकाल से मानव भोजन व ईंधन के लिए पेड़–पौधों को काम में लेता रहा है। भोजन पकाने, घरों को गर्म करने, धातुओं को गर्म करने उससे हथियार या कृषि यंत्र का आकार देने आदि में इनका प्रयोग करता था। 1880 तक लकड़ियाँ प्राथमिक ऊर्जा का स्त्रोत थी इसके बाद कोयले ने इसका स्थान ले लिया जिसने औद्योगिक क्रान्ति ने जन्म लिया। अनेक वनस्पतियों से द्रव हाइड्रोकार्बन को पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन में परिवर्तित किया जा सकता है। जिन पौधों से यह द्रव हाइड्रोकार्बन प्राप्त किया जाता है उन्हें पेट्रो पादप कहते हैं। ये पौधे मुख्य रूप से यूफोर्बियेसी, एस्कलपियेडेसी, एपोसायनेसी, अर्टीकेसी, सेपोटेसी एवं कॉनवोलवुलेसी कुलों में मिलते हैं। इनकी 385 से अधिक प्रजातियाँ ज्ञात हैं।

2. ऊर्जा पौधारोपण (Energy plantations) – औद्योगीकरण व जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप अनवीनीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों पर दबाव पड़ा जिससे मनुष्य को ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों के बारे में सोचने को मजबूर होना पड़ा। फलस्वरूप ऐसे ऊर्जा स्त्रोतों का बढ़ावा दिया जाए जिन्हें पुनर्स्थापित किया जा सके। ऊर्जा पौधारोपण उन स्थानों पर किया जाता है जो कृषि अनउपयोगी होती है ऐसे क्षेत्र जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 60 से.मी. से कम होती हो ऊर्जा पौधरोपण के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके लिए निम्न प्रजातियाँ रोपित की जाती है–

(i) प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा	– अंग्रेजी बबूल
(ii) अकेशिया निलोटिका	– देशी बबूल
(iii) अकेशिया ऑरिकुलीफोर्मिस	– बंगाली बबूल
(iv) यूकेलिप्टस सिट्रीयोडोरा	– सफेदा
(v) ल्युसीना ल्युकोसिफेला	– सुबबूल
(vi) डलबर्जिया सिसू	– सफेद शीशम
(vii) टेमेरिन्डस इन्डिका	– इमली
(viii) एल्बिजिया लेबेक	– सरेस
(ix) पिथेसेलोबियम डल्से	– जंगल जलेबी

3. कार्बनिक अपशिष्ट (Organic wastes) – इसमें जन्तुओं, कृषि फसलों, वनों के अवशेष, नगरीय कचरा, प्लावित पौधे अवशेष एवं औद्योगिक अपशिष्ट आते हैं।

(i) जन्तु अपशिष्ट – गाय, बैल एवं भैंस आदि का गोबर इसका महत्वपूर्ण स्त्रोत है। जन्तु अपशिष्ट को निम्न दो प्रकार से ऊर्जा के रूप में प्रयोग में लिया जाता है–

(a) गोबर से जैव गैस बनाई जाती है। यह ज्वलनशील गैस होती है जिसका उपयोग प्रकाश, खाना पकाने आदि में किया जाता है।

(b) गोबर से बने कण्डे का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में खाना बनाने एवं मिट्टी के बर्तन पकाने में करते हैं।

तालिका – जन्तुओं से प्राप्त अपशिष्ट की औसत मात्रा

जन्तु	औसत अपशिष्ट (गोबर मात्रा किग्रा / प्रतिदिन)
भैंस	15.0
गाय	10.0
बैल	12.5
ऊंट	6.0
घोड़ा	10.0
भेड़	1.0
सुअर	2.25

(ii) कृषि वनस्पति अवशेष (Agricultural residue) – हमारे देश में 200 मिलियन टन कृषि फसलों के अवशेष जैसे गन्ने की पर्ण, चावल छिलका एवं कपास का तना आदि प्राप्त होता है। तालिका में इनका विवरण दिया गया है।

तालिका – महत्वपूर्ण कृषि अपशिष्ट की मात्रा

कृषि अवशेष	मात्रा (मिलियन टन / हैक्टेयर)
गेहूँ का भूसा	58.1 मिलियन टन
मक्का का भूसा (तना, भूसा, डुंडा)	29.6 मिलियन टन
कपास का तना	18.5 मिलियन टन
बरमुडा घास	15.0 टन
चावल छिलका	11.8 मिलियन टन
मूंगफली छिलका	8.6 मिलियन टन
गाजर घास	6.0 टन
गन्ने की पत्ती	5.0 टन

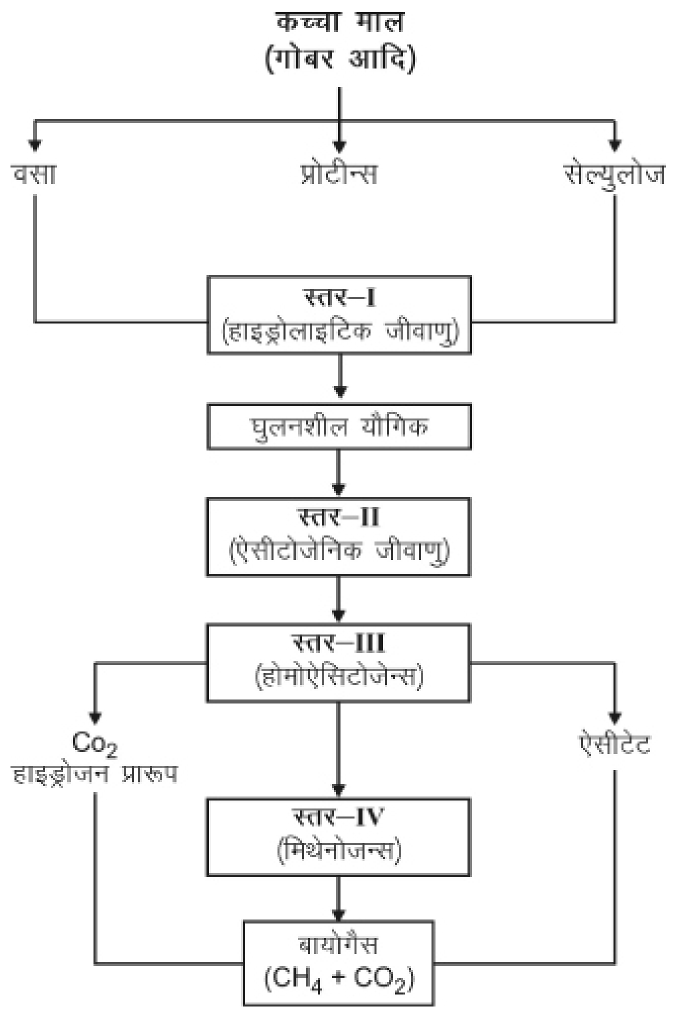

(iii) वन अवशेष (Forest residue) – वनों से प्राप्त होने वाली सूखी लकड़ियाँ, पत्तियाँ, बीमारी व कीड़े–मकोड़ों, वनों में आग एवं तूफान से प्राप्त मृत पौधें व लकड़ियाँ, सूखी घास व झाड़ियाँ, वृक्षों की सूखी छाल व आरा मशीन बुरादा आदि इसमें आते हैं जो ऊर्जा उपयोगी होते हैं।

(iv) नगरीय अपशिष्ट (Urban waste) – नगरों से निकलने वाला रसोई संबंधित कचरा, ज्वलनशील ठोस कचरा, व्यवसायिक कचरा, अनाज मण्डी एवं सब्जी मण्डी अपशिष्ट आदि से ऊर्जा प्राप्त होती है।

(v) प्लावित पौध अवशेष (Floating plants residues) – तालाबों, झीलों आदि में जलकुंभी, सिंघाड़ा व कमल जैसे पौधे वृहत मात्रा में जल सतह पर उग आते हैं। सुपोषणीय झीलों में इनका उत्पादन 25 टन प्रति एकड़ शुष्क भार तक होता है जिसका उपयोग मीथेन गैस के उत्पादन में ईंधन के रूप में होता है।

(vi) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial wastes) – उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों को भी भाप बनाने, गर्म करने आदि के साथ–साथ विद्युत उत्पादन हेतु प्रयोग किया जाता है।

बायोगैस (Biogas)

यह कई गैसों का मिश्रण है जिसमें लगभग 57–70 प्रतिशत मीथेन, 30–45 प्रतिशत कार्बनडाइऑक्साइड एवं सूक्ष्म मात्रा में अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड एवं ऑक्सीजन होती है। बायोगैस ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में गोबर आदि पर जीवाणुओं की क्रिया से बनाई जाती है। बायोगैस के निम्नलिखित फायदे हैं–

(i) सस्ती एवं प्रदूषण रहित तकनीक।

(ii) कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धता।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्त्रोत।

(iv) गाय का गोबर के अलावा अन्य कार्बनिक अपशिष्ट जैसे मुर्गी, भेड़, ऊंट, घोड़े व मानव मल तथा कृषि एवं औद्योगिक अपशिष्टों के प्रबंधन हेतु एक सुलभ तकनीक।

(v) पोषक तत्वों से समृद्ध प्रचुर मात्रा में उर्वरक की प्राप्ति।

बायोगैस उत्पादन में जीवाणु के तीन समूह भाग लेते हैं– (i) हाइड्रोलाइटिक एवं एसिडोजेनिक समूह (ii) एसिटोजेनिक जीवाणु (iii) मिथेनोजेनिक जीवाणु। इस गैस के उत्पादन में मुख्य रूप से गाय, भैंस आदि का गोबर कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होता है इसलिए इसे गोबर गैस भी कहते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया को संक्षेप में चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

बायोगैस संयंत्र में मिश्रण इकाई, प्रीडाइजेस्टर, डाइजेस्टर एवं गैस एकत्रण टैंक एवं ड्राइंग बेड्स मुख्य भाग है। इस गैस के लिए प्रयुक्त कच्चे माल (गोबर) आदि में 80% जल होता है तथा सूक्ष्म जैविक प्रक्रिया में 90% जल की आवश्यकता होती है। इसलिए बायोगैस उत्पादन हेतु अतिरिक्त जल की आवश्यकता होती है। इन्हें बड़े टैंकों में एकत्रित किया जाता है।

भारत सरकार के गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत विभाग ने बायोगैस तकनीक का वृहद् स्तर पर क्रियान्वित करके के लिए राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना शुरु की। इस परियोजना के तहत राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 5 लाख से अधिक बायोगैस संयंत्र लगाये जा चुके हैं। एक अनुमान के अनुसार 150,000 बायोगैस संयंत्र से ईंधन के रूप में प्रयुक्त होने वाली 600,000 टन लकड़ी की बचत की जा सकती है। इन संयंत्रों से प्राप्त 206 मिलियन टन कार्बनिक खाद से 1.4 मिलियन टन नत्रजन, 1.3 मिलियन टन फॉस्फोरस तथा 0.9 मिलियन टन पोटाश की बचत की जा सकती है।

जल विद्युत ऊर्जा (Hydroelectric Energy)

जल से प्राप्त जल ऊर्जा भी नवीनकरणीय ऊर्जा का एक स्त्रोत है। बहते हुए जल को जमा करके इसे विद्युत में परिवर्तित

किया जा सकता है। इसे पन बिजली विद्युत या जल विद्युत कहा जाता है।

पन बिजली ऊर्जा वह ऊर्जा है जो गिरते हुए पानी द्वारा पन पक्की, प्रोपेलर या टरबाइन्स को चलाने के द्वारा उत्पन्न होती है। इस हेतु नदी पर बांध का निर्माण किया जाता है जिसमें जल को बड़े कुण्ड में जमा किया जाता है। जब यह पानी टरबाइन से होकर गुजरता है तो वह घूमती है, जो इसके साथ जुड़े जनरेटर को भी घुमाती है, जिससे विद्युत उत्पन्न होती है।

इस प्रकार उत्पन्न विद्युत को घरों, खेतों एवं छोटे गांवों में उपयोग लिया जा रहा है।

समुद्री ऊर्जा (Oceanic Energy)

समुद्र ऊर्जा का असीमित भण्डार है। जल तरंग, ज्वार, जल ताप एवं घनत्व में अन्तर आदि समुद्री ऊर्जा के मुख्य आधार है। इसे निम्न प्रकारों में पढ़ा जा सकता है–

(i) समुद्र तापीय ऊर्जा परिवर्तन (Ocean thermal energy conversion) – सूर्य की किरणों के अवशोषण के फलस्वरूप समुद्र तल का तापमान बढ़ जाता है। इस तापीय ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को समुद्र तापीय ऊर्जा परिवर्तन (OTEC) कहते हैं।

यह संयंत्र एक ताप गतिकी चक्र पर कार्य करता है जिसमें गर्म सतही जल व ठण्डे गहरे जल के तापान्तर का उपयोग विद्युत उत्पादन हेतु किया जाता है। इन संयंत्रों के संचालन के फलस्वरूप स्वच्छ, ठण्डा एवं पोषण पदार्थों युक्त जल प्राप्त होता है।

(ii) लवणता के अन्तर से प्राप्त ऊर्जा (Energy from difference in salinity) – जल की लवणता में अन्तर से भी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। समुद्री जल की लवणता में अन्तर से परासरणीय दाब में अन्तर आ जाता है जो ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत है। लेकिन परासरणीय ऊर्जा को प्राप्त करने की तकनीक अभी उपलब्ध नहीं है।

(iii) तरंग ऊर्जा (Wave energy) – हवा के कारण समुद्र के जल में उत्पन्न गति तरंग कहलाती है। तरंगें अगर नियमित व शक्तिशाली है तो ऊर्जा का अहम् स्त्रोत बन सकती है। तरंग ऊर्जा की क्षमता अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग होती है। भारत के समुद्री तटों पर वार्षिक तरंग ऊर्जा क्षमता लगभग 5–15 किलोवाट प्रति मीटर के मध्य है। इसे पहले यांत्रिक व बाद में विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है।

(iv) ज्वार ऊर्जा (Tidal energy) – ज्वारभाटा के चढ़ाव व उतार से प्राप्त ऊर्जा ज्वार ऊर्जा कहलाती है। ज्वारभाटा पृथ्वी के घूर्णन एवं चन्द्रमा व सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के कारण समुद्र में उत्पन्न होता है। उच्च व निम्न ज्वार के मध्य 5 से 5.5 मीटर का अन्तर होने पर इसे विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है।

ज्वारीय ऊर्जा संयंत्र एकल या बहु बेसिन होते हैं जिसमें एक बांध, जनरेटिंग इकाई तथा टाइडल बेसिन और समुद्र को अलग करती हुई एक संरचना होती है। उच्च ज्वार के समय बेसिन में जल इकट्ठा हो जाता है तथा निम्न ज्वार के समय जब बाहरी जल का स्तर नीचे गिर जाता है तो जल टरबाइन्स से होकर बहने लगता है तथा विद्युत उत्पन्न होती है।

भारत में ज्वारीय ऊर्जा विकास परियोजना के लिए उपयुक्त स्थान कच्छ व केम्बे की खाड़ी है जहाँ पर अधिकतम ज्वारीय अन्तर क्रमशः 8 एवं 11 मीटर है। सुन्दरबन का गंगा डेल्टा जहाँ अधिकतम ज्वारीय अन्तर 5 मीटर है, भी ऐसी परियोजनाओं हेतु प्रयोग में लिया जा सकता है। हमारे देश की अनुमानित ज्वारीय ऊर्जा क्षमता लगभग 8000–9000 मेगावाट है।

महासागर के अन्दर बड़ी नदियों के समान बहता एवं घूमता हुआ जलधारा कहलाता है। इन नियमित व तीव्र धाराओं को भी ऊर्जा उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

II. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत
(Non Renewable Energy Resources)

वे ऊर्जा संसाधन जिनकी पुनर्स्थापना या पुनर्निर्माण संभव नहीं है, अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत कहलाते हैं।

अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों का भण्डार सीमित मात्रा में उपलब्ध है तथा इसके पुनरुत्पादन की दर खपत के अनुपात में नगण्य है। अतः ऊर्जा के इन स्त्रोतों का भविष्य खतरे में है। प्रमुख अनवीकरणीय स्त्रोत निम्न प्रकार है–

1. कोयला 2. खनिज तेल 3. प्राकृतिक गैस 4. नाभिकीय ऊर्जा

1. कोयला (Coal) – कोयला, खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस की उत्पत्ति जैविक होती है और इन्हें जीवाश्म ईंधन भी कहते हैं। कोयला घरों व उद्योगों में ऊर्जा के प्रथम स्त्रोत के रूप में काम आने वाला ठोस ईंधन है। हमारे देश में कोयले के प्रचुर मात्रा में भण्डार है। पृथ्वी के अन्दर लगभग 6000 बिलियन टन कोयला है। जिसमें से लगभग 2000 बिलियन टन कोयले का उपयोग किया जा चुका है। भारत में बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश व मध्य प्रदेश कोयला उत्पादक राज्य है।

कोयले में राख की मात्रा 30 प्रतिशत तक हो सकती है। कोयले में जितना कार्बन अधिक होता है, उसकी गुणवत्ता उतनी ही

अधिक होती है लेकिन सल्फर की मात्रा लगभग 1 प्रतिशत से कम होती है जबकि अन्य कोयले में सल्फर 3–4 प्रतिशत होता है। कोयले का निर्माण वनस्पतियों से होता है। कई लाखों वर्ष पूर्व अधिकतर पेड़ जो निचले दलदल में पैदा हुए थे। नष्ट होते गये तथा दलदल में नीचे की ओर धंसते गये। दलदल में ये पूरी तरह सड़ नहीं पाये क्योंकि वहाँ पर हवा का अभाव था। कुछ पेड़–पौधों के हिस्से से जो आंशिक रूप से कीचड़ में ही सड़ गये थे, उन्हें पीट कहा गया जिसमें उष्मा की कम मात्रा होती है। ये पीट पानी में दबने के बाद रेत व गीली मिट्टी में परिवर्तित हो जाते हैं। इन पर कई वर्षों तक और पदार्थ जमा होते रहे हैं और यह पेड़ों का हिस्सा दबाव एवं ताप के प्रभाव से कोयले में परिवर्तित हो जाता है। यह सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध ईंधन है लेकिन सबसे बड़ा प्रदूषण का स्त्रोत है।

2. खनिज तेल (Mineral oil) – यह एक तरल जीवाश्म ईंधन है जो पृथ्वी के नीचे और समुद्र की सतह के नीचे से मिलता है। ऐसा माना जाता है कि 10–20 करोड़ वर्ष पूर्व अतिसूक्ष्म जीवों जो पादप प्लवकों (Phytoplanktons) के जटिल विघटनकारी प्रक्रिया के फलस्वरूप तेल व प्राकृतिक गैस का निर्माण हुआ। ये पादप प्लवक संसार के महासागरों में वर्षों पहले तैरते आ रहे हैं। सौर ऊर्जा को प्रयोग में लेकर प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया द्वारा भोजन संचित किया। जब ये पादप समूह मर जाते हैं। समुद्री सतह के नीचे डूब जाते हैं तथा धीरे–धीरे दबे रहकर ठोस चट्टानों में बदल जाते हैं। पृथ्वी के भीतर का ताप एवं चट्टानों के भार के फलस्वरूप इन प्लवकों में उपस्थित ऊर्जा अंश धीरे–धीरे हाइड्रोकार्बन व गैस में बदल जाते हैं।

भारत में गंगा, ब्रह्मपुत्र घाटी का उत्तरी मैदान, बाम्बे हाई, थार रेगिस्तान, गुजरात के मैदान, अण्डमान निकोबार के आस–पास के क्षेत्रों में खनिज तेल के अपार भण्डार है। पेट्रोलियम एक महत्वपूर्ण संसाधन है। विश्व में प्रयुक्त होने वाली कुल ऊर्जा का 40 प्रतिशत भाग पेट्रोलियम प्रदान करता है। इसका प्रयोग कारों, हवाई जहाजों, टैक्ट्ररों, पानी के जहाजों, विद्युत खाना बनाने, उद्योगों, कृषि क्षेत्रों आदि में किया जाता है। जीवाश्म ईंधन के निर्माण में लाखों वर्ष लग जाते हैं। इसे नवीनीकृत नहीं किया जा सकता है, ना ही इसे फिर से बनाया जा सकता है। हम केवल इस पेट्रोलियम ईंधन को संरक्षण कर बचा सकते हैं। वायु एवं सौर ऊर्जा प्राप्ति के नये स्त्रोत प्राप्त कर इसकी खपत कम कर सकते हैं।

3. प्राकृतिक गैस (Natural gas) – यह भी एक जीवाश्म ईंधन है। पृथ्वी के नीचे पाई जाने वाली गैसों का मिश्रण है। खनिज तेल के साथ–साथ प्राकृतिक गैस का भण्डार भी मिलता है। प्राकृतिक गैस का उपयोग भी ऊर्जा स्त्रोत के रूप में किया जाता है। इसे घरेलू भट्टियों, रसोईघरों में, खाने पकाने में, पेट्रो केमिकल उद्योगों में इसका उपयोग किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग बसों व कारों में भी किया जा रहा है। उर्वरक संयंत्रों में भी इसे काम लिया जाता है।

भारत में त्रिपुरा, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उड़ीसा व आन्ध्र प्रदेश में इसके भण्डार मिले है।

4. नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear energy) – नाभिकीय संलयन एवं विखण्डन की प्रक्रिया में बड़ी मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। रेडियोएक्टिव पदार्थों के क्षय से भी ऊर्जा निकलती है।

परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने के लिए नाभिकीय रिएक्टर का उपयोग किया जाता है जिसमें यूरेनियम एवं प्लूटोनियम के समस्थानिक परमाणु संलयन की प्रक्रिया से गुजरते हैं। इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली उष्मा (भाप) द्वारा टरबाइन को घुमाकर विद्युत उत्पन्न की जाती है। परमाणु रिएक्टर तीन प्रकार के होते हैं–

(i) लाइट वाटर रिएक्टर – इसमें ठण्डा करने हेतु सामान्य जल प्रयोग में लाया जाता है।

(ii) हेवी वाटर रिएक्टर – इसमें ठण्डा करने के लिए भारी जल का प्रयोग किया जाता है। केनाडियन डयुटेरियम रिएक्टर (CANDU) इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

(iii) लिक्विड मेटल फास्ट ब्रीडर रिएक्टर – इस रिएक्टर में ठण्डा करने हेतु द्रव सोडियम का प्रयोग किया जाता है।

सम्पूर्ण विश्व में 300 से अधिक परमाणु ऊर्जा संयंत्र कार्यरत हैं। भारत परमाणु खनिजों से समृद्ध देश है तथा बिहार में यूरेनियम, केरल में थोरियम की खानें उपस्थित हैं। हमारे देश में छः नाभिकीय संयंत्र महाराष्ट्र (तारापुर), राजस्थान (कोटा), तमिलनाडु (कलपक्कम) आदि में कार्यरत है।

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों के अनेक लाभ हैं जैसे अधिक मात्रा में ईंधन की आपूर्ति, कम मात्रा में CO_2 उत्सर्जन, कम मात्रा में मध्यवर्ती पर्यावरणीय प्रभाव मजबूत सुरक्षा तंत्र के मद्देनजर दुर्घटना की कम सम्भावना आदि। लेकिन परमाणु अपशिष्टों के निपटान, परमाणु हथियार निर्माण में तकनीक का दुरुपयोग, आतंकी हमले के लिए अतिसंवेदनशीलता इसके उपयोग को मुश्किल विकल्प के रूप में में पेश करता है। एक परमाणु रिएक्टर का जीवन काल 40–60 वर्ष होता है तत्पश्चात इसे बन्द न कर ठण्डे ज्वलनशील संयंत्र के रूप में छोड़ देते हैं। क्योंकि इसमें उपस्थित अनेक रेडियोधर्मी पदार्थों को हजारों वर्षों तक पर्यावरण से दूर रखना होता है। इस प्रकार अनेक सुरक्षा उपायों के मद्देनजर परमाणु संयंत्र का निर्माण एवं रख–रखाव अत्यन्त महंगा होता है।

ऊर्जा आवश्यकता (Growing Energy Need)

आदि मानव ऊर्जा की पूर्ति के लिए पूर्णतया जीवों पर निर्भर था। ईंधन की आवश्यकता के लिए जैवभार आधारित स्त्रोतों एवं खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जानवरों का प्रयोग करता था। जनसंख्या वृद्धि, मानव के बौद्धिक विकास, औद्योगीकरण एवं मानव सभ्यता में परिवर्तन के साथ–साथ उसकी ऊर्जा की मांग में वृद्धि होती गई। परिणामस्वरूप वन आधारित (लकड़ी आदि) ऊर्जा स्त्रोतों पर अत्यधिक दबाव बढ़ता गया। गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं का गोबर भी ऊर्जा स्त्रोत के रूप में प्रयोग होने लगा। 1830 में उत्तरी अमेरिका एवं यूरोपीय देशों में कोयले के भण्डारों का पता चला। वर्ष 1880 में प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत के रूप में लकड़ी का स्थान कोयले ने ले लिया। ऊर्जा संसाधनों की आवश्यकता के आधार पर अब तक की स्थिति को निम्न पांच कालों में बांटा जा सकता है–

1. असीमित भण्डार काल (1850–1925) – इस काल में यह अवधारणा प्रबल थी कि ऊर्जा संसाधनों का भण्डार असीमित हैं तथा इसके परिणामस्वरूप उनका अंधाधुंध दोहन होने लगा तथा इसके संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया।

2. आत्मनिर्भरता काल (1925–1950) – इस काल में युद्ध के समय, युद्ध बाद पुनर्वास, जीवन स्तर में वृद्धि, राजनैतिक अस्थिरता, जनसंख्या में वृद्धि आदि के कारण ऊर्जा संसाधनों की मांग में तेजी से वृद्धि हुई। आपूर्ति के संबंध में आत्मनिर्भरता पर बल दिया गया।

3. पर्यावरण क्षति काल (1950–1960) – इस अवधि में तीव्र शहरीकरण एवं औद्योगिक वृद्धि के कारण पर्यावरणीय प्रदूषण में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण की अपार क्षति हुई।

4. जन चेतना काल (1960 के बाद) – इस काल में जनता को प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन से पारिस्थितिकी असन्तुलन की चिंता होने लगी। फलस्वरूप पर्यावरण संरक्षण हेतु नीतियों का निर्माण, गैर सरकारी प्रयास एवं जन चेतना आदि की ओर ध्यान आकर्षित हुआ।

5. वर्तमान काल – वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधनों की अपर्याप्तता के बोध के कारण संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है।

आधुनिक विकास का आधार ऊर्जा है। विकसित देशों में ऊर्जा की खपत विकासशील देशों से अधिक होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व की 33 प्रतिशत ऊर्जा की खपत होती है जबकि भारत में मात्र 1.5 प्रतिशत ऊर्जा व्यय होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति बिजली की खपत विकासशील देशों की तुलना में 25 गुना अधिक है। इन देशों में विद्युत ऊर्जा का उपयोग औद्योगिक क्षेत्रों में होता है। ऊर्जा की खपत का लगभग 90 प्रतिशत भाग खनिज तेल, कोयला एवं प्राकृतिक गैस से प्राप्त होता है।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत (Alternate Source of Energy)

परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों के अंधाधुंध दोहन से आई तीव्र कमी ने सभी देशों को ऊर्जा के गैर परम्परागत स्त्रोतों के विकास के लिए प्रेरित किया। हमारे देश में परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत की प्राप्ति हेतु तकनीकी केन्द्रीय व राज्य विद्युत प्राधिकरण के तहत कार्य करती है। भारत सरकार का गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत विभाग वैकल्पिक ऊर्जा के स्त्रोतों के विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील है। ऊर्जा के गैर परम्परागत स्त्रोत निम्नलिखित है–

(i) सौर ऊर्जा (Solar energy)

(ii) पवन ऊर्जा (Wind energy)

(iii) भूतापीय ऊर्जा (Geothermal energy)

(iv) जैवभार ऊर्जा (Biomass energy)

(v) ज्वारीय ऊर्जा (Tidal energy)

इन ऊर्जा स्त्रोतों का विस्तृत विवरण नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के अन्तर्गत किया गया है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. संसाधनः वे स्त्रोत जिन पर मानव समाज दीर्घ अवधि तक आश्रित रहता है।
2. प्राकृतिक संसाधनः वे संसाधन हैं जो प्रकृति द्वारा प्रदान किये जाते हैं और मनुष्य के लिए उपयोगी होते हैं।
3. प्रशासनिक आधार पर वनों को तीन प्रकारों में बांटा गया है – (i) संरक्षित वन (ii) रक्षित वन (iii) अवर्गीकृत वन।
4. जलवायवीय विषमता के आधार पर वन–सदाबहार, मानूसनी, शुष्क, पर्वतीय एवं डेल्टाई प्रकार के होते हैं।
5. निर्वनीकरणः वनों से निरन्तर वृक्षों की कटाई या विनाश निर्वनीकरण कहलाता है।
6. पृथ्वी पर जल के वितरण के अनुसार जल संसाधन दो प्रकार के होते हैं – (i) स्थलीय (ii) महासागरीय।
7. खाद्य संसाधनः प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से उत्पादित जिन पदार्थों से मनुष्य अपना भोजन प्राप्त करता है। खाद्य

संसाधन कहलाता है।

8. नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनः वे ऊर्जा संसाधन जिनमें पुनः स्थापना की सहज क्षमता होती है और यदि उनका विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए तो वे अपने आप को यथावत बनाये रखते हैं।
9. सौर ऊर्जाः सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा सौर ऊर्जा कहलाती है। यह सभी ऊर्जा का प्राथमिक, प्रदूषण रहित, असीमित ऊर्जा स्त्रोत है।
10. गतिशील वायु को हवा या पवन कहते हैं।
11. वायु में ऊर्जा उसकी गति, घनत्व व गतिशील वायु क्षेत्र के कारण होती है।
12. पवन ऊर्जा की सहायता से जल पम्प चलाने, अनाज पीसने, विद्युत उत्पादन किया जाता है।
13. जल तरंग, ज्वार, जल ताप एवं घनत्व में अन्तर समुद्री ऊर्जा के प्रमुख आधार है।
14. ज्वारभाटे के चढ़ाव व उतार से प्राप्त ऊर्जा ज्वारीय ऊर्जा कहलाती है।
15. पृथ्वी के अन्दर प्राकृतिक तौर पर उत्पन्न होने वाली उष्मा भूतापीय ऊर्जा कहलाती है।
16. भूतापीय ऊर्जा की उत्पत्ति पृथ्वी के अन्तर में उपस्थित रेडियोधर्मी पदार्थ थोरियम, पोटेशियम व यूरेनियम के विघटन के फलस्वरूप होती है।
17. महासागर के अन्दर बड़ी नदियों के समान बहता एवं घूमता हुआ जल जलधारा कहलाता है।
18. ऐसे पौधे जो द्रव हाइड्रोकार्बन के स्त्रोत होते हैं, पेट्रो प्लान्ट्स कहलाते हैं। उदाहरण – सेपोटेसी, यूफोर्बियेसी, एस्कलपियेडेसी, एपोसायनेसी आदि कुलों के पौधे।
19. कृषि अयोग्य भूमि पर ऐसे पौधों का रोपण करना जिससे ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा पौध रोपण कहलाती है। उदाहरण – एकेशिया निलोटिका, प्रोसोपिस चाइलेन्सिस, प्रो. सिनरेरिया, एल्बिजिया लेबेक आदि।
20. बायोगैस का उत्पादन O_2 की अनुपस्थिति में गोबर आदि से किया जाता है। यह मुख्य रूप से CO_2 एवं CH_4 गैसों का मिश्रण होती है।
21. बायोगैस के निर्माण में तीन समूह के जीवाणु– हाइड्रोलाइटिक, ऐसिटोजेनिक एवं मिथेनोजेनिक जीवाणु भाग लेते हैं।
22. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत वे ऊर्जा स्त्रोत है जिनकी पुनर्स्थापना या पुनर्निर्माण संभव नहीं है।
23. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत कोयला, प्राकृतिक गैस, खनिज तेल एवं नाभिकीय ऊर्जा है।
24. जीवाश्म ईंधन वे होते हैं जिनकी उत्पत्ति जैविक होती है। उदाहरण – कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस आदि।
25. कोयले में राख की मात्रा 30 प्रतिशत तक हो सकती है। कोयले की गुणवत्ता उसमें कार्बन की अधिकता पर निर्भर करती है।
26. भारत में रानीगंज, झरिया, बोकारो, पन्चकानम, सिंगरौली, चन्दा वार्घा एवं गोदावरी वेली मुख्य कोल फिल्ड्स हैं।
27. भारत में बाम्बे हाई और आस–पास तटीय मैदान, गुजरात के मैदान, थार का रेगिस्तान एवं अण्डमान निकोबार के आस–पास के क्षेत्र खनिज तेल के भण्डार है।
28. प्राकृतिक गैस का प्रयोग रसोईघरों, कारों व बसों एवं पेट्रो केमिकल उद्योगों में किया जाता है।
29. नाभिकीय रिएक्टर में रेडियोधर्मी पदार्थों की छोटी सी मात्रा से विशाल मात्रा में ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। नाभिकीय ऊर्जा का समुद्री जहाज, स्पेस क्राफ्ट्स एवं विद्युत उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।
30. भारत में छः नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र कार्यरत हैं जिसमें महाराष्ट्र में तारापुर, राजस्थान में कोटा एवं तमिलनाडु में कलपक्कम प्रमुख है।
31. भारत में परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत प्राप्ति की तकनीकी केन्द्रीय एवं राज्य विद्युत प्राधिकरण के अधीन होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के भौगोलिक क्षेत्र का कितना प्रतिशत भाग वनाच्छादित करना है–

   (अ) 33 (ब) 50

   (स) 63 (द) 23

2. सदाबहार वनों में वार्षिक औसत वर्षा कितनी होती है–

   (अ) 50 से.मी. से कम (ब) 50–100 से.मी.

   (स) 100–200 से.मी. (द) 200 से.मी. से अधिक

3. 2013 की वन रिपोर्ट के अनुसार देश के भौगोलिक क्षेत्रों का कितना प्रतिशत भाग वनाच्छादित है–

   (अ) 19.27 (ब) 21.23

(स) 33.02 (द) 41.07

4. मरुस्थलीय व शुष्क वन कहाँ पाये जाते हैं–

(अ) तमिलनाडु (ब) आसाम

(स) राजस्थान (द) पश्चिमी बंगाल

5. अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन किस मार्ग से होता है–

(अ) जल (ब) थल

(स) वायु (द) उपरोक्त सभी

6. प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत के रूप में लकड़ी का स्थान कोयले ने कब लिया–

(अ) 1830 (ब) 1850

(स) 1880 (द) 1910

7. समुद्री ऊर्जा का मुख्य आधार है–

(अ) जल तरंग (ब) जल ताप

(स) जल घनत्व (द) जल तरंग, ताप व घनत्व में अन्तर

8. पेट्रोलियम पादप किन कुलों के सदस्य हैं–

(अ) पोअेसी व लिलियेसी

(ब) एस्कलपिडियेसी व यूफोर्बियेसी

(स) क्रुसीफेरी व माल्वेसी

(द) सोलेनेसी एवं कम्पोजिटी

9. बायोगैस में कौनसी गैसों का मिश्रण होता है–

(अ) SO_2 एवं CO_2 (ब) SO_2 एवं CH_4

(स) CO एवं CO_2 (द) CO_2 एवं CH_4

10. बायोगैस उत्पादन हेतु कच्चे माल में कितना प्रतिशत जल की मात्रा होना आवश्यक है–

(अ) 50 (ब) 70

(स) 80 (द) 90

11. जीवाश्म ईंधन है–

(अ) खनिज तेल (ब) कोयला

(स) प्राकृतिक गैस (द) उपरोक्त सभी

12. ऊर्जा पौधारोपण के लिए उपयुक्त पादप प्रजाति है–

(अ) प्रोसोपिस सिनरेरिया (खेजड़ी)

(ब) प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा (विलायती बबूल)

(स) डिलोनिक्स रिजीया (गुलमोहर)

(द) केसिया फिस्टुला (अमलतास)

13. राजस्थान में परमाणु ऊर्जा संयंत्र कहाँ है–

(अ) बांसवाड़ा (ब) चित्तौड़गढ़

(स) कोटा (द) उदयपुर

14. भारत में ज्वारीय ऊर्जा विकास परियोजना के लिए उपयुक्त स्थान है–

(अ) बंगाल की खाड़ी

(ब) खंभात की खाड़ी

(स) कच्छ व केम्बे की खाड़ी

(द) उपरोक्त सभी

15. बायोगैस का उत्पादन किससे किया जाता है–

(अ) गोबर (ब) कृषि अपशिष्ट

(स) औद्योगिक अपशिष्ट (द) उपरोक्त सभी

16. कोयले की गुणवत्ता किसकी मात्रा पर निर्भर करती है–

(अ) राख की मात्रा (ब) कार्बन की मात्रा

(स) सल्फर की मात्रा (द) इनमें से कोई नहीं

17. वनोन्मूलन के पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव है–

(अ) बाढ़ (ब) मृदा अपरदन

(स) आवासों का विनाश (द) उपरोक्त सभी

18. जीवाश्मीय ईंधन है–

(अ) पेट्रोलियम (ब) प्राकृतिक गैस

(स) कोयला (द) उपरोक्त सभी

19. अनवीनकरणीय ऊर्जा स्त्रोत है–

(अ) सौर ऊर्जा (ब) पवन ऊर्जा

(स) भूतापीय ऊर्जा (द) नाभिकीय ऊर्जा

20. वायु में ऊर्जा का कारण है–

(अ) वायु की गति (ब) वायु का घनत्व

(स) गतिशील वायु क्षेत्र (द) उपरोक्त सभी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

(Very Short Answered Questions)

1. प्राकृतिक संसाधन क्या है?
2. नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन क्या है?
3. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के दो उदाहरण दीजिए।
4. वर्ष 2013 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का कितना प्रतिशत भाग वनाच्छादित है?

5. मानसूनी वनों में कितनी वार्षिक वर्षा होती है?
6. वन महोत्सव आन्दोलन किस वर्ष में प्रारंभ हुआ?
7. पृथ्वी का अधिकांश जल कहाँ पाया जाता है?
8. विश्व की खाद्य समस्या के दो प्रमुख कारण बताइए?
9. अतिचारण के दो प्रमुख प्रभाव लिखिए?
10. मरुस्थलीकरण क्या है?
11. प्रकाश वॉल्टिक सेल का क्या उपयोग है?
12. पवन ऊर्जा का उपयोग किसमें किया जाता है?
13. ज्वारीय ऊर्जा क्या है?
14. भूतापीय ऊर्जा क्या होती है?
15. जैवभार के स्त्रोत क्या है?
16. बायोगैस में किन गैसों का मिश्रण होता है?
17. पेट्रो प्लान्ट्स किसे कहते हैं?
18. गोबर का क्या उपयोग है?
19. बायोगैस का क्या उपयोग है?
20. भारत में कोयला उत्पादक के तीन राज्यों के नाम बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. वनों से क्या लाभ हैं?
2. राष्ट्रीय वन नीति की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?
3. ऊर्जा संसाधन कितने प्रकार के होते हैं?
4. जीवाश्मीय ईंधन क्या है?इनके क्या उपयोग हैं।
5. खाद्य संसाधन क्या है?इसके प्रमुख स्त्रोत कौनसे हैं?
6. निर्वनीकरण किसे कहते हैं?इसके पर्यावरण पर क्या प्रभाव है?
7. वनों के विनाश के रोकने के क्या उपाय है?
8. स्थलीय जल संसाधनों का क्या महत्व है?
9. महासागरीय जल संसाधनों का मनुष्य के लिए क्या उपयोग है?
10. विश्व खाद्य समस्या के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए।
11. आधुनिक कृषि के पर्यावरण पर क्या प्रभाव है?समझाइये।
12. नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
13. सौर ऊर्जा क्या है?इसके प्रमुख उपयोग क्या है।
14. समुद्री संसाधन क्या है?इससे ऊर्जा प्राप्त करने के स्त्रोत कौनसे हैं?
15. बायोगैस उत्पादन की विधि लिखिए।
16. अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों पर एक टिप्पणी लिखिए।
17. पवन ऊर्जा क्या है?इसके क्या उपयोग है?
18. नाभिकीय ऊर्जा क्या है?इसके उत्पादन के क्या लाभ एवं सीमाएं हैं?
19. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

    (i) खनिज तेल (ii) प्राकृतिक गैस
20. जैवभार के विभिन्न स्त्रोतों पर लेख लिखिए?

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. वन संसाधन क्या है?इस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. ऊर्जा संसाधन क्या है?ये कितने प्रकार के होते हैं?विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. अतिचारण व आधुनिक कृषि के पर्यावरण पर प्रभावों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. जल संसाधनों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. बायोगैस क्या है?इसके उत्पादन की क्रिया विधि एवं उपयोग पर टिप्पणी लिखिए।
6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

    (i) वन संसाधन

    (ii) खाद्य संसाधन

    (iii) जल संसाधन

उत्तरमाला: 1. (अ) 2. (द) 3. (ब) 4. (स) 5. (अ) 6. (स) 7. (द) 8. (ब) 9. (द) 10. (द) 11. (द) 12. (ब) 13. (स) 14. (स) 15. (द) 16. (ब) 17. (द) 18. (द) 19. (द) 20. (द

पर्यावरण विज्ञान – II

इकाई – 1
पर्यावरणीय प्रदूषण एवं मानव स्वास्थ्य
(Environmental Pollution and Human Health)

परिचय (Introduction)

आदिम मानव का प्रकृति के साथ एक सामंजस्य स्थापित था क्योंकि उसकी आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित थी। लेकिन मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ उसकी आवश्यकताएं भी बढ़ती गई। बौद्धिक विकास एवं मानव आवश्यकताओं में वृद्धि के फलस्वरूप तकनीकी एवं औद्योगिक विकास में तेजी आई। मानव ने अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राकृतिक संसाधनों के दोहन करना प्रारंभ कर दिया जिससे प्रकृति के विभिन्न घटकों में असंतुलन उत्पन्न हो गया।

औद्योगिक एवं तकनीकी विकास, शहरीकरण, बहुद्देशीय परियोजनाओं की स्थापना, फोरलेन सड़कों का निर्माण तथा अनियंत्रित प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्या का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रदूषण की परिभाषा (Definition of Pollution)

जैवमण्डल के किसी भी घटक में प्रत्यक्ष या परोक्ष वे अवांछनीय परिवर्तन जो जीवित घटकों के लिए हानिकारक हो, प्रदूषण कहलाता है।

राष्ट्रीय प्रदूषण शोध समिति (1966) के अनुसार वायु, जल तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में वह अवांछनीय परितर्वन जिससे मनुष्य एवं अन्य जीवों को क्षति पहुंचती हो या क्षति पहुंचने की संभावना हो, प्रदूषण कहलाता है।

प्रदूषण के प्रकार (Types of Pollution)

प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर प्रदूषण को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) वायु प्रदूषण (Air pollution)
(ii) जल प्रदूषण (Water pollution)
(iii) मृदा प्रदूषण (Soil pollution)
(iv) ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution)
(v) तापीय प्रदूषण (Thermal pollution)
(vi) रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive pollution)

वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायुमण्डल में पाई जाने वाली विभिन्न गैसों के निश्चित अनुपात में होने वाला गुणात्मक एवं मात्रात्मक परिवर्तन जो पर्यावरण के जैविक घटकों के लिए नुकसानदायक हो, वायु प्रदूषण कहलाता है।

वायुमण्डल में निम्न गैसें मुख्य रूप से पाई जाती है–

1. नाइट्रोजन – 78.84%
2. ऑक्सीजन – 20.947%
3. आर्गन – 0.934%
4. कार्बनडाइऑक्साइड – 0.031%
5. जलवाष्प – 0 से 4%
6. अवशेष गैस – निओन, क्रिप्टोन आदि

वायुमण्डल पृथ्वी का रोधी आवरण है, जिसमें उपरोक्त गैसों का निश्चित अनुपात पाया जाता है। वायुमण्डल में इन गैसों का एक निश्चित अनुपात जैवमण्डल की समस्त क्रियाओं को सन्तुलित रखता है। वायुमण्डल पृथ्वी पर आने वाली पराबैंगनी किरणों एवं उल्कापिण्डों से भी रक्षा करती है। लेकिन बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के फलस्वरूप वायुमण्डल की विभिन्न गैसों के सन्तुलन में परिवर्तन हो गया है तथा अनेक अवांछनीय गैसों की मात्रा में भी अनावश्यक रूप से वृद्धि हो रही है।

वायु प्रदूषक (Air pollutants) – वे कणीय या द्रवीय पदार्थ जिनकी वायुमण्डल में उपस्थिति पौधों, मानवों एवं अन्य जीवों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं, वायु प्रदूषक कहलाते हैं।

भारतीय वायु (प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम) अधिनियम 1981 के अनुसार वे ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ जिनकी प्रचुर मात्रा पेड़–पौधों, मानव तथा अन्य प्राणियों पर नुकसानदायक प्रभाव

उत्पन्न करते हों, वायु प्रदूषक कहलाते हैं।

रासायनिक संगठन के आधार वायु प्रदूषक दो प्रकार के होते हैं–

(i) गैसीय वायु प्रदूषक (Gaseous air pollutants): SO_2, CO, H_2S, NOx एवं ओजोन।

(ii) कणीय वायु प्रदूषक (Particulate air pollutants) – कार्बन, तार, रेजिन कण, धातु कण, परागकण, जीवाणु एवं कवक बीजाणु।

स्त्रोत एवं उत्पत्ति के आधार पर भी वायु प्रदूषक दो प्रकार के होते हैं–

(i) प्राथमिक वायु प्रदूषक (Primary air pollutants) – ऐसे वायु प्रदूषक जो किसी स्त्रोत से सीधे उत्सर्जित होते हैं। उदाहरणार्थ – सल्फर यौगिक (SO_2, H_2S), कार्बनमोनोक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO, NO_2) एवं फ्लोराइड यौगिक (HF, Sif_4) एवं हाइड्रोकार्बन, धातु एवं कवकनाशी कण युक्त कणीय पदार्थ।

(ii) द्वितीयक वायु प्रदूषक (Secondary air pollutants) – वे वायु प्रदूषक जो प्राथमिक प्रदूषकों की आपसी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इसमें परऑक्सी एसीटाइल नाइट्रेट (PAN) एवं ओजोन प्रमुख है।

धूमकोह (Smog) – धुंआ (Smoke) तथा कोहरा (Fog) शब्दों से मिलकर धूमकोह शब्द का निर्माण हुआ है। धूमकोह का निर्माण सामान्यतः शहरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में होता है। यह दो प्रकार का होता है।

(i) सल्फ्यूरस धूमकोह (Sulphurous smog) – ऐसे औद्योगिक क्षेत्र जहाँ पर SO_2 प्रचुर मात्रा में निकलती है, वहाँ पर इस धूमकोह का निर्माण होता है। इसे औद्योगिक धूमकोह (Industrial smog) या ग्रे वायु (Grey air) भी कहते हैं। 1952 में लन्दन में इस धूमकोह से अत्यधिक क्षति हुई थी इसीलिए इसे लन्दन धूमकोह (London smog) भी कहते हैं। इस धूमकोह में सल्फरडाइऑक्साइड एवं कणीय पदार्थों जैसे प्राथमिक प्रदूषकों की मात्रा अधिक होती है।

(ii) प्रकाश रासायनिक धूमकोह (Photochemical smog) – शहरी क्षेत्रों में गैसोलीन के दहन से निकलने वाले धुएं एवं सूर्य के प्रकाश से प्रकाश रासायनिक धूमकोह का निर्माण होता है। इसे भूरी वायु (Brown air) भी कहते हैं। 1940 के दशक में इस धूमकोह के कारण अमेरिका के लॉस एन्जिलिस में अत्यधिक क्षति हुई थी, इसीलिए इसे लॉस एन्जिलिस धूमकोह (LA smog) भी कहा जाता है। इसमें ओजोन एवं परऑक्सी एसीटाइल नाइट्रेट (PAN) जैसे द्वितीयक प्रदूषक पाये जाते हैं।

वायु प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Air Pollution)

वायु प्रदूषण के स्त्रोतों को दो भागों में बांटा गया है–

(i) प्राकृतिक स्त्रोत (Natural sources) – प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकम्प, आंधी, तूफान एवं ज्वालामुखी से निकली गैसें एवं लावा तथा जैविक एवं रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप निष्कासित गैसें इस श्रेणी में आती है। यह प्रदूषण काफी कम मात्रा में होता है।

(ii) मानवजनित स्त्रोत (Anthropogenic sources) – औद्योगीकरण एवं शहरीकरण मुख्यतः बढ़ते हुए वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है। जैसे –

(अ) पेट्रोलियम रिफाइनरी से सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गैसें प्रदूषक के रूप में निकलती है।

(ब) सीमेन्ट उद्योगों से निकलने वाली धूल कणीय प्रदूषक के रूप में वायुमण्डल में उपस्थित रहती है।

(स) तापीय शक्ति गृहों में कोयले के दहन से राख, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बनमोनोक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन्स एवं अन्य कणीय पदार्थ प्रदूषक के रूप में निकलते हैं।

(द) ऑटोमोबाइल्स से निकलने वाले धुएं में भी अनेक प्रदूषक जैसे कार्बनमोनोक्साइड, लेड ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन्स आदि उत्सर्जित होते हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषक वायुमण्डल में उत्सर्जित किये जाते हैं। जिनकी सूची तालिका 1.1 में दी गई है।

वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects of Air Pollution on Human Health)

वायु प्रदूषकों की प्रकृति एवं मात्रा के अनुरूप वनस्पति, मानव एवं उसके पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। कुछ मुख्य प्रदूषकों के प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(I) कार्बन मोनोक्साइड का प्रभाव (Effect of CO) – कार्बनमोनोक्साइड का अधिकांश उत्सर्जन स्वचालित वाहनों से होता है। यह एक रंगहीन, स्वादहीन, गंधहीन एवं उत्तेजना रहित गैस है, इसलिए इसकी अधिक सान्द्रता में उपस्थिति का भी पता नहीं चलता तथा कुछ ही घण्टों में जीव की मृत्यु हो जाती है।

कार्बनमोनोक्साइड श्वसन द्वारा मानव शरीर में प्रवेश कर जाती है। यह रूधिर में उपस्थित हीमोग्लोबिन से क्रिया कर कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन का निर्माण कर देती है। इसमें ऑक्सीजन की तुलना में लगभग 200 गुणा ज्यादा हीमोग्लोबिन से जुड़ने की क्षमता होती है।

कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन के निर्माण के फलस्वरूप रूधिर कोशिकाओं में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता में कमी आ जाती है। शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाने से हाइपोक्सिया (Hypoxia) हो जाता है। ऑक्सीजन की अत्यधिक कमी से सेरिब्रल एनोक्सिया भी हो जाता है जिससे अन्ततः जीव की मृत्यु हो जाती है।

कार्बनमोनोक्साइड की 1000 PPM से अधिक सान्द्रता पर पौधों में पर्णों का समय पूर्व गिरना, छोटा रह जाना, कुंतलता (Curling) आदि प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

(II) नाइट्रोजन ऑक्साइड का प्रभाव (Effects of Nitrogen

तालिका 1.1 : वायु प्रदूषक एवं उसके स्त्रोत

क्र.सं	वायु प्रदूषक	स्त्रोत
1.	सल्फर यौगिक जैसे SO_2, H_2S एवं H_2SO_4	कोयला, औद्योगिक इकाइयाँ एवं तापीय शक्तिगृह
2.	नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसे NO_2, NO, HNO_3	स्वचालित वाहन, तापीय शक्तिगृह, उद्योग
3.	कार्बन यौगिक जैसे CO, CO_2	कृषि कार्य, स्वचालित वाहन एवं जीवाश्मीय ईंधन
4.	हाइड्रोकार्बन जैसे बेन्जीन, बेन्जाइपाइरीन आदि	स्वचालित वाहन, उद्योग
5.	ओजोन	मानव गतिविधियों के फलस्वरूप, द्वितीयक प्रदूषक के रूप में (प्रकाश रासायनिक क्रिया द्वारा)
6.	निलम्बित कणीय पदार्थ (SPM)	औद्योगिक इकाइयाँ, स्टोन क्रेशर, तापीय शक्तिगृह, जीवाश्मीय ईंधन
7.	धातु कण (Ni, Pb, As, Tin, Cd आदि)	स्वचालित वाहन, धात्विक औद्योगिक इकाइयाँ

oxides) – ऑक्साइड का अधिकांश उत्सर्जन स्वचालित वाहन, उद्योगों आदि से होता है। प्रदूषित वायु में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड एवं नाइट्रिक ऑक्साइड मुख्य रूप से होती है जिसमें 75% नाइट्रिक ऑक्साइड होती है। यह गैस आंखों में जलन एवं श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोग करती है।

नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड फेफड़े की कुपिकाओं (Alveoli) को संक्रमित करती है। इसकी अधिक मात्रा फेफड़ों में लम्बे समय तक रहने पर वातस्फीति (Emphysema), फेफड़ों में सूजन (Inflammation) एवं अन्ततः जलशोथ (Edema) हो जाता है।

पौधों में नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड की अधिक मात्रा जो रन्ध्रों द्वारा प्रवेश करती है, हरिमाहीनता (Chlorosis), उत्तकक्षय (Necrosis) आदि उत्पन्न करती है। पौधों में पर्णहरित की कमी होने से प्रकाशसंश्लेषण की दर कम हो पैदावार में कमी आ जाती है।

नाइट्रोजन के ऑक्साइड वायुमण्डल में उपस्थित हाइड्रोकार्बन से क्रिया कर ओजोन एवं परऑक्सी एसीटाइल नाइट्रेट (PAN) का निर्माण कर देते हैं, जो प्रकाश रासायनिक धूमकोह का प्रमुख अंग है।

(III) सल्फर डाइऑक्साइड का प्रभाव (Effects of Sulphur dioxide) – सल्फर के ऑक्साइड वायुमण्डल में मुख्य रूप से स्वचालित वाहनों से निकलने वाले धुएं, कोयलें एवं पेट्रोलियम के दहन तथा तापीय बिजलीघर से उत्सर्जित होती है। यह गैस आंखों एवं श्वसन नली में जलन उत्पन्न करती है। वायुमण्डल में उपस्थित नमी से क्रिया कर सल्फ्यूरिक अम्ल का निर्माण करती है जो चर्मरोग का रोगकारक है।

पौधों में यह रन्ध्रों द्वारा प्रवेश कर हरिमाहीनता एवं उत्तकक्षय जैसे लक्षण उत्पन्न करती है। ब्रायोफाइट्स एवं लाइकेन्स इस गैस के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं इसलिए इन्हें SO_2 प्रदूषण का सूचक भी माना जाता है।

अम्ल वर्षा (Acid Rain) – सल्फर के ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड वायु के मुख्य प्रदूषक है। वायुमण्डल में इनकी लम्बे समय तक उपस्थिति जलवाष्प से क्रिया करके सल्फ्यूरिक एवं नाइट्रिक अम्ल का निर्माण कर देती है। ये दोनों ही अम्ल वर्षा जल के साथ पृथ्वी पर अम्ल वर्षा के रूप निक्षेपित हो जाते हैं।

(I) $SO_2 + O_2 \rightarrow 2SO_3$

$2SO_3 + H_2O \rightarrow H_2SO_4$ (सल्फ्यूरिक अम्ल)

(ii) $2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$

$4NO_2 + 2H_2O + O_2 \rightarrow 4HNO_3$ (नाइट्रिक अम्ल)

अम्ल वर्षा के निम्नलिखित प्रभाव है–

(i) इससे जल व मृदा का पी.एच. कम हो जाता है। जिससे मृदा में तत्वों में कमी हो जाती है। इससे विषाक्त एल्युमिनियम मुक्त हो जाता है।

(ii) अम्लीय वर्षा से जलाशयों में मछलियाँ मर जाती है। अमेरिका, कनाडा एवं नॉर्वे की कई झीलें इसके कारण अम्लीकृत हो चुकी है तथा इनमें मछलियों की जनसंख्या तीव्र गति से कम हो गयी है। इन्हें मछलियों का कब्रिस्तान (Graveyard of fishes) कहा जाता है।

(iii) अम्ल वर्षा के कारण अनेक जीवाणु एवं नील हरित शैवाल मर जाते हैं। इससे पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ जाता है।

(iv) अम्ल वर्षा से इमारती सामान जैसे स्लेट, मार्बल, लाइम स्टोन आदि का अपरदन होने लगता है। आगरा के ताजमहल की सुन्दरता भी इस कारण से नष्ट हो रही है।

(v) अम्ल वर्षा के कारण जल में भारी धातुओं जैसे एल्युमिनियम, मेंग्नीज, जिंक, केडमियम, लेड एवं कॉपर की मात्रा सुरक्षित मात्रा से अधिक हो जाती है।

(vi) यूरोपीय देशों जैसे स्विटजरलैण्ड, नीदरलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया एवं पश्चिमी जर्मनी के वन क्षेत्र अम्ल वर्षा के कारण भयंकर रूप से नष्ट हो चुके हैं।

(IV) फ्लोराइड का प्रभाव (Effect of Fluoride) –

फॉस्फेट उर्वरक फेक्ट्री, ग्लास एवं एल्युमिनियम फेक्ट्री से निकलने वाले फ्लोराइड यौगिक जैसे HF एवं SiF_4 प्रदूषण का स्त्रोत है। फ्लोराइड की सूक्ष्म मात्रा दांतों एवं हड्डियों को मजबूती प्रदान करते हैं लेकिन इसकी अधिक सान्द्रता से प्रारंभ में पेट दर्द, अपच, डायरिया, गैस आदि लक्षण प्रकट होते हैं तथा बाद में दांतों एवं हड्डियों में छिद्रयुक्त रंगहीन धब्बे बन जाते हैं। अन्ततः दांत व हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। पैर घुटने से बाहर की तरफ मुड़ जाते हैं। इसे नोक नी सिन्ड्रोम **(Knock knee syndrome)** कहते हैं।

फ्लोराइड पौधों में भी रन्ध्रों के माध्यम से प्रवेश करता है तथा पर्ण के शीर्ष एवं किनारों पर जाकर जमा हो जाता है। परिणामस्वरूप पर्णों के शीर्ष एवं किनारों पर ऊत्तकक्षय के लक्षण दिखाई देते हैं।

प्रदूषित क्षेत्रों के आस–पास चरने वाले पशु भी फ्लोरोसिस के शिकार हो जाते हैं। घासस्थलों के धीरे–धीरे इसके एकत्रीकरण होने से यह खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर प्राणियों पर विषाक्त प्रभाव डालते हैं।

(V) ओजोन का प्रभाव (Effect of Ozone) – ओजोन

$$NO_2 \xrightarrow[\text{किरणें}]{\text{पराबैंगनी}} NO + O$$

परमाणु ऑक्सीजन

$$O_2 + O \xrightarrow{\text{हाइड्रोकार्बन}} O_3 \text{ (ओजोन)}$$

क्षोभमण्डल में द्वितीयक प्रदूषक के रूप में विद्यमान रहती है। इसका निर्माण समताप मण्डल में O_2 के द्वारा होता है तथा यह पृथ्वी पर सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को रोकने का कार्य करती है। क्षोभमण्डल में इसका निर्माण सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में निम्न प्रकार से होता है–

ओजोन की अधिक मात्रा प्राणी एवं उसके पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव डालती है। इसकी उपस्थिति से आंख, कान एवं गले में जलन उत्पन्न होती है। इसकी अधिक मात्रा से फुफ्फुसीय एडिमा, एम्फीसिमा, क्रोनिक ब्रोन्काइटिस एवं दमा जैसे रोग हो जाते हैं। ओजोन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र एवं डी एन ए को भी प्रभावित करती है।

पौधों में यह गैस रन्ध्रों के माध्यम से प्रवेश कर हरिमाहीनता एवं उत्तकक्षय के लक्षण उत्पन्न करती है। पर्ण की ऊपरी सतह पर सफेद या हल्के भूरे रंग के धब्बे बनाती है। अमीनो अम्ल सिस्टीन, मिथायोनिन, ट्रिप्टोफान, टाइरोसीन आदि O_3 के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं।

ओजोन गैस रंजकों, रबड़, रेशों जैसे कपास, पॉलीस्टर एवं नाइलोन आदि से क्रिया कर हानिकारक प्रभाव डालती है। रबर को कठोर बनाकर उसमें दरारें उत्पन्न कर देती है।

(VI) कणीय निलम्बित पदार्थों का प्रभाव (Effect of SPM) – वायुमण्डल में कणीय पदार्थ स्वचालित वाहनों, उद्योगों एवं ईंधन दहन से उत्सर्जित होते हैं। निलम्बित कणीय पदार्थ जिनका परिमाण 3 माइक्रॉन से भी कम होता है, ये अतिसूक्ष्म होने के कारण फेफड़ों की कूपिका झिल्ली को पार कर सकते हैं। इनके प्राणियों पर दुष्प्रभाव निम्न प्रकार होते हैं–

(i) इनमें उपस्थित सीसा, पारा एवं केडमियम के कण अत्यन्त विषाक्त होते हैं तथा विशेष रूप से तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं। ये श्वसन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र एवं रक्त परिसंचरण तंत्र को भी प्रभावित करते हैं। सीसा एवं आर्सेनिक गर्भस्थ शिशु में अंगहीनता एवं मानसिक विकृति उत्पन्न कर देते हैं। इससे कैंसर उत्पन्न होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

(ii) कोयले के कण युक्त कणीय पदार्थ फलीय पौधों की पैदावार कम कर देते हैं। शीर्ष कलियों को मृत करने के साथ–साथ परागकण अंकुरण एवं फल बनने की प्रक्रिया को रोक कर यह अपना प्रभाव डालते हैं।

(iii) सीमेन्ट फेक्ट्री से निकलने वाली डस्ट (धूल) में कैल्शियम सिलीकेट एवं कैल्शियम एल्युमिनेट पौधे की पर्णों पर एक ऐसी मोटी परत बना देते हैं। फलस्वरूप पर्णों में गैसीय आदान–प्रदान एवं प्रकाश की आपूर्ति प्रभावित हो जाती है, जिससे पौधों में प्रकाशसंश्लेषण एवं फल निर्माण प्रभावित हो जाता है।

(iv) वायुमण्डल में उपस्थित हाइड्रोकार्बन कण अन्य प्राथमिक प्रदूषकों से मिलकर O_3 एवं PAN का निर्माण कर लेते हैं, जो धूमकोह निर्माण का भाग होते हैं। हाइड्रोकार्बन बेन्जोपाइरीन कैंसरकारक होते हैं तथा फुफ्फुसीय कैंसर के कारक होते हैं।

(v) इसके साथ–साथ जीवाणु कोशिकाएं, बीजाणु, कवक बीजाणु, परागकण आदि जैविक कणीय पदार्थों के रूप में वायुमण्डल में विद्यमान होते हैं। ये प्राणियों में एलर्जी एवं ब्रोन्कीयल अस्थमा जैसे रोग उत्पन्न करते हैं।

वायु की गुणवत्ता (Quality of Air)

वायु की गुणवत्ता मापना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। शुद्ध वायु क्या है?

शुद्ध वायु वह होती है जिसमें प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली गैसें उपस्थित होती है लेकिन प्रकृति में शुद्ध वायु पाई नहीं जाती है। प्राकृतिक रूप से इसमें परागकण, डस्ट एवं कोहरा आदि संदूषक के रूप में उपस्थित रहते हैं।

वायु गुणवत्ता मापन में इसलिए सभी प्रकार के संदूषकों (मानव जनित एवं प्राकृतिक) को मापने की व्यवस्था होती है। किसी भी स्थान की वायु की गुणवत्ता मापने के लिए उसमें उपस्थित सभी संदूषकों को भी मापन में शामिल किया जाता है।

वायु प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Air Pollution)

वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय निम्नलिखित है–

(i) सड़कों व घरों के किनारों पर वृक्षारोपण कर ग्रीन बेल्ट का निर्माण करना चाहिए।

(ii) प्रदूषण प्रभावित क्षेत्रों जैसे सीमेन्ट फेक्ट्री, औद्योगिक इकाइयों के आस–पास बड़ी पत्तियों वाले पौधों का रोपण करना चाहिए ताकि वे उनसे निकलने वाले प्रदूषकों को अवशोषित कर लें।

(iii) औद्योगिक इकाइयों में उच्च दक्षता एवं नयी तकनीक वाले संयंत्रों का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) सल्फर युक्त ईंधन एवं गैसोलीन का प्रयोग कम किया जाना चाहिए ताकि प्रदूषक गैसों का उत्सर्जन कम हो।

पर्यावरण एवं प्रदूषण के स्त्रोतों के बारे में जनमानस को संगोष्ठी, सभा एवं कार्यशालाओं द्वारा जागरूक करना।

(vi) केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये पर्यावरण कानूनों (Environmental Acts) को सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

(vii) उद्योगों की चिमनियों की ऊँचाई में वृद्धि की जानी चाहिए।

(viii) पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले उद्योगों को बन्द कर देना चाहिए।

(ix) प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को शहर एवं घनी आबादी वाले क्षेत्रों से दूर लगाया जाना चाहिए।

(x) ऊर्जा, उर्वरक आदि संयंत्रों में तरल प्राकृतिक गैस आदि का प्रयोग करने से प्रदूषण घटाया जा सकती है।

(xi) लकड़ी एवं गोबर के उपलों (कंडों) के स्थान पर बायो गैस, मिट्टी का तेल आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त कणीय एवं गैसीय वायु प्रदूषकों के नियंत्रण हेतु निम्न उपाय भी किये जा सकते हैं–

(I) कणीय वायु प्रदूषण नियंत्रण हेतु निम्न संयंत्रों का प्रयोग करते हैं–

(i) चक्रवात संग्राहक (Cyclone collector) – इस विधि में 5–20 माइक्रोन परिमाण के कणों को आसानी से दूर किया जा सकता है। यह प्रदूषित वायु के पूर्व उपचार की एक विधि है। इस विधि में प्रदूषित वायु शंकुरूप मध्य रेखा से दूर सिलेण्डर में भेजी जाती है। जिससे शंकु में प्रचण्ड भंवर उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप अधिक परिमाण वाली अशुद्धियाँ सिलेण्ड की दीवार की तरफ से गति करती है, जहाँ वे घर्षण द्वारा धीमी होकर शंकु के पेंदे में चली जाती है। शुद्ध वायु सिलेण्डर के मध्य में होती है जो ऊपर से बाहर निकल जाती है (चित्र 1.1)।

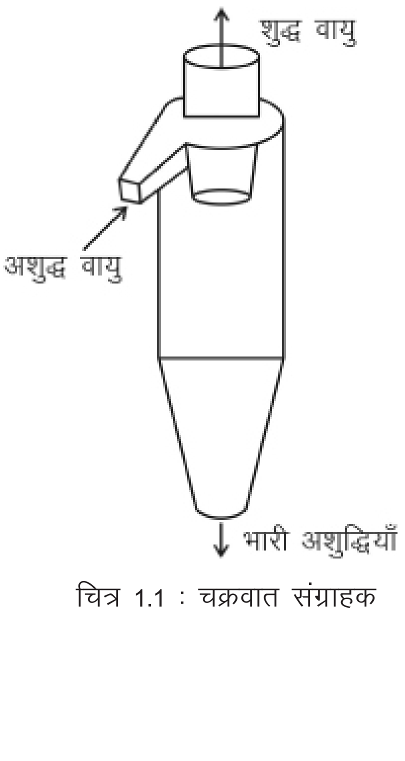

चित्र 1.1 : चक्रवात संग्राहक

(ii) गुरुत्वीय जमाव प्रकोष्ठ (Gravity settling chamber) – इस यंत्र में 50 माइक्रोन या इससे बड़े कणों को दूर किया जाता है। इसमें गुरुत्वाकर्षण बल के आधार पर भारी कण प्रकोष्ठ में नीचे की ओर एकत्रित हो जाते हैं तथा शुद्ध वायु मध्य से बाहर की ओर निकल जाती है (चित्र 1.2)।

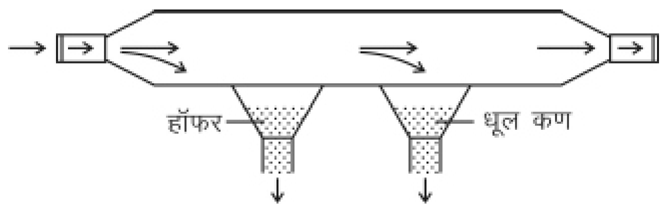

चित्र 1.2 : गुरुत्वीय जमाव कक्ष

(iii) वैधुत स्थैतिक अवक्षेपक (Electrostatic precipitators) – अधिकांश औद्योगिक इकाइयों में इसका उपयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है। इसमें कणीय पदार्थों को अवक्षेपित या आयनित करने के लिए विद्युत प्रवाहित की जाती है। आयनित कण, धीरे–धीरे संग्राहक इलेक्ट्रॉड पर जमा हो जाते हैं जहाँ से उन्हें अलग कर लिया जाता है (चित्र 1.3)।

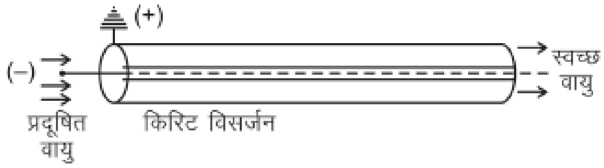

चित्र 1.3 : वैद्युत स्थैतिक अवक्षेपक

(iv) आर्द्र संग्राहक (Wet collector) – इस संयंत्र द्वारा छोटे कणों व गैसीय प्रदूषकों को पानी की फुहारों की मदद से प्रदूषकों को पृथक किया जाता है। जितनी तीव्र गति से प्रदूषित वायु व पानी का सम्पर्क होगा उतने ही छोटे गैस के बुलबुले या जल की बूंदें बनेगी और प्रभावी शोधन होगा (चित्र 1.4)।

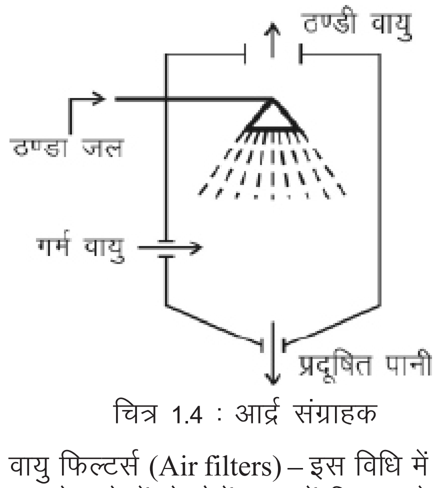

चित्र 1.4 : आर्द्र संग्राहक

(v) वायु फिल्टर्स (Air filters) – इस विधि में अलग–अलग मोटाई के कपड़े व रेशों के थैलें काम में लिए जाते हैं जो कणीय पदार्थों को छानने में मदद करते हैं। लेकिन ये उच्च तापमान एवं

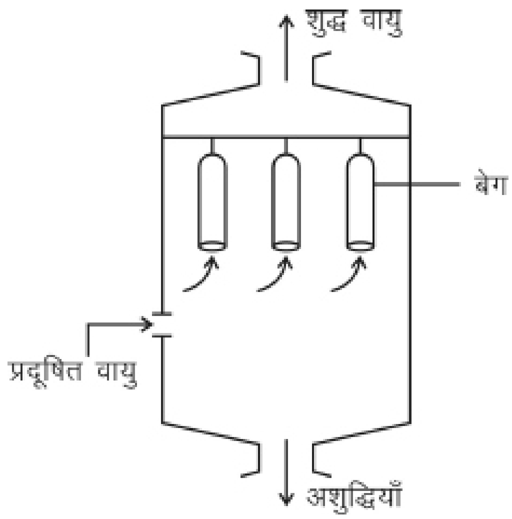

चित्र 1.5 : वायु फिल्टर्स

आर्द्रता के प्रति संवेदनशील होते हैं (चित्र 1.5)।

गैसीय वायु प्रदूषण नियंत्रण (Control of Gaseous Air Pollutants)

(I) वैद्युत स्थैतिक अवक्षेपक (ESP) – गैसीय प्रदूषकों को अलग करने के लिए इस संयंत्र का प्रयोग किया जाता है। इसकी विधि पूर्व में वर्णित है। इसके द्वारा SO_2 तो आसानी से पृथक हो जाती है लेकिन कुछ नाइट्रोजन जैसी गैसें इलेक्ट्रॉड द्वारा अवशोषित नहीं हो पाती है।

(II) जैविक छनित्र (Biological filters) – इस छनित्र द्वारा कार्बनिक गैसीय प्रदूषकों को पृथक किया जाता है। प्रदूषित गैसों को क्रियाशील जैविक माध्यम से गुजारा जाता है तो विषाणुओं द्वारा इनका विघटन कर दिया जाता है।

वाहन संबंधी प्रदूषण रोकने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

(i) वाहनों में उत्प्रेरक कन्वर्टर का उपयोग किया जाना चाहिए ताकि वाहनों से धुएं का उत्सर्जन कम किया जा सके।

(ii) वाहनों का नियमित अंतराल पर प्रदूषण नियंत्रण परीक्षण करवा उसका पी.यू.सी. प्रमाण पत्र रखना अनिवार्य हो।

(iii) पेट्रोल की तुलना में डीजल में सल्फर की मात्रा कम होती है अतः डीजल वाहनों के प्रयोग को प्रेरित किया जाना चाहिए।

(iv) इंजन को सहज रूप से चलाने के लिए पेट्रोल में टेट्राइथाइल लेड मिलाया जाता है ताकि उसका ऑक्टेन स्तर बढ़ सके। लेकिन लेड कणों के उत्सर्जन को रोकने के लिए पेट्रोल में लेड मिश्रण पर रोक लगाई जानी चाहिए।

(v) सार्वजनिक परिवहन वाहनों में सी.एन.जी. गैस का उपयोग किया जाना चाहिए।

वायु प्रदूषण – केस अध्ययन (Air Pollution – Case Study)

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल स्थित एक पीड़कनाशी फेक्ट्री यूनियन कार्बाइड इण्डिया लिमिटेड से रिसने वाली ज़हरीली गैस ने 2 दिसम्बर 1984 की मध्य रात्रि को देखते–देखते हजारों लोग को काल कलवित कर लिया। इस दुर्घटना में हजारों लोगों की जान ही नहीं गई अपितु हजारों की संख्या में लोग असमर्थ व अंगहीन हो गये। इसके प्रभाव से गर्भस्थ शिशुओं में भी अनेक गुणसूत्रीय परिवर्तन हो गये जिससे उनका असामान्य जन्म हुआ।

इस फेक्ट्री से निकलने वाली गैस मिथाइल आइसोसायनेट (MIC) थी। इस फेक्ट्री में एल्फा नेफ्थाल एवं मिथाइल आइसोसाइनेट की क्रिया से कार्बेराइल बनाया जाता है। यह फेक्ट्री 1973 में संयुक्त राज्य अमेरिका की यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन कम्पनी के साथ हुए करार के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनी के रूप में परिवर्तित हुई हालांकि यह 1934 में पब्लिक कम्पनी के रूप में स्थापित हुई थी। मिथाइल आइसोसायेनट का निर्माण इस फेक्ट्री में 1980 से हो गया था। वारेन एण्डरसन इस कम्पनी के चेयरमेन थे।

दुर्घटना के प्रभाव (Effects of Accident)

(i) इस गैस के प्रभाव से 4000 से अधिक लोगों की जानें गई एवं 2 लाख से अधिक लोग शारीरिक रूप से अपंग हो गये। उस समय 2698 स्त्रियों में 402 का गर्भपात हो गया। गर्भस्थ शिशु अपंग हो गये। अनेक लोग घातक मानसिक बीमारी के शिकार हो गये।

(ii) तीन से चार किमी. तक की परिधि में उपस्थित वनस्पतियाँ बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। पीपल एवं बरगद के वृक्ष सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुए। नीम, शीशम व करंज आदि के पेड़ों की पत्तियाँ दो–तीन दिन में गिर गईं।

(iii) मृदा की क्षारकता बढ़ गई व उसमें सूक्ष्मजीवों की संख्या में कमी आ गई।

(iv) आस–पास के जलाशयों में मछलियाँ मर गई एवं पानी पीने योग्य नहीं रहा।

(v) घटना के प्रभाव से लूटपाट व अपराधों की संख्या में वृद्धि हो गयी।

जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल पृथ्वी पर उपस्थित अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। कोशिकाओं में जीवद्रव्य का अधिकांश भाग भी जल ही है। प्रकाशसंश्लेषण जैसी महत्वपूर्ण क्रिया में भी पौधे जल का प्रयोग कर ऑक्सीजन मुक्त करते हैं। मानव सभ्यता का विकास जल संसाधनों की उपस्थिति के अनुसार ही हुआ है। उद्योग धन्धे, यातायात, सिंचाई, कृषि, स्वच्छता प्रबन्ध, घरेलू आवश्यकताएं जैसे अधिकांश कार्य जल पर ही निर्भर है।

लेकिन बढ़ते हुए शहरीकरण एवं औद्योगीकरण ने हमारे जल संसाधनों को प्रदूषित कर दिया है।

जल प्रदूषण की परिभाषा (Definition of Water Pollution)

जल की गुणवत्ता में आये वे अवांछित परिवर्तन जिससे जल पीने, घरेलू कार्यों, कृषि, मछली पालन आदि कार्यों के लिए अनुपयुक्त हो जाता है, जल प्रदूषण कहलाता है।

सामान्यतः जल कभी भी रासायनिक रूप से पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं होता। इसमें अनेक घुलित एवं निलम्बित अशुद्धियाँ पाई जाती है। घुलित अशुद्धियों में अनेक खनिज लवण कैल्शियम, मैग्नीशियम

एवं सोडियम लवण तथा गैसीय रूप में अमोनिया, कार्बन डाईऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड एवं नाइट्रोजन पाई जाती है। निलम्बित अशुद्धियों के रूप में गाद, सिल्ट, रेत एवं सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं। प्राकृतिक अशुद्धियाँ वायुमण्डल, मृदा एवं जलागम क्षेत्रों से आती है तथा जल में इनकी मात्रा अत्यन्त कम होती है, जल पीने योग्य रहता है। लेकिन जल में घरेलू, कृषि, उद्योगों द्वारा निकलने वाले अपशिष्टों के प्रवेश के कारण प्रदूषित हो जाता है। ऐसा जल पारभासी एवं बदबूदार हो जाता है एवं पीने योग्य नहीं रहता तथा कई रोगों का कारण बन जाता है।

जल प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Air Pollution)

जल प्रदूषण के निम्न स्त्रोत हैं–

(i) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial waste) – उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों में कार्बनिक व अकार्बनिक प्रदूषक पाये जाते हैं। इन प्रदूषकों में तेल, ग्रीस, प्लास्टिक, धात्विक आयन, फीनोल्स, टॉक्सीन, अम्ल, रंजक, साइनाइड्स एवं डी.डी.टी. शामिल है। इनमें से अनेक प्रदूषक अपघटनशील नहीं होते हैं तथा जीवों के लिए विषाक्त होते हैं।

अधिकांश उद्योग–धन्धों की स्थापना प्रायः जलाशयों एवं नदियों के किनारों पर की जाती है क्योंकि संयंत्रों को ठण्डा करने, विभिन्न रसायनों को घोलने व तनु करने तथा अन्य क्रियाओं में बड़ी मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। लेकिन इन उद्योगों के निकलने वाले अपशिष्टों को जब जल स्त्रोतों में प्रवाहित कर दिया जाता है तब वे प्रदूषण के स्त्रोत बन जाते हैं। इन उद्योगों में उर्वरक, ऊर्जा, रंजक, तेल शोधक, कीटनाशक, चर्म शोधन, रबड़, शराब आदि कई कारखाने शामिल हैं।

(ii) कृषि अपशिष्ट (Agricultural waste) – इसमें प्रमुख रूप में कृषि में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक उर्वरक एवं रोग नियंत्रण हेतु काम आने वाले कीटनाशी, कवकनाशी एवं शाकनाशी होते हैं। ये रासायनिक अपशिष्ट वर्षा के जल के साथ बहकर आस–पास के जलाशयों में पहुंचकर प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। कृषि अपशिष्टों में डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, यूरिया, हेप्टोक्लोर एवं नाइट्रेट फॉस्फेट उर्वरक प्रमुख हैं।

(iii) घरेलू वाहित मल (Domestic sewage) – घरों, पशुओं एवं भोजन संयंत्रों से निकलने वाले वाहित मल भी जल प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। इसमें कागज, साबुन, डिटर्जेन्ट, मलमूत्र आदि अपशिष्ट गांव व शहर की नालियों एवं वर्षा जल के साथ बहकर पास के जलाशयों में मिल कर उन्हें प्रदूषित कर देते हैं।

(iv) समुद्री प्रदूषण (Marine pollution) – समुद्री जल में प्रदूषण का एकमात्र स्त्रोत खनिज तेल है। खनिज तेलों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जहाजों द्वारा ले जाया जाता है। जहाजों से दुर्घटनावश या डूब जाने से तेल जल की सतह पर फैल जाता है। यही समुद्री प्रदूषण का कारण बन जाता है तथा जल में उपस्थित सभी प्राणी इससे प्रभावित हो जाते हैं।

(v) रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive wastes) – नाभिकीय संयंत्रों एवं नाभिकीय विस्फोट से उत्पन्न होने वाले रेडियोधर्मी पदार्थ, चिकित्सा एवं शोध कार्य, बिजली उत्पादन आदि में प्रयुक्त होने रेडियोधर्मी पदार्थ भी जल में पहुंचकर प्रदूषण का कारण बन जाते हैं।

जल प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution)

जल में प्रदूषण के कारण जीवों पर निम्नलिखित प्रभाव दिखाई देते हैं–

(I) घरों से निकलने वाले वाहित मल एवं कृषि अपशिष्टों में नाइट्रेट एवं फॉस्फेट की मात्रा अत्यधिक होती है। जल में इनकी अधिक मात्रा से शैवालों की तीव्र गति से वृद्धि होती है तथा धीरे–धीरे पूरे जलाशय सतह को ढक लेती है। फलस्वरूप शैवाल ब्लूम (Algal bloom) का निर्माण हो जाता है।

जलाशयों में पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की वृद्धि होने के कारण उसकी उत्पादकता में भी वृद्धि हो जाती है उसे सुपोषीकरण (Eutrophication) कहते हैं। जल में इस तरह कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ने से अपघटकों की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है परिमाणस्वरूप जैविक ऑक्सीजन मांग (BOD) में भी वृद्धि हो जाती है। जल में घुलित ऑक्सीजन (Dissolved oxygen) में कमी आ जाती है। जल में आवायवीय जीवाणुओं एवं नील हरित शैवाल जैसे एनाबीना, माइक्रोसिस्टीस, एफेनिजोमिनान आदि की मात्रा भी बढ़ जाती है। इनके प्रभाव से जलीय जीव मरने लगते हैं। जल में से दुर्गंध आने लगती है। पानी पीने, सिंचाई आदि के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।

सुपोषीकरण को नियंत्रित करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

(i) जल स्त्रोतों में पोषक तत्वों एवं अपशिष्ट पदार्थों के प्रवेश पर रोक लगायी जाए।

(ii) जल स्त्रोतों से समय–समय पर जैव भार एकत्रित कर हटाया जाए। पोषक तत्वों का भी एकत्रीकरण किया जाए।

(iii) जल स्त्रोतों के पेंदे पर जमा होने वाले तलछट को समय–समय पर निकाला जाए।

(iv) कृत्रिम वातन द्वारा तलीय ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाना।

(v) मत्स्य पालन व प्रबंधन को बढ़ावा देना।

इस प्रकार की क्रियाओं द्वारा जलाशयों का पारिस्थितिक सन्तुलन का पुनर्भरण किया जा सकता है।

(II) प्रदूषित जल को पीने से इसमें उपस्थित अनेक

रोगाणुओं से हैजा, पेचिस, अमीबायोसिस, पीलिया, अतिसार, कृमि, पथरी जैसे रोग हो जाते हैं।

(III) औद्योगिक, कृषि एवं रेडियोधर्मी अपशिष्टों में उपस्थित धातुएं एवं रसायन जीवों में निम्न प्रकार से प्रभाव उत्पन्न करते हैं–

(i) जल में कृषि अपशिष्टों से आने वाला नाइट्रोजन विषाक्त प्रदूषक के रूप में जाना जाता है। इसकी उपस्थिति से जल पीने योग्य नहीं रहता है। हमारे शरीर में इस प्रदूषित जल में उपस्थित नाइट्रेट्स को सूक्ष्मजीवी फ्लोरा द्वारा नाइट्राइट में बदल दिया जाता है। ये नाइट्राइट रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन से क्रिया कर मेटाहीमोग्लोबिन का निर्माण कर देते हैं फलस्वरूप रक्त में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता में कमी आ जाती है। तथा मेटाहीमोग्लोबेनिमिया (Metahaemoglobinamia) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग के कारण श्वसन एवं रक्त परिसंचरण तंत्र में क्षति उत्पन्न हो जाती है। रोगी की त्वचा नीली पड़ जाती है और कैंसर हो जाता है। अन्ततः जीव की मृत्यु हो जाती है। स्वस्थ मनुष्य में मेटाहीमोग्लोबिन की मात्रा 0.8% होती है। जबकि मेटाहीमोग्लोबेमेनिया में यह स्तर 10% तक पहुंच जाता है।

(ii) कांच, एल्यूमिनियम व उर्वरकों संयंत्रों से निकलने वाले अपशिष्ट फ्लोराइड प्रदूषण के स्त्रोत हैं। फ्लोराइड की कम मात्रा दांतों एवं हड्डियों के लिए आवश्यक है लेकिन इसकी अधिक मात्रा दंत फ्लोरोसिस (Dental flurosis) का कारण है जिसमें दांतों पर धब्बे पड़ जाते हैं।

फ्लोराइड की अधिक मात्रा से मनुष्यों में हड्डियाँ कमजोर हो टेढ़ी हो जाती है जिससे कुबड़ापन आ जाता है। पैरों के घुटने बाहर की तरफ मुड़ जाते हैं जिसे "नोक नी सिन्ड्रोम" (Knock Knee Syndrome) कहते हैं। राजस्थान के कई जिले जोधपुर, बाड़मेर, नागौर, पाली, बीकानेर, डूंगरपुर, अजमेर, अलवर आदि में फ्लोराइड प्रदूषण की चपेट में है।

(iii) मर्करी औद्योगिक संयंत्रों से निकलने वाला एक प्रदूषक है जो अकार्बनिक एवं कार्बनिक दोनों ही रूपों में अत्यन्त जहरीला पदार्थ है। जल स्त्रोतों में यह अवायवीय जीवाणुओं द्वारा मिथाईल मर्करी में बदल दिया जाता है। यह एक वाष्पशील प्रदूषक है जो शरीर से उत्सर्जित नहीं होता है।

जापान में 1950 में मर्करी एक नाइट्रोजन कम्पनी द्वारा अपशिष्ट के रूप में उत्सर्जित किया गया था जिसने मिनिमाटा खाड़ी में पहुंच कर एक सशक्त जहर का रूप ले लिया। वहाँ के पादप मिथाईल मर्करी में संक्रमित हो गये तथा खाद्य श्रृंखला द्वारा मनुष्य में पहुंच गया जिससे उसमें अनेक विकृतियाँ जैसे पैरों व जीभ का सुन्न होना, बहरापन, धुंधलापन, मनोविकृति उत्पन्न हो गयी।

स्वीडन की अनेक नदियाँ एवं झीलें भी इस प्रदूषण का शिकार है क्योंकि वहाँ के कागज, कवकनाशी, शैवालनाशी उद्योगों में मर्करी एक प्रदूषक के रूप में इनमें उत्सर्जित कर दिया जाता है। क्लोरल एत्कली उद्योगों से भी मर्करी अपशिष्ट के रूप में छोड़ा जाता है। बच्चों में लकवा, मिर्गी, अविकसित मस्तिष्क जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मछलियों में मिथाइल मर्करी जमा होने से उनकी मृत्यु हो जाती है तथा उनको खाने वाले मनुष्य, कौवे आदि भी इसके शिकार बन जाते हैं।

(iv) सीसा भी एक अन्य धात्विक प्रदूषक है जो सीसा संयंत्रों, बच्चों के खिलौनों, प्लास्टिक पाइपों, कीटनाशी, खाद्य एवं औषधि संयंत्रों द्वारा अपशिष्ट के रूप में उत्सर्जित किया जाता है।

सीसा युक्त जल पीने से पाचन तंत्र, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र, मांसपेशियों से संबंधित रोग हो जाते हैं। सीसा प्रदूषण से रक्त में हीमोग्लोबिन में कमी, मनोविकृति, बांझपन जैसी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। सीसे के जहरीले प्रभाव से कब्ज, पेट दर्द होना तथा यकृत एवं वृक्क भी प्रभावित होते हैं।

(v) केडमियम धातु का उत्सर्जन जापान के एक जस्ता परिष्करण संयंत्र द्वारा जित्सु नदी में किया गया था जिसके कारण वहाँ के लोगों में इताई–इताई रोग (Itai-Itai) उत्पन्न हुआ। ये अपशिष्ट खाद्य श्रृंखला द्वारा मनुष्यों में पहुंचकर हड्डियों को कमजोर कर देता है। धीरे–धीरे रोगियों की मृत्यु हो जाती है।

(vi) आर्सेनिक धातु रिफाइनरी उद्योग से निकलने वाला अपशिष्ट है। जब यह किसी जलाशय में उत्सर्जित कर दिया जाता है तो यह प्राणियों में कैंसर उत्पन्न करता है।

(IV) पीड़कनाशी एवं शाकनाशी सामान्यतः खरपतवारों एवं फसल को नुकसान करने वाले कीड़े, नीमेटोड, रोडेन्ट कवक आदि को नष्ट करते हैं। इस हेतु अनेक रसायन BHC, DDT, क्लोरेडेन, एल्ड्रीन, टोक्साफीन आदि प्रयोग में लाये जाते हैं। इनकी अधिक मात्रा में उपयोग करने पर ये हमारी जैविक रासायनिक एवं भूवैज्ञानिक चक्र का भाग बन जाते हैं। DDT जैसा कीटनाशी जल में पहुंचने के पश्चात् खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जाता है तथा पौधों, जूप्लेंक्टॉन, मछलियों आदि के माध्यम से मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाता है। इसकी मात्रा खाद्य श्रृंखला के उत्तरोत्तर पोष स्तरों में लगातार बढ़ती जाती है इसे जैवआवर्द्धन (Biomagnification) कहते हैं।

स्तनधारियों व पक्षियों में यह लिंग हार्मोनों को प्रभावित कर प्रजनन विफल कर देती है। पौधों में यह प्रकाशसंश्लेषण की दर को कम कर देती है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण
(Control of Water Pollution)

(i) बहिस्त्राव उपचार (Sewage treatment) – घरेलू एवं औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले बहिस्त्राव या सीवेज को उचित संयंत्रों की मदद से उपचारित कर पुनः जल स्त्रोतों में डालना चाहिए। मल–जल (सीवेज) को तीन चरणों में उपचारित किया जाता है। प्राथमिक उपचार के चरण में सीवेज से कणीय तैरने वाले पदार्थों को दूर किया जाता है तथा द्वितीयक उपचार के चरण में उन जैविक पदार्थों को हटाया जाता है जो सूक्ष्मजीवी अपघटन से बच जाते हैं। इसके बाद भी बचे हुए जल में भारी मात्रा में फास्फोरस, नाइट्रोजन जैसे पोषक तत्व एवं अनेक रोगकारी जीवाणु पाये जाते हैं। इसे किसी भी जल स्त्रोत में छोड़ने पर सुपोषण की समस्या उत्पन्न होती है। प्राथमिक उपचार के बाद बचा शेष भाग गाद या स्लज (Sludge) कहलाता है। इस जल से तृतीयक उपचार द्वारा पोषक तत्वों एवं रोगकारी जीवाणुओं को हटाया जाता है। इससे CO_2 एवं H_2S गैसों को दूर किया जाता है। तत्पश्चात् इस जल को सिंचाई, जलीय जीवों एवं वनस्पतियों के उपयोग हेतु काम लिया जाता है।

नागपुर में स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (NEERI) ने बहिस्त्राव उपचार संयंत्र विकसित किये हैं जिनके द्वारा यह कार्य किया जा रहा है।

(ii) जल पुनर्चक्रण (Water recycling) – बढ़ती जनसंख्या के साथ जल की आवश्यकता एवं दोहन तेजी से बढ़ता जा रहा है जिसके फलस्वरूप भूजल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। अतः यह आवश्यक है कि उपलब्ध जल का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए। इस हेतु व्यर्थ किये जाने वाले जल को पुनःचक्रण कर उपचारित या अनुपचारित करने के बाद विशेष कार्यों के लिए उपयोग में लिया जाये। इस प्रकार जल का दुरूपयोग रोका जा सकता है तथा जल का अधिकतम उपयोग संभव हो सकता है।

(iii) औद्योगिक एवं घरेलू बहिस्त्राव को किसी भी जलाशय, नदी या जल स्त्रोत में सीधे प्रवाहित करने से रोक जाना चाहिए।

(iv) पर्यावरण जागरूकता जैसे चलचित्र, संगोष्ठी, सभाओं द्वारा जल प्रदूषण के प्रति जनचेतना पैदा करना।

(v) जल (प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम) अधिनियम, 1974 एवं पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 द्वारा कानूनन जनता को पाबंद एवं दण्डित किया जा सकता है।

(vi) अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण एवं पुनर्उपयोग (Recycling and reuse of wastes) – शहरी अपशिष्टों का पुनर्चक्रण कर बिजली एवं ईंधन गैस का उत्पादन किया जा सकता है। नागपुर में नीरी संस्थान द्वारा रेडियोधर्मी तथा परमाणु शक्ति संयंत्रों के रासायनिक अपशिष्टों से सस्ती गैस व बिजली प्राप्त करने के उपाय विकसित किये जा रहे हैं। इसी प्रकार नई दिल्ली में ओखला के पास भी अपशिष्ट पुनर्चक्रण संयंत्र स्थापित किया गया है।

जल गुणवत्ता मापक
(Measurement of Water Quality)

जल प्रदूषण को रोकने से पूर्व जल में उपस्थित प्रदूषकों का मात्रात्मक मापन आवश्यक है। इस हेतु जल में निम्न कारकों का मापन किया जाता है–

(i) घुलित ऑक्सीजन (Dissolved oxygen) – जल में उपस्थित घुलित ऑक्सीजन का मापन विकंलर घुलित ऑक्सीजन जांच विधि से किया जाता है। इस विधि में जल के नमूने में मैग्नीशियम आयन डाले जाते हैं जो घुलित ऑक्सीजन के साथ बन्धित होकर मैग्नीशियम ऑक्साइड (MnO_2) बना लेते हैं जिसका एक अवक्षेप बन जाता है। इस अवक्षेप में आयोडाइड आयन डाले जाते हैं जो मैग्नीशियम ऑक्साइड से क्रिया कर आयोडीन बना देता है। आयोडीन का सोडियम थायोसल्फेट से अनुमापन (Titration) कर लिया जाता है।

$$Mn^{++} + O_2 \longrightarrow MnO_2 \downarrow \text{ अवक्षेप}$$

$$MnO_2 + 2I^- + 4H + \longrightarrow Mn^{++} + I_2 + 2H_2O$$

$$I_2 + 2\,S_2O_3 \longrightarrow S_4O_6 + 2I^-$$

क्योंकि सभी घुलित ऑक्सीजन मैग्नीशियम से बन्धित हो जाती है इसलिए मैग्नीशियम ऑक्साइड की मात्रा विलयन में ऑक्सीजन की मात्रा के समानुपाती होती है।

(ii) जैविक ऑक्सीजन मांग (BOD) – जल में ऑक्सीजन की जैविक मांग जल गुणवत्ता मापने की अप्रत्यक्ष विधि है। यह जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों को सूक्ष्मजीवों द्वारा विघटित करने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा होती है। जैविक ऑक्सीजन मांग मानक BOD बॉटल में 20° तापक्रम पर 5 दिन तक अंधेरे में रखकर ज्ञात की जाती है। BOD का अधिक मान कार्बनिक प्रदूषक की अधिक मात्रा को इंगित करता है।

(iii) रासायनिक ऑक्सीजन मांग (COD) – BOD परीक्षण से कम समय COD परीक्षण में लगता है। इसमें जल में उपस्थित सभी कार्बनिक पदार्थों को रासायनिक विधि द्वारा ऑक्सीकृत किया जाता है। इस परीक्षण में मापित जल के नमूने में ज्ञात पोटेशियम क्रोमेट की मात्रा डाली जाती है एवं मिश्रण को गर्म किया जाता है। अम्ल के साथ गर्म करने के पश्चात् अधिक डाइक्रोमेट का मापन अपचायक एजेन्ट (फेरस अमोनियम सल्फेट) डालकर कर लिया जाता है। क्रोमेट की मात्रा में अन्तर ज्ञात कर

नमूने में COD की मात्रा पता लगा ली जाती है।

$$C_xH_yO_z + Cr_2O_7 \longrightarrow H\Delta CO_2 + H_2O + Cr^{3+}$$

सामान्यतः ऐसे कार्बनिक पदार्थ जो सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटित नहीं किये जा सकते हैं वे रासायनिक विधि से अपघटित हो पाते हैं अतः COD का मान BOD से अधिक आता है।

(iv) ठोस पदार्थ (Solids) – जल के नमूने को 103°C पर गर्म करने के पश्चात् शेष बचा हुआ भाग कुल ठोस पदार्थ होता है। इसके दो भाग होते हैं – घुलित ठोस एवं निलम्बित ठोस। निलम्बित ठोस को गुच क्रुसीबल द्वारा घुलित ठोस से अलग कर लिया जाता है।

(v) नाइट्रोजन एवं फॉस्फेट (Nitrogen & phosphates) – जल में नाइट्रोजन एवं फॉस्फेट की मात्रा का कलरीमीटरी द्वारा मापन किया जाता है। प्रदूषण द्वारा जल में नाइट्रोजन व फॉस्फेट मुख्य पोषक तत्वों के रूप में डाले जाते हैं।

ध्वनि प्रदूषण
(Noise Pollution)

शोर शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के नाउसिया (Nausea) शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ अवांछित ध्वनि से है। जब ध्वनि की आवृत्ति व तीव्रता कर्णप्रिय स्तर से अधिक हो जाती है तो उसे शोर की संज्ञा दी जाती है। तेजी से बढ़ता औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं यातायात साधनों की संख्या में वृद्धि के कारण ध्वनि प्रदूषण एक गंभीर समस्या बन चुका है।

ध्वनि प्रदूषण की परिभाषा
(Definition of Noise Pollution)

ध्वनि का वह उच्च स्तर जो मनुष्य में उद्विग्नता या चिड़चिड़ापन उत्पन्न करता है, ध्वनि प्रदूषण कहलाता है।

अकर्णप्रिय ध्वनि जो मानवीय सुविधा, स्वास्थ्य एवं गतिशीलता में हस्तक्षेप करती हो ध्वनि प्रदूषण कहलाती है।

ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Noise Pollution)

ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(i) प्राकृतिक स्त्रोत (Natural sources) – ऐसी प्राकृतिक घटनाएं जैसे बिजली की गड़गड़ाहट, तूफान, समुद्री तरंगें, झरनों से निकलने वाली तीव्र ध्वनि प्रदूषण का स्त्रोत है।

(ii) कल–कारखाने (Industries) – विभिन्न उद्योगों में चलने वाली मशीनें एवं सायरन से निकलने वाली तेज आवाजें।

(iii) जैविक स्त्रोत (Biological sources) – मनुष्यों द्वारा तेज वार्तालाप, झगड़ा, रोने की आवाज एवं पशुओं द्वारा निकाली जाने वाली तेज आवाजें इसमें आती हैं।

(iv) मनोरंजन के साधन (Entertainment sources) – घरेलू मनोरंजन के साधन जैसे टेलीविज़न, रेडियो,विडियो आदि तथा सामाजिक मनोरंजन जैसे गवरी, नाच–गान, नुक्कड़ नाटक, खेल तमाशें आदि से होने वाला शोर।

(v) सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रम (Social & religious functions) – विवाह, जन्मदिन व अन्य सांस्कृतिक समारोहों में लाउडस्पीकरों का प्रयोग, मन्दिर, मस्जिद व गुरुद्वारों में घण्टों, शंखनाद एवं लाउडस्पीकरों का प्रयोग। राजनैतिक गतिविधियों चुनाव आदि में लाउडस्पीकरों का प्रयोग ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत हैं।

(vi) यातायात – परिवहन के साधन (Standards of Noise Pollution) – वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981 के तहत 1 अप्रेल 1988 को ध्वनि प्रदूषण को वायु प्रदूषण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।

पर्यावरण (सुरक्षा) नियम (Environment (Protection) Law) 1986 के नियम तीन के तहत भारतीय मानक संस्थान (ISI) ने ध्वनि प्रदूषण के कुछ मानक निर्धारित किये है जो निम्न प्रकार है (तालिका 1.2)–

तालिका 1.2 : ध्वनि प्रदूषण के मानक

क्षेत्र	स्वीकृत ध्वनि स्तर (dba)	
	दिन (प्रातः 6 से रात्रि 9 बजे)	रात (रात्रि 9 बजे से प्रातः 6 बजे)
औद्योगिक क्षेत्र	75	70
आवासीय क्षेत्र	55	45
शान्त क्षेत्र	50	40
व्यावसायिक क्षेत्र	65	55

ध्वनि प्रदूषण का मापन
(Measurement of Noise Pollution)

ध्वनि तरंगों की आवृत्ति एवं तीव्रता मनुष्य के कानों, मस्तिष्क एवं क्रियाकलापों पर व्यापक प्रभाव डालती है। ध्वनि तीव्रता मापन की सामान्य इकाई डेसिबल (dB) है। इसके अलावा ध्वनि को भारित ध्वनि दाब स्तर (Weighted Sound Pressure Level [SPL]) के रूप में भी नापा जाता है। इसे db (A) के रूप में जाना जाता है। यह ध्वनि पर पड़ने वाले दबाव की इकाई है। तीव्रता नापन उपकरणों के बजाय दाब मापन उपकरणों को निर्माण अधिक सरल है इसलिए ध्वनि मापन में db (A) इकाई का प्रयोग ज्यादा होता है।

शून्य से प्रारंभ होने वाला dB मापक शून्य स्तर के श्रवण के देहली (Threshold) को व्यक्त करता है। यह कान की निम्नतम श्रव्य ध्वनि है। डेसिबल में वृद्धि ध्वनि तरंगों में तीव्रता वृद्धि के 10 गुणा के रूप में निम्न प्रकार प्रदर्शित की जाती है–

$$\text{श्रव्य ध्वनि} \times 10 = 10 \text{ dB}$$

$$\text{श्रव्य ध्वनि} \times 100 = 20 \text{ dB}$$

श्रव्य ध्वनि × 10000 = 40 dB

भारतीय मानक संस्थान द्वारा स्वीकृत ध्वनि स्तर निम्न प्रकार है (सारणी अगले पृष्ठ पर) –

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Noise Pollution)

ध्वनि प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभाव हैं–

(i) अधिक लम्बे समय तक तीव्र ध्वनि तथा कम समय तक अत्यधिक तीव्र ध्वनि के सम्पर्क में आने पर क्रमशः बहरापन हो सकता है। कान के पर्दे फट सकते हैं।

(ii) निरंतर शोर के प्रभाव से मनुष्य में झुंझलाहट, मानसिक तनाव, हृदय धड़कन बढ़ना, व्यग्रता, बैचेनी, अनिद्रा जैसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है।

(iii) अवांछित शोर के कारण मनुष्य की कार्यक्षमता व एकाग्रता में कमी आ जाती है। वार्तालाप में व्यवधान उत्पन्न होता है। विद्यार्थियों में अध्ययन एवं एकाग्रता प्रभावित होती है फलस्वरूप मानसिक अवसाद (Mental Depression) हो जाता है।

(iv) ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति की सोचने की क्षमता एवं मानसिक स्वास्थ्य में कमी आ जाती है। अधिक उच्च ध्वनि से अधिक संवेदनशील व्यक्तियों में तांत्रिकीय अवसाद (Neuromatic disorder) उत्पन्न होने से पागल होने की संभावनाएं बढ़ जाती है।

विभिन्न स्त्रोतों से निकलने वाली ध्वनि का स्तर

स्त्रोत	ध्वनि स्तर (dB)
श्वसन	10
पत्तियों की सरसराहट	10
फुसफुसाहट	20–30
पुस्तकालय	40
शान्त भोजनालय	50
सामान्य वार्तालाप	55–60
तेज वर्षा	55–60
घरेलू बहस	55–60
स्वचालित वाहन / घरेलू मशीनें	90
बस	85–90
ट्रक	80–90
रेलगाड़ी की सीटी	110
तेज स्टीरियो	100–115
ध्वनि विस्तारक	150
सायरन	150
व्यावसायिक वायुयान	120–140
जेट विमान (300 मी. ऊँचाई)	100–110
जेट विमान (हवाई पट्टी पर उतरते समय)	150
रॉकेट इंजन	180–195

(v) ध्वनि प्रदूषण के कारण वाहन चालक का ध्यान भंग होने से दुर्घटनाओं की संभावनाएं बढ़ जाती है।

(vi) बम विस्फोट, डायनामाइट विस्फोट, जेट विमानों की गर्जना से भवनों में दरारें पड़ जाती है, खिड़की के शीशे टूट जाते हैं।

(vii) पुरातात्विक महल के भवनों के व इमारतों के गिरने की संभावना बढ़ जाती है।

ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के उपाय
(Control Measures for Prevention of Noise Pollution)

ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उसके स्त्रोत, उसकी तीव्रता, माध्यम एवं प्रभावित होने वाली वस्तु का अध्ययन करना आवश्यक होता है। ध्वनि प्रदूषण को निम्नलिखित उपायों द्वारा रोका जा सकता है–

(i) प्रमुख सड़कों, राजमार्गों, हवाई अड्डों एवं रेल्वे लाइनों के किनारों पर वृक्षारोपण 10-15 dB तक ध्वनि को कम किया जा सकता है।

(ii) महानगरीय क्षेत्रों में भी हरित पट्टी का विकास कर उच्च ध्वनि का अवशोषण किया जा सकता है।

(iii) कल–कारखानों में उच्च तकनीक एवं कम आवाज उत्पन्न करने वाली मशीनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(iv) औद्योगिक इकाइयों में ध्वनि अवशोषकों (Sound absorbers) का प्रयोग एवं ध्वनि निरोधी कक्षों का निर्माण किया जाना चाहिए।

(v) कारखानों में मशीनी कलपुर्जों में स्नेहक (Lubricant) का प्रयोग, खराब कलपुर्जों का समय पर बदलना, ध्वनि शामकों की उचित देखभाल एवं मरम्मत आदि से भी ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

(vi) कानों में कर्ण प्लग (Ear plugs), दस्तानें (Ear muff) आदि पहनकर स्वयं को प्रदूषण से पृथक किया जा सकता है।

(vii) व्यक्तिगत व सामुदायिक स्तर पर जागरूकता उत्पन्न कर सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक समारोहों में ध्वनि उत्पादन को कम किया जा सकता है।

(viii) ध्वनि उपयोग द्वारा भी ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण किया जा सकता है।

तापीय प्रदूषण
(Thermal Pollution)

उद्योगों, नाभिकीय, तापीय ऊर्जा संयंत्रों को ठण्डा करने के

आवासीय क्षेत्रों में स्वीकृत बाह्य ध्वनि स्तर		विभिन्न भवनों में स्वीकृत आन्तरिक ध्वनि स्तर	
क्षेत्र	ध्वनि स्तर dB(A)	क्षेत्र	ध्वनि स्तर dB(A)
ग्रामीण	25–35	रेडियो व टीवी स्टुडियो	25–35
उपनगरीय	30–40	संगीत कक्ष	30–35
नगरीय (आवासीय)	35–40	ऑडिटोरियम, हॉस्टल, सेमीनार कक्ष	35–40
नगरीय (आवासीय व व्यावसायिक)	40–45	कोर्ट, निजी कार्यालय, पुस्तकालय	40–45
नगरीय (सामान्य)	45–55	सार्वजनिक कार्यालय	45–50
औद्योगिक क्षेत्र	50–60	रेस्तराँ	50–500

बाद गर्म जल सीधे ही जल स्त्रोतों नदी, झील या समुद्र में डाल दिया जाता है। इस जल का तापक्रम अधिक होने के कारण जल स्त्रोत में रहने वाले जीवों के लिए प्रदूषण का कारण बन जाता है।

परिभाषा (Definition)

विभिन्न कल–कारखानों, नाभिकीय एवं तापीय ऊर्जा संयंत्रों की मशीनों को ठण्डा करने के पश्चात् गर्म जल का जल स्त्रोत में मिल जाने से जल के तापमान में होने वाली वृद्धि तापीय प्रदूषण कहलाता है।

तापीय प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Thermal Pollution)

इसके स्त्रोत के रूप में नाभिकीय, तापीय ऊर्जा संयंत्र व बड़े–बड़े कल–कारखानें आदि की मशीनों को ठण्डा करने के लिए भारी मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया दो प्रकार से की जाती है–

(i) प्रत्यक्ष रूप से ठण्डा करना (Direct cooling) – इसमें इन संयंत्रों द्वारा नदी, झील व तालाब से जल पम्प कर ले लिया जाता है तथा मशीनों को ठण्डा करने के बाद जल पुनः इन्हीं स्त्रोतों में डाल दिया जाता है। इस प्रकार संघनक से गुजरने के बाद भी इस जल का तापक्रम 10°C तक बढ़ जाता है।

(ii) अप्रत्यक्ष रूप से ठण्डा करना (Indirect cooling) – इसके अन्तर्गत संयंत्रों द्वारा एक बार जल लेने के पश्चात् ठण्डा करने के लिए कई बार प्रयोग किया जाता है। अन्ततः यह जल टावर से भाप के रूप में धीरे–धीरे वायुमण्डल में विलीन होता रहता है। तापीय प्रदूषण का प्रमुख स्त्रोत प्रत्यक्ष रूप से मशीनों को ठण्डा करके जल को सीधे ही जल स्त्रोत में छोड़ना है।

तापीय प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Thermal Pollution)

तापीय प्रदूषण के प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(i) जल का ताप बढ़ने के साथ लवणों की घुलनशीलता एवं रासायनिक क्रियाएं बढ़ती जाती है। तथा वाष्पीकरण होने पर घुलित लवण अधिक सान्द्र हो जाते हैं।

(ii) तापीय प्रदूषण के कारण जल में घुलित ऑक्सीजन की सान्द्रता में कमी आ जाती है। जल ताप बढ़ने से अन्य गैसों की घुलनशीलता में भी कमी आ जाती है।

(iii) जल के ताप में वृद्धि होने से कार्बनिक पदार्थों के अपघटन में वृद्धि हो जाती है फलस्वरूप घुलित ऑक्सीजन की मात्रा में भी कमी आ जाती है।

(iv) जल ताप बढ़ने से उच्च ताप में अनुकूलन की क्षमता वाले रोगाणुओं की संख्या में वृद्धि आ जाती है।

(v) जल के ताप में एकाएक वृद्धि होने व जल में घुलित O_2 कम होने से कई मछलियाँ मर जाती है। भोजन के रूप में अन्य प्लवकों व प्राणियों की मृत्यु होने से भी मछलियों की संख्या में कमी हो जाती है।

(vi) क्लार्क व ब्राउनेस 1978 के अनुसार जल का ताप बढ़ने पर प्राणी प्लवकों की संख्या 15-100% तक घट सकती है। छोटी मछलियों का भोजन गामारिड्स प्राणी प्लवक जल ताप के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। कुछ प्राणी प्लवक 26°C पर ही मर जाते हैं।

(vii) जल ताप में वृद्धि होने पर नील हरित शैवाल एवं हरित शैवालों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है। जल ताप में वृद्धि के फलस्वरूप अनुकूलन क्षमता वाली अनेक बड़े जलीय पौधों की जातियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है, जो मानव हित में नहीं हो।

जल तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप सम्पूर्ण जल पारिस्थितिकी तंत्र अस्तव्यस्त हो जाता है।

तापीय प्रदूषण नियंत्रण के उपाय (Control Measures for Prevention of Thermal Pollution)

तापीय प्रदूषण को नियंत्रित करने के निम्न उपाय हो सकते हैं–

1. कल–कारखानों, तापीय ऊर्जा संयंत्रों से निकलने वाले

गर्म जल को सीधे जल स्त्रोत में नहीं डालकर इसे अलग एकत्रित करना चाहिए। बाद में इसे ठण्डा करके ही जल स्त्रोतों में डालना चाहिए।

2. विभिन्न संयंत्रों से निकले गर्म जल को वाहित मल उपचार संयंत्र से निकले पोषक तत्वों युक्त जल में मिलाकर एक्वाकल्चर हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण
(Radioactive Pollution)

वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों में परमाणु शक्ति राष्ट्र बनने की होड़ लगी हुई है। इस कारण से नाभिकीय इकाईयों एवं अस्त्रों के उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। इसी प्रकार परमाणु भट्टियों में यूरेनियम एवं प्लूटोनियम के प्रयोग के बाद शेष बचा हुआ पदार्थ नाभिकीय अपशिष्ट के रूप में रह जाता है।

परमाणु विखण्डन या विस्फोट के पश्चात् रेडियोधर्मी धूल वायुमण्डल में फैल जाती है तथा धीरे–धीरे ठण्डा हो पृथ्वी पर जमा हो जाती है। इसे रेडियोधर्मी अवपात (Nuclear fallout) कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न रेडियोधर्मी संयंत्रों से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ प्रदूषण के घातक स्त्रोत है।

परिभाषा (Definition)

विभिन्न परमाणु संयंत्रों एवं परमाणु विस्फोटों से निकलने वाले रेडियोधर्मी पदार्थों से उत्पन्न होने वाले प्रदूषणों को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं।

रेडियोधर्मी पदार्थ दो रूपों में पाये जाते हैं–

(i) कणीय विकिरण (Corpuscular radiation) – इसके अन्तर्गत एल्फा, बीटा एवं न्यूट्रान आते हैं। एल्फा कण पर 2 इकाई धनावेश एवं 4 इकाई भार होता है अतः यह शरीर से अधिक दूर पर नहीं जा सकते हैं। जबकि बीटा कण न्यूट्रान के प्रोटोन व इलेक्ट्रॉन में टूटने से बनते हैं। इन पर एक ऋणावेश एवं वेग अधिक होने से इनकी बेधन क्षमता बहुत अधिक होती है।

न्यूट्रान आवेश रहित कण होते हैं जिनमें एक इकाई भार होता है। इनका वेग एवं बेधन क्षमता भी बहुत अधिक होती है। प्रभाव की दृष्टि से ये आयनकारी व अनआयनकारी हो सकते हैं।

(ii) विद्युत चुम्बकीय विकिरण (Electro magnetic radiation) – इसमें एक्स एवं गामा किरणें आती है। एक्स किरणों की खोज रॉन्टजन ने 1895 में की। इनकी तरंगदैर्ध्य 0.1-100A° होती है। ये त्वचा एवं मांस को पार कर सकती है अतः इनका उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में हड्डियों का चित्र लेने में किया जाता है।

गामा किरणें, एक्स किरणों से अधिक शक्तिशाली होती है। इनका उद्‌गम परमाणु नाभिक से होता है तथा इनकी तरंगदैर्ध्य 0.00001 से 0.1A° तक होती है। ये कंकरीट की मोटी दीवार को भी पार कर सकती है।

विकिरण की अनेक इकाईयाँ हैं। विघटनात्मक नाभिकीय पदार्थ के परिमाण को क्यूरी में नापा जाता है। एक क्यूरी का मान पदार्थ की वह मात्रा जिसमें प्रति सैकण्ड 3.7×10^{10} परमाणुओं का विघटन होता है। जैसे एक ग्राम रेडियम की रेडियोधर्मिता एक क्यूरी होती है।

एक्स एवं गामा किरणों को रॉन्जन में नापा जाता है जबकि एल्फा व बीटा कणों को रैड में नापा जाता है। रेडियोधर्मिता की इकाई बेकरल 27 पिको क्यूरी के बराबर होती है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्त्रोत
(Sources of Radioactive Pollution)

इसके निम्न स्त्रोत हैं–

(i) प्राकृतिक स्त्रोत के रूप में कॉस्मिक किरणें व पर्यावरणीय स्त्रोत जैसे रेडियम, यूरेनियम, थोरियम के नाभिक, कार्बन 14 एवं पोटेशियम 40 के समस्थानिक प्रकृति में वायु, जल एवं मृदा आदि में विद्यमान रहते हैं।

(ii) नाभिकीय अस्त्रों के उपयोग से निकालने वाले खतरनाक विकिरण एवं रेडियोधर्मी पदार्थ जो वातावरण में लम्बे समय तक उपस्थित रहकर हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

(iii) नाभिकीय परीक्षणों (Nuclear tests) से भयंकर हानिकारक विकिरण उत्सर्जित होकर वातावरण में फैल जाते हैं।

(iv) परमाणु भट्टियों में आण्विक ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है। इस दौरान अनेक अवशिष्ट, रेडियोधर्मी विकिरण एवं आण्विक कचरा भी निकलता रहता है जो पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

(v) सूर्य से भी अनेक हानिकारक विकिरण निकलती रहती है जिसमें कुछ रेडियोधर्मी विकिरण भी होती है। हालांकि इनमें से अधिकांश वायुमण्डल द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। फिर भी ओजोन परत के क्षरण के कारण पराबैंगनी किरणें पृथ्वी तक पहुंच रही है।

(vi) परमाणु युद्ध एवं परमाणु अस्त्रों के परीक्षण से भी अनेक रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमण्डल में उत्सर्जित हो रहे हैं तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण का स्त्रोत बन रहे हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव
(Effects of Radioactive Pollution)

रेडियोधर्मी विकिरणों के अनेक हानिकारक प्रभाव हैं जो निम्न प्रकार है–

(i) विकिरण के प्रभाव से मनुष्य के डी.एन.ए. में अनेक

असामान्य परिवर्तन हो जाते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी वंशानुगत हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप लिंग अनुपात में परिवर्तन, विकृत शिशुओं का जन्म, गर्भपात में वृद्धि, गर्भस्थ शिशुओं में कैंसर एवं शिशु मृत्यु दर में वृद्धि जैसे प्रभाव देखने को मिलते हैं। जापान के हिरोशिमा व नागासाकी (1945) में परमाणु विस्फोट के प्रभाव देखे जा सकते हैं।

(ii) विकिरणों के प्रभाव से मनुष्य में अनेक रोग त्वचा कैंसर, अतिश्वेतरक्तता (Lukemia), बन्ध्यता (Sterility), मोतियाबिन्द (Cataract), अस्थि कैंसर (Bone Cancer) आदि उत्पन्न हो जाते हैं। विकिरण की मात्रा अधिक होने पर व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है।

(iii) इसके प्रभाव से सूक्ष्मजीवों में उत्परिवर्तन हो जाता है। जिसके कारण प्रतिरोधी एवं रोगजनित स्ट्रेन्स की संख्या बढ़ सकती है।

(iv) जलवायु में परिवर्तन होने से तापमान में अचानक वृद्धि हो जाती है।

(v) विकिरणों के प्रभाव से जीवों की जनन क्षमता प्रभावित होती है तथा ऐसी कई जातियाँ जो विलुप्त होने के कगार पर है, इससे प्रभावित होती है तथा जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

(Control Measures for Radioactive Pollution)

रेडियोधर्मी प्रदूषण के नियंत्रण के निम्नलिखित उपाय हैं–

(i) परमाणु बिजलीघरों के चारों ओर सघन एवं चौड़े पर्णों वाले वृक्षों की हरी पट्टी (Green belt) का निर्माण किया जाना चाहिए। जिसमें रेडियोधर्मी धूल कण एवं अन्य प्रदूषकों को रोकने व अवशोषण करने की क्षमता होती है। हरी पट्टी बनाते समय स्त्रोत से इसकी दूरी, इसकी चौड़ाई, उपयुक्त वृक्षों प्रजातियों का चुनाव आदि बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

;पपद्ध वैज्ञानिकों द्वारा ऐसे रसायनों की खोज की जा रही है जिनके सेवन से मनुष्य में विकिरण का प्रभाव कम हो जाता है। जैसे सल्फर यौगिकों के सेवन से मनुष्य में एन्जाइमों पर एक्स किरणों का प्रभाव कम पड़ता है।

;पपपद्ध रेडियोधर्मी संघटक पदार्थों को अन्य पदार्थों से अलग कर सुरक्षित विधि द्वारा सुरक्षित स्थान पर स्थिर किया जाना चाहिए। जिससे कि उन्हें पर्यावरण में पहुंचने से रोका जा सके।

;पअद्ध कम व मध्यम स्तर के रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थों को ठोस में परिवर्तित करके इन्हें 10–15 मीटर गहरे गड्ढे में दबा दिया जाता है। गड्ढे की सतह विशेष रूप से मजबूत व सुरक्षित बनाई जाती है। ड्रम को गड्ढे में दबाने से पूर्व कंकरीट के बने कनस्तर में बन्द कर लेते हैं। उच्च स्तर के रेडियोअपशिष्ट पदार्थों के निपटान हेतु गहरे व स्थिर भूभाग क्षेत्र का चयन किया जाता है। अपशिष्ट से भरे ड्रमों को चारों ओर से ग्लास, तांबा, टिन आदि की बनी हुई कई प्रतिरोधी दीवारों से ढक कर गड्ढों में दबाया जाता है।

चेरनोबिल दुर्घटना (Chernobyl Accident)

यह सोवियत रूस के युक्रेन प्रांत की राजधानी किएफ के निकट स्थित चेरनोबिल के परमाणु बिजलीघर की चौथी रिएक्टर इकाई में होने वाली विश्व की सबसे बड़ी रेडियोधर्मी प्रदूषण की भयंकर दुर्घटना थी। इस दुर्घटना से पूर्व 14 मार्च 1979 को थ्री माइल आइलेण्ड नाभिकीय रिएक्टर के मुख्य भाग से रेडियोधर्मिता का रिसाव हुआ था। लेकिन रिएक्टर के बाहरी भाग द्वारा इसका अवशोषण कर लिए जाने के कारण दुर्घटना भयंकर रूप धारण नहीं कर सकी।

चेरनोबिल नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र की चौथी इकाई पर एक प्रयोग 25 अप्रेल 1986 को शुरू किया गया। जिसका उद्देश्य भाप को पूर्णतया बन्द करने के बाद टर्बाइन से कितनी बिजली प्राप्त की जा सकती है। इस प्रयोग में विलम्ब के कारण ऊर्जा स्तर 700 मेगावाट से गिरकर 30 मेगावाट पर आ गया। इस कमी को पूरा करने के लिए संचालक ने नियंत्रक छड़ों को बाहर निकाल लिया। इस बीच एक निष्क्रिय गैस जिनॉन एकत्रित हो गई जिसने न्यूट्रानो को अवशोषित कर लिया। सभी नियंत्रक छड़ों के बाहर निकालने के कारण रिएक्टर का ऊर्जा स्तर बढ़ गया तथा 4–5 सैकण्ड में ही यह लगभग 2000 गुणा बढ़ गया। ठण्डा करने वाला जल भाप में बदल गया तथा एक भयंकर विस्फोट हुआ जिसने 1000 मेट्रिक टन के कंकरीट आवरण को उड़ा दिया व रिएक्टर में आग लग गई।

दुर्घटना के प्रभाव (Effects of Accident)

इस परमाणु बिजलीघर से फैलने वाली रेडियोधर्मिता से यूरोप के कई देश प्रभावित हुए। रिएक्टर 10 दिन तक जलता रहा। 2000 किमी. तक इसकी रेडियोधर्मिता फैल गयी तथा इससे 50 से अधिक रेडियोधर्मी पदार्थ निकले। इनमें आयोडीन 131 एवं सीजीयम 137 प्रमुख थे। आयोडीन 131 से कैंसर जैसी भयंकर बीमारी हो जाती है। इस दुर्घटना से कई कर्मचारियों एवं संयंत्र में लगी आग बुझाने वालों की मृत्यु हो गयी। इन पर 500 रेड से अधिक रेडियोधर्मी विकिरण पड़ा। जिनके शरीर पर 100 या अधिक रेड विकिरण पड़ा उन्हें कैंसर या ल्युकेमिया हो गया।

मृदा प्रदूषण
(Soil Pollution)

मृदा भूमि की ऊपरी सतह होती है जो हमारी फसलों की

उत्पादकता का मुख्य आधार होती है। मृदा की उर्वरता उसमें उपस्थित विभिन्न पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम आदि) एवं अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों (जीवाणु, कवक, निमेटोड एवं प्रोटोजोआ आदि) के कारण होती है। मनुष्य की अविरल विकास की गतिविधियों ने मृदा को प्रदूषित किया है। भवन निर्माण के लिए काम में लिया जाने वाले कच्चा माल, अपशिष्ट पदार्थों का निपटान (Disposal), कृषि रसायनों का प्रयोग, उद्योगों के लिए कच्चा माल मृदा को प्रदूषित करने वाले मुख्य प्रदूषक है इस कारण से मृदा की उर्वरता नष्ट हो रही है।

मृदा का इस प्रकार का संक्रमण जिससे उसकी गुणवत्ता एवं उर्वरक शक्ति प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है, मृदा प्रदूषण कहलाता है।

परिभाषा (Definition)

मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में आये ऐसे परिवर्तन जो मनुष्य एवं अन्य प्राणी, वनस्पतियों पर विपरीत प्रभाव डालते हो। भूमि की उर्वरता नष्ट करते हो तथा उसकी सुन्दरता में कमी लाते हो, मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण के स्त्रोत (Sources of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण के निम्नलिखित स्त्रोत हैं–

(i) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial wastes) – विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट जैसे धूल, राख, रासायनिक पदार्थ, धातु, नाभिकीय कचरा, रंजक, अम्ल आदि मृदा प्रदूषण का प्रमुख स्त्रोत है। ये अपशिष्ट विषैले, ज्वलनशील, दुर्गंध युक्त एवं स्थायी प्रकार के होते हैं। जो मृदा की उर्वरता को नष्ट करते हैं। इनका निपटान कागज, शक्कर, धातु गलाने वाले, शराब, ऊर्जा, ताप, ऊर्जा एवं रसायन बनाने वाले कारखानों से किया जाता है।

(ii) कृषि रसायन (Agricultural chemicals) – कृषि रसायन विशेष रूप से उर्वरक, कीटनाशी एवं शाकनाशी जो जैव अनपघटनीय (Bio-nondegradable) होते हैं, मृदा प्रदूषण के स्त्रोत होते हैं। इसमें प्रमुख रूप से डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, हेप्टाक्लोर एवं अन्य कीटनाशी आते हैं। ये फसलों एवं शाकीय पौधों द्वारा तेजी से अवशोषित कर लिए जाते हैं तथा खाद्य शृंखला द्वारा मनुष्य एवं अन्य जीवों पर विषैला प्रभाव डालते हैं।

(iii) प्लास्टिक थैलियाँ (Polythene bags) – कम घनत्व वाली पॉलीथीन से प्लास्टिक की थैलियाँ बनती है जो कभी भी नष्ट नहीं होती है। आज के इस आधुनिक युग में इनका बढ़ता चलन पर्यावरणीय मृदा प्रदूषण का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। फेंकी हुई थैलियाँ सीवेज, नालियों को अवरुद्ध कर देती है। थैलियों में बचा भोजन, सब्जी आदि को गायों, कुत्तों के खा लेने से उनकी मौत तक हो जाती है। इसको अन्य कूड़ा–करकट के साथ जलाने पर कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, फॉस्नीन एवं अन्य जहरीले क्लोरीनीकृत रसायन भी निकलते हैं।

(iv) घरेलू अपशिष्ट एवं कचरा (Domestic wastes and garbage) – घरों एवं उनके रसोईघरों से निकलने वाला सुखा व गीला कचरा भी मृदा प्रदूषण का स्त्रोत है। सुखे कचरे में कागज, कांच के टुकड़े, एल्युमिनियम, प्लास्टिक के डिब्बे एवं पॉलीथीन थैलियाँ शामिल हैं जबकि गीले कचरे में सब्जी एवं फलों के छिलके, चायपत्ती, झूठन, अण्डों के छिलके एवं मांस मछली के अनुपयोगी भाग शामिल होते हैं।

(v) नगरपालिका अपशिष्ट (Municipal wastes) – नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट जैसे कांच, एल्युमिनियम, लकड़ी के टुकड़े, सड़े–गले पदार्थ, पशुओं का चारा, मृत पशु एवं उनके मल पदार्थ, अस्पतालों से निकलने वाला जैव औषधीय कचरा (Biomedical wastes) भी मृदा प्रदूषण के महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

(vi) खनन (Mining) – तेजी से बढ़ती हुई खनन प्रक्रियाओं से मृदा की ऊपरी एवं अवमृदा परतें नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त खनन से निकलने वाले अपशिष्टों एवं बड़े आकार के कंकड़ पत्थरों से खनन क्षेत्रों के आस–पास की मृदा की गुणवत्ता एवं उर्वरता भी प्रभावित होती है।

(vii) रेडियोधर्मी पदार्थ (Radioactive wastes) – नाभिकीय विस्फोटों, परमाणु परीक्षणों एवं नाभिकीय संयंत्रों से निकलने वाले रेडियोधर्मी पदार्थ मृदा में सम्मिलित होकर मृदा प्रदूषण का स्त्रोत बन जाते हैं।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभाव उत्पन्न होते हैं–

(i) मृदा की उर्वरता एवं सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

(ii) अनेक क्लोरीनीकृत रसायनों के अनअपघटनीय प्रकृति के कारण मृदा में इनका एकत्रीकरण हो जाता है जो पौधों द्वारा खाद्य शृंखला के विभिन्न पोषक स्तरों में पहुंच जाते हैं। इससे पक्षियों में अण्डजनन की प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा मनुष्यों में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

(iii) कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी एवं अनेक धातु रसायनों की उपस्थिति से मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव मर जाते हैं तथा इससे कार्बनिक पदार्थों के विघटन एवं चक्रीकरण (Decomposition and recycling) की प्रक्रिया बाधित हो जाती है तथा मृदा की उर्वरता में भी कमी आ जाती है।

(iv) मृदा में अत्यधिक कचरे के जमा हो जाने के कारण दुर्गंध युक्त वातावरण बन जाता है। तथा इसमें अनेक रोगवाहक

जीव जैसे मक्खी, तिलचट्टे व मच्छरों की जनसंख्या बढ़ जाती है।

(v) ठोस कूड़े व कचरे के एकत्रित होने से चूहों व अन्य रोडेन्ट्स की संख्या भी बढ़ जाती है जो रोगवाहक होने के साथ–साथ फसलों को भी नुकसान पहुंचाते हैं।

(vi) रेडियोधर्मी पदार्थों कोबाल्ट–60, स्ट्रांशियम–90 आदि की मृदा में उपस्थिति से ये खाद्य शृंखला में प्रवेश कर मनुष्यों में कैंसर एवं हड्डी रोग उत्पन्न कर देते हैं।

(vii) खनन प्रक्रिया द्वारा मृदा की उपजाऊ परत नष्ट हो जाती है तथा खनन अपशिष्टों के मृदा पर जम जाने से मृदा ठोस होकर बंजर हो जाती है।

(viii) प्लास्टिक थैलियों के सीवेज पाइप लाइनों एवं नालियों में जमा हो जाने से गंदगी व दुर्गंध का वातावरण बन जाता है। रोगाणु व विषाणुओं की उत्पत्ति से रोगों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

(ix) प्लास्टिक थैलियों के खाने से अनेक पशुधन जैसे गायों व कुत्तों की दम घुटने से मौत हो जाती है।

(x) प्लास्टिक थैलियों के अन्य कूड़ा–करकट के साथ जलाने पर अनेक जहरीली गैसों को उत्सर्जन होता है जो वायु प्रदूषण का स्त्रोत बन जाती है।

मृदा प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण के नियंत्रण के निम्नलिखित उपाय हैं–

(i) ठोस कचरों एवं अपशिष्टों का निपटान मृदा प्रदूषण को रोकने का श्रेष्ठ उपाय है। स्थान विशेष पर कचरा पात्र लगाये जाने चाहिए। विभिन्न माध्यमों से शहर, गांव व बस्तियों से कचरा एकत्रित कर इसका सुनियोजित ढंग से निपटान किया जाना चाहिए।

(ii) ठोस कचरे के निराकरण के लिए इसका पुनः उपयोग एवं पुनर्चक्रण अत्यन्त आवश्यक है। ठोस कचरे में उपस्थित कांच, एल्यूमिनियम, लोहे व टिन, प्लास्टिक के टुकड़ों को हटाकर शेष कचरे का पुनर्चक्रण कर पुनः उपयोग किया जा सकता है।

(iii) कृषि में उपयुक्त किये जाने वाले रसायनों का प्रयोग सीमित किया जाना चाहिए।

(iv) घरों व खेती से निकलने वाले जैविक पदार्थ को काम में लेकर वर्मीकम्पोस्ट का निर्माण किया जाना चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट कृषि कार्यों में उर्वरक के रूप में काम में लेना चाहिए।

(v) जैव चिकित्सा संबंधी कूड़े–कचरे को पृथक रूप से ही एकत्रित कर जला कर भस्म कर देना चाहिए।

(vi) परमाणु परीक्षण जैसे कार्यों पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए। ताकि रेडियोधर्मी पदार्थों का अवांछित प्रवेश मृदा में न हो सके।

(vii) खनन कार्यों से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए पुनर्भरण कार्य कर मृदा का वास्तविक स्वरूप बनाये रखना चाहिए।

वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे
(Global Environmental Issues)

विश्व की बढ़ती आबादी एवं समय की रफ्तार के साथ विकास की बढ़ती गति से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे इन संसाधनों के अस्तित्व के समाप्त होने का खतरा मंडराता जा रहा है। इसी कारण मानव सभ्यता के अस्तित्व पर भी खतरे के बादल मंडराने लगे हैं। पर्यावरण पर बढ़ते लगातार इस दबाव के कारण अनेक वैश्विक समस्याएं उत्पन्न हो गई है जो निम्नानुसार है–

(i) ओजोन परत में क्षरण
(ii) ग्रीन हाउस प्रभाव
(iii) अम्लीय वर्षा
(iv) बढ़ता हुआ रेगिस्तान
(v) पीने योग्य पानी के स्तर में कमी
(vi) खनिज दोहन से वन विनाश
(vii) जैव विविधता में कमी
(viii) जीवाश्मीय ईंधन भण्डार में निरंतर कमी
(ix) समुद्री जल स्तर में वृद्धि
(x) शहरीकरण एवं औद्योगीकरण से भूमि विनाश
(xi) रेडियोधर्मी प्रदूषण से होने वाले नुकसान
(xii) कृषि उर्वरकों, पेस्टीसाइड, कीटनाशी व कवकनाशी अतिप्रयोग के खतरे
(xiii) ट्रांसजैनिक फसलों के खतरे

इस प्रकार पर्यावरण व जीव स्वास्थ्य पर अनेक खतरे उत्पन्न हो गये हैं। अगर विकास की गति इसी प्रकार तेज होती रही एवं इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होता रहा तो मानव जाति के अस्तित्व का संकट खड़ा हो जायेगा।

सभी समस्याओं की जड़ में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा विकसित देशों में बढ़ती होड़ प्रमुख कारण है। यहां पर जलवायु परिवर्तन से संबंधित कुछ मुद्दों का विस्तृत विवरण दिया जा रहा है–

वैश्विक ताप वृद्धि
(Global Warming)

विश्व में आई औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप पृथ्वी के तापमान में अचानक तेजी से वृद्धि हुई है। इसके अनेक कारण हैं जिसमें वनों की अनावश्यक अन्धाधुंध कटाई, जीवाश्म ईंधन से ऊर्जा प्राप्ति, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण प्रमुख है।

जीवाश्मीय ईंधन के दहन से भारी मात्रा में CO_2 वायुमण्डल में निर्मुक्त होती है मोटर वाहनों, उद्योगों आदि से भी CO_2 निकल कर वायुमण्डलीय CO_2 की मात्रा में वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त अन्य विषैली व हानिकारक गैसें जैसे कार्बन मोनोक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन्स (CFC'S), नाइट्रस ऑक्साइड में छोड़ी जाती है। इन सभी गैसों को हरित गृह गैसों के रूप में जाना जाता है।

वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड एवं जलवाष्प प्राकृतिक रूप से पृथ्वी के तापमान को सन्तुलित रखते हैं। ये पृथ्वी से परावर्तित होकर जाने वाली अवरक्त किरणों (Infra Red radiations) को अवशोषित कर उन्हें पुनः पृथ्वी पर परावर्तित कर देते हैं जिसके फलस्वरूप पृथ्वी की सतह गर्म हो जाती है। इसे हरित गृह प्रभाव (Green House effect) के नाम से जाना जाता है।

हरित गृह प्रभाव नाम फ्रांस के वैज्ञानिक जे. फोरियर ने 1827 में दिया। हरित गृह वास्तव में कांच का बना एक कृत्रिम कक्ष है। सूर्य से आने वाली लघु तरंगी अवरक्त किरणें हरित गृह में प्रवेश तो कर जाती है। परन्तु परावर्तित होने के पश्चात् यह लम्बी तरंगों के रूप में कांच से बाहर नहीं निकल पाती फलस्वरूप कांच घर के तापमान में वृद्धि हो जाती है। वायुमण्डल भी एक प्राकृतिक कांच के कक्ष की भांति ही है जिसमें उपस्थित विभिन्न हरित गैसों के अवरक्त किरणों के पृथ्वी पर पुनः परावर्तन के कारण पृथ्वी के तापक्रम में वृद्धि हो जाती है।

पृथ्वी के वायुमण्डल में पहुंचने वाली कुल ऊर्जा 8.4×10^4 (जुल/वर्गमीटर/मिनट = 1400 वाट/वर्गमीटर/मिनट) का लगभग 47% भाग ही पृथ्वी की सतह एवं आसपास के वातावरण तक पहुंच पाता है। वायुमण्डल में पहुंचने वाली विकिरणों पराबैंगनी, दृश्य एवं अवरक्त) की सर्वाधिक तीव्रता 483 nm होती है जबकि पृथ्वी से पुनर्उत्सर्जित ऊर्जा केवल अवरक्त विकिरण क्षेत्र 2000–40000 nm के अन्तर्गत आती है। जिसकी सर्वाधिक तीव्रता लगभग 10,000 nm होती है। यदि यह ऊर्जा ऊपरी वायुमण्डल में विलुप्त हो जाए तो पृथ्वी की सतह का तापमान 20-40°C हो जायेगा। परन्तु पुनर्उत्सर्जित अवरक्त विकिरण का एक बड़ा हिस्सा वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प एवं कार्बन डाइऑक्साइड द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। इसमें से कुछ हिस्सा पृथ्वी पर लौट आता है परिणामस्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान 15° बना रहता है। इस प्रकार हरित गृह प्रभाव की इस प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा पृथ्वी का वायुमण्डलीय तापमान सन्तुलित रहता है।

ग्रीन हाउस गैसें एवं उनके स्त्रोत
(Green house gases & their sources)

ग्रीन हाउस गैसों, उनके स्त्रोत तथा ग्रीन हाउस प्रभाव में इनका योगदान निम्न प्रकार तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

जब कोई अन्य ग्रीन हाउस गैस CO_2 के समान तरंगदैर्ध्य अवशोषित करती है तो उसका ग्रीन हाउस प्रभाव कम हो जाता है।

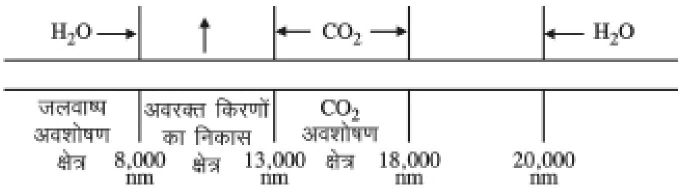

उपरोक्त चित्र से यह पता चलता है कि 8000 से 13000 nm तक तरंगदैर्ध्य का विकिरण विकास क्षेत्र द्वारा बाह्य वायुमण्डल में विलीन हो जाता है। परन्तु मानव जनित ग्रीन हाउस गैसें इसी निकास क्षेत्र की तरंगदैर्ध्य के विकिरण को अवशोषित कर लेती है फलस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव बढ़ जाता है जो वैश्विक ताप वृद्धि का प्रमुख कारण है।

ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि के लिए निम्न मानवीय गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं (तालिका 1.3) –

मानव गतिविधियाँ	प्रतिशत योगदान
जीवाश्म ईंधन दहन	57%
कल–कारखाने	20%
वन विनाश	9%

इस प्रकार ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि के लिए जीवाश्म ईंधन के दहन की प्रमुख भूमिका है। विश्व स्तर पर ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता में लगभग 30% योगदान विकसित देशों का है जबकि शेष विकासशील देशों का है।

वैश्विक ताप वृद्धि के प्रभाव
(Effects of Global Warming)

वैश्विक ताप वृद्धि के निम्नलिखित प्रभाव है–

(i) इसके प्रभाव से चक्रवात, हरीकेन आदि तूफानों की आवृत्ति एवं तीव्रता में वृद्धि हो जायेगी जिससे जन–धन के भारी नुकसान की आशंका हो सकती है।

(ii) इसके कारण वर्षा व मृदा की नमी पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। शुष्क क्षेत्रों की शुष्कता में और वृद्धि होने से कृषि उत्पादन में कमी आ जायेगी। खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो सकता है।

तालिका 1.3 : प्रमुख ग्रीन हाउस गैसें एवं उनके स्त्रोत

	ग्रीन हाउस गैस	मुख्य स्त्रोत	प्रतिशत योगदान
1.	कार्बन डाइऑक्साइड	जीवाश्म ईंधन का दहन, वन विनाश	60%
2.	मीथेन	कोयला खनन, प्राकृतिक गैस व पेट्रोलियम, चावल खेती, प्राणी अवशेष में किण्वन, प्राणी अवशेष जैवभार दहन, घरेलू अपशिष्ट उपचार, दलदली क्षेत्र	15%
3.	ओजोन	प्राथमिक प्रदूषकों का सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में आपसी क्रिया	8%
4.	क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC's) (CFC - 11 & 12)	रेफ्रिजरेशन गैसें, एयरकण्डीशनर, अग्नि शामक यंत्र, एरोसोल्स, सफाई करने वाले विलायकों, फोम पैकिंग	8%
5.	नाइट्रस ऑक्साइड	कृषि भूमि, जैव भार एवं स्थिर दहन, अम्ल उत्पादन, मवेशियों के मल	5%

(iii) इसके कारण ध्रुवीय बर्फ पिघल सकती है तथा गर्म होते समुद्री जल का तापीय विस्तार होगा जिससे तटीय अपरदन में वृद्धि, तटीय क्षेत्रों का समुद्र में विलय, तटीय क्षेत्रों का भूजल खारा होना, इमारतों को क्षति, चक्रवात आदि की तीव्रता में वृद्धि जैसे प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं।

(iv) इसके प्रभाव से अनेक पादप जातियाँ वातावरण से तालमेल बिठाने में असमर्थ होगी। जैव विविधता में कमी आ जायेगी। अनेक समुद्री तट की वनस्पति एवं प्राणी विलुप्त हो जायेंगे।

(v) समुद्री जल स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप तट के आसपास की मानव सभ्यता विस्थापित हो जायेगी। इसके अतिरिक्त कृषि व पर्यटन, स्वच्छ जल प्रबन्धन, मछली पालन जैसे उद्योग भी प्रभावित होंगे।

(vi) पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप अनेक प्रकार के पादप रोगों व फसलनाशी कीटों की संख्या में वृद्धि होगी तथा साथ अनेक प्रकार के अनावश्यक खरपतवार पौधों की संख्या भी बढ़ जायेगी।

(vii) वैश्विक ताप वृद्धि के कारण अनेक प्राकृतिक आपदाओं आवृति जैसे सूखा, बाढ़, बर्फ का अत्यधिक मात्रा में पिघलना आदि में भी वृद्धि हो जायेगी।

(viii) ताप में वृद्धि के फलस्वरूप समुद्री जल स्तर में वृद्धि होगी जिससे भारत, बांग्लोदश, मिश्र, चीन, इण्डोनेशिया जैसे उच्च उत्पादक देशों में बाढ़ से जनजीवन की भारी क्षति होगी।

ओजोन परत क्षरण
(Depletion of Ozone Layer)

पृथ्वी पर प्रकाश संश्लेषण की शुरूआत के साथ–साथ ही ऑक्सीजन युक्त वायुमण्डल का भी निर्माण हुआ तथा इसी के साथ–साथ ओजोन परत एवं ओजोन मण्डल का भी उद्भव हुआ। ओजोन ऑक्सीजन का एक त्रिअणुक एलोट्रोप है जो एक प्रभावी ऑक्सीकारक है तथा वायुमण्डल के विभिन्न तत्वों से कई प्रकार की क्रियाएं करने में सक्षम है।

वायुमण्डल में ओजोन ही एक ऐसी गैस है जो सूर्य से आने

पराबैंगनी विकिरण

पराबैंगनी-C	पराबैंगनी-B	पराबैंगनी-A
100-280 nm का भाग, अधिक ऊर्जा वाला भाग, O_2 द्वारा अवशोषित होने वाला भाग, अत्यधिक क्षति कारक परन्तु पृथ्वी तक नहीं पहुंचती है।	280-320 nm वाला भाग। यह ओजोन द्वारा अवशोषित। अतः ओजोन क्षरण के फलस्वरूप पृथ्वी पर पहुंचने वाला क्षतिकारक भाग।	320-400 nm वाला भाग। यह भाग पृथ्वी तक पहुंचता है। ओजोन परत इसे अवशोषित नहीं करती है। यह बहुत ही कम क्षतिकारक है।

वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी पर जीवन को सुरक्षित करती है। वायुमण्डल में यह ओजोन परत के रूप में पाई जाती है। जो पर्यावरण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण व आवश्यक है। पृथ्वी के चारों ओर स्थित वायुमण्डल को प्रमुख रूप से पांच मण्डलों में बांटा जा सकता है–

(i) क्षोभ मण्डल (Troposphere) – यह पृथ्वी की सतह से लेकर 5–10 किमी. ऊपर तक वायुमण्डल का सबसे नीचे वाला क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में वर्षा होना, बादल बनना, तेज हवाओं का चलना जैसी घटनाएं सम्पन्न होती है। इस क्षेत्र में ऊंचाई के साथ तापमान घटता जाता है।

(ii) समताप मण्डल (Stratosphere) – क्षोभमण्डल से ऊपर 45 किमी. तक का क्षेत्र (10–45) समताप मण्डल कहलाता है। ओजोन गैस की परत इसी मण्डल में 15–35 किमी. की ऊंचाई क्षेत्र में पाई जाती है। इस क्षेत्र में ऊंचाई के साथ–साथ तापमान बढ़ता जाता है।

(iii) मध्यमण्डल (Mesophere) – समताप मण्डल से 80 किमी. ऊपर तक (45–80 किमी.) मध्यमण्डल स्थित रहता है। ऊंचाई के साथ–साथ इसमें तापमान सामान्यतः बढ़ता जाता है।

(iv) तापमण्डल (Thermosphere) – मध्यमण्डल से 300 किमी. ऊपर तक (80–300 किमी.) तापमण्डल स्थित रहता है। इस क्षेत्र में ऊंचाई के साथ–साथ तापमान में अप्रत्याशित वृद्धि होती है।

(v) आयन मण्डल (Ionosphere) – तापमण्डल के ऊपर स्थित सबसे ऊपरी क्षेत्र जिसमें सर्वाधिक आयन्स की उपस्थिति होती है। इस क्षेत्र में भी ऊंचाई के साथ–साथ तापक्रम में वृद्धि होती है।

पराबैंगनी विकिरण (Ultraviolet Radiation)

सूर्य से निकलने वाली 100–400 nm तक की तरंगदैर्ध्य की विकिरण पराबैंगनी विकिरण कहलाती है है इसे तीन भागों में बांटा जा सकता है–

ओजोन परत का निर्माण (Formation of Ozone Layer)

यह दो प्रकार से बनती है–

(i) क्षोभमण्डलीय ओजोन (Tropospheric ozone) – इस ओजोन का निर्माण प्रकाश रासायनिक क्रियाओं द्वारा होता है जिसमें नाइट्रिक ऑक्साइड प्रदूषित वायु में O_2 के साथ क्रिया करता है।

$$2NO + O_2 \longrightarrow 2NO_2$$

$$2NO_2 \xrightarrow{\text{UV-A}} NO + O^{\bullet}$$

$$O2 + O^{\bullet} \xrightarrow[\text{Hydrocarbon}]{} O_3$$

यह ओजोन प्राथमिक प्रदूषकों के अन्तःक्रिया के फलस्वरूप बनती है अतः इसे द्वितीयक प्रदूषक के नाम से जाना जाता है। यह अत्यन्त क्षतिकारक विषैली गैस है।

(ii) समतापमण्डलीय ओजोन (Stratospheric ozone) – इसका निर्माण समताप मण्डल में प्रकाश रासायनिक विघटन द्वारा होता है–

$$O_2 \xrightarrow{\text{UV-C}} O^{\bullet} + O^{\bullet}$$

$$O2 + O^{\bullet} \longrightarrow O_3$$

$$O_3 \xrightarrow{\text{UV-B}} O_2 + O^{\bullet}$$

इस प्रकार समतापमण्डल में O_3 का निर्माण व विघटन होता रहता है इसकी साम्यावस्था के फलस्वरूप समतापमण्डल में इसका एक निश्चित सान्द्रण बना रहता है। इस प्रकार एकत्रित ओजोन एक पतली परत के रूप में (ओजोन परत) समतापमण्डल में पाई जाती है। यह परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करती है इसलिए इसे ओजोन आवरण (Ozone shield) भी कहते हैं।

ओजोन पृथ्वी तल से लेकर 62 किमी. ऊंचाई तक ओजोन कॉलम के रूप में विद्यमान रहती है। इसका मुख्य भाग (80%) 11 से 40 किमी. के मध्य फैला रहता है जिसे ओजोन मण्डल (Ozonesphere) कहते हैं।

वायुमण्डलीय ओजोन को डॉबसन पराबैंगनी स्पेक्ट्रोफोटोमीटर द्वारा नामक यंत्र से नापा जाता है इसलिए ओजोन मापन इकाई को डॉबसन इकाई (DU) भी कहते हैं। एक डॉबसन इकाई सान्द्रण 1 ppb ओजोन के बराबर होता है।

ओजोन क्षरण के कारण एवं क्रियाविधि
(Causes & Mechanism of Ozone Depletion)

पृथ्वी पर मानव की बढ़ती हुई गतिविधियों के कारण ओजोन परत का तेजी से क्षरण हुआ है। 1985 में फारमैन एवं साथियों के ब्रिटिश अण्टार्कटिक सर्वे के फलस्वरूप ओजोन कॉलम के क्षरण का पता चला। इसके अनुसार 1970 तक समताप मण्डल में लगभग 300 DU ओजोन थी जो 1984 में तेजी से घटकर 200

DU ही रह गयी। बाद में अमरीकी एवं जापानी वैज्ञानिकों ने भी इसकी पुष्टि की। ओजोन क्षरण के फलस्वरूप कम हुए सान्द्रण क्षेत्र को ओजोन छिद्र (Ozone hole) की संज्ञा दी गई।

ओजोन क्षरण का मुख्य कारण जानने के लिए विश्वस्तर पर वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयास किये। तथा इसके क्षरण को समझाने के लिए सौर चक्र सिद्धान्त (Callis and Natrajan 1986), गतिकी सिद्धान्त (Jung *et al.*, 1986) दिए गये लेकिन इनकी पर्याप्त प्रमाणिकता के अभाव में इन्हें अस्वीकार कर दिया गया।

ओजोन क्षरण का सिद्धान्त
(Principle of Ozone Depletion)

तत्पश्चात् 1974 में कैलिफोर्निया के विश्वविद्यालय के मारियो मोलिना एवं शेरवुड राउलैण्ड द्वारा ओजोन क्षरण का सी.एफ.सी. सिद्धान्त दिया गया जिसमें क्लोरोफ्लोरो कार्बन को ओजोन क्षरण के जिए जिम्मेदार माना गया। सोलोमन व साथियों (1986) व अन्य वैज्ञानिकों ने भी इसकी सत्यता की पुष्टि की। इस उत्कृष्ट कार्य के लिए 1995 में मोलिना एवं शेरवुड राउलैण्ड एवं पॉल क्रजन को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

ओजोन क्षरण की CFC क्रियाविधि निम्न प्रकार है–

(अ) $CFC \xrightarrow{UV} Cl^{\bullet}$

(ब) (i) $O2 \xrightarrow{UV\text{-}C} O^{\bullet} + O^{\bullet}$

(ii) $O_2 + O^{\bullet} \longrightarrow O_3$

(iii) $O_3 \xrightarrow{UV\text{-}B} O_2 + O^{\bullet}$

(iv) $Cl + O^{\bullet} \longrightarrow ClO$ (क्लोरीन ऑक्साइड)

(स) $ClO + ClO \longrightarrow ClOOCl$ (डाइमर)

(द) $ClOOCl \longrightarrow Cl_2 + O_2$

(य) $Cl_2 \longrightarrow Cl^{\bullet} + Cl^{\bullet}$

समीकरण ब (iv) में क्लोरीन ऑक्साइड के निर्माण के कारण एकल परमाणु ऑक्सीजन ओजोन निर्माण हेतु उपलब्ध नहीं रहती है फलस्वरूप ओजोन निर्माण की गति एकदम धीमी हो जाने से ओजोन निर्माण व विघटन का साम्य विघटन की ओर एकदिशीय हो जाता है। ओजोन निर्माण में की उपस्थिति मुख्य बाधा है तथा यही ओजोन क्षरण का मुख्य कारण है। इस संदर्भ में निम्न कुछ बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण है–

(i) प्रत्येक क्लोरीन परमाणु अन्य रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट होने से पूर्व लगभग 1 लाख ओजोन अणुओं को नष्ट कर सकती है।

(ii) मीथेन, क्लोरीन परमाणु से क्रिया करके हाइड्रोक्लोरीक अम्ल बनाती है फलतः ओजोन क्षरण में कमी आती है।

(iii) क्लोरीन ऑक्साइड नाइट्रोजन डाइऑक्साइड से क्रिया कर $ClONO_2$ बनाता है। अतः NO_2 की उपस्थिति से भी ओजोन क्षरण में कमी आती है।

(iv) ध्रुवीय बवण्डर एवं ध्रुवीय समतापमण्डलीय बादल की उपस्थिति में ओजोन क्षरण बढ़ जाता है।

ओजोन परत क्षरण के प्रभाव
(Effects of Ozone Layer Depletion)

ओजोन परत के क्षरण के फलस्वरूप पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर पहुंचेगी तथा उसके कारण वनस्पति व जीवों पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ेगा–

(i) पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से त्वचा कैंसर जैसी बीमारियों के बढ़ने का अंदेशा रहेगा। ओजोन क्षरण के फलस्वरूप बेसल सेल कार्सिनोमा, स्क्वेमस सेल कार्सिनोमा एवं घातक मिलैनोमा जैसी बीमारियाँ हो सकती है।

(ii) पराबैंगनी (UV-B) किरणों के प्रभाव से मोतियाबिंद दोनों आंखों की दृष्टि सामंजस्य बिगड़ जाता है।

(iii) पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से रोग प्रतिरोधक क्षमता में भी कमी आ जाती है।

(iv) पराबैंगनी विकिरणों से पर्णो में पर्णहरित क्षय होने लगता है फलस्वरूप प्रकाश संश्लेषण की दर में कमी आ जाती है।

(v) पौधों में वाष्पोत्सर्जन की दर में वृद्धि होने से मृदा में जल की कमी हो जाती है तथा पादप वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कृषि उत्पादन में कमी आ जाती है।

(vi) पराबैंगनी किरणों के जल सतह में 10–20 मीटर गहराई तक प्रवेश कर जाती है। पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से अनेक पादप व जन्तु प्लवकों की मृत्यु हो जाती है।

(vii) ओजोन क्षरण के फलस्वरूप UV-B के पृथ्वी तक पहुंचने तथा ओजोन क्षरण के रसायनों की मात्रा में वृद्धि से वैश्विक ताप में वृद्धि के प्रभावों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

ओजोन क्षरण में क्लोरोफ्लोरो कार्बन्स की भूमिका प्रमाणित होने के पश्चात् विश्वस्तर पर अनेक प्रयास हुए। इसमें मांट्रियल प्रोटोकॉल (Montreal, 1987), लन्दन प्रोटोकॉल (London,

1990), कोपनहेगन प्रोटोकॉल (Copenhagen, 1992) जैसे विश्वस्तरीय अधिवेशन द्वारा CFC जैसे रसायनों को कम करने का निश्चय किया गया।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पर्यावरण में किसी भी प्रकार के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक लक्षणों में अवांछित परिवर्तन पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है।
2. वायु मण्डल में नाइट्रोजन का प्रतिशत 78 एवं ऑक्सीजन का लगभग 21 प्रतिशत होता है।
3. वायु प्रदूषण हेतु CO, SO_2, NO_2, H_2S आदि गैसें मुख्यतः जिम्मेदार है।
4. धूमकोह शब्द धुआं एवं कोहरा शब्दों से मिलकर बना है। यह दो प्रकार का सल्फ्यूरस एवं प्रकाश रासायनिक धूमकोह होता है।
5. वायुमण्डल में सल्फ्युरिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल वर्षा जल के साथ अम्ल वर्षा करते हैं।
6. फ्लोराइड की अधिकता से मनुष्य में नोक नी सिन्ड्रोम रोग हो जाता है।
7. ओजोन एक द्वितीयक प्रदूषक है। क्षोभमण्डल में इसकी उच्च मात्रा से मनुष्यों में पल्मोनरी एडिमा हो जाता है।
8. परऑक्सी एसीटाइल नाइट्रेट ओजोन की तरह द्वितीयक प्रदूषक है तथा प्रकाश रासायनिक धूमकोह का अभिन्न अंग है।
9. जल प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत वाहित मल, कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट एवं रेडियोधर्मी अपशिष्ट है।
10. खाद्य शृंखला के प्रत्येक पोषण स्तर पर रसायनों की मात्रा में सघन वृद्धि को जैव आवर्द्धन कहते हैं।
11. जल में नाइट्रेट की अधिक मात्रा से मेटाहीमोग्लोबेमेनिया नामक रोग हो जाता है।
12. जल में केडमियम प्रदूषण से इताई–इताई रोग हो जाता है।
13. जल स्त्रोतों में पोषक तत्वों जैसे फॉस्फोरस, नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ने के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि को सुपोषणीकरण कहते हैं।
14. जल में पारे के प्रदूषण के कारण मनुष्यों में मिनिमाटा रोग हो जाता है।
15. जल में पोषक तत्वों की अधिकता के कारण शैवालों की तीव्र वृद्धि होती है तथा ये जल की सम्पूर्ण सतह को ढक लेते हैं, शैवाल ब्लूम कहलाते हैं।
16. मृदा प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत कृषि, औद्योगिक, घरेलू अपशिष्ट एवं प्लास्टिक थैलियाँ है।
17. मृदा प्रदूषण के फलस्वरूप मृदा की उर्वरता कम हो मृदा क्षारीय या लवणीय हो जाती है।
18. जल प्रदूषण के फलस्वरूप मनुष्यों में टायफाइड, हैजा, अतिसार, पीलिया आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
19. शोर की अवांछित दशा जो मनुष्यों में बेचैनी व अशांति की स्थिति ध्वनि प्रदूषण कहलाता है।
20. ध्वनि प्रदूषण कल–कारखानों, यातायात के साधनों, सामाजिक व धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त लाउडस्पीकर आदि की अनियंत्रित, अकर्णप्रिय आवाज के कारण होता है।
21. ध्वनि प्रदूषण को डेसीबल एवं ओजोन की मात्रा को डॉबसन इकाई में मापा जाता है।
22. रेडियोधर्मी प्रदूषण रेडियोधर्मी आयनकारी व अनआयनकारी विकिरणों के कारण होता है जो परमाणु भट्टियों, परमाणु परीक्षणों, परमाणु युद्ध, नाभिकीय अवपात के फलस्वरूप निकलते हैं।
23. पृथ्वी पर आने वाली अवरक्त पुनः पृथ्वी पर परावर्तित कर देना, जिससे पृथ्वी की सतह गर्म हो जाती है। हरित गृह प्रभाव कहलाता है।
24. ग्रीन हाउस गैसें – CO_2, N_2O, O_3 एवं CFC है।
25. मानव द्वारा उत्पादित क्लोरोफ्लोरो कार्बन को ओजोन क्षरण का मुख्य कारण माना जाता है।
26. ओजोन क्षरण का सी एफ सी सिद्धान्त 1974 में मारियो मोलिना एवं शेरवुड राउलैण्ड ने दिया था। जिन्हें 1995 में नोबल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।
27. वायुमण्डल के समतापमण्डल में उपस्थित ओजोन परत सूर्य से आने वाली हानिकारक किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी पर आने से रोकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. वायु में ऑक्सीजन का प्रतिशत होता है–

   (अ) 78.084% (ब) 20.946%

   (स) 0.01% (द) 0.934%

2. द्वितीयक वायु प्रदूषक है–

   (अ) कार्बन मोनोक्साइड (ब) नाइट्रोजन डाइऑक्साइड

(स) ओजोन (द) सल्फर डाइऑक्साइड

3. प्रकाश रासायनिक धूमकोह को यह भी कहते हैं–
(अ) लॉस एंजिलिस धूमकोह
(ब) लन्दन धूमकोह
(स) सल्फ्युरस धूमकोह
(द) औद्योगिक धूमकोह

4. सेरीब्रल एनोक्सिया किस गैसीय प्रदूषक की अधिकता से होता है–
(अ) कार्बन डाइऑक्साइड (ब) सल्फर डाइऑक्साइड
(स) कार्बन मोनोक्साइड (द) नाइट्रोजन डाइऑक्साइड

5. नोक नी सिन्ड्रोम रोग का कारण है–
(अ) ओजोन
(ब) सल्फर डाइऑक्साइड
(स) नाइट्रोजन डाइऑक्साइड
(द) फ्लोराइड डाइऑक्साइड

6. मिनीमाटा रोग किसके धातु प्रदूषण के फलस्वरूप होता है–
(अ) सीसा (ब) केडमियम
(स) आर्सेनिक (द) मर्करी

7. केडमियम धातु के जल प्रदूषण के फलस्वरूप कौनसा रोग उत्पन्न होता है–
(अ) मिनीमाटा (ब) इताई–इताई
(स) नोक नी सिन्ड्रोम (द) मेटाहीमोग्लोबेमेनिया

8. ध्वनि प्रदूषण का प्राकृतिक स्त्रोत है–
(अ) कल–कारखानों का शोर
(ब) जेट विमान
(स) बादलों की गर्जना
(द) वाहनों का शोर

9. ध्वनि की प्रबलता किस इकाई में नापी जाती है–
(अ) डॉबसन (ब) डेसीबल
(स) जूल (द) न्यूटन

10. आनुवंशिक दुष्प्रभाव किस प्रदूषण के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं–
(अ) ध्वनि प्रदूषण (ब) तापीय प्रदूषण
(स) समुद्री प्रदूषण (द) रेडियोधर्मी प्रदूषण

11. ओजोन सान्द्रता मापन की इकाई है–
(अ) डॉबसन (ब) डेसीबल
(स) कैलोरी (द) किलोवाट

12. ओजोन परत किन हानिकारक किरणों का अवशोषण करती है–
(अ) कार्बन मोनोक्साइड (ब) नाइट्रोजन डाइऑक्साइड
(स) ओजोन (द) सल्फर डाइऑक्साइड

13. ओजोन परत क्षरण के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी गैसें हैं–
(अ) ऑक्सीजन
(ब) कार्बन डाइऑक्साइड
(स) सल्फर डाइऑक्साइड
(द) क्लोरोफ्लोरो कार्बन्स

14. निम्न में से मुख्य ग्रीन हाउस गैस है–
(अ) ऑक्सीजन (ब) ओजोन
(स) मीथेन (द) कार्बन डाइऑक्साइड

15. 300 मीटर ऊंचाई पर जेट विमान से निकलने वाली ध्वनि का स्तर है–
(अ) 150 dB(A) (ब) 180-195 dB(A)
(स) 85-90 dB(A) (द) 100-110 dB(A)

16. तापीय प्रदूषण के फलस्वरूप जल में–
(अ) घुलित O_2 की मात्रा बढ़ती है।
(ब) घुलित O_2 की मात्रा घटती है।
(स) घुलित O_2 की मात्रा अप्रभावित रहती है।
(द) इनमें से कोई नहीं।

17. परमाणु भट्टी में ईंधन के रूप में काम आता है–
(अ) रेडियम
(ब) थोरियम
(स) यूरेनियम एवं प्लुटोनियम
(द) आर्सेनिक

18. सुपोषणीय जल स्त्रोतों की जैविक ऑक्सीजन मांग–
(अ) कम होती है। (ब) बढ़ जाती है।
(स) स्थिर रहती है। (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

19. भोपाल गैस त्रासदी में निकली जहरीली गैस थी–
(अ) कार्बन मोनोक्साइड (ब) मिथाइल आइसोसायनेट

(स) मीथेन (द) फॉस्नीन

20. शैवाल ब्लूम में कौनसी शैवाल पाई जाती है–

(अ) एनाबीना (ब) माइक्रोसिस्टीस

(स) एफेनिनोमिनान (द) उपरोक्त सभी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. प्रदूषण की परिभाषा दीजिए।
2. प्रदूषक क्या है?
3. जैव आवर्द्धन किसे कहते हैं?
4. वायु प्रदूषण के लिए उत्तरदायी गैसें कौनसी हैं?
5. पृथ्वी के वायुमण्डल में किस गैस की मात्रा सर्वाधिक होती है?
6. परऑक्सी एसिटाइल नाइट्रेट क्या है?
7. लन्दन धूमकोह क्या है?
8. प्राथमिक वायु प्रदूषक कौन है?
9. भारतीय वायु (प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम) अधिनियम कब दिया गया?
10. जल प्रदूषण की परिभाषा दीजिए।
11. किस कीटनाशी को जैव अनअपघटनीय प्रदूषक के रूप में जाना जाता है?
12. मेटाहीमोग्लोबिनेमिया क्या है?
13. जैविक ऑक्सीजन मांग क्या है?
14. प्रदूषित जल से कौन–कौन से रोग मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं?
15. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम किस वर्ष में दिया गया?
16. पुनर्चक्रण किसे कहते हैं?
17. आवासीय क्षेत्रों में दिन में मानक स्वीकृत ध्वनि स्तर कितना है?
18. ग्रीन हाउस गैसें कौनसी हैं?
19. ओजोन क्षरण का सी.एफ.सी. सिद्धान्त किसने दिया?
20. ओजोन क्षरण के फलस्वरूप मनुष्यों में किस प्रकार के रोग हो रहे हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. वायु प्रदूषण क्या है? इसके विभिन्न स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।
2. वायु प्रदूषकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. धूमकोह क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
4. वायु प्रदूषण के मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन कीजिए।
5. अम्ल वर्षा पर एक लेख लिखिए।
6. वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपायों का वर्णन कीजिए।
7. जल प्रदूषण क्या है? इसके विभिन्न स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।
8. जल प्रदूषण के मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन कीजिए।
9. सीवेज उपचार किस प्रकार किया जाता है?
10. रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्त्रोत एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए।
11. तापीय प्रदूषण के स्त्रोतों एवं प्रभावों को समझाइए।
12. ध्वनि प्रदूषण क्या है? इसके विभिन्न स्त्रोत कौन–कौनसे है?
13. ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों एवं नियंत्रण के उपायों को समझाइए।
14. मृदा प्रदूषण क्या है? इसके प्रमुख स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।
15. वैश्विक ताप वृद्धि क्या है? इसके प्रभावों की विवेचना कीजिए।
16. ओजोन परत का निर्माण किस प्रकार होता है?
17. ओजोन परत क्षरण के कारणों व क्रियाविधि पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
18. ओजोन परत क्षरण के जीवों पर पड़ने वाले प्रमुख प्रभावों को समझाइए।
19. ग्रीन हाउस प्रभाव क्या है?संक्षिप्त में समझाइए।
20. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

(अ) जैव आवर्द्धन (ब) सुपोषीकरण

(स) जैविक ऑक्सीजन मांग (द) धूमकोह

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. वायु प्रदूषण के स्त्रोतों, प्रभावों एवं नियंत्रण के उपायों का वर्णन कीजिए?
2. जल प्रदूषण के स्त्रोतों एवं प्रभावों पर विस्तार से टिप्पणी लिखिए?

3. ध्वनि प्रदूषण के कारणों एवं नियंत्रित करने के उपायों का वर्णन कीजिए।

4. ओजोन परत क्षरण के सिद्धान्त एवं प्रभावों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

5. निम्न पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए–

   (i) मृदा प्रदूषण

   ;पपद्ध रेडियोधर्मी प्रदूषण

   (iii) तापीय प्रदूषण

6. वैश्विक ताप वृद्धि क्या है?इसके प्रभावों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

उत्तरमालाः 1 (ब) 2 (स) 3 (अ) 4 (स) 5 (द)
6 (द) 7 (ब) 8 (स) 9 (ब) 10 (द)
11 (अ) 12 (ब) 13 (द) 14 (द) 15 (द)
16 (ब) 17 (स) 18 (ब) 19 (ब) 20 (द

इकाई – 2
हरित प्रौद्योगिकी
(Green Technology)

परिचय (Introduction)

बढ़ते हुए शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप मानव की अनेक समस्याएं कम हो गई। मानव जीवन सरल व आरामदायक बन गया। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के कारण बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन हुआ जिसके कारण पृथ्वी पर जल, वायु एवं भूमि प्रदूषण जैसी समस्याएं उत्पन्न हो गई। पृथ्वी पर बड़ी मात्रा में गन्दगी एवं कूड़ा–करकट एकत्रित होने लगा। इसका वातावरण के जैविक घटकों पौधों एवं प्राणी जातियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। मानव जाति एवं पशुओं आदि के लिए स्वच्छ पर्यावरण प्रदान करने के लिए इस प्रदूषण एवं कूड़े कचरे का प्रबन्धन अत्यन्त आवश्यक है।

इसी को ध्यान में रखते हुए एक ऐसी तकनीक या प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जो हमारे पर्यावरण को साफ व स्वच्छ रख सके। हमारे प्राकृतिक संसाधनों व ऊर्जा संसाधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जा सके। इस प्रकार की तकनीक को हरित प्रौद्योगिकी या अधिक सफाई की प्रौद्योगिकी (Cleaner technology) या परम्परागत शब्दों में पर्यावरण प्रौद्योगिकी के रूप में जाना जाता है।

परिभाषा (Definition)

हरित प्रौद्योगिकी एक ऐसी पर्यावरण मैत्रीपूर्ण तकनीक है जिसके द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अधिक कुशलतापूर्वक प्रयोग कर, कम ऊर्जा के प्रयोग द्वारा उच्चकोटि के माल एवं सेवाओं का उत्पादन करना है। और इसके साथ–साथ कूड़ा–करकट की मात्रा में कमी लाना एवं पर्यावरण को प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों से बचाये रखना भी इसका उद्देश्य है।

हरित प्रौद्योगिकी के उद्देश्य
(Objectives of Green Technology)

हरित प्रौद्योगिकी के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है–

(i) पर्यावरण में उद्योगों एवं घरेलू संसाधनों से निकलने वाले कूड़े–करकट एवं कचरे को कम करने, इनका पुनर्चक्रण करने एवं पुनः प्रयोग में लाने की विधियां विकसित करना।

(ii) पेय व सिंचाई के जल में पाई जाने वाली अशुद्धियों को दूर कर उन्हें उपयुक्त बनाना तथा सीवेज जल को उपचारित कर उसे पुनः प्रयोग में लेना।

(iii) नाभिकीय अपशिष्टों का सुरक्षित निपटान करना।

(iv) विभिन्न प्रदूषण के प्रकारों वायु, जल एवं भूमि को नियंत्रित कर इन्हें कम करना तथा इनका प्रबन्धन सुचारू रूप से करना।

(v) ऊर्जा के अनवीनीकरणीय स्त्रोतों का उपयोग कम कर ऊर्जा संरक्षण बढ़ाना तथा नवीनीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के रूप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि का प्रयोग बढ़ाना।

(vi) पदार्थों के जीवन चक्र की समीक्षा करना।

(vii) इकोलेबलिंग करना।

हरित प्रौद्योगिकी की अवधारणा
;Concept of Green Technology)

अपशिष्ट पदार्थों कूड़ा–करकट व कचरे के भारी मात्रा में उत्पादन कर मानव जीवन की सुरक्षा व स्वास्थ्य के लिए गंभीर संकट खड़ा हो गया है। इसी कारण पर्यावरणविज्ञों, वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों को पर्यावरण के संरक्षण के लिए सोचने पर विवश होना पड़ा। इसका मूल उद्देश्य औद्योगिक निर्माण की प्रक्रियाओं को अधिक साफसुथरा बनाना तथा प्राकृतिक संसाधनों का युक्तिपूर्वक प्रयोग करना। प्रकृति में एक जीव द्वारा छोड़ा या त्यागा गया अपशिष्ट दूसरे किसी जीव का आहार बन जाता है, इससे प्रकृति के पोषक तत्व भी बरकरार रहते हैं तथा उनका पुनः प्रयोग होता रहता है। प्रकृति की इसी व्यवस्था को लागू करके

पर्यावरण को साफ सुथरा रखा जा सकता है जैसे–

(i) पेट्रोल, डीजल के स्थान पर वाहनों में सीएनजी गैस का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सके।

(ii) उद्योगों से निकलने वाले विषैले पदार्थों की विषाक्तता को रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं से कम करना।

(iii) एक उद्योग से छोड़े गये अपशिष्ट अगर किसी दूसरे उद्योग के लिए कच्चे माल के रूप में काम आ सके तो ऐसा प्रयास करना।

(iv) उद्योगों द्वारा निकलने वाले रसायनों का पुनरावर्तन व पुनः प्रयोग किया जाए। इन्हें पर्यावरण पर न थोपा जाए।

(v) हमारे देश में ''उपभोग करो एवं फेंको'' (Use and Throw) की अवधारणा सक्रिय है इसी कारण से बहुत अधिक मात्रा में अपशिष्ट पदार्थों का उत्पादन हो रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि निर्माता ऐसे पदार्थों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग ले जिनसे उनकी लागत कम एवं आय अधिक हो। कच्चा माल लम्बे समय तक उपलब्ध रहे। इसका पुनः निर्माण एवं पुनः उपयोग अधिक समय तक किया जा सके।

(vi) पर्यावरण प्रदूषण से आने वाले प्रदूषकों जैसे पीड़कनाशी कार्बनिक विलायकों, रेडियोधर्मी पदार्थों व हानिकारक धातुओं जैसे आर्सेनिक, पारा, सीसा आदि का जैवप्रतिविधान (Bioremediation) किया जाए। जिसमें किसी भी प्राणी, पादप या जीवाणुओं द्वारा इन अपशिष्टों की विषाक्तता को कम किया जाता है।

(vii) ऊर्जा के नवीनकरणीय स्त्रोतों जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा आदि के प्रयोग को बढ़ावा देकर ऊर्जा संरक्षण का बढ़ाया जाए।

क्लीनर प्रौद्योगिकी या हरित प्रौद्योगिकी आज के युग में ऐसी ही एक आवश्यकता है जिसके द्वारा हमारे पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है। दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना का पालन किया जाए जिसमें वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए आगामी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता को बचा कर रखा जा सके।

प्राकृतिक संसाधनों की सतत् अवधारणा (Sustainable Concept of Natural Resources)

मानव ने पिछली दो शताब्दियों में आर्थिक विकास में उन्नति करते हुए भौतिक जीवन शैली को अत्यधिक विकसित किया है। दुर्भाग्य से सुख–साधन वाली भौतिक जीवन शैली का विकास पर्यावरण ह्रास की कीमत पर हुआ है। इस कारण से सम्पूर्ण मानव जाति का भविष्य दांव पर लग गया है। प्रकृति का अतिदोहन पर्यावरण को विनाश की दिशा में ले जा रहा है। जिस उपभोगवादी संस्कृति के विकास हेतु प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर दोहन किया जा रहा है, उसके सामने हमारे प्राकृतिक संसाधन कैसे आने वाली पीढ़ियों के लिए बच सकेंगे?

परिस्थितियां भयावह होने से पर्यावरण विशेषज्ञों के साथ–साथ सामान्य व्यक्ति के मन में प्रश्न उठ रहे हैं कि क्या भौतिक व आर्थिक विकास प्राकृतिक साधनों–संसाधनों की कीमत पर ही हो सकता है?क्या इससे बेहतर कोई विकल्प है?उद्योग, कृषि एवं मानव आवास की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए वनोन्मूलन के अतिरिक्त कोई और रास्ता है?शहरों, इमारतों, शॉपिंग मॉल के निर्माण/विकास हेतु निरन्तर अधिगृहित की जा रही कृषि भूमि के बचाव के कोई अन्य उपाय हैं?सघन कृषि (कम भूमि में अधिक उपज) को वर्षपर्यंत करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है?जीवाश्म ईंधन के निरन्तर दोहन/उपभोग पर कोई प्रतिबंध नहीं चाहिये?दीर्घोपयोगी विकास, सतत् विकास, संपोषणीय विकास, संवहनीय विकास, वहनीय विकास या संधारणीय विकास की संकल्पना उपरोक्त प्रश्नों की व्याख्याता एवं समाधान का विकल्प है।

सतत् विकास की संकल्पना का उद्भव

ब्राजील की राजधानी रियो डी जनेरियो में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में आयोज्य पृथ्वी सम्मेलन में जारी ''रियो सम्मेलन'' घोषणा पत्र का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी में विश्व में पूर्ण रूप से सतत् विकास किया जा सके। अतः सतत् विकास या दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना की उत्पत्ति इसी सम्मेलन की देन है।

वहन क्षमता (Carrying Capacity)

विकास हेतु साधनों की आवश्यकता होती है। ये साधन प्रमुखतः प्रकृति प्रदत्त होते हैं व इन्हें प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है या अन्य शब्दों में प्रकृति से प्राप्त होने वाले पदार्थ, क्षेत्र तथा वस्तुएं जो मनुष्य के जीवित रहने, स्वस्थ रहने, प्रसन्न रहने व खुशहाली के लिए आवश्यक है उन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। प्राकृतिक संसाधन दो प्रकार के होते हैं –

(अ) नवीकरणीय संसाधन

(ब) अनवीकरणीय संसाधन

नवीकरणीय संसाधन (Renewable Resources)

इस प्रकार के संसाधनों की पुर्नस्थापना हो सकती है या पुनर्निमाण हो सकता है। इस श्रेणी में कृषि, वन, घास स्थल तथा जीव जन्तु इत्यादि आते हैं।

अनवीकरणीय संसाधन (Non-Renewable Resources)

इन संसाधनों की पुर्नस्थापना या पुनर्निमाण नहीं हो सकता है अर्थात् एक बार इनका उपयोग कर लेने पर ये समाप्त हो जाते हैं तथा मानव को इनके अभाव में ही काम चलाना पड़ेगा या इनका विकल्प खोजना होगा। उदाहरण – खनिज, धातुएं, जीवाश्म ईंधन

आदि।

हमें उपलब्ध संसाधनों का न्यायपूर्ण एवं जिम्मेदारी से उपयोग–उपभोग करना होगा। हमें प्रकृति के प्रति सम्मान का भाव रखना होगा। ऐसा न करने पर हमारी आने वाली पीढ़ियां प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप सौरमण्डल के इस खूबसूरत गृह का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। पर्यावरण की वर्तमान दयनीय स्थिति का मूल कारण विकास के नाम पर प्राकृतिक सम्पदा का अनियोजित अतिदोहन एवं जनसंख्या में वृद्धि।

पर्यावरण सम्पदा/संसाधनों के प्रयोग की एक सीमा होती है। प्रकृति की अधिकतम भार सहने की क्षमता को वहन क्षमता (Carrying capacity) कहा जाता है।

मानव जाति की सुख व समृद्धि के लिए आर्थिक विकास आवश्यक है। आर्थिक विकास व बढ़ती जनसंख्या के लिए प्राकृतिक संसाधनों के बढ़ते दोहन को रोका नहीं जा सकता है। इन परिस्थितियों में मुख्य प्रश्न यह है कि प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग विवेकपूर्ण विधियों से किस प्रकार किया जा सकता है?क्या हम प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण प्रयोग इस प्रकार से कर सकते हैं कि हम इनका संरक्षण कर पाएं। क्या कुछ वैकल्पिक एवं गैर परम्परागत संसाधनों–साधनों की खोज व विकास को बढ़ाया जा सकता है। क्या वैकल्पिक साधनों का पुनरुत्पादन किया जा सकता है?यह हम सभी का परम कर्तव्य है कि हमारी आने वाली पीढ़ियों को एक स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध करायें। इसीलिए हमारा उत्तरदायित्व बनता है कि हम प्राकृतिक सम्पदा को उसकी प्रयुक्त होने की क्षमता अर्थात् 'वहन क्षमता' (Carrying capacity) से अधिक अधिक मात्रा में शोषण न करें व उसके संतुलन को सुनिश्चित करें।

प्रकृति की एक क्षमता है कि निरन्तर उपभोग के दबाव को एक सीमा तक सहन कर सकती है। यह वहन क्षमता संसाधनों के अत्यधिक दोहन से सीमित हो जाती है। बदले में यह पर्यावरण प्रदूषण के रूप में दृष्टिगत होती है। अत्यधिक मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों का निष्कर्षण एवं उपभोग तथा प्रकृति के अवशोषित करने की क्षमता से अधिक मात्रा में प्रदूषकों का उत्पादन, पर्यावरण को भयंकर क्षति पहुंचा सकता है। क्षतिग्रस्त व प्रदूषित पर्यावरण को पूर्ववत स्वच्छ करना कठिन कार्य है। पर्यावरण अपनी स्वयं की शुद्ध स्थिति या हानिरहित उपयोगी अवस्था में आने वाली क्षमता को खो देगा। प्रकृति का एक निश्चित रूप है एवं हम उस चरम बिन्दु पर आ पहुंचे हैं जिससे पारिस्थितिक क्षति एक आपदा का रूप ले लेगी।

सतत् विकास (Sustainable Development)

आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का प्रकार ऐसा हो जिससे पर्यावरण में कोई भी ऐसी क्षति न हो जाये जिसको सुधारा नहीं जा सके। पर्यावरण व विकास के विश्व आयोग ने सतत् विकास की निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत की है –

"सतत् विकास एक ऐसा विकास है जिससे न केवल वर्तमान की आवश्यकताएं पूरी होती है वरन् आगामी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता भी बनी रहती है।"

दो महत्वपूर्ण तथ्य इस परिभाषा से स्पष्ट है पहला, प्राकृतिक संसाधन वर्तमान पीढ़ी के जीविकोपार्जन के साथ–साथ भविष्य की पीढ़ियों के जीविकोपार्जन के लिये भी बहुत महत्वपूर्ण है। दूसरा, वर्तमान समय में किसी भी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम को करते समय भविष्य में होने वाले परिणामों का ध्यान रखा जाना चाहिये। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या व प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन गैर–सतत् विकास के प्रमुख कारण है। विकासशील देशों में मानव जनसंख्या के लिए प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग भोजन, लकड़ी व आवास की आवश्यकताओं को पूरा करने में किया जाता है। जीवन के स्तर को उन्नत करने वाली सभी मानवीय गतिविधियां पर्यावरण को प्रभावित करती है। वनोन्मूलन, कृषि, शुद्ध जल की

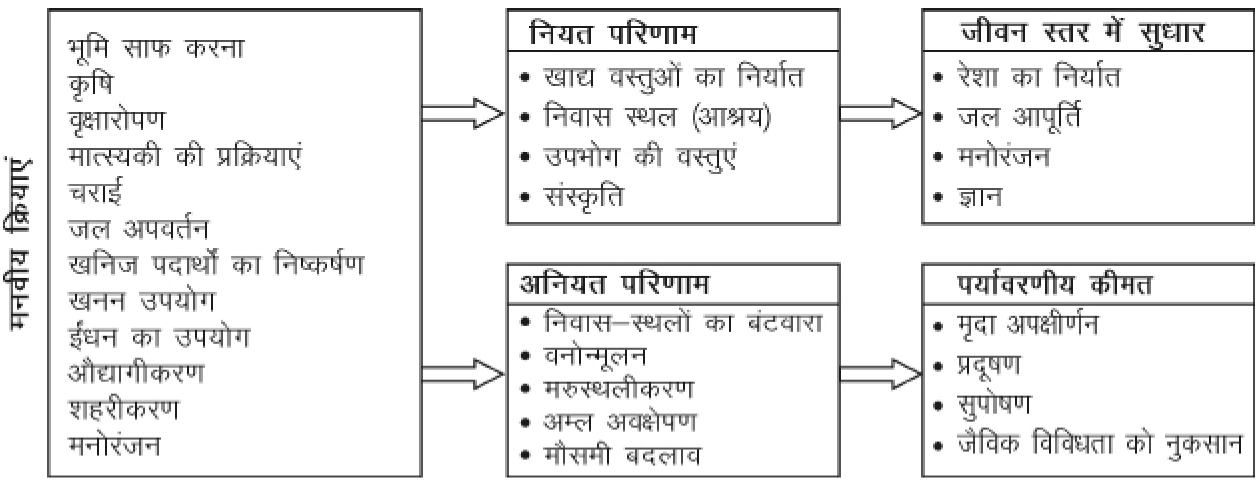

आपूर्ति, औद्योगीकरण इत्यादि इस प्रकार की प्रमुख गतिविधियां हैं। ये सभी सबसे पर्यावरणीय अवक्रमण के कारण हैं जिससे पारिस्थितिकी तंत्र में नकारात्मक परिवर्तन आ जाते है।

वर्तमान पीढ़ी भौतिकवादी एवं उपभोगवादी संस्कृति के चलते किसी भी पर्यावरणीय कीमत पर भौतिक वस्तुओं का धड़ल्ले से उपभोग करती है। हमें यह चिन्ता नहीं है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए हम एक सुन्दर व स्वच्छ पर्यावरण उनके लिये छोड़कर जाये।

सतत् विकास से अभिप्राय न किसी साधन का अभाव व न ही किसी संसाधन की अत्यधिक उपलब्धता/भौतिकवाद की दौड़ में शामिल न होना तथा प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करना एक अच्छी जीवन शैली है। अतः प्रत्येक मनुष्य की जीवनचर्या इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह प्रकृति का पोषक हो न कि उसका विध्वंसक।

जनसंख्या वृद्धि एवं संसाधनों की उपलब्धता

जनसंख्या विस्फोट एवं उपभोगवादी दृष्टिकोण से पृथ्वी के पर्यावरण पर संकट उत्पन्न हो गया है। औद्योगिकीकरण, कृषि, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, ऊर्जा का निर्यात तथा शहरीकरण इत्यादि मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय परिवर्तन हुए हैं।

मानव जनसंख्या में वृद्धि व विकसित देशों के नागरिकों की सामाजिक–आर्थिक सम्पन्नता जैव विविधता ह्रास व प्राकृतिक संसाधनों के घटने से सम्बन्धित है। बढ़ती हुई जनसंख्या पृथ्वी के पारितंत्र इस प्रकार से प्रभावित कर रही है कि प्राकृतिक सम्पदा की मात्रा का वैश्विक स्तर पर विनाश हो रहा है।

निम्नलिखित बिन्दुओं से जनसंख्या वृद्धि व प्राकृतिक संसाधनों के मध्य सम्बन्धों को समझा जा सकता है–

1. मानवीय क्रियाकलापों के कारण जिनमें कृषि, उद्योग, आवास व व्यापार है, इनसे पृथ्वी का आधा भूभाग परिवर्तित रूप धारण कर चुका है।
2. कृषि योग्य भूमि पर उपस्थित प्राकृतिक वनस्पति के 50 प्रतिशत भाग पर खेत, चारागाह व शहर विकसित हो गये हैं।
3. अलवणीय व भूमिगत जल स्रोत में कमी आ रही है।
4. जलीय पर्यावरण की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में गिरावट देखी जा रही है।
5. मछलियों के अत्यधिक दोहन के कारण 90 प्रतिशत से अधिक परभक्षी मछलियों की संख्या में कमी आयी है।
6. जनसंख्या विस्फोट का सबसे गंभीर परिणाम गरीबी में वृद्धि है। गरीबी पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए बड़ी चुनौती है।
7. भूमि एक अत्यन्त मूल्यवान सम्पदा है। भूमि का मनुष्य द्वारा कई प्रकार से दोहन एवं परिवर्तन हुआ है। भूमि का उपभोग आवास शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के लिए होता रहा है। मानव क्रियाओं के द्वारा वनोन्मूलन तेजी से हो रहा है।

प्राकृतिक सम्पदा (सार्वजनिक व निजी संसाधन)

संसाधन वह उपयोगी वस्तुएं हैं जिन्हें मानव जाति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग में लिया जाता है। सार्वजनिक सम्पदा या सम्पत्ति का प्रायः आवश्कयता से अधिक दोहन किया जाता रहा है। यह प्रवृत्ति पर्यावरण संकट का मुख्य कारण है। ये संसाधन बिना मूल्य के सर्वसुलभ है। वायु, जल, भूमि, वन, नदियां, पर्वत, समुद्र, पशु–पक्षी एवं वन्य जीवन इत्यादि सार्वजनिक सम्पदा के उदाहरण है। इसके विपरीत निजी सम्पत्ति जैसे उद्योग, भूमि, घर, कार्यालय, इमारतें या उद्यानों की अच्छी देख–रेख होती है। सार्वजनिक सम्पदा की ओर ऐसा ही ध्यान हो इस प्रकार का दृष्टिकोण होना आवश्यक है।

प्राकृतिक संसाधनों की मुख्यतः तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

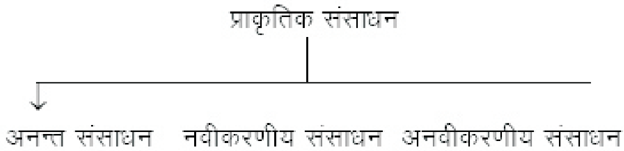

1. अनंत संसाधन – ये चिरस्थायी होते हैं। उदाहरण – सौर ऊर्जा, वायु, जल इत्यादि।
2. नवीकरणीय संसाधन – वे संसाधन जिनकी पुर्नस्थापना या पुनर्निर्माण हो सके। इस श्रेणी में कृषि, वन, घास स्थल, अलवणीय जल, वन्यजीव, स्वच्छ वायु, ऊपजाऊ भूमि इत्यादि आते हैं।
3. अनवीकरणीय संसाधन – इन संसाधनों की पुर्नस्थापना या पुनर्निर्माण नहीं हो सकता है। इनका एक बार उपयोग कर लेने पर ये समाप्त हो जाते हैं तथा मानव को इनका विकल्प खोजना पड़ेगा या फिर इनके बिना ही काम चलाना पड़ेगा। उदाहरण – जीवाश्म ईंधन, धातुएं इत्यादि।

नवीकरणीय संसाधनों को एक सीमा से अधिक उपभोग न किया जाये तो प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा कुछ घण्टों से कुछ वर्षों के अंतराल के पश्चात् पुनः प्रयोग योग्य हो जाते हैं।

पारिस्थितिकी पद–चिन्ह (Ecological Foot-Print)

धरती के जैविक उत्पादकता की वह मात्रा जो संसाधनों को उत्पादन करने योग्य होने के साथ ही संसाधनों के उपभोग द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों को अवशोषित करने की क्षमती रखती है।

मानव समाज का 'पर्यावरण फुट–प्रिंट' धरती की अधिकतम भार उठाने की क्षमता की सीमा से आगे है अर्थात् जिस गति से मानव जाति नवीकरणीय सम्पदा का उपभोग कर रही है, वह पृथ्वी की उनकी सृजन करने की गति से अधिक है। विकसित

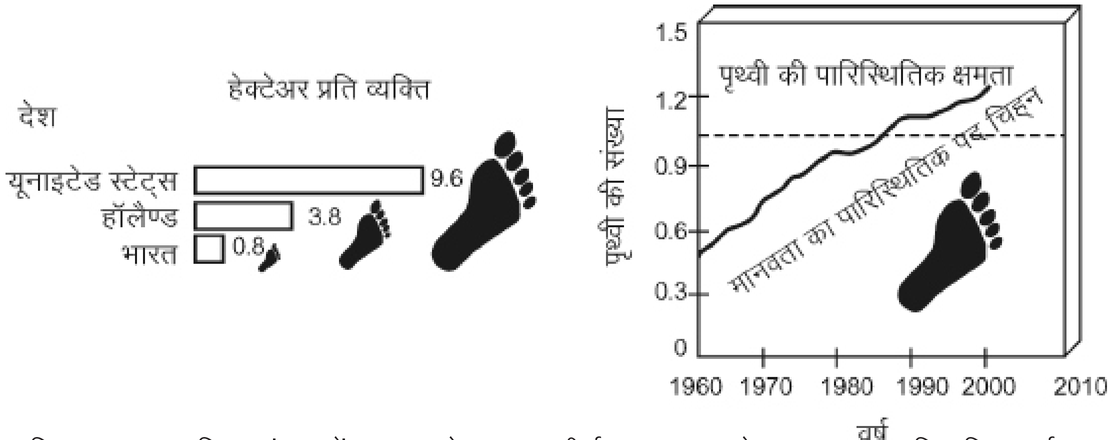

चित्र 2.2 : प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग व अपक्षीर्णन – भारत के तुलनात्मक, प्रतिव्यक्ति पर्यावरण फुटप्रिंट अमरीका, नेदरलैंड व बायें/दायें सन् 2001 तक मानव जाति का पर्यावरण संबंधी 'फुटप्रिंट' धरती की पर्यावरण के अधिकतम भार उठाने की क्षमता से कुल 21 प्रतिशत अधिक (ये आंकड़े वैश्विक प्रकृति कोष, संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण संबंधी कार्यक्रम तथा वैश्विक 'फुटप्रिंट' तंत्र द्वारा दिये गए आंकड़ों से लिए गए हैं।)

देशों में लोगों का पर्यावरणीय फुट–प्रिंट बहुत अधिक है क्योंकि वहाँ नवीकरणीय संसाधनों के उपभोग की मात्रा बहुत अधिक है। अमरीका के उपभोग का स्तर इतना अधिक है कि वर्तमान तकनीकों के स्तर पर शेष दुनिया के देशों को वहां पहुंचने के लिए लगभग चार अन्य पृथ्वियों जितने भूभाग के दोहन/शोषण की आवश्यकता पड़ेगी।

जब कभी संसाधन अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं तो वहां के नागरिक उनका गैर–जिम्मेदारी से उपभोग करते हैं। इन प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग बुद्धिमत्ता व न्यायपूर्ण तरीके से होना चाहिए। उपलब्ध सम्पदा के न्यायपूर्ण वितरण वर्तमान समय की बड़ी आवश्यकता है। पर्यावरण फुट–प्रिंट के आंकड़े यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि हमारे संसार में साधनों का वितरण न्यायसंगत नहीं है। परिणामस्वरूप संसार के अविकसित एवं विकासशील देशों में गरीबी एवं अभाव की स्थिति है।

प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग एवं संरक्षण

प्रारम्भिक काल में लोग मात्र भरण–पोषण के स्तर पर जीवन निर्वाह करते थे तब प्राकृतिक संसाधनों को दोहन स्थानीय स्तर तक सीमित होता था परन्तु वर्तमान समय में दोहन का प्रभाव स्थानीय स्तर से आगे बढ़कर बहुत व्यापक स्तर पर दृष्टिगत होता है।

जनसंख्या वृद्धि, साधनों के उपयोग के लिए तकनीकी ज्ञान का प्रयोग के साथ प्रति व्यक्ति संसाधनों के उपभोग की दर में वृद्धि के कारण संसाधनों में गुणात्मक व मात्रात्मक गिरावट दिखाई दे रही है। विकासशील देशों में उपभोक्ता वर्ग की संख्या में वृद्धि हो रही है। उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि हम प्राकृतिक संसाधनों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षित करें।

जैव विविधता, पारितंत्र की स्थिरता व संचालन तथा मानव जाति की सुख समृद्धि में अहम् होती है। मानवीय क्रियाओं व पर्यावरणीय अवक्रमण के कारण जैव विविधता में गिरावट हो रही है। जैव विविधता निम्नलिखित रूप में अनमोल प्राकृतिक सम्पदा है जैसे भोजन, औषधियां, सौन्दर्यात्मक एवं पोषक चक्रीकरण इत्यादि।

जैव विविधता का ह्रास हमारे सम्मुख चिंताजनक समस्याओं में से एक है। जैव विविधता के ह्रास से नये जीवों की विकास–प्रक्रिया रूक जायेगी अथवा परिवर्तित पर्यावरण की स्थिति के उपयुक्त नए प्राणियों या उनके अंगों की विकास प्रक्रिया अवरूद्ध हो जायेगी।

भावी पीढ़ियों के लिए हमें जैव विविधता को संरक्षित करने की आवश्यकता है जिससे वे पीढ़ियां जीवजगत से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से लाभान्वित हो सके।

मानवीय गतिविधियों द्वारा भूमि, वायु और जल के स्तर में गिरावट का सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी मानव सहित सभी जीवों का आवास स्थल है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि हम इसी पर्यावरण व्यवस्था के अंग है। यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम इसके संरक्षण की पूरी कोशिश करें।

पर्यावरणीय अवक्रमण का कारण संभवतया नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग की दर उनके पुनः स्थापन की दर से अधिक होती है। इन नवीकरणीय संसाधनों में भूमि, चारागाह, वन्यजीव, वन इत्यादि शामिल है। एक सीमा से अधिक इनका दोहन होने पर ये साधन या तो अनवीकरणीय साधनों की श्रेणी में पहुंच जाते हैं या विलुप्त हो जाते है। हमारा प्रयास इन संसाधनों के उचित, संतुलित व न्यायपूर्ण तरीके से उपयोग के लिए होना चाहिये। हमारा प्रयास एक सम्पोषित समाज के विकास के लिए होना चाहिये जो कि

पर्यावरण को हानि पहुंचाये बिना अर्थव्यवस्था व जनसंख्या के आकार को ठीक प्रकार से संचालित करता हो। यह भी प्रयास होना चाहिए कि धरती की पर्यावरण से सम्बन्धी प्रक्रियाओं को सोख लेने की क्षमता सतत् बनी रहे तथा प्राकृतिक सम्पदा को पुनः स्थापित कर सके। इतना ही नहीं हजारों वर्षों तक की दीर्घकालीन अवधि तक उसकी सभी जीवों को पोषण देने की क्षमता बनी रहे। सम्पूर्ण मानव समाज का यह प्रयास होना चाहिए कि वह न केवल वर्तमान वरन् आगामी पीढ़ियों के लिए भी प्राकृतिक सम्पदा को संरक्षित करके रखे।

धरती का ठीक तरह से संरक्षण व संचालन हम सभी की नैतिक व मूल्यात्मक जिम्मेदारी है। सच तो यह है कि धरती को हमारी नहीं, हमें धरती की आवश्यकता है। जब भी हम प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं तब हम पृथ्वी पर आने वाली पीढ़ियों के ऋणी हो जाते हैं। हमारी यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि हम इस ऋण को चुकाने का पूर्ण प्रयास करें।

बिना विनाश के विकास (Development Without Destruction)

हमारे पर्यावरण को हुई क्षति एवं विनाश आज स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। पर्वत हरे–भरे होने के स्थान पर वीरान व बंजर है। नदियों में स्वच्छ जल के स्थान पर प्रदूषित व मटमैला पानी है। वायुमण्डल प्रदूषित है। अपशिष्टों का प्रबन्धन ठीक से नहीं हो रहा है इसकी कीमत स्वास्थ्य में गिरावट के माध्यम से चुकानी पड़ रही है। अब वार्तालाप व चर्चा का समय समाप्त हो चुका है। अब तो केवल बची हुई धरोहर के संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाने का ही समय शेष है।

इस दिशा में लिये जाने वाले कदम निम्नलिखित प्रकार से है –

- ऊर्जा और प्राकृतिक सम्पदा को संरक्षण की विधियों को अपनाना।
- अपशिष्टों और विषैले पदार्थों को न्यूनतम करने के लिए नई तकनीकों की खोज व उपयोग।
- जैव निम्नकरणीय, नवीकरणीय एवं पुनः उपयोग में लाए जाने वाले पदार्थों का उपयोग बढ़ा कर।
- पर्यावरण चेतना व शिक्षा का विकास करके।

पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को तीनों स्तरों पर समाधान की आवश्यकता है। ये निम्नलिखित प्रकार से है –

- राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर अम्ल वर्षा, बाढ़, वायु प्रदूषण व जंगलों के काटने जैसी क्षेत्रीय समस्याओं का सामना करना।
- मौसमी परिवर्तन, ओजोन परत में विरलन तथा अन्य संबंधित वैश्विक स्तर की समस्याओं को सुलझाने में वैश्विक स्तर के संगठनों का इस्तेमाल करना।
- । स्थानीय समस्याएं जैसे कि पानी का प्रदूषण तथा अपशिष्ट प्रबंधन, इत्यादि को समुदाय के समक्ष ले जाना।

यदि समय रहते स्थानीय या क्षेत्रीय समस्या को नहीं सुलझाया जाता है तो वह एक बड़े पैमाने की वैश्विक समस्या बन जाती है। हमारा समाज स्थानीय पर्यावरणीय मुद्दों को तत्काल सुलझाने की कोशिश करे तो इनका बड़ी समस्या के रूप में परिवर्तन होने से रोका जा सकता है। इसलिए वैश्विक स्तर की सोच व स्थानीय स्तर पर ठोस कदम हमारी योजना का अंग होने चाहिये।

हम क्या कर सकते हैं?

पर्यावरणीय चेतना

- पर्यावरण–संबंधी मुद्दों के लिए सरकार के प्रतिनिधियों को अवगत करना।
- पर्यावरण की ओर मैत्रीपूर्ण जीवन–शैली अपनाना।
- जलाशयों की सफाई जैसे अभियानों में सहयोग।

अपशिष्ट प्रबन्धन

- रसोई व बाग–बगीचे से निकलने वाले अपशिष्ट को खाद में परिवर्तित करना।
- कीड़े–मकोड़ों को भगाने, पौधों में खाद के लिए प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग करना।
- उस सामान को खरीदना जिसमें या तो न्यूनतम पैंकिंग हो या पैकिंग का पुनः प्रयोग किया जा सके।
- कागज, धातु, शीशे व प्लास्टिक के पदार्थों का पुनः प्रयोग व पुनः चक्रण करना।
- बाजार से सामान लाने के लिए थैले का प्रयोग करें तथा प्लास्टिक थैलियों का प्रयोग नहीं करें।

जीवाश्म ईंधनों का संतुलित उपयोग

- बिजली के उपकरणों को आवश्यकता न होने पर बंद करना।
- बिजली के उपकरणों का न्यूनतम उपयोग।
- पुल व सार्वजनिक परिवहन पद्धति का अधिकतम प्रयोग।

जल संरक्षण

- वर्षा जल संग्रहण तकनीक का प्रयोग करना।
- नमामी गंगे या यमुना बचाओ जैसे कार्यक्रमों में सहयोग करना।
- प्रतिदिन गाड़ियों व वाहनों को न धोना।
- नदियों, जलाशयों को स्वच्छ रखना।
- लीक करते नलों व पाइपों की शीघ्र मरम्मत करवाना।
- दैनिक कार्यों में जल का न्यूनतम प्रयोग करना।

वन संरक्षण

- प्रयोग में लाये गये कागज का पुनः प्रयोग करना।
- कागजों का प्रयोग मितव्ययता से करना।
- वृक्षारोपण कार्यक्रमों में सहयोग करना।

अपशिष्ट एवं उनका प्रबन्धन

(Wastes and Their Management)

प्रकृति में विभिन्न स्त्रोतों से छोड़े जाने वाले वे पदार्थ जिनका वर्तमान में उपयोग नहीं हो सकता, अपशिष्ट कहलाते हैं। अपशिष्ट निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) औद्योगिक ठोस अपशिष्ट (Industrial solid wastes) – विभिन्न प्रकार के उद्योगों द्वारा अनेक ठोस अपशिष्ट पर्यावरण में छोड़ दिये जाते हैं। जैसे – स्टील लौह के कारखानों द्वारा धातु मल, चीनी उद्योग द्वारा प्रेस मड, खाद व उर्वरक उद्योग द्वारा लाइम मड, तापीय बिजलीघरों द्वारा कोयले की राख, तांबे व जिंक उद्योगों द्वारा रेड मड (लाल मिट्टी) एवं अनेक हॉस्पीटलों द्वारा फेंके जाने वाला जैव औषधीय अपशिष्ट आदि।

(ii) औद्योगिक द्रव अपशिष्ट (Industrial liquid wastes) – अनेक उद्योगों द्वारा निकलने वाला द्रव अपशिष्ट बिना किसी उपचार के नदी, नालों एवं झरनों आदि में छोड़ दिया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के प्रदूषक उपस्थित होते हैं। ये जलाशयों में उपस्थित जीव–जन्तु व पौधों पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

(iii) नगरपालिका अपशिष्ट (Municipal wastes) – होटलों, घरों, सब्जी बाजारों में छोड़ी गई बेकार सब्जी, प्लास्टिक पदार्थ, जैविक औषधीय अपशिष्ट, भवन निर्माण अपशिष्ट एवं वाहित मल प्रमुख प्रकार के अपशिष्ट है जो ठोस या द्रव के रूप में पर्यावरण में डाल दिये जाते हैं जो जल व भूमि प्रदूषण का कारण बनते हैं।

;iv) धातु अपशिष्ट (Metal wastes) – पर्यावरण के अन्दर अनेक उद्योगों द्वारा भारी धातुओं व अन्य पदार्थों को अपशिष्ट के रूप में छोड़ दिया जाता है जो पर्यावरण के जैविक घटकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। जैसे – लोहा व स्टील उद्योग, जिंक, तांबा एवं एल्युमिनियम रिफाइनरी, तेल रिफाइनरी, डिस्टलरी, फार्मस्युटिकल उद्योग, पेट्रोकेमिकल उद्योग, चर्मशोधन शालाएं, रंजक उद्योग, औषधि उद्योग आदि।

(v) गैसीय अपशिष्ट (Gaseous wastes) – वातावरण के कई प्रकार की गैसों का निष्कासन उद्योगों द्वारा किया जा रहा है, जो पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन रही है। जबकि अनेक गैसों का पुनः प्रयोग कर उनसे महत्वपूर्ण उत्पाद बनाये जा सकते हैं। जैसे सल्फरडाइऑक्साइड को मूल सल्फर या जिप्सम में बदला जा सकता है। कार्बनडाइऑक्साइड को कैल्शियम कार्बोनेट में परिवर्तित किया जा सकता है। तेल व प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC) प्रति वर्ष 750 करोड़ की गैस निकालता है जिसे मेथेनॉल एवं पेट्रोल में बदला जा सकता है।

;vi) रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive wastes) – तापीय बिजलीघरों व नाभिकीय संस्थानों से उत्पन्न होने वाले ये अपशिष्ट अत्यन्त खतरनाक होते हैं। इनका उपचार व निपटान बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिए। उदाहरण यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम आदि।

अपशिष्ट प्रबन्धन

(Wastes Management)

पर्यावरण में विभिन्न स्त्रोतों से उत्पन्न होने वाले अपशिष्टों का उचित प्रबन्धन अत्यन्त आवश्यक है।

''अपशिष्ट प्रबन्धन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत अपशिष्टों के उत्पादन के पश्चात उसके हानिकारक प्रभावों एवं निपटान के विषय में समझाया जाता है। तथा इसका मुख्य उद्देश्य अधिक हानिकारक अपशिष्टों को कम हानिकारक में बदल कर उसमें से पुनः प्रयोग के पदार्थों को अलग कर लिया जाता है। अपशिष्टों के प्रबन्धन में तीन आर (R) की युक्ति का प्रयोग किया जाता है–

I. मात्रा कम करना (Reduce)

II. पुनः प्रयोग (Reuse)

III. पुनः चक्रण (Recycle)

I. मात्रा कम करना (Reduce) – अपशिष्टों के प्रबन्धन की व्यवस्था से संघर्ष करने से पूर्व मुख्य लक्ष्य यह होना चाहिए कि उनका उत्पादन कैसे कम हो। इस हेतु यह आवश्यक है कि उपभोग की मात्रा में कमी लाई जाकर पदार्थों को नये ढांचे में ढाला जाए ताकि अपशिष्ट उत्पादन कम हो। उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग में कमी लाने के निम्न तरीके हो सकते हैं–

(i) ऐसे पदार्थों का निर्माण किया जाए जो लम्बी अवधि तक कायम रहे। उदाहरणार्थ वाहनों के टायर जो नष्ट होने से पूर्व लम्बी अवधि तक चले।

(ii) अनावश्यक पैकिंग सामग्री का प्रयोग कम करना। इस हेतु आने वाली सामग्री पुनः प्रयोग या पुनः चक्रण का उपयोग किया जाए।

(iii) उपभोग की प्रवृत्ति को कम करें। वस्तु की खरीदारी तभी करे जब उसकी आवश्यकता हो।

;iv) ऐसे पदार्थों का विकास किया जाए जिनका पुनर्चक्रण, पुनरावर्तन एवं मरम्मत आसान हो।

;v) ऐसे वाहनों का प्रयोग किया जाए जिसमें प्रति किमी. ऊर्जा का व्यय कम होता हो।

(vi) कम सामग्री व कम ऊर्जा व्यय द्वारा पदार्थों के निर्माण की प्रक्रियाओं को नई बनावट के ढांचे में ढालना।

(vii) उद्योगों में भी ऐसी प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाए जिससे अपशिष्टों का निष्कासन न्यूनतम मात्रा में हो। जैसे पेपर को विरंजित करने में हाइड्रोजन परऑक्साइड का प्रयोग क्लोरीन के स्थान पर किया जा सकता है। क्योंकि क्लोरीन एक अत्यन्त विषैली गैस है।

(viii) पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाली सामग्री व संसाधनों के प्रयोग में कमी लाना।

इस प्रकार अनावश्यक आवश्यकताओं में कमी कर, संसाधनों के युक्तिपूर्ण प्रयोग व पुनः प्रयोग वाली सामग्री का प्रयोग कर अपशिष्ट की मात्रा को कम किया जा सकता है।

II. पुनः प्रयोग (Reuse) – पुनः प्रयोग से अभिप्राय है कि किसी भी सामग्री या पदार्थ को बार–बार स्वच्छ या साफ कर उपयोग में लेना। पदार्थों की जीवन अवधि की लम्बाई में वृद्धि करना इसका उद्देश्य है। पदार्थों के पुनः प्रयोग से प्रदूषण में कमी आती है। अपशिष्टों की मात्रा व स्तर में गिरावट होती है तथा संसाधनों के प्रयोग में कमी आती है।

पुनः प्रयोग निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

(i) आधुनिक युग में खाने में पेपर की प्लेटों, कपों, प्लास्टिक के गिलासों आदि का प्रचलन तेजी से बढ़ा है जो एक अपशिष्ट के रूप में फेंक दिया जाता है। इसके स्थान पर धातु के बर्तन, गिलास व मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग पर बल दिया जाना चाहिए। टिशु पेपर के स्थान पर कपड़े के नेपकीन का प्रयोग होना चाहिए।

(ii) पुरानी गाड़ियों से निकलने वाले कुछ भागों की पुनः प्रयोग में लाना।

(iii) पुराने मकानों से निकलने वाली ईंटों, पत्थरों, लकड़ी की वस्तुओं व लोहे एवं स्टील की सामग्री आदि को नये भवनों के निर्माण हेतु काम में लेना।

(iv) एल्युमिनियम की पन्नी एवं प्लास्टिक के लिफाफों के स्थान पर सूत एवं कागज की बनी सामग्री का प्रयोग करें।

वस्तुओं के पुनः प्रयोग से अपशिष्ट की मात्रा में कमी के साथ–साथ स्थानीय रोजगार में भी वृद्धि होती है। पैसे का अपव्यय भी रूकता है लेकिन वस्तुओं के पुनः प्रयोग में ऐसी वस्तुओं से दूरी भी रखनी चाहिए जो स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह हो। जैसे – मोबाइल, कम्प्यूटर एवं टी.वी., बच्चों के खिलौने जैसे इलेक्ट्रॉनिक सामग्री में पारे व केडमियम जैसी धातुओं की मात्रा ज्यादा होती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसी धातु युक्त वस्तुओं को खुले में फेंकने एवं जलाने से भी जहरीला धुआं निकलता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है।

III. पुनर्चक्रण (Recycling) – इस प्रक्रिया में अपशिष्टों को एकत्रित कर उन्हें उपयोगी पदार्थों में बदला जाता है। ताकि उन्हें फिर से बेचा जा सके या पुनः प्रयोग में लाया जा सके।

(i) इस प्रक्रिया में अपशिष्ट पदार्थ जैसे समाचार पत्र, मैगजीन, गत्ते, ऑफिस, स्कूल, कॉलेज, घर आदि में प्रयोग लिया हुआ कागज, कुछ प्लास्टिक, स्टील, एल्युमिनियम, सीसा, लोहा आदि को नये उपयोगी पदार्थों में परिवर्तित किया किया जाता है।

(ii) रसोईघरों, सब्जी मार्केट आदि से प्राप्त अन्य जैविक अपशिष्टों को जीवाणुओं द्वारा सड़ाकर कम्पोस्ट खाद में परिवर्तित कर लिया जाता है। इस कम्पोस्ट खाद को भूमि में मिलाकर इसकी उर्वरता में वृद्धि की जा सकती है।

पुनर्चक्रण दो प्रकार से किया जा सकता है–

प्राथमिक पुनर्चक्रण (Primary recycling)	द्वितीयक पुनर्चक्रण (Secondary recycling)
इसमें अपशिष्टों को उसी प्रकार के नये पदार्थों में बदला जाता है। जैसे पुराने एल्युमिनियम को नये में बदलना, पुराने प्लास्टिक लिफाफों को कचरा एकत्रण करने वाले नये लिफाफों एवं पुराने अखबारों को नयी अखबार सामग्री या कागज की थैलियां बनाकर किराणा सामग्री भरने हेतु।	इसमें अपशिष्टों को काट–छांट कर अन्य प्रकार के पदार्थों में बदला जाता है। जैसे कागज की लुग्दी द्वारा गत्ते या बोर्ड का निर्माण, रद्दी अखबार को सेलुलोज इन्सुलेशन में, पुराने टायरों को काट–छांट कर सड़क की ऊपरी तह की निर्माण सामग्री में बदलना

जल उपचार (Water Treatment)

भूमि जल या प्रदूषित जल से अनावश्यक रासायनिक, भौतिक व जैविक प्रदूषकों को हटाना जल उपचार कहलाता है। जल उपचार द्वारा जल को विशेष कार्य जैसे पेयजल, सिंचाई या उद्योग हेतु उपयुक्त बनाया जाता है। इस हेतु निम्न प्रक्रिया का इस्तेमाल किया जाता है। जल उपचार में प्री क्लोरीनीकरण, स्कंदन व ऊर्णन (Coagulation and flocculation), तलछटीकरण (Sedimentation), फिल्ट्रेशन, विसंक्रमण (Disinfection), पश्चक्लोरीनीकरण एवं फ्लोरीनीकरण जैसी प्रक्रियाएं शामिल हैं

प्रीक्लोरीनेशन द्वारा जल में आर्द्र अम्लों के कारण आने वाली बदबू, स्वाद व गंध को हटाया जाता है। स्कंदन व ऊर्णन रासायनिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा जल में उपस्थित निलम्बित ठोस पदार्थों को हटाया जाता है। ऊर्णित ठोसों को तलछटी टेंकों द्वारा हटा लिया जाता है।

बारीक कणीय पदार्थ जो स्कंदन व ऊर्णन द्वारा रह जाते हैं, उन्हें रेत फिल्टर बेड द्वारा दूर किया जाता है। आधुनिक हरित प्रौद्योगिकी में रेत फिल्टर के स्थान पर झिल्ली छनित्र (Membrane filters) का प्रयोग भी किया जाता है।

इसके पश्चात् जल के विसंक्रमण की प्रक्रिया में क्लोरीनीकरण द्वारा जल से परजीवी, जीवाणु, विषाणु, कवक व शैवाल आदि को हटाया जाता है लेकिन क्लोरीन के द्वारा जल में कैंसरकारक ट्राइहेलोमिथेन के निर्माण करने से इसके स्थान पर ओजोन का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

हालांकि ओजोनीकरण महंगी विधि है लेकिन ओजोन एक अत्यन्त अस्थायी गैस है जो तुरन्त O_2 में बदल जाती है तथा इसका कोई भी अवशेष शेष नहीं रहता। जल के अन्तिम उपचार के रूप में इसमें फ्लोरीनीकरण की प्रक्रिया काम में लाई जाती है जिससे जल में उपस्थित फ्लोराइड को हटा लिया जाता है ताकि दांतों को नुकसान पहुंचे। स्वच्छ जल को टेंक में एकत्रित कर लिया जाता है। वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनाइजेशन के अनुमान के अनुसार 94% डायरिया केस स्वच्छ जल के प्रयोग से कम किये जा सकते हैं। सामान्य हरित प्रौद्योगिकी तकनीकों के घर में प्रयोग से जैसे क्लोरीनीकरण, फिल्टर्स का प्रयोग एवं सौर विसंक्रमण तथा सुरक्षित टेंक में जल के संग्रहण द्वारा जलजनित रोगों से जीवन को बचाया जा सकता है।

अपशिष्ट जल उपचार (Waste Water Treatment)

औद्योगिक व घरेलू निस्त्राव (सीवेज) से अनावश्यक हानिकारक संदूषकों का हटाना अपशिष्ट जल उपचार कहलाता है।

इस प्रक्रिया में हरित प्रौद्योगिकी के कई चरण तकनीक का प्रयोग कर सीवेज से भौतिक, रासायनिक व जैविक संदूषकों को हटाकर पर्यावरणीय सुरक्षित उपचारित निस्त्राव का निर्माण किया जाता है। अपशिष्ट जल उपचार का प्रमुख उद्देश्य जल प्रदूषण को रोकना है। इस हेतु अपशिष्ट जल को इस प्रकार उपचारित किया जाता है कि यह जन स्वास्थ्य एवं पर्यावरण गुणवत्ता के अनुरूप हो जाए।

अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों का निर्माण निम्न बातों का ध्यान में रखकर किया जाता है–

(i) जैव अपघटनशील कार्बनिक पदार्थों को कम करना।

(ii) निलम्बित ठोस पदार्थों का निस्तारण।

(iii) सीवेज में उपस्थित रोगकारी सूक्ष्मजीवों को नष्ट करना।

अपशिष्ट जल उपचार के प्रमुख चार चरण हैं–

(i) प्रारम्भिक उपचार (Pre treatment) – इस प्रक्रिया में सीवेज में तैरने वाले एवं निलम्बित ठोस पदार्थों को हटाया जाता है। यह प्रक्रिया छानकर तथा तलछटीकरण द्वारा पूरी की जाती है।

(ii) प्राथमिक उपचार (Primary treatment) – प्रारम्भिक उपचार से प्राप्त जल में काफी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ उपस्थित रहते है तथा इसकी जैविक ऑक्सीजन मांग भी अत्यधिक होती है। इस हेतु जल को सादन टेंक से गुजारते हैं। जिससे उसमें उपस्थित निलम्बित अशुद्धियां टेंक के तल में जमा हो जाती है। इससे प्राप्त जल की BOD में कमी आ जाती है।

(iii) द्वितीयक उपचार (Secondary treatment) – प्राथमिक उपचार से प्राप्त जल का द्वितीयक उपचार किया जाता है जिससे जैविक प्रक्रिया द्वारा जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ एवं शेष निलम्बित पदार्थों का पाचन किया जाता है।

(iv) तृतीयक उपचार (Tertiary treatment) – द्वितीयक उपचार के पश्चात् बचे हुए जल को तृतीयक उपचार की प्रक्रिया में डाला जाता है, जिसमें जैविक उपचार के पश्चात् बचे हुए घुलित निलम्बित पदार्थों एवं फास्फेट आदि को हटाया जाता है।

उपचार के दौरान अवसादित ठोस पदार्थों को आपंक कहते हैं जिसे अवायवीय उपचार द्वारा ठीक करके निस्तारित कर दिया जाता है।

ऊर्जा संरक्षण (Energy Conservation)

किसी भी कार्य को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। किसी कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता को ऊर्जा कहा जाता है। ऊर्जा को जीवन संचार (Life conductivity) की संज्ञा भी दी जाती है। ऊर्जा जीवन के अस्तित्व को बनाये रखती है तथा उसे गतिमान रखने हेतु भी आवश्यक होती है। जीवन के अतिरिक्त अन्य सभी कार्यों के सम्पादन हेतु भी ऊर्जा आवश्यक होती है। इस प्रकार ऊर्जा को निम्नानुसार भी परिभाषित किया जा सकता है –

"किसी भी यंत्र/मशीन को चलाने में उपयोग में लाई गयी शक्ति को ऊर्जा कहा जाता है।"

ऊष्मागतिकी के प्रथम नियम के अनुसार ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही इसे नष्ट किया जा सकता है। ऊर्जा केवल एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरित हो सकती है।

मनुष्य के उद्भव के समय से ही वह जीवित रहने के लिए सूर्य की ऊर्जा पर निर्भर रहा। अग्नि के आविष्कार के पश्चात् ऊर्जा के उपयोग में वृद्धि हुई। जीवन को आरामदायक बनाने के लिए ऊर्जा के नये—नये स्रोतों का आविष्कार होता रहा। ऊर्जा इन स्रोतों का दोहन अधिक से अधिक उपभोग के लिए किया जाने लगा। वर्तमान में अनेक उपकरण दैनिक जीवन हेतु आवश्यक हो गये। ऊर्जा के उपभोग व उत्पादन को किसी भी राष्ट्र, समाज अथवा व्यक्ति की आर्थिक सम्पन्नता से जोड़ दिया गया। वर्तमान में राष्ट्र की समृद्धि प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत से मापी जाती है।

विज्ञान व तकनीक आविष्कारों से मनुष्य का जीवन बेहतर व आरामदायक हुआ है। बीसवीं सदी में विश्व जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। सम्पन्न देश ऊर्जा खपत में अग्रणी रहे। ऊर्जा खपत इस प्रकार से विकास का महत्वपूर्ण मापदण्ड बन गया। वाहनों की बढ़ती संख्या एवं उनका उपयोग, रेफ्रिजरेशन के उपकरण, टी.वी. कम्प्यूटर जैसे सुविधा के साधनों इत्यादि के उपभोग में बेतहाशा वृद्धि हुई है। इन्हीं सबके बढ़ते उपयोग से ऊर्जा खपत में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस प्रकार ऊर्जा की अधिक खपत किसी देश की औद्योगिक प्रगति, आर्थिक व सामाजिक उत्थान, जीवन की गुणवत्ता व कल्याण का मापदण्ड है। विश्व के लगभग सभी देशों में ऊर्जा खपत की दर में लगातार वृद्धि हो रही है। खनिज, कोयला, खनिज तेल व प्राकृतिक गैस जैसे ऊर्जा के स्रोतों का दोहन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। जिस तीव्र गति से इन स्रोतों का दोहन किया जा रहा है ऐसी स्थिति में ये स्रोत आने वाले कुछ वर्षों में समाप्त हो जायेंगे। इस स्थिति में विश्व में ऊर्जा का गम्भीर संकट उत्पन्न होगा। ऊर्जा के इन परम्परागत स्रोतों के निरन्तर होती वृद्धि से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी निरन्तर बढ़ रही है। ऊर्जा संकट की चुनौती से निपटने के लिए परम्परागत ऊर्जा के स्रोतों का संरक्षण भी अनिवार्य है। परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के संरक्षण के लिए एक ओर ऊर्जा की खपत को कम करनी होगी वहीं दूसरी ओर ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग अधिक से अधिक हो ऐसे प्रयास भी करने होंगे। नव्यकरण (Renewable) योग्य ऊर्जा के कई स्रोत हमारे सामने है।

इस प्रकार के अन्य स्रोतों का विकास निरन्तर हो रहा है व उनके उपयोग की तकनीकें भी विकसित हो रही है। ऊर्जा संकट से विकास की गति शिथिल न हो अर्थात् सतत् विकास (Sustainable development) एवं नव्यकरण ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के मध्य सामंजस्य स्थापित करना वर्तमान समय की आवश्यकता है। ऊर्जा के अत्यधिक उपभोग से पर्यावरण पर होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को न्यून करने हेतु ऊर्जा का उपभोग कुशलतापूर्वक करना होगा। संशोधित ऊर्जा क्षमता व ऊर्जा का कुशल प्रबंधन पर्यावरण पर होने वाली हानि को कम करने व वित्तीय बचत में सहायक होगा।

जीवाश्म ईंधन सार्वभौमिक ऊर्जा का मुख्य स्रोत है, जो सीमित व अनवीकरणीय है। यह आवश्यक है कि हम सभी ऊर्जा के दुरूपयोग को रोकें व ऊर्जा संरक्षण के लिए प्रयास करें। ऊर्जा का संरक्षण प्रत्येक मनुष्य के दैनिक जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिये। ऊर्जा संरक्षण के लिए व्यक्तिगत, सामुदायिक व सरकारी स्तर पर गम्भीर प्रयास होने आवश्यक है।

विभिन्न स्तरों पर ऊर्जा का संरक्षण

व्यक्तिगत स्तर या घर के स्तर पर ऊर्जा संरक्षण

ऊर्जा—हितैषी घरों में सामान्य घर की तुलना में 40 प्रतिशत ऊर्जा की खपत को कम किया जा सकता है। घरों में एक ऊर्जा संरक्षण योजना को विकसित करना चाहिये।

पर्यावरण अनुकूल होने के साथ ही यह एक आर्थिक रूप से सफल प्रक्रिया भी है।

घरों के स्तर पर ऊर्जा संरक्षण योजना बनाने के प्रमुख क्रम निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. उन समस्या क्षेत्रों को पहचानना जहां ऊर्जा का कुशलतापूर्वक उपयोग नहीं किया जा रहा या ऊर्जा नष्ट हो रही है।
2. समस्या क्षेत्रों को प्राथमिकता अनुसार रखना।
3. घर के ऊर्जा सुधार बजट के आधार पर प्राथमिकता अनुसार योजनाबद्ध तरीके से समस्याओं का निराकरण करना।

बड़े घरेलू उपकरणों में ऊर्जा का व्यय अत्यधिक होता है। ऐसे घरेलू उपकरणों की कार्यक्षमता को विकसित करके विद्युत ऊर्जा के सकल घरेलू उपभोग को उल्लेखनीय रूप से बहुत कम किया जा सकता है। उच्च गुणवत्ता वाले विद्युत उपकरणों (पांच सितारा दर वाले) का प्रयोग न केवल उनकी क्षमता को बढ़ाता है बल्कि ऊर्जा की खपत को काफी कम कर देता है।

सामुदायिक स्तर पर ऊर्जा संरक्षण

ऊर्जा संरक्षण वर्तमान समय का बहुत ही संवेदनशील विषय है। सामुदायिक स्तर पर ऊर्जा संरक्षण हेतु निम्नलिखित उपाय अवश्य किये जाने चाहिए –

1. सम्मेलन कक्ष, सभागार इत्यादि प्रयोग में न आ रहे हो तो रोशनी बंद कर देनी चाहिये।
2. अत्यधिक मांग के समय ऊर्जा का उपभोग न्यून स्तर पर होना चाहिये।
3. कम्प्यूटर उपकरण, मॉनीटर व अन्य व्यावसायिक उपकरणों

को ऊर्जा संरक्षण प्रणाली पर रखना चाहिये। लम्बे खाली समय पर जैसे भोजन के समय इन्हें बंद किया जाना चाहिये।

4. गोदामों हेतु प्राकृतिक रोशनी का प्रबन्ध होना चाहिये।
5. वातानुकूलनयुक्त कार्यालयों में वातानुकूलन संयंत्रों के प्रयोग के समय दरवाजे व खिड़कियां बंद होनी चाहिये।
6. वैकल्पिक संसाधनों (नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों) यथा सौर ऊर्जा, बायोगैस, वायु ऊर्जा इत्यादि के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
7. नियमित अंतराल पर भवनों, होटलों व कारखानों में ऊर्जा की खपत की जांच की जानी चाहिये।
8. सामुदायिक स्तर पर नवीकरणीय स्रोतों से सम्बन्धित परियोजनाओं का प्रदर्शन किया जाना चाहिये। जैसे सौर पम्प द्वारा जल शुद्धिकरण व लॉन की सिंचाई, खेल के मैदान व सामुदायिक केन्द्रों के बगीचों की सिंचाई की जानी चाहिये। वायु ऊर्जा से सम्बन्धित परियोजनाओं को सम्पूर्ण समुदाय के समक्ष प्रदर्शित किया जाना चाहिये। बायोगैस के उपयोग को समुदाय के मध्य कार्यक्रमों के द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिये।
9. सस्ते व प्रदूषण रहित वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विकास हेतु शोध व विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता दिया जाना आवश्यक है।
10. पर्यावरण हितैषी सार्वजनिक यातायात प्रणाली/व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। समान उद्देश्य हेतु न्यूनतम वाहनों का उपयोग करना ऊर्जा संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण पहल हो सकती है।
11. टाइमर के प्रयोग द्वारा खुले क्षेत्रों की रोशनी सूर्योदय के पश्चात् बंद कर देनी चाहिये व सूर्यास्त के पश्चात् ही पुनः जलानी चाहिये। कमरों में विद्युत प्रकाश बिन्दुओं की संख्या को सीमित किया जाना चाहिये।
12. लिफ्ट इत्यादि उपकरणों का उपयोग विवेकपूर्ण तरीकों से किया जाना आवश्यक है।
13. जल निकायों (तालाब, नदियां व तटीय क्षेत्र) का संरक्षण व अनुकूलतम उपयोग सामुदायिक स्तर पर ऊर्जा संरक्षण हेतु सहायक हो सकता है।
14. खाना पकाने हेतु उन्नत स्रोतों का प्रयोग किया जाना चाहिये। अकुशल व ऊर्जा के प्रदूषित स्रोतों को आवश्यक रूप से हटा देना चाहिये।

उद्योगों व अन्य स्थानों पर ऊर्जा संरक्षण

ऊर्जा संरक्षण ऊर्जा की कम खपत से या ऊर्जा के कुशल प्रबंधन द्वारा किया जा सकता है। यह ऊर्जा के उपभोग की मात्रा में कमी करने का अभ्यास है। उद्योगों, व्यावसायिक केन्द्रों, निर्माण क्रियाओं व यातायात क्षेत्रों में ऊर्जा का संरक्षण निम्नलिखित विधियों से समुचित प्रकार से किया जा सकता है–

1. ऊर्जा उपभोग के नियमित निरीक्षण व जांच की प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिये।
2. ऊर्जा कुशल उपकरणों एवं तकनीकों व प्रक्रियाओं के उपयोग से ऊर्जा संरक्षण को कुशलतापूर्वक किया जा सकता है। पुरानी व अधिक ऊर्जा खपत करने वाली प्रक्रियाओं को नयी ऊर्जा कुशल प्रक्रियाओं द्वारा पूर्णतया प्रतिस्थापित करना संशोधन प्रक्रिया है यह ऊर्जा संरक्षण का महत्वपूर्ण प्रक्रम है।
3. ईंधन टैंकों का तापीय ऊष्मारोधन (Thermal insulation), चीनी मिट्टी की भट्टियों के सीलिंग रेशों, पारम्परिक भाप ऊष्मण को तरल ईंधन लाइनों की अनुरेखण विद्युत ट्रेसिंग द्वारा प्रतिस्थापित करना।
4. विद्युत की खपत को कम करना ऊर्जा संरक्षण की एक महत्वपूर्ण विधि है। रोशनी के लिए एल.ई.डी. का प्रयोग ऊर्जा की खपत को बहुत कम कर देता है।
5. सार्वजनिक वाहनों के प्रयोग, कार की गति 50 से 60 किमी/घण्टा, चोक का अनावश्यक उपयोग न करना, अनावश्यक संचालन व रूकने से बचना, क्लच पैडल को गियर बदलते ही पूरी तरह से छोड़ देना, आवश्यक होने पर ही ब्रेक का प्रयोग, सम्भव हो तो कार्यस्थल आवास के आसपास होना इत्यादि विधियों से ऊर्जा के उपभोग को बहुत कम किया जा सकता है।
6. सम्पूर्ण बंजर भूमि पर शीघ्र उगने वाले पेड़ों को लगाया जाना चाहिये जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की समस्या का समाधान हो सके।
7. ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर गैस संयंत्रों के उपयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है।
8. वाहनों में पेट्रोल व डीजल इंजन को सी.एन.जी. इंजन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिये।
9. ऊर्जा का व्यय उतना ही जितना हमें उपलब्ध हो सके।

एक अनुमान के अनुसार विश्व की एक चौथाई जनसंख्या, तीन चौथाई से अधिक संसाधनों का उपभोग करती है। औसतन एक अमरीकी नागरिक एशिया व अफ्रीका के नागरिकों के मुकाबले सात गुणा अधिक संसाधन व्यय करता है। प्रकृति जितने संसाधन उपलब्ध करवा सकती है, इस समय उपभोग उससे बहुत अधिक है। 'रोबर्ट के प्लान' की चेतावनी के आलोक में यह कहना उपयुक्त होगा कि श्रम और साधनों के दुरुपयोग से बचने के लिए नागरिकों में इस प्रकार की भावनाएं जागृत करनी होगी, जिससे वे ऊर्जा का सही उपभोग करना सीखे। ऊर्जा का उचित प्रबंधन व नियोजन राष्ट्र की प्रगति का सूचक है।

ऊर्जा के स्रोत (Sources of Energy)

ऊर्जा के स्रोतों को पुनः आपूर्ति के अनुसार दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. अनवीकरणीय – ये सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा इनकी निर्माण प्रक्रिया की अवधि लम्बी होती है। एक बार दोहन के उपरांत उनकी पूर्ति संभव नहीं होती है। इन स्रोतों का उपयोग मनुष्य सदियों से करता आ रहा है। इसके अन्तर्गत कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, यूरेनियम व थोरियम इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।
2. नवीकरणीय – जिनको पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इस श्रेणी में सौर ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, जल–विद्युत ऊर्जा, समुद्री ऊर्जा, बायोमास, पवन ऊर्जा इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। ये स्रोत सस्ते व पर्यावरण अनुकूल होते हैं।

तेजी से समाप्त होते जीवाश्म ईंधनों तथा ऊर्जा की बढ़ती मांग से वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों जिन्हें नवीकरणीय या अक्षय ऊर्जा स्रोत भी कहा जाता है कि आवश्यकता को रेखांकित किया है। इनमें से सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा के सम्बन्ध में यहां पर विस्तार से अध्ययन करेंगे।

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सूर्य से प्राप्त सौर ऊर्जा शक्ति अपार व अक्षय है। यह ऊर्जा सतत्, अत्यधिक उपयोगी एवं अमूल्य है। सौर ऊर्जा की औसत मात्रा जो पृथ्वी पर प्राप्त होती है वह लगभग 1,330 वाट्स मीटर^2 है। भारतवर्ष में वर्षभर में अधिकांश समय पर व्यापक मात्रा में सौर ऊर्जा की उपलब्धता रहती है। सूर्य पर, पृथ्वी के जन्म से अब तक प्रतिक्षण लगभग 40 लाख टन हाइड्रोजन से हीलियम में परिवर्तित होकर विशाल ऊर्जा उत्पन्न हो रही है। इस सतत् व असीमित ऊर्जा का बहुत ही सूक्ष्म अंश विकिरण के माध्यम से विद्युत/ताप ऊर्जा में रूपान्तरित किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा के उपयोग को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. अप्रत्यक्ष उपयोग – इसके अन्तर्गत सूर्य द्वारा चलने वाली कुछ प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा अर्जित सौर ऊर्जा का उपयोग होता है जैसे – बायोमास इत्यादि।
2. प्रत्यक्ष उपयोग – इसमें सौर ऊर्जा को उपकरणों के माध्यम से विद्युत उत्पन्न करने या पदार्थों को गर्म–ठण्डा करने में किया जाता है। सौर ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों पर प्रारम्भिक व्यय भी अधिक होता है जिससे इनका प्रचलन कम है परन्तु वर्तमान समय में सरकारी प्रयासों से सौर ऊर्जा उपकरणों के उपयोग में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है।

यहां पर सौर ऊर्जा के प्रत्यक्ष उपयोग से सम्बन्धित बिन्दुओं पर विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। प्रत्यक्ष उपयोग विभिन्न प्रकार के उपकरणों द्वारा किया जा सकता है। ये उपकरण तीन प्रमुख प्रकार के होते हैं –

(i) निष्क्रिय

(ii) सक्रिय

(iii) सौर फोटोवोल्टिक

(i) सौर ऊर्जा के निष्क्रिय उपयोग (Passive uses of solar energy) – नमक बनाने के लिए समुद्री जल का वाष्पीकरण तथा खाद्य पदार्थों को सुखाने हेतु धूप में रखना इसी प्रकार के उदाहरण है। घरों व इमारतों को प्राकृतिक रोशनी से प्रकाशित करना भी सौर ऊर्जा का निष्क्रिय उपयोग है। इस प्रकार सौर ऊर्जा के निष्क्रिय उपयोग में कोई जटिल यांत्रिक साधन प्रयोग में नहीं लिये जाते हैं। निष्क्रिय सौर ऊर्जा का उपयोग भोजन पकाने व इमारतों के भीतर प्रकाश व्यवस्था बनाने के लिए भी किया जाता है।

सौर कुकर (Solar Cooker) – लैंस व दर्पण युक्त बहुत ही सरल उपकरण होता है। कांच ऊष्मा का कुचालक होता है परन्तु सौर कुकर में कांच से बना गहरा चेम्बर होता है जो कि भीतर से काला रंग युक्त होता है व चारों ओर से ऊष्मारोधी बनाया गया हुआ होता है। कुछ समय के लिए इसे यदि खुली धूप में रखा जाता है तो इसका तापमान 100°C तक हो जाता है। सौर कुकर में भोजन पकाने में 5–6 घण्टे का समय लगता है। इसमें पका हुआ भोजन पोषक तत्वों से भरपूर होता है परन्तु पकाने में लम्बा समय लगता है।

डे–लाईटिंग तकनीकी (Day lighting technology) – सौर ऊर्जा के निष्क्रिय उपयोग के अन्तर्गत इमारतों के अन्दर प्रकाश व्यवस्था करने की डे–लाईट तकनीकी सम्मिलित है। हाइब्रिड सोलर लाईटिंग (Hybrid solar lighting) में सूर्य के प्रकाश को संग्रहित करके आप्टिकल फाइबर द्वारा इमारतों के अंदर हाइब्रिड लाईट फिक्सरों में विद्युत–प्रकाश के साथ जोड़ा जाता है। इमारतों में सेंसरों द्वारा उपलब्ध प्रकाश के आधार पर विद्युत प्रकाश को समंजित कर प्रकाश के स्तर को स्थिर रखते है।

(ii) सौर ऊर्जा का सक्रिय उपयोग (Active uses of solar energy) – सक्रिय सौर तापन तथा शीतलन व्यवस्था मुख्य रूप से छतों पर लगे हुए सौर संग्राहकों पर निर्भर होती है। घरेलू उपयोग के लिए गरम पानी उपलब्ध कराने हेतु विभिन्न प्रकार के सौर गीजर संयंत्र अनुसार काम में लिए जाते हैं। इस प्रकार के

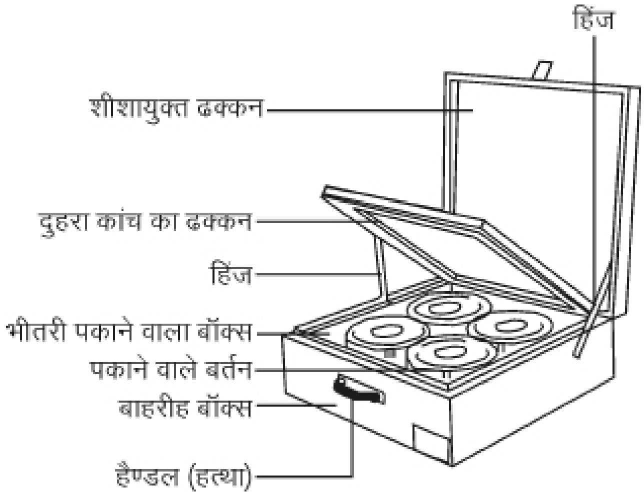

चित्र 2.3 : सौर कुकर

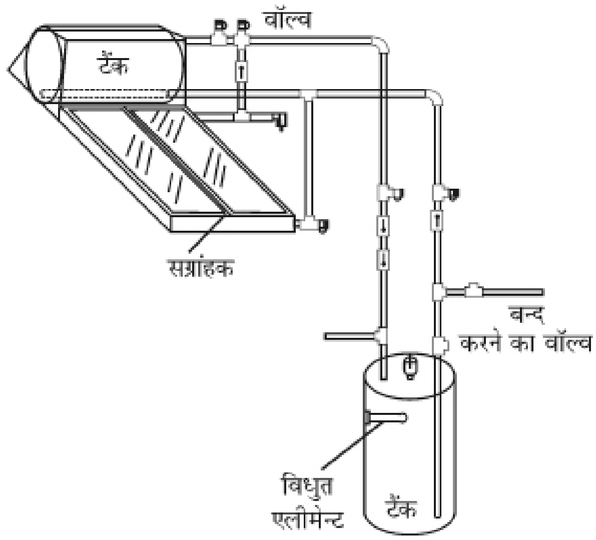

चित्र 2.4 : सौर ऊर्जा द्वारा जल गरम करने की विधि

उपकरणों का व्यापक उपयोग भारत, जापान, इजराइल, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अमेरिका इत्यादि देशों में हो रहा है।

शीतलन के लिए सौर ऊर्जा – इस प्रणाली में सौर ऊर्जा द्वारा एक छोटे ताप इंजन को चलाया जाता है। यह इंजन एक पिस्टन को चलाता है जो एक प्रकार के द्रव में विशेष वाष्प को संकुचित करके भेजता है। यह द्रव पुनः वाष्पीकृत होकर बाहरी हवा से गर्मी को खींचता है।

(iii) फोटोवोल्टाइक तकनीकी (Photovoltaic technology) – सौर ऊर्जा को प्रत्यक्ष तौर पर विद्युत ऊर्जा में परोक्ष विद्युत धारा (Direct curret) में फोटोवोल्टाइक सेल जिन्हें आम भाषा में सोलर सेल कहा जाता है द्वारा रूपान्तरित किया जाता है। फोटोवोल्टिक प्रभाव का सर्वप्रथम प्रेक्षण फ्रांस के एलेक्जेंडर एडमांड बैकक्यूरेल द्वारा 1839 में किया गया। फोटोवोल्टाइक सेल में सिलिकॉन मुख्य अवयव होता है। जब सूर्य की प्रकाश किरणें सिलिकॉन परमाणु पर पड़ती है तो उनमें से इलेक्ट्रॉन बाहर निकलते है।

सौर सेल पारदर्शी सेमीकंडक्टर की पतली झिल्लीनुमा रचना होती है। हाल के वर्षों में एमोरफस सिलिकॉन कलेक्टर्स (Amorphous silicon collectors) का आविष्कार महत्वपूर्ण है। इनका उपयोग सौर केलकुलेटर्स, घड़ियों, खिलौनों, प्रकाश संवेदी स्विचों, रेडियो, टेलीविजन इत्यादि में किया जाता है। भारतवर्ष सौर सेलों का बड़ा बाजार है।

फोटोवोल्टाइक सेलों का प्रयोग निम्नलिखित कार्यों के लिए होता है –

- घरेलू प्रकाश व्यवस्था
- सड़कों की प्रकाश व्यवस्था
- पानी की पम्पिंग
- समुद्र के खारे पानी को मीठे पानी में बदलना
- रेल्वे सिग्नलों में
- दूरस्थ टेलीकम्युनिकेशन रिपीटर स्टेशनों को विद्युत प्रदान करना।

वर्तमान केन्द्र सरकार ने सन् 2022 तक सौर ऊर्जा से 100 गीगावाट विद्युत उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया है।

पवन ऊर्जा (Wind Energy)

पवन (वायु) की गतिज ऊर्जा को संग्रहित करके विशेष उपकरणों द्वारा यांत्रिक अथवा विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित किया जा सकता है। 4000 से 3500 ई.पू. पवन ऊर्जा से पाल जहाज व पवन

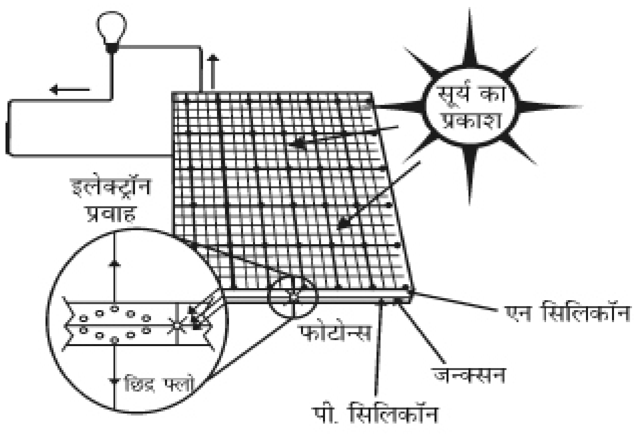

चित्र 2.5 : फोटोवोल्टाइक सेल

चक्कियां विकसित की गयी थी ऐसे प्रमाण उपलब्ध है। पवन ऊर्जा का उपयोग जहाजों के संचालन में अनाज पीसने में, सिंचाई हेतु पानी खींचने इत्यादि कार्यों हेतु किया जाता है। सामान्यतः पवन ऊर्जा की प्राप्ति हेतु ऐसे स्थान उपयुक्त होते हैं जहां पवन का वेग तीव्र हो जैसे पर्वतीय क्षेत्र, समुद्र तटीय क्षेत्र, द्वीप, मरूस्थल आदि। पारम्परिक ईंधन की बढ़ती कीमतों एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभावों के चलते पवन ऊर्जा के अनुप्रयोग में लोगों की रूचि निरन्तर बढ़ रही है। विश्व ऊर्जा परिषद् (World Energy Council) की भविष्यवाणी के अनुसार 2020 तक पवन ऊर्जा से मिलने वाली विद्युत का आंकड़ा 200,000 MW तक हो जायेगा।

वर्तमान समय में पवन ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में हो रहा है। पवन चक्कियों की तरह बनी पवन टर्बाइनों को एक ऊंचे टावर पर स्थापित किया जाता है। इन टर्बाइनों के घूर्णन से जनरेटर चलते हैं जिससे विद्युत का उत्पादन होता है। इस प्रकार पवन टर्बाइन पवन ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करती है जिसका उपयोग करते हुए विद्युत का उत्पादन होता है।

आधुनिक टर्बाइनों में सिर्फ दो या तीन प्रोपेलर (Propeller) ब्लेडों का उपयोग किया जाता है। तीन ब्लेडों वाले प्रोपेलरों को वरीयता दी जाती है क्योंकि ये आसानी से संतुलित हो जाते हैं तथा पूरी क्षमता से स्पिन करते हैं।

पवन फार्मों (Wind farms) से वृहद पैमाने पर विद्युत का उत्पादन किया जाता है। डेनमार्क, ग्रेट ब्रिटेन, नीदरलैण्ड इत्यादि देशों में पवन फार्म स्थापित किये गये हैं। विश्व में पवन शक्ति के क्षेत्र में जर्मनी सबसे अग्रणी है।

भारत में पवन ऊर्जा के क्षेत्र में तमिलनाडु एवं गुजरात अग्रणी राज्य है। भारत विश्व में पवन ऊर्जा का पांचवा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। आंध्र प्रदेश में भी पवन से अधिकांश ऊर्जा उत्पादित की जाती है। पवन से ऊर्जा उत्पादित करने वाले अन्य प्रमुख राज्य निम्नलिखित हैं – कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान।

भारत हेवी इलेक्ट्रीकल्स लिमिटेड (BHEL) के सहयोग से राजस्थान प्रांत की प्रथम पवन विद्युत परियोजना जैसलमेर के पास अमरसागर में स्थापित की गयी है।

पर्यावरणअंकन (Ecolabelling)

पर्यावरण की दृष्टि से लाभदायक पदार्थों का अंकन उपभोक्ताओं को सही खरीद करने में सहायक होता है। पर्यावरणीय

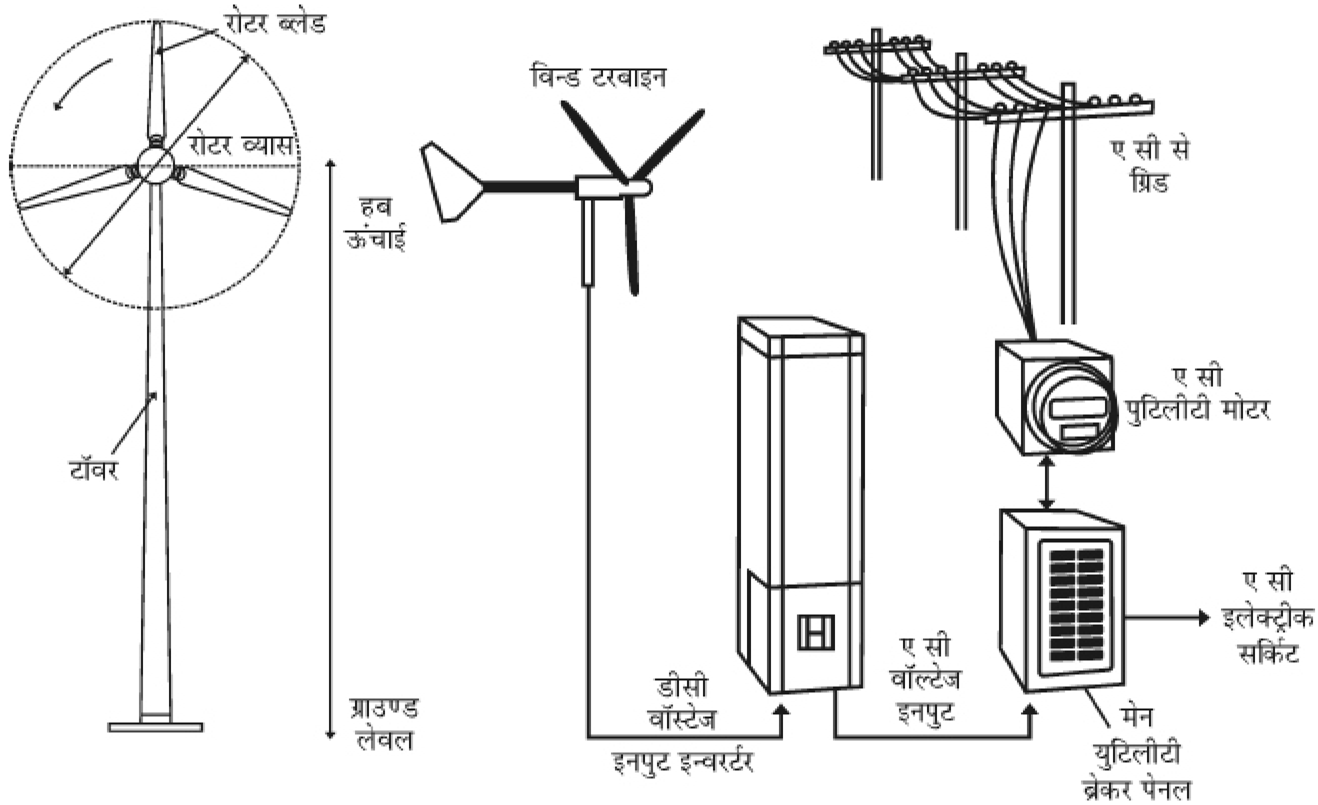

चित्र 2.6 : विंड फार्म

आंकनों का प्रयोग इसलिए भी किया जाता है कि जानी पहचानी किसी भी वस्तु को प्राप्त करने का माध्यम क्या था। पदार्थों के अंकन कम्पनियों को भी अच्छी गुणवत्ता के पदार्थ विकसित करने में सहायता करता है। लकड़ी के पदार्थों पर अंकन यह दर्शाता है कि इन वृक्षों को उगाना दीर्घोपयोगी वन प्रबन्धन सिद्धान्तों की देन थी।

पर्यावरणअंकन के उद्देश्य (Objectives of Ecolabelling)

पर्यावरणअंकन के उद्देश्य निम्नानुसार है–

(i) अनवीनीकरणीय संसाधन जैसे पेट्रोल, डीजल, गैस आदि के संरक्षण को प्रोत्साहन देना।

(ii) दीर्घोपयोगी विकास को ध्यान में रखते हुए भविष्य की पीढ़ी के लिए नवीनीकरणीय संसाधनों के कुशल प्रबन्धन को प्रोत्साहन देना।

;iii) विभिन्न प्रकार के प्रदूषण कारकों (प्रदूषकों) जैसे रसायनों, धातुओं आदि के सही प्रबन्धन को प्रोत्साहन देना।

(iv) जैव विविधता में विभिन्न प्रजातियों की पर्यावरणीय विविधता के संरक्षण को बढ़ावा देना।

(v) पर्यावरण व्यवस्था एवं पर्यावरण संरक्षण प्रोत्साहित करना।

(vi) उपभोक्ताओं को पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों से अवगत कराना।

भारत में पर्यावरणअंकन (Ecolabelling in India)

पर्यावरण के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता के फलस्वरूप अनेक देशों में इकोलेबलिंग की प्रक्रिया को अपनाने लगे हैं। भारत में भी इस प्रक्रिया को केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के माध्यम से प्रमाणित कर अपनाया जा रहा है। भारत सरकार की पर्यावरणीयअंकन की योजना पर्यावरण के प्रति मैत्रीपूर्ण निर्माण प्रक्रियाओं का समर्थन करती है। पदार्थों को इकोलेबल प्रदान करने के मापदण्डों से अधिक साफसुथरी निर्माण प्रक्रियाओं पर जोर दिया जा रहा है। हालांकि यह योजना अभी घरेलू स्तर पर कुछ उपभोक्ताओं तक ही सीमित है। इनमें पर्यावरणीय मापदण्डों के भारतीय स्तर के अनुरूप कुछ अपेक्षाएं शामिल है। इस लेबल को इको–मार्क (Eco-Mark) का नाम दिया गया है।

'इको–लेबल' केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (Central Pollution Control Board) द्वारा प्रमाणित है, जिसका प्रतीक चिन्ह एक ''मिट्टी का घड़ा'' है। यह इस बात का सूचक है कि यह पदार्थ पर्यावरण मैत्रीक (Eco Friendly) है। यह मिट्टी से उत्पन्न होता है और मिट्टी में मिल जायेगा। इसके द्वारा पर्यावरण पर कोई भी हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इको मार्क संकल्पना के आधार पर कुछ ऐसे पदार्थों के लिए अधिसूचना जारी की गई है जैसे – कपड़े धोने वाले व नहाने वाले साबुन, कागज, लॉण्ड्री साबुन आदि।

भविष्य में इस संकल्पना के ओर विस्तार की संभावना है ताकि लोगों में पर्यावरण की प्रति जागरूकता हो तथा दीर्घोपयोगी विकास की धारणा सुदृढ़ हो।

जीवन चक्र समीक्षा (Life Cycle Assessment)

बढ़ते हुए औद्योगीकरण व वैश्वीकरण के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण जैसी अनेक हानिकारक समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। समाज प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण एवं पर्यावरण के संरक्षण संबंधी मुद्दों के प्रति जागरूक हो चुका है। अनेक औद्योगिक संस्थानों ने हरित प्रौद्योगिकी का प्रयोग प्रारंभ कर दिया है। इन उद्योगों ने पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हरे पदार्थों को प्रदान करने के लिए इस तकनीक को प्रयोग ले रहे हैं। वे ऐसी विधियों की खोज कर रहे हैं जिनका वातावरण पर कम से कम दुष्प्रभाव हो। उद्योगों द्वारा ऐसी विधियों का प्रयोग भी किया जा रहा है जो प्रदूषण कम से उत्पन्न करे तथा उनकी पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी पूरी हो सके।

जीवन चक्र (Life cycle) का अर्थ होता है जन्म से मृत्यु तक (Birth to Death)। जीवन चक्र समीक्षा (Life cycle assessment) का अर्थ किसी भी पदार्थ का सम्पूर्ण जीवन चक्र को समझने के प्रयास से है। यह औद्योगिक निर्माण की व्यवस्थाओं की समीक्षा से संबंधित है।

किसी भी पदार्थ के जीवन चक्र का संबंध उसके सभी चरणों को समग्र रूप से देखना जैसे सामग्री का निकालना, पदार्थों का परिवहन, उनका उत्पादन में प्रयोग एवं शेष बचे हुए पदार्थ का निस्तारण आदि। जीवन आवर्तन का अर्थ किसी भी पदार्थ के जीवनकाल की प्रमुख गतिविधियों से है, जिसमें कच्चा माल एकत्रित करने से प्रारंभ कर, उसके निर्माण, उपयोग, उत्पादन से लेकर उसके अंतिम निपटान तक शामिल है। जीवन आवर्तन के प्रमुख चरण निम्न प्रकार है–

जीवन चक्र समीक्षा (LCA) एक व्यवस्थित विधि द्वारा की जाती है–

(i) लक्ष्य – उत्पाद के निर्माण की प्रक्रिया को परिभाषित करना व उसकी व्याख्या करना।

(ii) सूची का विश्लेषण – इसमें निर्माण प्रक्रिया में काम आने वाली ऊर्जा, जल, प्रयोग में लाई गयी सामग्री एवं पर्यावरण में छोड़े गये वायु तत्व, ठोस अपशिष्टों का निपटान, जल में छोड़े गये अपशिष्टों की पहचान एवं गुणवत्ता की जांच

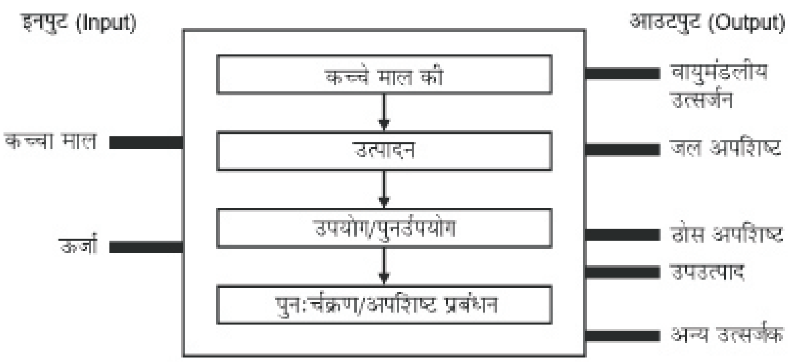

चित्र 2.7 : जीवन आवर्तन के चरण

करना।

(iii) प्रभावों की समीक्षा – सूची का विश्लेषण कर पहचान किये गए ऊर्जा के पर्यावरणीय व मानवीय प्रभावों की समीक्षा, जल व अन्य सामग्री के उपयोग की समीक्षा करना।

(iv) उपयुक्त मानक निर्धारण – सूची का विश्लेषण व प्रभावों की समीक्षा के निष्कर्षों का सही पदार्थ या सेवा का चयन करने के लिए मूल्यांकन।

जीवन चक्र समीक्षा के लाभ (Advantage of LCA)

1. इसके द्वारा वायु, भूमि आदि के संदर्भ में जीवन चक्र के हर चरण की समीक्षा की जा सकती है।
2. इसके द्वारा भौतिक उपभोग के मानवीय एवं पर्यावरणीय प्रभावों की समीक्षा भी की जा सकती है।
3. यह पर्यावरणविदों को उन पदार्थों या प्रक्रियाओं का चयन करने के लिए प्रेरित करते हैं जो पर्यावरण के लिए अत्यन्त लाभदायक हो।
4. जीवन चक्र समीक्षा के आंकड़ों द्वारा एक माध्यम से दूसरे माध्यम तक हुए पर्यावरणीय प्रभावों के स्थानान्तरण की पहचान करते हैं। जैसे वायु में उपस्थित धातु प्रदूषकों का निपटान, रासायनिक उपचार द्वारा वायु प्रदूषकों का समापन।

ग्रीन बेल्ट (Green Belt)

ग्रीन बेल्ट एक भूमि संरक्षण की उपयोगी नीति है जिसमें शहरी क्षेत्रों के आसपास बड़े पैमाने पर पड़ी हुई अविकसित भूमि, कृषि भूमि एवं जंगली क्षेत्रों को बनाये रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

संक्षेप में ग्रीन बेल्ट निश्चित क्षेत्र के चारों ओर एक अदृश्य रेखा है जो एक सीमा तक क्षेत्र के विकास को रोकने और वन्य जीवों के स्थापित करने के लिए अनुमति प्रदान करता है। ग्रीन बेल्ट क्षेत्र वे योजनाबद्ध स्थापित किये हुए क्षेत्र होते हैं जहाँ पर कोई भी विकास गतिविधि जैसे फैक्ट्री, मकान एवं बांध का निर्माण नहीं किया जाता है। ये क्षेत्र वृक्ष एवं पादपों को उगाने के लिए ही प्रयोग में लिया जाता है। इन क्षेत्रों के आसपास के क्षेत्रों में होने वाली किसी भी विकास की गतिविधि के लिए कुछ निश्चित नियम एवं कानून बनाये जाते हैं।

ग्रीन बेल्ट नीति के उद्देश्य (Objectives of Green Belt Policy)

1. इसका निर्माण प्राकृतिक व अर्द्ध प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करने के लिए किया जाता है।
2. पड़ोसी शहरों के एक दूसरे में विलय रोकने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
3. बड़े निर्मित क्षेत्रों के अप्रतिबंधित फैलाव की जांच करने के लिए उपयोग लेते हैं।
4. शहरी क्षेत्रों के भीतर हवा की गुणवत्ता में सुधार में उपयोगी है।
5. ग्रामीण क्षेत्रों की अतिक्रमण से रक्षा करने के लिए भी उपयोगी है।
6. ऐतिहासिक शहरों के विशेष चरित्र को बनाये रखने के लिए एवं शहरी उत्थान में सहायता करने के लिए आवश्यक है।
7. परित्यक्त एवं अन्य शहरी भूमि के पुनचर्क्रण को बढ़ावा देकर सहयोग प्रदान करता है।
8. इसके निर्माण से उपनगरीय व ग्रामीण समुदाय के विस्तार के अद्वितीय चरित्र की रक्षा होती है।

ग्रीन बेल्ट के लाभ (Advantage of Green Belt)

1. ग्रीन बेल्ट द्वारा हवा की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है।
2. इसके द्वारा जंगली पौधों एवं जानवरों के संरक्षण के लिए अनुमति प्रदान करता है।
3. ग्रामीण समुदाय के अद्वितीय चरित्र की रक्षा करता है।
4. यह शहरी फैलाव को रोकने में मदद करता है।
5. यह शहर की सीमा के भीतर जमीन के बेहतर उपयोग को बढ़ावा देता है।
6. यह शुद्ध हवा भी प्रदान करता है।

विदेशों में ग्रीन बेल्ट संकल्पना अत्यन्त प्रचलित है। हालांकि इसका उद्देश्य एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक भिन्न–भिन्न होता है। लेकिन ग्रीन बेल्ट नीति का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करना है। ग्रीन बेल्ट द्वारा प्रदूषण को नियंत्रित किया जाता है। इसके द्वारा क्षेत्र की वायु गुणवत्ता में सुधार किया जाता है। ग्रीन बेल्ट के विकास से किसी भी क्षेत्र की पर्यावरणीय परिस्थितियों को बेहतर बनाया जा सकता है। इसके द्वारा उस क्षेत्र की पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य का प्रबंधन किया जा सकता है।

हमारे देश में शहरी, कृषि एवं औद्योगिक गतिविधियों में वृद्धि होने से वायु, ध्वनि प्रदूषण आदि के द्वारा स्वास्थ्य को नुकसान पहुंच रहा है तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक भार बढ़ रहा है। इसीलिए ग्रीन बेल्ट का विकास करना नितांत आवश्यक है।

अन्य देशों के बजाय भारत में ग्रीन बेल्ट नियमन कानून नहीं है। लेकिन अन्य पर्यावरणीय कानूनों के आधार पर हमारे देश में भी कुछ ग्रीन बेल्ट क्षेत्र हैं जहाँ पर आवासीय एवं औद्योगिक परियोजनाओं के स्थापना की अनुमति नहीं है। भारत के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने इसी प्रकार कुछ कदम उठाये हैं जिसमें विकास परियोजनाओं के साथ पर्यावरण संरक्षण के मुद्दों को भी ध्यान रखा गया है। 1994 में विकास परियोजनाओं के साथ पर्यावरण प्रभाव आंकलन भी लागू किया गया जिसे 2006 में पुनः संशोधन किया गया। पर्यावरण प्रभाव आंकलन के तहत किसी भी शहरी बस्ती, उद्योग, भवन आदि के निर्माण के साथ पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए नियमों का पालन करना आवश्यक कर दिया गया है। जैसे किसी भी उद्योग को लगाने के पहले निम्न परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है –

1. किसी भी वन भूमि या कृषि भूमि को उद्योग क्षेत्र में परिवर्तित नहीं किया जायेगा।
2. प्रत्येक उद्योग अपने पास के क्षेत्र में ग्रीन बेल्ट का निर्माण करेगा।
3. परियोजना के लिए प्रयुक्त भूमि पर अपशिष्ट जल उपचार की व्यवस्था करेगा।
4. उपचारित जल का उपयोग ग्रीन बेल्ट के निर्माण में करेगा।
5. दो पास–पास स्थित उद्योगों के मध्य लगभग एक किमी. क्षेत्र ग्रीन बेल्ट होना आवश्यक होगा।
6. ठोस अपशिष्ट के संग्रहण, निस्तारण एवं पुनः प्रयोग की व्यवस्था भी करनी होगी।
7. सड़क के सहारे वृक्षारोपण करना भी अनिवार्य रहेगा।

हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy)

वह अर्थव्यवस्था जिसका उद्देश्य पर्यावरणीय खतरों तथा पर्यावरण को हानि पहुंचाये बिना सतत् विकास को प्रोत्साहित करना हरित अर्थव्यवस्था कहलाती है। यह राजनैतिक रूप से केन्द्रित प्रयास है। यह अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय एवं वैश्विक आवश्यकताओं को समझ कर निर्मित की गई ऐसी व्यवस्था की ओर अनुक्रमण है जहाँ कार्बन उत्सर्जन कम हो, संसाधनक्षम हो एवं सामाजिक रूप से समावेशी हो।

सामान्य अर्थव्यवस्था की तुलना में हरित अर्थव्यवस्था प्राकृतिक पूंजी एवं पारिस्थितिकी सेवाओं का मूल्य स्वीकार करती है। यह एक लागत लेखांकन भी कही जा सकती है जो पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंचाने वाले कारकों के मूल्यों को समाज पर प्रत्यारोपित करने की बात करता है।

हरित अर्थव्यवस्था निम्न छः मुख्य भागों पर आधारित है–

1. नवीकरणीय ऊर्जा
2. हरित भवन
3. सतत् यातायात
4. जल प्रबन्धन
5. अपशिष्ट प्रबन्धन
6. भूमि प्रबन्धन

हरित अर्थव्यवस्था में आर्थिक वृद्धि एवं पर्यावरणीय आवश्यकताएं परस्पर एक साथ मिलकर सामाजिक विकास को बढ़ावा देती है।

2012 में अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य कक्ष (ICC) ने हरित अर्थव्यवस्था पर रोडमेप प्रकाशित किया था जिसमें विश्वभर के विभिन्न जानकारों की हरित अर्थव्यवस्था पर राय जानी गयी। इसमें वैश्विक चुनौतियों के हल में व्यापार की आवश्यक भूमिका को स्पष्ट किया गया। इसमें हरित अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिए निम्न 10 परिस्थितियों पर व्यापार एवं अन्तर औद्योगिक संस्थानों के संयुक्त अभियान की आवश्यकता बताई गई।

1. खुले एवं प्रतिस्पर्धा बाजार

2. मेट्रिक, लेखांकन एवं रिपोर्टिंग
3. वित्त एवं निवेश
4. जीवन चक्र समीक्षा
5. संसाधन दक्षता एवं अपयुग्मन
6. रोजगार
7. शिक्षा एवं योग्यता
8. शासन एवं भागीदारी
9. समन्वित नीति एवं निर्णय करना
10. जन चेतना

हरित अर्थव्यवस्था हरित ऊर्जा उत्पादन पर आधारित है जिसमें जीवाश्मीय ईंधन के स्थान पर नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। साथ–साथ में ऊर्जा के संरक्षण एवं ऊर्जा के दक्षतापूर्ण प्रयोग पर भी बल दिया जा रहा है।

हरित अर्थव्यवस्था हेतु सरकारों को ऐसे संस्थानों को अनुदान देने की आवश्यकता है ताकि वे हरित उत्पाद एवं सेवाओं के लिए अपना निवेश कर सके।

हरित भवन (Green Buildings)

इसे हरित निर्माण या सतत् भवन के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भवन के निर्माण में पर्यावरणीय आवश्यकताओं एवं संसाधन दक्षता को ध्यान में रखा जाता है। इसमें भवन का खाका, निर्माण, रखरखाव, पुनरूद्धार क्रियाकलाप एवं विध्वंस आदि सभी बातों को ध्यान में रखा जाता है।

दूसरे शब्दों में हरित भवन का खाके में भवन निर्माण एवं सतत् पर्यावरण के मध्य एक सन्तुलन स्थापित किया जाता है। इसके लिए भवन निर्माण में संलिप्त नक्शा बनाने वाली टीम, आर्किटेक्ट, इंजीनियर एवं मकान मालिक के मध्य निकट सम्बन्ध व सहयोग की आवश्यकता रहती है। हरित भवन निर्माण में प्राचीन कालीन भवन नक्शा जिसमें आर्थिकी, उपयोग, सुविधाओं एवं आराम आदि का ध्यान रखा जाता है।

अमेरिका की हरित भवन कौंसिल हरित भवनों की जांच कर उनकी पर्यावरण के अनुरूप रेटिंग करती है। वर्तमान में विश्व हरित भवन कौंसिल हरित भवनों के उनमें निवास करने वालों के स्वास्थ्य एवं उपयोगिता पर अनुसंधान कर रही है तथा वर्ल्ड बैंक की सहायता से हरित भवनों के निर्माण को प्रेरित कर रही है।

हरित भवन निर्माण का मुख्य उद्देश्य ऐसे भवनों का निर्माण करना है जो कि इको–फ्रेण्डली हो तथा मानव के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डाले। यह भवन ऊर्जा, जल एवं अन्य संसाधनों के उपयोग में दक्ष हो ताकि प्राकृतिक पर्यावरण बना रहे। इसका उद्देश्य यह भी है कि इसमें रहने वाले निवासी अपशिष्ट का उत्पादन कम से कम करें ताकि पर्यावरण ह्रास से बचा जा सके।

हरित भवनों के लक्ष्य (Goals of Green Buildings)

1. सतत् विकास की अवधारणा के लक्ष्य तक पहुंचना।
2. इसके निर्माण एवं रखरखाव में प्रयुक्त होने वाली सामग्री पर्यावरण मित्र हो।
3. इसमें ऊर्जा के बचाव के लिए सौलर ऊर्जा स्रोतों सक्रिय, निष्क्रिय एवं फोटोवॉल्टिक उपकरणों का उपयोग किया जाए।
4. भवन की छतों पर वृक्षों एवं पौधों का रोपण कर हरी छतों (Green roofs) एवं वर्षा बाग (Rain gardens) का निर्माण किया जाए।
5. वर्षा जल को संग्रहित करने हेतु प्रयास किये जाए ताकि वे बहकर नष्ट न हो पाये।

हरित भवनों के निर्माण की तकनीक में समय के साथ–साथ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक सुधार होता जा रहा है लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य ऐसे भवनों का निर्माण करना तो ऊर्जा, जल एवं पदार्थों के प्रयोग की दक्षता हो। जो पर्यावरण की गुणवत्ता में वृद्धि करे, कम से कम अपशिष्टों का उत्पादन करें।

ग्रीन बैंकिंग
(Green Banking)

औद्योगीकरण एवं वैश्वीकरण के वर्तमान युग में मानव जीवन के लिए आराम और विलासिता की अनेक परिस्थितियाँ बनी हैं लेकिन इसमें शामिल गतिविधियों से पर्यावरण का बहुत क्षरण हुआ है। विश्व अर्थव्यवस्था में कारोबार के लिए अनेक पर्यावरणीय समस्याओं एवं उससे सम्बन्धित प्रभावों से निपटने के लिए बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था भी एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है तथा पर्यावरणीय संकटों से निपटने की रणनीति बनाने की प्रक्रिया में नवीन दृष्टिकोण के अनुसार भारत में हरित बैंकों के विकास की एक विशाल क्षमता है। वित्तीय क्षेत्र और विशेष रूप से बैंक पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। हरी बैंकिंग को इसीलिए पर्यावरण के अनुकूल बैंकिंग, नैतिक बैंकिंग या स्थायी बैंकिंग के रूप में भी परिभाषित किया गया है।

व्यापक परिपेक्ष्य में यह पर्यावरण के अनुकूल बैंकिंग प्रथाओं में से है जो अपने ग्राहकों को बढ़ावा देने के बैंकिंग गतिविधियों के माध्यम से कार्बन उत्सर्जन कम करने के लिए है।

भारत में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया एवं आईसीआईसीआई ग्रीन बैंक के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। बैंक देश की अर्थव्यवस्था एवं सतत् विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न परियोजनाओं एवं उद्योगों को वित्त सम्बन्धी व्यवस्था बैंकों द्वारा की

जाती है जो पर्यावरण पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं। लेकिन अगर बैंक इन उद्योगों की परियोजनाओं को पर्यावरण मानकों को ध्यान में रखकर वित्त ऋण प्रदान करे तो पर्यावरण व समाज को नुकसान से बचाया जा सकता है।

इसी अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए बैंक अब ऐसी परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहे हैं जो सतत् विकास से सम्बन्ध रखते हो, नवीनकरणीय प्राकृतिक स्रोतों का प्रयोग कर रहे हो, निम्नतम अपशिष्ट उत्पादन करने वाले, प्रदूषण रोधी, मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं समाज की बेहतरी के लिए हो।

इसी प्रकार अगर सरकार ऐसे कानून का निर्माण कर बैंकों को पर्यावरण सम्बन्धी नियमों को पालन कर उपभोक्ताओं तक इसकी जानकारी पहुंचाए तो पर्यावरण के ह्रास से बचा जा सकता है।

ग्रीन बैंकिंग संकल्पना (Concept of Green Banking)

ग्रीन बैंकिंग एक सामान्य बैंक है जो प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्यों से परिपूर्ण है। यह सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों को ध्यान में रखकर बनाया गया बैंक है। यह एक नैतिक एवं स्थायी बैंक है जो प्राकृतिक संसाधनों, आवासों एवं पर्यावरण के संरक्षण के लिए कार्य करता है।

ग्रीन बैंकिंग में जितना संभव हो उतना कागज के काम से बचा जाता है। यह ऑनलाइन एवं इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन पर भरोसा करते हैं। कम कागजी कार्रवाई का अर्थ पेड़ों के कम काटने से है अर्थात् वनोन्मूलन में कटौती कर पर्यावरण की रक्षा करना है। इसमें हरी क्रेडिट कार्ड व हरित ऋण मिलता है।

हरित बैंकिंग द्वारा व्यापारी लोगों में पर्यावरण एवं सामाजिक जिम्मेदारी का अहसास उत्पन्न किया जाता है ताकि वे पर्यावरण के अनुकूल, व्यापार व्यवहार करें। ग्रीन बैंकिंग उधार के लिए पर्यावरणीय मानकों को अपनाता है तथा लागू भी करता है। यह वास्तव में एक सक्रिय विचारधारा है जो हमारी भावी पीढ़ी को पर्यावरण के अनुकूल व्यापार प्रथाओं को लागू करने में सहायता करती है।

भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार हरे बैंकिंग पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव कम करने एवं आंतरिक बैंक प्रक्रियाओं, भौतिक बुनियादी ढांचे एवं सूचना प्रौद्योगिकी को पर्यावरण के प्रति प्रभावी बनाने के लिए है।

ग्रीन बैंकिंग के लाभ (Benefits of Green Banking)

1. ये ऊर्जा संरक्षण एवं पर्यावरण सुरक्षा को बढ़ावा देती है।
2. ये उपभोक्ताओं को कागज के प्रयोग को कम कर इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन जैसे एटीएम का प्रयोग, मोबाईल बैंकिंग, इन्टरनेट बैंकिंग आदि को बढ़ावा देती है।
3. इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन से ग्राहकों एवं बैंक दोनों को आसानी भी रहती है। कम कागज के प्रयोग के कारण वृक्षों की कटाई भी कम होती है जो अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण की रक्षा करती है।
4. इससे बैंक को प्रतिस्पर्धा करने, क्रेडिट रिस्क कम करने, रिस्क प्रबन्धन एवं उपभोक्ता को भी लेनदेन में कीमत कम लगती है।

ग्रीन बैंकिंग का भविष्य (Future of Green Banking)

भारत में ग्रीन बैंकिंग का भविष्य बहुत उज्जवल है। भारत में अनेक हरित उत्पाद व सेवाएं भविष्य में उपलब्ध होगा। इसके द्वारा भविष्य में प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों पर लगाम लग सकेगी। हरित उत्कृष्ट अवार्ड, हरित रेटिंग एजेन्सी, हरित निवेश फण्ड, हरित बीमा योजना, हरित लेखांकन जैसे अनेक क्रियाकलाप भविष्य में उपलब्ध होंगे। बैंक भविष्य में आर्थिक सुधार के क्षेत्र में एक प्लेटफार्म के रूप में काम करेंगे जो वित्त एवं निवेश नीतियों के लिए अनेक अवसर उपलब्ध करा सकेंगे तथा इससे निम्न कार्बन अर्थव्यवस्था (Low carbon economy) का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

इस प्रकार ग्रीन बैंकिंग आने वाले समय में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में स्थापित होगी।

स्वच्छ विकास प्रणाली (Clean Development Mechanism)

स्वच्छ विकास प्रणाली (CDM) का वर्णन क्योटो प्रोटोकॉल के अनुच्छेद 12 में परिभाषित किया गया है। इस अनुच्छेद में देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने या सीमा में रखने का प्रावधान किया गया है।

स्वच्छ विकास प्रणाली विकासशील देशों में CO_2 उत्सर्जन में कमी करने की प्रतिबद्धता को तय करती है। स्वच्छ विकास प्रणाली को एक इनोवेटर के रूप में देखा जाता है। यह पहली अपनी तरह की वैश्विक पर्यावरण निवेश और क्रेडिट योजना है। यह मानकीकृत उत्सर्जन ऑफसेट उपलब्ध कराने की सी ई आर है। उदाहरणार्थ एक ग्रामीण विद्युवीकरण परियोजना में अधिक सौर पैनलों या कुशल ऊर्जा बॉयलर की स्थापना कर स्वच्छ विकास प्रणाली परियोजना गतिविधि में शामिल हो सकता है।

सी डी एम तंत्र सतत् विकास और उत्सर्जन में कटौती को उत्तेजित करता है। यह औद्योगिक देशों को उत्सर्जन में कमी के सीमा लक्ष्य को पूरा करने में कुछ लचीलापन दे रही है। सी डी एम यू एन एफ सी सी सी अनुकूलन कोष है जो क्योटो प्रोटोकॉल के पार्टी देशों को विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव

को कमजोर करने के लिए प्रयत्नशील है।

सी डी एम परियोजनाओं की स्वीकृति (Sanctioning of CDM Project)

सी डी एम तंत्र के तहत् विकासशील देशों को कार्बन उत्सर्जन कटौती (CER) क्रेडिट कमाने की परियोजनाएं स्वीकृत की जाती है। एक क्रेडिट का मान एक टन CO_2 के बराबर होता है। प्रत्येक सी ई आर को खरीदा एवं बेचा जा सकता है। इनका उपयोग औद्योगिक देशों द्वारा क्योटो प्रोटोकॉल के तहत् उत्सर्जन में कमी के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए काम में लिया जाता है।

यू एन एफ सी सी सी अनुकूलन फण्ड का मुख्य आय का स्रोत सी डी एम परियोजनाएं हैं। इन परियोजनाओं के सार्वजनिक पंजीकरण व जारी करने की प्रक्रिया एक कठोर माध्यम से होती है। इनका अनुमोदन मनोनीत राष्ट्रीय अधिकारियों द्वारा किया जाता है। यह सब कार्य सी डी एम कार्यकारी बोर्ड की देखरेख में होता है।

ϖ परियोजना विकास प्रावस्था

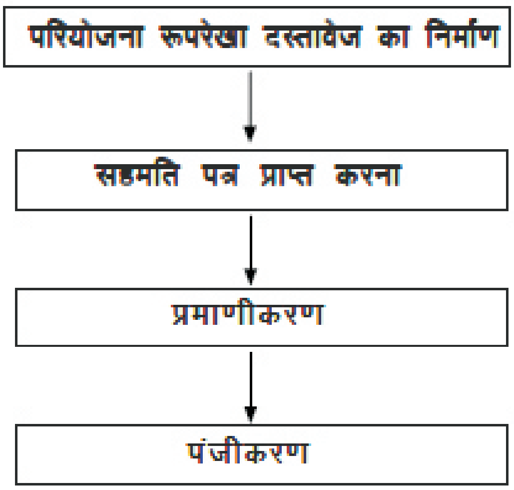

ϖϖ परियोजना क्रियान्वयन प्रावस्था

सी डी एम कार्यकारी बोर्ड, नामित राष्ट्रीय अधिकारी एवं नामित परिचालन संस्था इन परियोजनाओं का नियंत्रण करती है। 2006 में इसकी शुरूआत के पश्चात् लगभग 1650 परियोजनाएं स्वीकृत की गई एवं क्योटो प्रोटोकॉल की पहली प्रतिबद्धता अवधि 2008–2012 में 2.9 अरब टन CO_2 के बराबर सी ई आर के उत्पादन का अनुमान है।

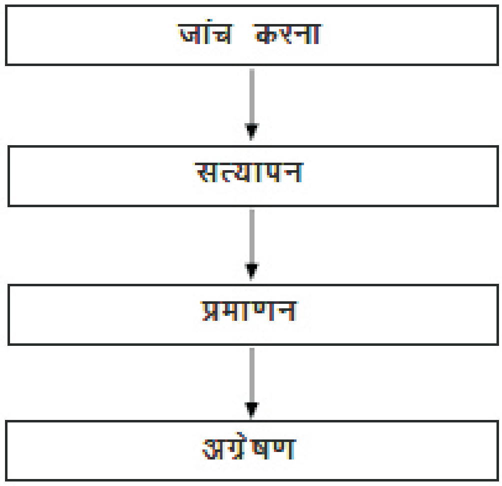

सी डी एम परियोजनाओं से लाभ

1. ग्रीन हाउस गैसों के वैश्विक उत्सर्जन में कमी।
2. ग्रीन हाउस गैसों के अलावा अन्य प्रदूषकों की कमी के माध्यम से अतिरिक्त लाभ।
3. कार्बन निवेश के लिए बाजार खोलना।
4. सतत् विकास पर ध्यान देना।
5. जलवायु परिवर्तन शमन की लागत में कमी।

इसी प्रकार सी डी एम परियोजनाओं से यह आशा है कि विकासशील देशों में सतत् पोषणीय विकास में योगदान करेंगे और अतिरिक्त कार्बन उत्सर्जन बचत भी उत्पन्न करेंगे।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. हरित प्रौद्योगिकी अधिक सफाई की प्रौद्योगिकी के नाम से भी जानी जाती है। ऐसी तकनीक से कच्ची सामग्री का कुशलतापूर्वक प्रयोग करते हैं तथा कूड़ा करकट की मात्रा में कमी लाते हैं।
2. अपशिष्ट वे पदार्थ हैं जिन्हें वर्तमान स्वरूप में प्रयोग नहीं लिया जा सकता। ये औद्योगिक, ठोस, धातु, नगरपालिका, रेडियो एक्टिव अपशिष्ट के रूप में हो सकते हैं।
3. अपशिष्टों के प्रबन्धन में तीन आर (R) युक्ति उनका न्यूनतम मात्रा में प्रयोग, पुनर्प्रयोग व पुनर्चक्रण का प्रयोग किया जाता है।
4. 'उपभोग करो एवं फेंको' ऐसी अर्थव्यवस्था बहुत अधिक मात्रा में अपशिष्टों का उत्पादन करती है।
5. किसी भी पदार्थ के सम्पूर्ण जीवन चक्र समझने का प्रयत्न जीवन चक्र समीक्षा कहलाता है।
6. पर्यावरण अंकन किसी भी पदार्थ पर अंकित वह मार्क है जो इस बात का सूचक है कि यह पदार्थ किसी भी तरह से पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं है।
7. इको लेबल केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा प्रमाणित है और इसका प्रतीक मिट्टी का घड़ा है।

8. दीर्घोपयोगी विकास एक ऐसा विकास है जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ आगामी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण को सक्षम बनाता है।

9. फोटोवोल्टाईक सेल द्वारा सौर ऊर्जा को प्रत्यक्ष तौर पर विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है।

10. पवन टर्बाइन पवन ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करती है जिनका प्रयोग विद्युत उत्पादन के लिए होता है।

11. जब पवन टर्बाइन समूह में होती है तो उन्हें विंडफार्म कहा जाता है।

12. ऐसी अर्थव्यवस्था जो पर्यावरण को हानिक पहुंचाए बिना सतत् विकास को प्रोत्साहित करती है, हरित अर्थव्यवस्था कहलाती है।

13. ऐसा नैतिक एवं स्थायी बैंक जो प्राकृतिक संसाधनों, आवासों एवं पर्यावरण के संरक्षण के लिए कार्य करता है, ग्रीन बैंक कहलाता है।

14. स्वच्छ विकास प्रणाली विकासशील देशों में ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी कर कार्बन क्रेडिट कमाने की परियोजना है।

15. ग्रीन बेल्ट वे खुले क्षेत्र हैं जहाँ पर कोई भी विकास गतिविधि न होकर पेड़ पौधों का रोपण किया जाता है। यह शहरी फैलाव को रोकने का कार्य करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. ऐसी तकनीक जो हमारे पर्यावरण को साफ व स्वच्छ रखे तथा प्राकृतिक संसाधनों को कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सके, कहलाती है–

   (अ) क्लीनर प्रौद्योगिकी (ब) हरित प्रौद्योगिकी

   (स) पर्यावरण प्रौद्योगिकी (द) उपरोक्त सभी

2. ऊर्जा का नवीनकरणीय स्रोत नहीं है–

   (अ) सौर ऊर्जा (ब) पवन ऊर्जा

   (स) जल ऊर्जा (द) प्राकृतिक गैस

3. अपशिष्टों का प्रबन्धन निम्न में से कौनसी विधि द्वारा किया जा सकता है–

   (अ) पुनः प्रयोग द्वारा (ब) पुनःचर्क्रण द्वारा

   (स) मात्रा कम करके (द) उपरोक्त सभी

4. विनाश रहित विकास कहलाता है–

   (अ) आर्थिक विकास (ब) सतत् विकास

   (स) सामाजिक विकास (द) मानव विकास

5. ऊर्जा के पारम्परिक स्रोत है–

   (अ) सौर ऊर्जा (ब) पवन ऊर्जा

   (स) ज्वारीय ऊर्जा (द) पेट्रोलियम

6. सौर ऊर्जा को तापीय ऊर्जा में परिवर्तित करता है–

   (अ) पवन चक्की (ब) पवन टर्बाइन

   (स) सौर हरित गृह (द) सोलर सेल

7. पवन ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करता है–

   (अ) सोलर कुकर (ब) पवन टर्बाइन

   (स) फोटोइलेक्ट्रीक सेल (द) उपरोक्त सभी

8. पर्यावरण अंकन का प्रतीक चिन्ह है–

   (अ) मिट्टी का घड़ा (ब) मिट्टी का दीपक

   (स) मोमबत्ती (द) इनमें से कोई नहीं

9. फोटोवोल्टाईटिक सेल किस धातु से बना होता है–

   (अ) सिलिकॉन (ब) निकल

   (स) जस्ता (द) प्लूटोनियम

10. सौर ऊर्जा के उपयोग है–

    (अ) डे लाइटिंग

    (ब) गर्म पानी प्रदान करना

    (स) विद्युत ऊर्जा उत्पादन

    (द) उपरोक्त सभी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. क्लीनर प्रौद्योगिकी परिभाषा दीजिए।
2. ग्रीन बैंकिंग क्या है?
3. सतत् विकास किसे कहते हैं?
4. ग्रीन बेल्ट क्या होता है?
5. स्वच्छ विकास प्रणाली किसे कहते हैं?
6. सी ई आर से क्या समझते हैं?
7. हरित अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं?
8. ईकोमार्क किसे कहते हैं?
9. जीवन चक्र क्या है?
10. फोटोवोल्टाईक सेल किसे कहते हैं?
11. विंड फार्म क्या है?

12. धातु अपशिष्ट कौनसे हैं?
13. औद्योगिक अपशिष्ट क्या होते हैं?
14. सौर ऊर्जा के क्या उपयोग है?
15. फोटोवोल्टाईक सेल का क्या उपयोग है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. हरित प्रौद्योगिकी के क्या उद्देश्य है?
2. हरित प्रौद्योगिकी की संकल्पना समझाइए?
3. अपशिष्ट क्या होते हैं?ये कितने प्रकार के होते हैं?समझाइए।
4. अपशिष्टों के प्रबन्धन की नीतियों का वर्णन कीजिए।
5. अपशिष्ट जल उपचार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. पर्यावरणअंकन क्या है?इसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
7. जीवन चक्र समीक्षा से क्या अभिप्राय है?
8. ग्रीन बेल्ट पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
9. स्वच्छ विकास प्रणाली किससे सम्बन्धित है?विस्तार से समझाइए।
10. सतत् विकास की अवधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. हरित प्रौद्योगिकी पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. अपशिष्ट के प्रकारों एवं प्रबन्धन को विस्तार से समझाइए।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–
   (अ) ग्रीन बैंकिंग
   (ब) पवन चक्की
   (स) हरित भवन
4. ऊर्जा संरक्षण से क्या समझते हैं?सोलर पेनल की संरचना व उपयोग पर लेख लिखिए।
5. सतत् विकास की संकल्पना को विस्तार से समझाइए।
6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–
   (अ) ईकोलेबलिंग
   (ब) फोटोवोल्टाईक सेल
   (स) हरित अर्थव्यवस्था

उत्तरमाला: 1 (द), 2 (द), 3 (द), 4 (ब), 5 (द), 6 (स), 7 (ब), 8 (अ), 9 (अ), 10 (द

इकाई – 3
पर्यावरण कानून और अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं
(Environmental Laws and International Conventions)

परिचय (Introduction)

पर्यावरण संरक्षण की समस्या आज विश्व के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। विश्व का लगभग हर देश इस समस्या के समाधान के लिए अलग–अलग तरीके से प्रयासारत है। हमारे देश में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में कई प्रभावी कदम उठाये गये। समय–समय पर विभिन्न कानून भी बनाये गये। संविधान के अनुच्छेद 48–क में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए व्यवस्था की गयी है। इसके अनुसार ''राज्य देश के पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।'' इसी प्रकार अनुच्छेद 51–क में पर्यावरण संरक्षण को नागारिकों का मूल कर्त्तव्य मानते हुए यह प्रावधान किया गया है कि ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे।'' इनका विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है–

48। अनुच्छेद (पर्यावरण की सुरक्षा एवं विकास, वन एवं वन्य जीव संरक्षण)

Article 48A (The Protection and Improvement of Environment & Safe Guarding of Forest & Wildlife)

इस अनुच्छेद के अनुसार ''राज्य, देश के पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

यह अनुच्छेद संविधान के बयालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा अंतःस्थापित (Inserted) किया गया है। यह अनुच्छेद संविधान के भाग 4 राज्य के नीति निर्देशक तत्व शीर्षक में समाहित होने से राज्य पर यह संवैधानिक दायित्व डालता है कि वह ऐसी नीतियाँ बनाए जिससे पर्यावरण का संरक्षण हो सके तथा वन्य जीवों और वन की रक्षा की जा सके। राज्यों को इस अनुच्छेद के अधीन यह शक्ति भी प्रदान है कि वह इस संबंध में विशेष विधियों का निर्माण कर सके।

51। अनुच्छेद (मूलभूत कर्तव्य)

Article 51A (Fundamental Duties)

इस अनुच्छेद के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि ''वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव की रक्षा करें, उसका संवर्धन करे और प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे। इस अनुच्छेद को भी संविधान के बयालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान के भाग 4A में अन्तःस्थापित किया गया है।

भारत के प्रत्येक नागरिक पर यह संवैधानिक मूलभूत कर्तव्य आरोपित किया गया है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे, उसका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

हमारे देश में 200 से भी अधिक अधिनियम बने हैं। यहां हम निम्नांकित सात अधिनियमों का विस्तार से अध्ययन करेंगे :

1. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
2. वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981
3. जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974
4. वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972
5. वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980
6. ध्वनि प्रदूषण (विनियमन एवं नियंत्रण नियम, 2000
7. राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण कानून, 2010

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

[The Environment (Protection) Act, 1986]

यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में 19 नवम्बर, 1986 से लागू है। इस अधिनियम को चार अध्यायों एवं 26 धाराओं (sections)

में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में दो धाराएं हैं, द्वितीय में चार, तृतीय में 11 तथा चतुर्थ अध्याय में कुल नौ धाराएं हैं।

धारा 1 में संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार और प्रवर्तन (commencement) दिया गया है।

धारा 2 में पर्यावरण से संबंधित शब्दावलियों को परिभाषित किया गया है।

धारा 3 पर्यावरण संरक्षण और सुधार के लिए उपाय करने की केन्द्रीय सरकार को शक्तियां प्रदान करती है।

धारा 4 अधिनियम की सफल क्रियान्विति करने के लिए केन्द्रीय सरकार को अधिकारियों की नियुक्ति और उनकी शक्तियां तथा कृत्य निर्धारण की शक्तियां प्रदान करती है।

धारा 5 में निदेश देने की शक्तियां है।

धारा 6 केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण प्रदूषण को विनियमित करने के लिए नियम निर्धारण करने की शक्ति प्रदान करती है।

धारा 7 के अनुसार, उद्योग संक्रिया (operation) आदि चलाने वाले व्यक्तियों को मानक से अधिक मात्रा में पर्यावरणीय प्रदूषणकारी के उत्सर्जन अथवा निस्सरण (discharge) की अनुज्ञा नहीं होगी।

धारा 8 के अनुसार परिसंकटमय पदार्थो (hazardous substances) से व्यवहार करने वाले व्यक्ति प्रक्रियात्मक रक्षोपायों का पालन करेंगे।

धारा 9 कतिपय मामलों में प्राधिकारियों (authorities) और अभिकरणों (agencies) को सूचनाएं देने का निर्णय करती है।

धारा 10 प्रवेश, तलाशी एवं निरीक्षण के बारे में प्रावधान करती है।

धारा 11 नमूना लेने तथा उसका विश्लेषण कराये जाने के बारे में प्रावधान करती है।

धारा 12 में हवा, जल, मिट्टी एवं अन्य पदार्थो के विश्लेषण एवं परीक्षण के लिए पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं की स्थापना के बारे में प्रावधान किया गया है।

धारा 13 में हवा, जल, मिट्टी एवं अन्य पदार्थो के विश्लेषण के लिए स्थापित या मान्यता प्राप्त पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं के लिए सरकारी विश्लेषकों की नियुक्ति के बारे में प्रावधान किया गया है।

धारा 14 सरकारी विश्लेषकों की रिपोर्ट के साक्ष्यिक मूल्य को सुनिश्चित करती है।

धारा 15 शास्ति (penalty) के बारे में प्रावधान करती है। इसके अनुसार –

(i) इस अधिनियम के उपबंधों, निर्धारित मानदण्डों या निदेशों का उल्लंघन करने पर पांच वर्ष की कैद अथवा एक लाख रूपये जुर्माना।

(ii) उल्लंघन जारी रहने पर प्रति दिन पांच हजार रूपये तक अतिरिक्त जुर्माना तथा

(iii) दोष सिद्धि के पश्चात् एक वर्ष से अधिक समय तक ऐसा उल्लंघन जारी रहने पर सात वर्ष की सजा।

धारा 16 कम्पनियों द्वारा अपराध पर दण्ड निर्धारण का प्रावधान करती है।

धारा 17 में सरकारी विभागों द्वारा किये गये अपराध पर दण्ड की व्यवस्था की गयी है।

धारा 18 नियमों के अनुसरण में सद्भावना पूर्वक कार्य करने वालों की वाद या विधिक कार्यवाही से रक्षा करती है।

धारा 19 अपराधों के संज्ञान (Cognizance of offences) के बारे में प्रावधान करती है।

धारा 20 सूचनाओं, रिपोर्टों व विवरणियों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को शक्तियां प्रदान करती है।

धारा 21 में धारा 4 के अधीन गठित प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को 'लोकसेवक' घोषित किया गया है।

धारा 22 सिविल न्यायालय को अधिकारिता का अपवर्जन करती है।

धारा 23 केन्द्र सरकार को प्रत्यायोजन (delegation) की शक्तियां प्रदान करती है।

धारा 24 में अन्य विधियों (other laws) के प्रभाव निहित है।

धारा 25 में केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने की शक्तियां प्रदान की गयी है।

धारा 26 में इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियम संसद के समक्ष रखे जाने का प्रावधान है।

वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981

[The Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981]

यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में 16 मई 1981 से लागू है। इसे वर्ष 1987 में संशोधित भी किया गया हैं। इस अधिनियम में 7 अध्याय तथा 54 धाराएं (Sections) हैं। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस अधिनियम में वायु प्रदुषण के निवारण तथा नियंत्रण के लिये केन्द्रीय बोर्ड की व्यवस्था की गयी है। (धारा 3)
2. इसके अन्तर्गत राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के गठन का भी प्रावधान है। (धारा 5)

3. राज्य सरकार को वायु प्रदुषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित करने तथा उसमें ईंधन, उपकरण एवं उत्तेजन सामग्री के उपयोग को निषेधित करने की शक्तियां दी गयी हैं। (धारा 19)

4. किसी उद्योग आदि चलाने वाले व्यक्ति को राज्य बोर्ड द्वारा अधिकथित मानकों से अधिक वायु प्रदुषणकारी के उत्सर्जन की अनुज्ञा नहीं होगी। (धारा 22)

5. राज्य बोर्ड द्वारा निमित्त सशक्त किसी व्यक्ति को किसी स्थान में प्रवेश तथा निरीक्षण (धारा 24) एवं वायु अथवा उत्सर्जन के नमूने लेने और उसके सम्बन्ध में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रियाओं (धारा 26) की शक्ति प्रदान की गयी है।

6. धारा 21 (कतिपय औद्यौगिक संयंत्रों के उपयोग पर निर्बन्धन) या धारा 22 के उपबंधों अथवा धारा 31 क (निर्देश देने की शक्तियां) के अधीन जारी किये गये निदेशों का पालन न करने पर प्रथम दोष पर डेढ़ वर्ष से छः वर्ष तक की कैद व पांच हजार रूपये तक अर्थदण्ड का प्रावधान है। प्रथम दोष सिद्धि की तिथि के पश्चात् ऐसा उल्लंघन जारी रहने की कारावास अवधि 2 से 7 वर्ष होगी एवं जुर्माने से भी दण्डनीय होगा। (धारा 37)

7. इसके अन्तर्गत कम्पनियों द्वारा अपराध (धारा 40) व सरकारी विभागों द्वारा अपराध (धारा 41) पर दंड का प्रावधान है।

8. यदि बोर्ड के कृत्य में बार–बार व्यतिक्रम आता है या यदि राज्य सरकार ऐसा समझती है कि यह लोकहित में आवश्यक हैं तो वह राज्य बोर्ड को एक वर्ष के लिए अतिष्ठित (supersede) कर सकती है। (धारा 47)

9. केन्द्र व राज्य सरकार को विशिष्टतः और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना नियम बनाने की शक्तियों का प्रावधान है। (धारा 53 व 54)

जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974

[Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974]

इस अधिनियम को 23 मार्च 1974 से असम, बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल (12 राज्यों) तथा संघ राज्य क्षेत्रों में लागू कर दिया गया। जहां तक अन्य राज्यों में लागू होने का प्रश्न है, धारा 1 की उपधारा (2) में यह व्यवस्था की गयी है कि कोई भी राज्य संविधान के अनुच्छेद 252 (1) के अन्तर्गत संकल्प पारित कर इसे अपने राज्य क्षेत्र में लागू कर सकेगा। वर्ष 1978 व 1988 में इस अधिनियम को संशोधित किया गया। जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में कुल आठ अध्याय व 64 धाराएं हैं। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य जल प्रदूषण का निवारण करना, जल प्रदूषण को नियंत्रित करना, जल की स्वास्थ्यप्रदता को बनाये रखना तथा जल को प्राकृतिक पूर्वावस्था में लाना है।

2. इस अधिनियम में एक पूर्णकालिक अध्यक्ष के साथ 16 सदस्यीय केन्द्रीय व राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के गठन का प्रावधान है (धारा 3 व 4), राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का अध्यक्ष अंशकालिक भी हो सकता है। बोर्ड का अधिवेशन प्रत्येक तिमाही में कम से कम एक बार होगा (धारा 8), करार द्वारा दो या दो से अधिक राज्यों, संघ राज्य क्षेत्रों आदि के लिए संयुक्त प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन किया जा सकता है। (धारा 13)

3. जल प्रदूषण को रोकना अधिनियम का प्रमुख लक्ष्य है। ''एम. सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया'' में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निदेश के अनुसार ''कोई भी नया कारखाना प्रारम्भ किये जाने की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक ऐसा कारखाना व्यावसायिक बहिःस्त्राव के निस्सरण की पर्याप्त एवं समुचित व्यवस्था नहीं कर लेता है।

4. राज्य बोर्ड को बहिःस्त्रावों के नमूने लेने की शक्ति और उसके संबंध में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया का प्रावधान है।

5. राज्य बोर्ड या उसके सशक्त अधिकारी को किसी स्थान में प्रवेश तथा उसका निरीक्षण करने की शाक्तियां प्रदान की गयी हैं। (धारा 23)

6. प्रदूषण पदार्थ आदि के व्ययन (disposal) के लिए सरिता (stream) या कुंए के उपयोग पर प्रतिषेध (prohibition) है (धारा 24)। सरिता या कुएं के प्रदूषण की दशा में आपात उपायों की व्यवस्था की गयी है। (धारा 32)। ऐसे उपाय करने की अधिकारिता राज्य बोर्ड को प्रदान की गयी है।

7. जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम के अधीन केन्द्रीय या राज्य बोर्डो के निदेशों की पालना में असफल रहने पर तीन मास से 7 वर्ष तक की अवधि तक कारावास तथा जुर्माने से दण्डित किये जाने के व्यवस्था है (धारा 41)। कुछ परिस्थितियों में शास्ति (penalty) का भी प्रावधान है। कम्पनियों व सरकारी विभागों द्वारा किये गये अपराध पर दण्ड का प्रावधान है।

8. बोर्डो के कृत्यों में बार–बार व्यतिक्रम आने पर या लोकहित में आवश्यक होने पर केन्द्रीय सरकार को केन्द्रीय बोर्ड और संयुक्त बोर्डो तथा राज्य सरकार को राज्य बोर्ड को अतिष्ठित (supersede) करने की शक्ति प्रदान की गयी है। (धारा 61 एवं 62)

9. केन्द्रीय (धारा 63) व राज्य (धारा 64) सरकारों को क्रमशः केन्द्रीय व राज्य बोर्डो के परामर्श से नियम बनाने की शक्तियां प्रदान की गयी है।

वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972

[The Wild Life (Protection) Act, 1972]

इस अधिनियम को भारतीय संसद द्वारा 9 दिसम्बर 1972 को लागू किया गया। इस अधिनियम के द्वारा वन्य जीव संरक्षण को राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में स्थान दिया गया। इस अधिनियम को जम्मू–कश्मीर को छोड़कर देश के सभी राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों में समान रूप से लागू किया गया। इस अधिनियम को वर्ष 1982 तथा 1986 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम में सात अध्याय, छह अनुसूचियां तथा 66 धाराएं हैं।

इस अधिनियम के उद्देश्य तथा विशेषताएं निम्न हैं :–

1. इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वन्य जीवों के संरक्षण व प्रबंधन को सुनिश्चित करना है।
2. अनुसूची I,II,III में वर्णित वन्य जीवों का शिकार प्रतिबन्धित है (धारा 9)। परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिरक्षा के लिए किसी खतरनाक वन्य जीव का वध करता है तो वह दण्डनीय अपराध नहीं माना जायेगा। (धारा 11)
3. विशेष प्रयोजन जैसे शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध हेतु किसी वन व पशु के शिकार के लिए अनुज्ञा प्रदान करने का प्रावधान है। (धारा 12)
4. विनिर्दिष्ट पौधों (Specified plants) को तोड़ने, जड़ से उखाड़ने आदि प्रतिषेध (prohibition) है (धारा 17 क)। विशेष कार्यो के लिए (वैज्ञानिक अनुसंधान आदि) अनुज्ञा प्राप्ति का प्रावधान है (धारा 17 ख)। बिना अनुज्ञा प्राप्त किये विनिर्दिष्ट पौधों की खेती करना (धारा 17 ग) या व्यापार करना (धारा 17 घ) प्रतिषिद्ध (Prohibited) है।
5. वन्य जीव संरक्षण के लिए राज्य सरकार किसी क्षेत्र को अभ्यारण्य (Santuary) घोषित कर सकती है। कुछ विशिष्ट लोगों को छोड़ कर अभ्यारण में प्रवेश प्रतिबन्धित है।
6. अभ्यारण में विनाश करना, आग लगाना, हथियार के साथ प्रवेश, घातक पदार्थ का उपयोग आदि प्रतिबन्धित है।
7. केन्द्र सरकार द्वारा क्षेत्र विशेष को अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान घोषित करने की शाक्तियों का प्रावधान है। (धारा 88)
8. इस अधिनियम में केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण के गठन का प्रावधान है।
9. वन्य जीवों को शासन की सम्पति घोषित किया गया है। (धारा 39)
10. बिना अनुज्ञप्ति के ट्राफी और पशु वस्तु के व्यापार पर प्रतिबन्ध है। (धारा 44)
11. वन्य जीवों का शिकार, दोषपूर्वक अभिग्रहण या उपबन्धों का उल्लंघन करने पर उसे 5 वर्ष तक का कारावास व 5 से 25 हजार रूपये तक के अर्थदण्ड का प्रावधान है।
12. अपराध को पकड़ने या अपराधियों को गिरफ्तार करने में सहायता देने वालों को पारितोषिक (मुआवजा की राशि का 20 प्रतिशत तक) का प्रावधान है।
13. यह अधिनियम केन्द्र शास्ति अण्डमान निकोबार द्वीप समूह की जनजातियों को प्रदत्त शिकार के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता। (धारा 65)

वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

[Forest (Conservation) Act, 1980]

पारिस्थितिकी सन्तुलन में वनों के महत्व को देखते हुए वर्ष 1858 में वानिकी विभाग (Department of Forestry) की स्थापना की गयी। इसके अगले वर्ष में प्रथम भारतीय वन अधिनियिम (Indian Forest Act) पारित हुआ। इसके पश्चात् वर्ष 1878 तथा 1927 में अन्य वन अधिनियम पारित हुए। भारतीय वन अधिनियम, 1927 वन संरक्षण हेतु आज भी प्रभावी है। सातवें शिड्यूल की सूची ।। में प्रविष्टि 19 के अनुसार वन संरक्षण का काम पहले राज्य सरकार के अधीन था। वनों के राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए वर्ष 1976 में (42वां संशोधन) प्रविष्टि 19 को हटाकर प्रविष्टि 17–ए के द्वारा वनों के संरक्षण की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार को दे दी गयी।

भारतीय वन अधिनियम, 1927 एवं राष्ट्रीय वन नीति, 1952 (व पुनरीक्षित राष्ट्रीय वन नीति, 1988) (National Forest Policy, 1952 and 1988) के बावजूद वनों का क्षरण जारी रहा। इस समस्या के समाधान हेतु भारत के राष्ट्रपति द्वारा वन (संरक्षण) अध्यादेश, 1980 पारित हुआ जिसे बाद में वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 के रूप में मान्यता दी गयी। यह अधिनियम 25 अक्टूबर, 1980 को लागू किया गया। वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 जम्मू–कश्मीर को छोड़कर देश के सभी अन्य प्रांतों व केन्द्र शासित क्षेत्रों में प्रभावी है। इस अधिनियम को 1988 में संशोधित किया गया। इस संशोधित अधिनियम में पांच प्रभाग बनाए गए हैं। 1988 में धारा 3 में संशोधन करके उसके साथ धारा 3A व 3B जोड़े गए हैं। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य एवं विशेषताएं निम्न हैं :–

1. ''वनोन्मूलन से पारिस्थितिकी असंतुलन व पर्यावरण का ह्रास होता है। वनोन्मूलन जो वृहद् स्तर पर जारी है, एक बड़ी चिन्ता का विषय है।'' यह कथन ही इस अधिनियम के पारित होने का मूल आधार है। अर्थात् वनोन्मूलन की प्रभावी रोकथाम करना इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है।
2. इस अधिनियम के प्रावधान सभी प्रकार के वनों पर लागू होंगे।
3. वनों को धनार्जन का साधन न मान कर इनको प्राकृतिक

संसाधन माना जायेगा।

4. राज्य या किसी अन्य सशक्त प्राधिकरण द्वारा वनों को अनारक्षित (dereservation) करने या वन भूमि को गैर वानिकी उपयोग में लाने हेतु केन्द्र सरकार की पूर्व सहमति आवश्यक होगी। (धारा 2)
5. ऐसी अनुमति विकास आदि कार्यो के लिए उस स्थिति में दी जा सकेगी जब समतुल्य क्षेत्र में पुनःवनीकरण की पूर्ण व्यवस्था हो।
6. इस अधिनियम के अनुबंधों का उल्लंघन किसी सरकार अधिकारी या अन्य द्वारा करने पर दण्ड का प्रावधान है।
7. इस अधिनियम में गरीब आदिवासी, जो भूमिहीन हो, के द्वारा किये गये वन भूमि के अतिक्रमण को रोकने का प्रावधान है।

ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम–2000 (Noise Pollution [Regulation and Control] rules-2000)

आज के इस औद्योगिक युग में, निर्माण गतिविधियों, औद्योगीकरण के यंत्रों से उत्पन्न शोर, सार्वजनिक स्थानों में बन्द रहे (जनरेटर, लाउड स्पीकर, पब्लिक एड्रेस सिस्टम, म्यूजिक सिस्टम), वाहनों के शोर से मानवों पर हो रहे हानिकारक प्रभावों को विनियमित करने और वायु गुणवत्ता मानकों को बनाये रखने/नियंत्रित करने के उद्देश्य से सन् 1999 के पर्यावरण और वन मंत्रालय की अधिसूचना S.O. 528 के तहत 28 जून 1999 को ध्वनि प्रदूषण (नियंत्रण और विनियमन) नियम, 1999 का प्रारूप प्रकाशित किया गया। इसके तहत राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक, वाणिज्य, आवासीय चुप्पी एवं विभिन्न क्षेत्रों को शोर मानकों के क्रियान्वयन के उद्देश्य के लिए विभिन्न जोनों में वर्गीकृत किया गया है।

इसके अन्तर्गत राज्य सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि मौजूदा शोर का स्तर परिवेशी वायु गुणवत्ता के नियमों के तहत निर्धारित मानकों से अधिक नहीं हो और शोर को कम करने के लिए भी उपाय किये जायेंगे। विभिन्न प्रकार की विकास गतिविधियों के समय भी ध्वनि प्रदूषण के सभी पहुलओं का ध्यान रखना होगा और वायु गुणवत्ता के मानकों को भी बनाये रखना पहली प्राथमिकता होगी। अस्पतालों के आसपास, शैक्षणिक संस्थानों और अदालतों के 100 मीटर तक के क्षेत्र को चुप्पी क्षेत्र/शांत क्षेत्र घोषित किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जहाँ ध्वनि प्रदूषण के मानक रात्रि में (10 db) से अधिक होने पर सक्षम संस्था को शिकायत कर सकेगा। ध्वनि के संबंध में परिवेशी वायु क्वालिटी मानक इस प्रकार हैं (तालिका 3.1)–

तालिका 3.1 : ध्वनि के संबंध में परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक

क्षेत्र का कोड	क्षेत्र/परिक्षेत्र का प्रवर्ग	डी बी (ए) लैक में सीमा*	
		दिन का समय	रात का समय
(क)	औद्योगिक क्षेत्र	75	70
(ख)	वाणिज्य क्षेत्र	65	55
(ग)	आवासीय क्षेत्र	55	45
(घ)	शान्त परिक्षेत्र	50	40

* डेसीबल (db) ध्वनि मापने का एकक है।

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण कानून (National Green Tribunal Law, 2010)

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित मुद्दों को त्वरित गति से सुलझाने के लिए प्राधिकरण कानून की भारतीय संसद ने 2010 में बनाया। इसका मुख्य ध्येय नागरिकों को स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराना है। 18 अक्टूबर 2010 को न्यायाधीश लोकेश्वर सिंह पंत को इसके प्राधिकरण का प्रथम अध्यक्ष नियुक्त किया गया था।

इसके हरित प्राधिकरण का मुख्य क्षेत्र पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ इससे संबंधित सभी मुद्दे को शामिल किया गया जिससे कि न्यायपालिका पर पड़ रहे बोझ को कम किया जा सके। इसका सेवा क्षेत्र प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बढ़ावा देने के साथ–साथ अन्य प्रकार के सिविल विधियों से भी मुक्ति दिलाना है। किसी भी प्रकार के आवेदन/अपील की निस्तारण का समय सीमा 6 माह रखी गई है। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय देश के पांच शहरों में है जो कि क्रमशः भोपाल, पूना, कोलकता एवं चेन्नई है।

विश्व में इस तरह का प्राधिकरण बनाने वाला भारत तीसरा देश है। इसके अलावा केवल आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में ही ऐसे न्यायालय है।

इस प्राधिकरण में दस विषय विशेषज्ञ और दस न्यायिक सदस्य होते हैं जो कि 20 तक हो सकते हैं। इसके अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं वे भी एक सदस्य के रूप में काम करते हैं। बाकी सदस्यों का चयन एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति करती है। जो कि सचिव स्तर के पद से नीचे नहीं हो सकता तथा उन्हें न्यूनतम पांच वर्ष का प्रशासनिक अनुभव हो या उस क्षेत्र में विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त की हो।

इस तरह यह प्राधिकरण वन संरक्षण अधिनियम, जैव विविधता अधिनियम, पर्यावरण के रूप में कई कृत्यों के मामलों के साथ जल, वायु प्रदूषण की रोकथाम की सुनवाई करने में भी सक्षम है।

पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Legislation for Environmental Protection)

राष्ट्रीय स्तर पर सभी देशों ने पर्यावरण के संरक्षण हेतु विभिन्न कानूनों का निर्माण किया है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा कोई भी आयोग नहीं है जो पर्यावरण संरक्षण से संबंधित कोई नियम बना सके। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय कानून प्रणाली को सभी समूहों की सहमति पर निर्भर होना पड़ता है। बहुद्देशीय स्तर पर कुछ मुद्दों का संबोधन उन नीतियों, समझौतों एवं संधियों का मिलाजुला कार्य है जिन्हें हम अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून के नाम से जानते हैं।

इन कानूनों एवं नियमों की पालना सभी स्वेच्छा से करते हैं। यह सहमति प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय संधियों या समझौतों के माध्यम से पारित होती है, जिस पर विभिन्न देशों की सहमति होती है। ये सभी देश पार्टी के नाम से जाने जाते हैं। यह समझौता एक ढांचा प्रदान करता है, जिसका सम्मान प्रत्येक प्रतिनिधि देश को करना पड़ता है। प्रत्येक प्रतिनिधि देश का यह कर्तव्य है कि अपनी राष्ट्रीय कानून प्रणाली के माध्यम से इस समझौते को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करे। इन समझौतों के सहयोग हेतु कभी–कभी प्रोटोकॉल भी बनाने पड़ते हैं।

प्रोटोकॉल एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सहमति है जो स्वयं अपने बल पर खड़ी होती है, परन्तु इसका वर्तमान समझौते से भी गहरा संबंध होता है। प्रोटोकॉल समझौतों में दी गई जानकारी पर आगे नई बातों का विकास करता है।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल–1987 (Montreal Protocol-1987)

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि है जो कि ओजोन परत में होने वाले विभिन्न प्रकार के क्षय को रोकने के लिए 16 सितम्बर 1987 को बनी थी। यह संधि विभिन्न सदस्य देशों के बीच में 1 जनवरी 1989 को हेल्नासिंकी में प्रभावी हुई। तब से आज तक इस संधि में 8 बार संशोधन हो चुके हैं। यह संशोधन क्रमशः लंदन (1990), नैरोबी (1999), कोपनहेगन (1992), बैंकाक (1933), वियना (1995), मॉन्ट्रियल (1997), ऑस्ट्रेलिया (1998), बीजिंग (1999) और मॉन्ट्रियल (2007)।

इस समझौते के फलस्वरूप ही अण्टार्कटिका में हुआ ओजोन छिद्र धीरे–धीरे ठीक हो रहा है। जलवायु अनुमानों से संकेत मिलता है कि ओजोन परत का स्वरूप 2050–2070 के बीच 1980 के ओजोन स्तर पर पुनः आ जायेगा। यह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के आपसी सहयोग का एक अनुपम उदाहरण है और विश्व की सबसे सफल संधि है, जबकि क्योटो प्रोटोकॉल आपसी मतभेदों के कारण सफल नहीं हो सका था क्योंकि जहाँ तक ओजोन परत के खतरे का प्रश्न है वैज्ञानिक आम सहमति से पहले ही विश्व समुदाय में इसके लिए आम सहमति बननी शुरू हो गयी थी। विश्व समुदाय भी इससे होने वाले खतरों के बारे में जानने लगा था। अब तक दो ओजोन संधियाँ हो चुकी हैं जिनकी सहमति 197 देशों के साथ ही कई संघों ने की है। यह संधि संयुक्त राष्ट्र के इतिहास में सबसे सफल संधि के रूप में जानी जाती है।

क्योटो प्रोटोकॉल–1997 (Kyoto Protocol-1997)

क्योटो प्रोटोकॉल एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि है जो कि जलवायु परिवर्तन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के मानकों के अनुरूप विभिन्न देशों को गैस उत्सर्जन में कमी करने के लक्ष्यों को बाध्य करती है।

यह जानते हुए कि आज के इस औद्योगिक युग में विकसित देश ही मुख्य रूप अत्यधिक गैस उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी है। यह समझौता जापान के शहर क्योटो में 11 दिसम्बर 1997 को हुआ और प्रभावी रूप 16 फरवरी 2005 को लागू किया गया। इसके अन्तर्गत 37 देशों के साथ ही यूरोपीय संघ ने तय किया कि वे मौजूदा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 18 प्रतिशत तक कमी लायेंगे और सन् 2020 तक इस गैस उत्सर्जन को सन् 1990 के गैस उत्सर्जन स्तर तक लाने में सक्षम होंगे।

इसी संधि को कुछ नये आयामों के साथ दोहा समझौता किया गया। साथ ही कुछ गैसों के नामों में संशोधन किया गया। यह समझौता 8 दिसम्बर 2012 को हुआ।

स्टॉकहोम सम्मेलन (Stockholm Conference)

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित संभावित खतरों से विश्व में जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से प्रथम बार संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में 3–16 जून, 1972 में स्वीडन के स्टॉकहोम में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसे स्टॉकहोम पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन, 1972 के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन में मानवीय पर्यावरण घोषणाओं को स्वीकृत किया गया। इसके प्रमुख दो भाग थे जिसके प्रथम भाग में मनुष्य व उसके पर्यावरण के संबंध में ज्ञात सत्यों की घोषणा है और द्वितीय भाग में 26 सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत निम्नानुसार है–

(i) पृथ्वी के सभी संसाधनों जिसमें जल, वायु, स्थल, जीव जन्तु तथा प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न प्रकार शामिल है, उनका संरक्षण, उचित प्रबन्धन एवं विचारपूर्ण योजनाओं के माध्यम में वर्तमान व भावी पीढ़ी के हित में किया जाना चाहिए।

(ii) मनुष्य को स्वच्छ व उपयुक्त पर्यावरण में स्वतंत्रता, समानता एवं जीवन की पर्याप्त स्थितियों का मूल अधिकार है। यह

अधिकार उसे गरिमापूर्ण व स्वस्थ जीवनयापन की अनुमति प्रदान करता है। उसे वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा व सुधार करने का दायित्व भी प्रदान करता है।

(iii) सभी प्रांत मानव स्वास्थ्य प्रति खतरा उत्पन्न करने, जीवित संसाधनों, समुद्री जीवन को हानि पहुँचाने, समुद्री प्रदूषण को रोकने के लिए सभी सम्भव कदम उठायेंगे।

(iv) सभी प्रांतों को उनकी पर्यावरणीय नीतियों के अनुरूप संसाधनों के दोहन का पूर्ण अधिकार है। लेकिन उनका यह सुनिश्चित करने का दायित्व भी है कि उनके अधिकार या नियंत्रण में लेने वाले क्रियाकलापों से उन राज्यों से या उनकी सीमा के बाहर के क्षेत्रों के पर्यावरण को हानि नहीं पहुँचायेंगे।

(v) प्रांत अपने अधिकारों तथा नियंत्रण के अन्तर्गत किये गये कार्यों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण तथा अन्य पर्यावरण क्षति से पीड़ितों के लिए दायित्व के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय विधि को आगे विकास करने में सहयोग करेंगे।

इस स्टॉकहोम सम्मेलन की तुलना विचारकों ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा से की है तथा विचार प्रकट किया है कि यह नैतिक संहिता के रूप में पेश किया गया एक घोषणा पत्र है जिससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भविष्य में मानव के क्रियाकलापों पर नियंत्रण व प्रभाव रहेगा।

स्टॉकहोम संगोष्ठी में 114 राष्ट्रों ने भाग लिया। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्टॉकहोम सम्मेलन में भाग लिया था तथा भारत के लिए एक विशिष्ट पर्यावरण नीति की घोषणा की थी। हालांकि भारत में पर्यावरण के प्रति जागरूकता का उदय 3 दिसम्बर 1984 की भोपाल गैस त्रासदी के बाद हुआ। पर्यावरणविदों, सरकारी निकायों, स्वेच्छिक संगठनों ने इस बात को महसूस किया कि मानव को पर्यावरण की सीमाओं में रहकर अपना जीवन व्यतीत करना होगा। प्रकृति से किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ करने से उसकी जान–माल की हानि की पूर्ण संभावना रहेगी। पर्यावरण को सुरक्षित करके ही अपने आप को सुरक्षित रखना होगा।

रामसर समझौता (Ramsar Convention)

यह अन्तर्राष्ट्रीय समझौता 2 फरवरी 1971 में पारित हुआ था जो आर्द्र भूमि के संरक्षण का सदुपयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का ढांचा प्रदान करता है। संयुक्त राष्ट्र की शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) ने इसमें सूत्रधार की भूमिका का निर्वहन किया। भारत ने इस समझौते पर 1981 में अपने हस्ताक्षर किए। इसका मुख्य कार्यालय रामसर ब्यूरो ग्लाण्ड, स्विटजरलैण्ड में स्थित है।

इस समझौते के उद्देश्य में मुख्य रूप से जलीय भूमि की हानि को रोकना, पेड़–पौधों और पशुओं और उनसे संबंधित पर्यावरणीय प्रक्रियाओं का संरक्षण करना है। इस समझौते के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार है–

(i) एक या अधिक आर्द्र भूमि वाले स्थानों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्र भूमि स्थलों की सूची में सम्मिलित करना।

(ii) आर्द्र भूमि क्षेत्रों के संरक्षण को प्रोत्साहित करना।

(iii) मेन्ग्रोव पादप स्थलों के बुद्धिमतापूर्ण प्रयोग को प्रोत्साहित करना।

(iv) समझौता लागू करने हेतु अन्य प्रांतों से सलाह कर, दो या अधिक देशों के मध्य पड़ने वाली आर्द्र भूमि, आपस में वितरित होने वाली नदी, जलाशय आदि जल व्यवस्थाएं एवं प्रजातियों के भाग के संबंध में निर्णय करना।

(v) आर्द्र भूमि क्षेत्रों की योजनाओं के विकास के संबंध में चर्चा करना।

(vi) आर्द्र क्षेत्रों के संबंध में अनुसंधान एवं संचालन प्रशिक्षण को प्रोत्साहन देना।

(vii) वाटर फाउल के लाभ के लिए जलीय क्षेत्रों के संचालन समझौते में सूचना निर्धारित करना।

(viii) आर्द्र भूमि रिजर्व स्थलों की स्थापना करना।

भारत में अब तक लगभग 25 रामसर आर्द्र भूमि स्थल चिन्हित किये जा चुके हैं जो विभिन्न राज्यों उड़ीसा, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, राजस्थान, केरल, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश एवं त्रिपुरा में स्थित है। भारत में पांच सबसे बड़ी आर्द्र भूमि एवं रामसर स्थल है जो वेम्बानद, चिलका, कोलेक, अस्थामुडी एवं लोकटक झील है।

पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit)

3–14 जून 1992 को रियो डी जेनेरो में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन हुआ। संयुक्त राष्ट्र की पर्यावरण एवं विकास अधिवेशन (UNCED) की महत्वपूर्ण संधि की पहल को जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के अधिवेशन के नाम से भी जाना जाता है। यह अधिवेशन भागीदार देशों को इस बात के लिए बाध्य करता है कि मानव द्वारा छोड़ी जाने वाली ग्रीन हाउस गैसों के ऐसे स्तर को संचालित रख सके जो पर्यावरण व्यवस्था के साथ अधिक हस्तक्षेप न कर सके। इस सम्मेलन में 172 देशों तथा 2400 गैर सरकारी संगठन प्रतिनिधियों ने अपना प्रतिनिधित्व किया।

इस सम्मेलन में पर्यावरण की दीर्घोपयोगी विकास की अवधारणा को विकसित करने पर बल दिया गया था। इस समझौते पर 150 से अधिक देशों ने हस्ताक्षर किये थे। भारत ने 1994 में इस समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस सम्मेलन के प्रमुख प्रस्ताव निम्न प्रकार थे–

(i) मानव जाति दीर्घोपयोगी विकास के केन्द्र है तथा प्रकृति के साथ मानव स्वस्थ एवं उत्पादकता वाला जीवन जीने का हकदार है।

(ii) सभी प्रांत गरीबी दूर करने में एक दूसरे का सहयोग करे।

(iii) समस्त मानवों का अधिकार है कि वे स्वयं के विकास हेतु सामान्य संतोषप्रद पर्यावरण में वास करे।

;iv) सभी मनुष्य संसाधनों को न्यायोचित प्रयोग करे। भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखने हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

(v) सभी प्रांत पर्यावरण संरक्षण संबंधी निर्देशों को जनमानस में पहुँचाए।

(vi) प्रांत पर्यावरण संरक्षण संबंधी कानूनों का सख्ती से पालना कराए।

(vii) पर्यावरणीय प्रदूषण के स्त्रोतों का पता लगाकर उनके नियंत्रण द्वारा प्रदूषण को कम या सीमित करे।

(viii) मनुष्य का अधिकार है कि वह अच्छी गुणवत्ता वाले पर्यावरण में वास करे जहाँ उसका जीवन स्तर उच्च किस्म का हो।

(ix) जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को कम कर ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों का उपयोग करे। इससे प्रदूषण कम होने के साथ—साथ ऊर्जा संरक्षण भी होगा।

(x) जन यातायात के साधनों के प्रयोग में सावधानी बरतकर प्रदूषण के स्तर को कम किया जाए।

पर्यावरण कानूनों को लागू करने में बाधाएं

(Issues Involved in Enforcement of Environmental Legislation)

जैसा कि ऊपर वर्णित है, केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा पर्यावरण सूरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, जल तथा वायु प्रदूषण नियंत्रण, वन्य जीव संरक्षण आदि से सम्बन्धित अनेक अधिनियम पारित किये गये हैं। लेकिन इन अधिनियमों को लागू करने में अनेक बाधाएं आती हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :–

1. बढ़ती हुई जनसंख्या : अधिक जनसंख्या दबाव के कारण पर्यावरणीय कानूनों को लागू करने के लिए बहुत अधिक धन, समय तथा जनशक्ति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अधिक जनसंख्या अपने आप में पर्यावरणीय कानूनों के लागू करने में सबसे बड़ी बाधक है।

2. अशिक्षाः पर्यावरण कानूनों को लागू करने में शिक्षा की बड़ी अहम् भूमिका होती है। विकासशील देशों में जहां शिक्षा का स्तर बहुत कम है वहां पर्यावरण कानूनों को लागू करने मे अधिक बाधाएं आती हैं, क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति इन कानूनों के महत्त्व को नहीं समझता।

3. अनभिज्ञताः अनेक शिक्षित लोग भी पर्यावरणीय कानूनों से अनभिज्ञ हैं। अतः पर्यावरणीय कानूनों को लागू करने के लिए शिक्षित लोगों को भी इन कानूनों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इसके लिए इन कानूनों के अर्थ व महत्त्व का व्यापक प्रचार—प्रसार आवश्यक है।

4. पर्याप्त कानून का अभावः वैसे तो पर्यावरण सुरक्षा व संरक्षण हेतु अनेक कानून बनाये गये हैं, फिर भी वन व वन्य जीवों के उपयोग व व्यवसाय, जलाशयों को गन्दा करने से रोकने, खनन आदि से सम्बन्धित मामलों में पर्याप्त कानूनों का अभाव है। कुछ मामलों में कानूनों में खामियां भी हैं, लोग जिसका अनुचित फायदा उठाते है।

5. आर्थिक कारण : अधिक लाभार्जन के लालच में गलत तरीके से संसाधनों का दोहन होता है। हमारे देश में थोड़े से पैसों की रिश्वत देकर किसी अधिकारी से गलत तरीके से अनुमति प्राप्त कर लेना एक आम बात हो गयी है। छोटे उद्योगों में आर्थिक तंगी के कारण अपशिष्टों का पुनर्चक्रण नहीं किया जा सकता। बड़े—बड़े उद्योगपति तथा तस्कर धन के लालच में कानूनी खामियां का फायदा उठाते हैं।

6. धार्मिक रीति—रिवाज : विभिन्न धार्मिक आयोजनों के तहत् मूर्तियों, ताजियों, पूजा, सामग्री आदि को जलाशयों में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रकार के मुद्दे चूंकि जनभावना से जुड़े होते हैं, इसलिए इनमें पर्यावरणीय कानूनों का सख्ती से पालन नहीं किया जा सकता।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम सम्पूर्ण भारत में 19 नवम्बर 1986 से लागू है। जिसमें चार अध्याय एवं 26 धाराएं हैं।
2. वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 16 मई 1981 से लागू है जिसमें 7 अध्याय एवं 54 धाराएं लागू हैं।
3. जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 23 मार्च, 1974 से 12 राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों में लागू किया गया। जिसे 1978 व 1988 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम में 8 अध्याय एवं 64 धाराएं हैं।
4. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 9 दिसम्बर, 1972 में लागू किया गया। जम्मू कश्मीर को छोड़कर यह पूरे देश में लागू है। इसे 1982 एवं 1986 में संशोधित किया गया। इसमें 7 अध्याय, 6 अनुसूचियाँ एवं 66 धाराएं हैं।
5. वन संरक्षण अधिनियम 25 अक्टूबर, 1980 में लागू किया गया। जो जम्मू कश्मीर को छोड़कर सभी राज्यों में प्रभावी है।
6. प्रोटोकॉल वह अन्तर्राष्ट्रीय सहमति है जो स्वयं पर निर्भर होने के साथ—साथ किसी वर्तमान समझौते या संधि से भी संबंधित है।

7. मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल का उद्देश्य मानव द्वारा निर्मित ओजोन की परत को क्षीण करने वाले पदार्थों की मात्रा को कम या बिल्कुल समाप्त करना है।
8. क्योटो प्रोटोकॉल 1997 में जापान में क्योटो में दिया गया जिसमें 38 औद्योगिक देशों को कार्बन उत्सर्जन को 2008–12 के मध्य 5.2 प्रतिशत औसत के अनुसार 1990 के स्तर पर लाने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य किया गया।
9. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51–ए में 42वां संशोधन पर्यावरण के संरक्षण एवं उसमें सुधार को एक मूल कर्तव्य का रूप देता है।
10. भारतीय संविधान का 48–ए अनुच्छेद यह स्पष्ट करता है कि राज्य का कर्तव्य है कि वह न केवल पर्यावरण का बचाव व सुधार करे बल्कि देश के वनों और वन्य जीवों का भी संरक्षण करे।
11. 1972 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन मानवीय पर्यावरण से संबंधित था जो स्टॉकहोम में आयोजित किया गया। इसके पश्चात् भारत में पर्यावरण संरक्षण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।
12. जल प्रदूषण अधिनियम 1974 का मुख्य उद्देश्य जल प्रदूषण के नियंत्रण एवं उपचार और जल की स्वच्छता व पेयता को कायम रखना है।
13. 5 जून 1992 को संयुक्त राज्य संघ के पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन रियो डी जनेरियो में हुआ था जो जैव विविधता के संरक्षण पर आधारित था।
14. पर्यावरण संरक्षण से संबंधित कानूनों को लागू करने में अशिक्षा, बढ़ती जनसंख्या, अनभिज्ञता, पर्याप्त कानूनों का अभाव, धार्मिक रीति–रिवाज जैसी प्रमुख बाधाएं हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम कब लागू हुआ?
   (अ) 19 नवम्बर 1986 (ब) 2 दिसम्बर 1984
   (स) 27 मई 1964 (द) 16 मई 1981
2. पर्यावरण संरक्षण में कितने अध्याय व धाराएं हैं–
   (अ) 7 अध्याय 54 धाराएं
   (ब) 4 अध्याय 26 धाराएं
   (स) 5 अध्याय 46 धाराएं
   (द) 2 अध्याय 21 धाराएं
3. जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम सर्वप्रथम कब लागू हुआ–
   (अ) 23 मार्च 1974 (ब) 19 नवम्बर 1986
   (स) 9 दिसम्बर 1972 (द) 25 अक्टूबर 1980
4. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम कब लागू हुआ–
   (अ) 23 मार्च 1974 (ब) 2 दिसम्बर 1984
   (स) 9 दिसम्बर 1972 (द) 25 अक्टूबर 1980
5. वन संरक्षण अधिनियम किस वर्ष में लागू हुआ–
   (अ) 1954 (ब) 1972
   (स) 1978 (द) 1980
6. भारत में वानिकी विभाग की स्थापना कब हुई–
   (अ) 1852 (ब) 1858
   (स) 1878 (द) 1927
7. वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम कब लागू हुआ–
   (अ) 16 मई 1981 (ब) 9 दिसम्बर 1972
   (स) 23 मार्च 1974 (द) 2 दिसम्बर 1984
8. प्रथम भारतीय वन अधिनियम कब पारित हुआ–
   (अ) 1858 (ब) 1859
   (स) 1878 (द) 1952
9. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम भारत के किस राज्य में लागू नहीं है–
   (अ) पश्चिमी बंगाल (ब) जम्मू–कश्मीर
   (स) आसाम (द) केरल
10. पर्यावरण कानून को लागू करने में प्रमुख बाधाएं है–
    (अ) बढ़ती जनसंख्या
    (ब) अशिक्षा
    (स) धार्मिक रीति–रिवाज
    (द) उपरोक्त सभी
11. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम की किस धारा के तहत भारत सरकार को किसी क्षेत्र विशेष को अभ्यारण या राष्ट्रीय उद्यान घोषित करने का अधिकार है–
    (अ) धारा 39 (ब) धारा 44
    (स) धारा 65 (द) धारा 88
12. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में पर्यावरण संरक्षण को नागरिकों का मूल कर्तव्य माना गया है–
    (अ) अनुच्छेद 21 (ब) अनुच्छेद 48–क
    (स) अनुच्छेद 49 (द) अनुच्छेद 51–क
13. पृथ्वी सम्मेलन कहाँ सम्पन्न हुआ–
    (अ) पेरिस (ब) जेनेवा
    (स) रियो डी जनेरियो (द) जापान
14. जैव विविधता अधिवेशन कब हुआ–
    (अ) 5 जून 1992 (ब) 2 दिसम्बर 1997
    (स) 29 दिसम्बर 1993 (द) 6 मई 1987
15. मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल संबंधित है–
    (अ) जैव विविधता संरक्षण

(ब) ओजोन परत संरक्षण

(स) वन्यजीव संरक्षण

(द) वन संरक्षण

16. जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य है–

(अ) जल की स्वच्छता एवं पेयता कायम रखना

(ब) जल प्रदूषण का नियंत्रण करना

(स) जल प्रदूषकों का उपचार करना

(द) उपरोक्त सभी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. भारतीय संविधान के 48–क में क्या प्रावधान है?
2. भारतीय संविधान के 51–क अनुच्छेद में क्या व्यवस्था है?
3. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम क्या है व कब लागू हुआ?
4. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की कोई चार धाराएं लिखिए।
5. वायु प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम कब लागू हुआ?
6. वायु प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम की कोई चार धाराएं लिखिए।
7. जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम कब लागू हुआ तथा इसका संशोधन कब–कब हुआ?
8. जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम की मुख्य विशेषताएं लिखिए।
9. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम भारत में कब व कहाँ लागू हुआ?इसका संशोधन कब–कब हुआ?
10. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं क्या है?
11. वन संरक्षण अधिनियम भारत में कब लागू हुआ तथा भारत में राष्ट्रीय वन नीति कब बनी?
12. वन संरक्षण अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य क्या है?
13. पर्यावरण कानूनों को लागू करने में आने वाली प्रमुख तीन बाधाएं कौनसी हैं?
14. मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल क्या है?
15. शोर प्रदूषण अधिनियम कब लागू हुआ?
16. स्टॉकहोम सम्मेलन की प्रमुख थीम क्या थी?
17. क्योटो प्रोटोकॉल का प्रमुख निष्कर्ष क्या था?
18. राष्ट्रीय हरित ट्रिब्यूनल अधिनियम कब प्रस्तुत किया गया?
19. पृथ्वी सम्मेलन कब हुआ?इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य क्या था?
20. प्रोटोकॉल क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. क्योटो प्रोटोकॉल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. वन संरक्षण अधिनियम पर टिप्पणी लिखिए।
4. जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम की प्रमुख धाराओं पर लेख लिखिए।
5. वायु प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. भारतीय संविधान के किन विभिन्न अनुच्छेदों में पर्यावरण की सुरक्षा व विकास का प्रावधान है?वर्णन कीजिए।
7. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
8. शोर प्रदूषण अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं क्या है?वर्णन कीजिए।
9. स्टॉकहोम सम्मेलन के प्रमुख उद्देश्य क्या थे?सम्मेलन में क्या प्रस्ताव पारित किये गए?
10. पृथ्वी सम्मेलन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. भारत में वन एवं वन्य जीव संरक्षण से संबंधित अधिनियमों को विस्तार से समझाइए?
2. भारत में जल, वायु एवं शोर प्रदूषण संबंधी अधिनियमों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. जलवायु अधिवेशन क्या है?वैश्विक ताप वृद्धि को रोकने के लिए हुए प्रयासों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. पर्यावरण कानूनों को लागू करने में आने वाली प्रमुख बाधाओं का वर्णन कीजिए।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

(अ) राष्ट्रीय हरित ट्रिब्यूनल अधिनियम

(ब) पृथ्वी सम्मेलन

(स) क्योटो प्रोटोकॉल

(द) पर्यावरणीय सुरक्षा अधिनियम

उत्तरमाला: 1 (अ) 2 (ब) 3 (अ) 4 (स) 5 (द) 6 (ब) 7 (अ) 8 (ब) 9 (ब) 10 (द) 11 (द) 12 (द) 13 (स) 14 (अ) 15 (ब) 16 (द)

इकाई – 4
पर्यावरणीय जैवप्रौद्योगिकी
(Environmental Biotechnology)

परिचय (Introduction)

बढ़ते हुए औद्योगीकरण व शहरीकरण ने पर्यावरण प्रदूषण जैसी गंभीर समस्याओं को जन्म दिया है। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण के मूल घटक जल, वायु व भूमि प्रदूषण का शिकार हुए हैं। पर्यावरण जैवप्रौद्योगिकी जीवविज्ञान की वह शाखा है जिसमें पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न अपशिष्ट जल, ठोस अपशिष्ट, अपशिष्ट मृदा आदि की सफाई कर उसे उपचारित कर पुनः प्रयोग की स्थिति में लाया जाता है। बढ़ती हुई जनचेतना के अनुरूप पर्यावरण की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। नई राजनीतिक व अर्थशास्त्र नीति के कारण बायोरेमिडियेशन एवं जैवपुनर्स्थापन तकनीकों का प्रयोग बढ़ा है जिसके फलस्वरूप मृदा एवं भूजल का स्वच्छीकरण संभव हो सका है।

अपशिष्ट जल उपचार (Waste Water Treatment)

वह जल जिसमें उपस्थित विभिन्न अशुद्धियों के कारण उसका लाभदायक उपयोग संभव न हो सके, अपशिष्ट जल कहलाता है। यह अपशिष्ट जल यदि पर्यावरण को क्षति पहुँचाये तो इसे प्रदूषक कहते हैं। अपशिष्ट जल में उपस्थित कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों की मात्रा के आधार पर प्रदूषण को मापा जाता है। प्रदूषण मापन की विभिन्न विधियाँ जैसे जैविक आक्सीजन आवश्यकता (Biological Oxygen Demand, BOD), रासायनिक आक्सीजन आवश्यकता (Chemical Oxygen Demand, COD) निलम्बित

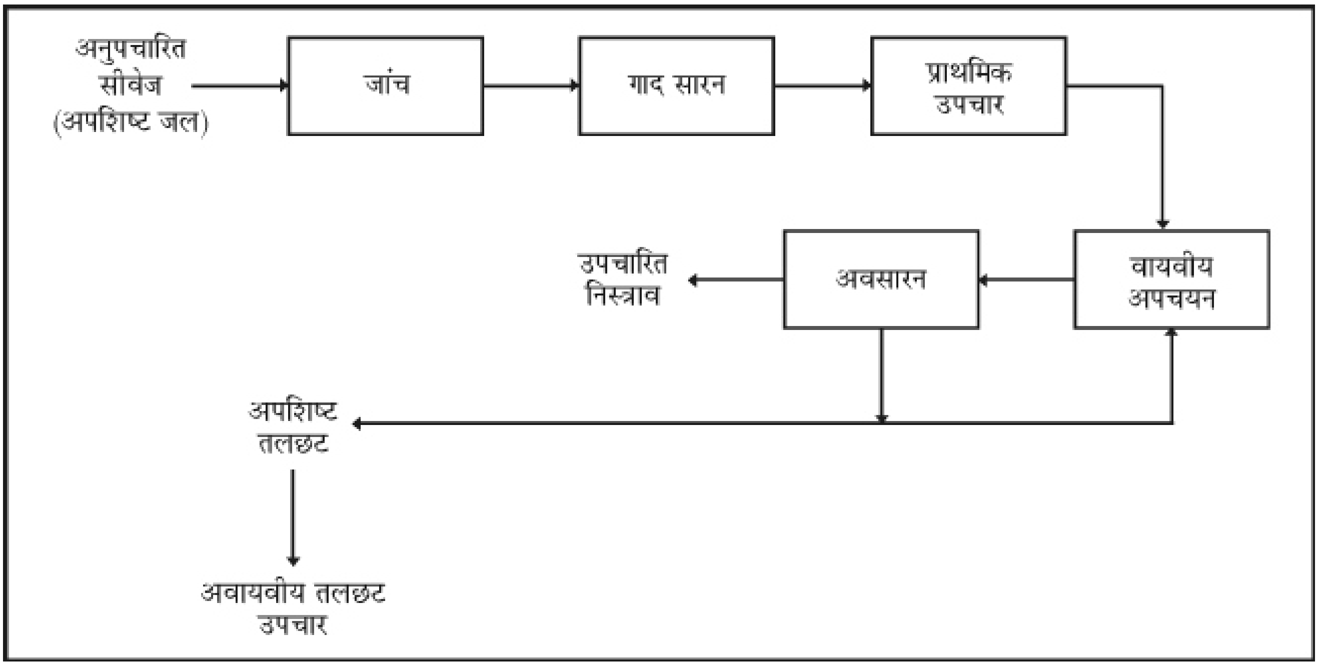

चित्र 4.1 : अपशिष्ट जल उपचार की विधि

ठोस, जैविक सूचक आदि है।

अपशिष्ट जल के उपचार की निम्न 5 अवस्थाएं होती हैं (चित्र 4.1) – (1) आरम्भिक उपचार (2) प्राथमिक उपचार (3) द्वितीयक उपचार (4) तृतीयक उपचार (5) आपंक उपचार।

उपरोक्त में से प्रथम चार प्रावस्थाएं वायवी एवं अवायवी दोनों ही विधियों में होती है, लेकिन आपंक उपचार विधि अवायवी होती है।

1. आरम्भिक उपचारः इस प्रक्रिया में जल में तैरने वाले ठोस पदार्थों को छानकर तथा निलंबित ठोस को सादन (Setting) द्वारा अलग किया जाता है।

2. प्राथमिक उपचारः इसके लिए ऊर्ध्व, क्षैतिज, अरीय बहाव वाले सादन टेंक काम में लेते है। जल के टेंक में प्रवेश से उसके टेंक से बाहर आने की अवधि (आवास समय) 15–45 मिनट होती है। इस अवधि में अधिकांश निलम्बित अशुद्धियां टेंक के तल पर जमा हो जाती है या जल के सतह पर मलफेन के रूप में तैरने लगती है। इस प्रक्रिया में जल की BOD में 40 प्रतिशत कमी आ जाती है। इस टेंक से प्राप्त सीवेज सादित सीवेज (Settled Sewage) कहलाता है।

3. द्वितीयक उपचारः इसमें जल में घुले निलम्बित कार्बनिक पदार्थों का वायवीय या अवायवीय पाचन किया जाता है।

4. तृतीयक उपचारः इस प्रक्रिया में जैव उपचारित अपशिष्ट जल से निलम्बित कार्बनिक पदार्थों तथा फास्फेट आदि विशिष्ट यौगिकों को हटाया जाता है, जिससे जल की BOD ओर घट जाती है, ये क्रियाएँ भौतिक या रासायनिक होती है। फास्फेट को हटाने के लिए इसे फिटकरी या चूने से अवक्षेपित किया जाता है और अवक्षेप को छानकर अलग कर लेते है।

5. आपंक उपचारः उपचार के दौरान सादित (Settled) ठोस पदार्थों को आपंक कहते हैं। इसका उपचार मुख्य रूप से अवायवीय होता है।

अपशिष्ट जल का अवायवीय उपचार

इस प्रक्रिया में एक बड़ा सेप्टिक टेंक लिया जाता है जिसमें अवसादन एवं पाचन क्रिया सम्पन्न होती है। आजकल सेप्टिक टेंक में बाधिका (Buffles) लगायी जाती है, जो अवसादन में

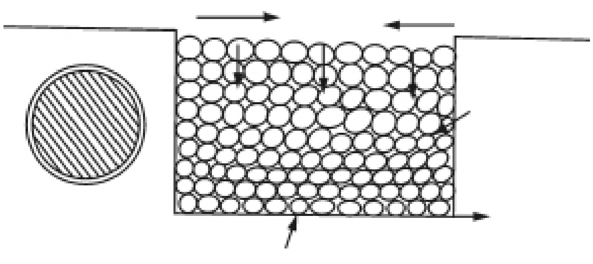

चित्र 4.2 : च्यावी फिल्टर

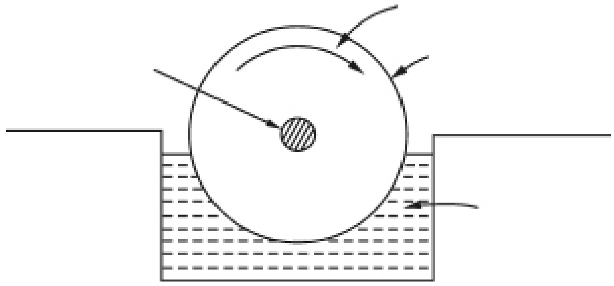

चित्र 4.3 : च्यावी फिल्टर

सहायक होती है (चित्र 4.2 एवं 4.3)। साथ ही पाचन की दक्षता बढ़ाने हेतु विभिन्न विधियों द्वारा सूक्ष्म जीवों की संख्या भी बढ़ायी जाती है।

सूक्ष्म जीवः अवायवीय पाचन की क्रिया में सूक्ष्मजीव प्रमुखतः जीवाणु आदि लिपिड, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायक होते है तथा मिथेन व CO_2 उत्पादित करते हैं।

1. डिसल्फोविब्रियो जैसे जीवाणु कार्बनिक अणुओं के आक्सीकरण हेतु सल्फर को इलेक्ट्रॉन ग्राही के रूप में उपयोग करते है। जिससे सल्फेट का सल्फाइड में अपचयन होता है।

कार्बनिक पदार्थ   आक्सीकृत कार्बनिक पदार्थ

2. विनाइट्रीकारी जीवाणु कार्बनिक अणुओं के आक्सीकरण के लिए NO_3^- को इलेक्ट्रॉन ग्राही के रूप में उपयोग करते है, जिससे NO_3 (नाइट्रेट) का अपचयन होता है। उदासीन pH पर इस प्रक्रिया में नाइट्रोजन (N_2) बनती है, जबकि अम्लीय pH पर नाइट्रोजन ऑक्साइड बनता है।

   कार्बनिक पदार्थ   आक्सीकृत आर्बनिक पदार्थ।

3. मिथेनोजेनिक जीवाणु में उपस्थित सहकारकों (Coactors) जैसे मिथेनोप्टेरिन, मिथेनोफ्यूरेन एवं कोएन्जाइम M की सहायता से जीवाणु CO_2 को मिथेन (CH_4) में अपचयित करते हैं।

फिल्टर के गुटकों के चारों ओर सूक्ष्मजीवों द्वारा निर्मित एक जैविक फिल्म होती है। अपशिष्ट जल के प्रवाह की दिशा तीरों से इंगित है।

आपंक (Sludge) उपचारः सीवेज आपंक के उपचार द्वारा उसमें रोगजनकों का नाश किया जाता है तथा दुर्गंध में कमी आती है। ऐसे उपचारित आपंक को खेती में उर्वरक के रूप में काम में लेते है। उपचार के लिए प्राप्त आपंक तीन प्रकार का हो सकता है – (1) प्राथमिक उपचार के बाद प्राप्त अवसाद (Sediment) (2) वायवीय उपचार के बाद प्राप्त सक्रियत आपंक (3) प्राथमिक उपचार के दौरान उत्पन्न मलफेन (Scum)।

आपंक उपचार हेतु प्रयुक्त संपाचित्र में दो टैंक होते है, प्रथम

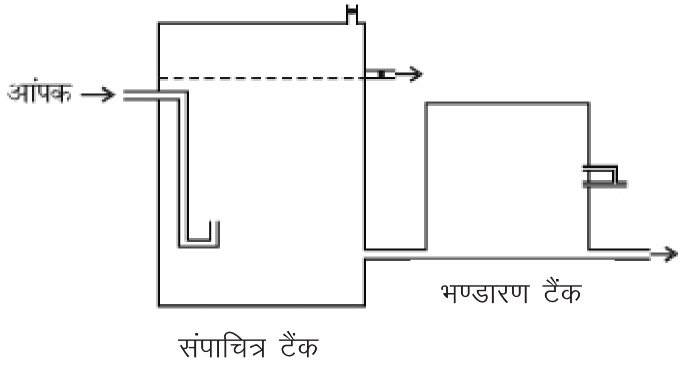

चित्र 4.4 : दो टैंकों वाली आपंक उपचार पद्धति

संपाचित्र टैंक तथा द्वितीय भण्डारण टैंक (चित्र 4.4)। आपंक को संपाचित्र टैंक में 30–40 मिनट तक रखा जाता है। इसमें आपकं धीरे– धीरे संहत (Compact) होता जाता है। आपंक संपाचित्रों की दक्षता का नियंत्रण संभव नहीं होता है, लेकिन यह जलवायु ऋतु परिवर्तन, आविषालु जैवअपघटनीय पदार्थों की उपस्थिति से प्रभावित होता है।

ठोस अपशिष्टः स्रोत, उपचार एवं प्रबन्धन

(Solid Waste: Sources, Treatment and Management)

ऐसे ठोस पदार्थ जिन्हें कचरे के रूप में फैंक दिया जाता है, जैसे पॉलीथीन, प्लास्टिक के डिब्बे, क्रॉकरी, पैकिंग सामग्री तथा इमारतों के निर्माण के बाद बचे व्यर्थ पदार्थ, उर्वरक, कागज उद्योग, रसायन संयंत्रों, पेट्रोलियम इकाईयों से निकले पदार्थ ठोस अपशिष्ट (Solid waste) के अन्तर्गत आते है।

विघटन के आधार पर ठोस अपशिष्ट दो प्रकार के होते है–

1. विघटनकारी प्रदूषक (Degradable Pollutants): ऐसे ठोस अपशिष्ट जो अपघटकों द्वारा विघटित होकर सरल पदार्थों में विभाजित हो जाते है, उसे विघटनकारी अपशिष्ट कहते हैं, जैसे सड़े गले फल, सब्जियां, घरेलू कचरा, मलमूत्र आदि।

2. अविघटनकारी प्रदूषक (Non-degradable Pollutants): ऐसे ठोस अपशिष्ट जो अपघटकों द्वारा अपघटित नहीं होते हैं और ये अपरिवर्तित रहते हैं, अविघटनकारी प्रदूषक कहलाते हैं। जैसे डी.डी.टी. , बी.एच.सी., एल्ड्रीन, टिन, एल्यूमिनियम आदि। ऐसे प्रदूषक जीवों में भोजन श्रृंखला एवं जैव–भू–रसायन चक्रों द्वारा संचित होते रहते है, इस क्रिया को जैवआवर्द्धन (Biomagnification) कहते हैं।

प्रभाव के आधार पर ठोस अपशिष्ट दो प्रकार के होते हैं–

1. प्रकोप युक्त अपशिष्ट (Hazardous Waste): ऐसे अपशिष्टों का पर्यावरणीय मानक नहीं होता है, इनकी सूक्ष्म मात्रा भी घातक होती है। जैसे नाभिकीय/रेडियोधर्मी पदार्थ, चिकित्सा संबंधित अपशिष्ट (Medical Waste)।

2. प्रकोप रहित अपशिष्ट (Non-hazardous Waste): इनके उपयुक्त पर्यावरणीय मानक होते हैं तथा जो एक निश्चित सान्द्रता के बाद ही हानिकारक होते हैं। ये पुनः दो प्रकार के होते है– (i) छोटे परिमाण के अपशिष्ट जैसे घरेलू, व्यावसायिक व संस्थानों के व्यर्थ पदार्थ। इन्हें सम्मिलित रूप से नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (Municipal Solid Waste, MSW) कहते हैं। (ii) बड़े परिणाम के अपशिष्ट जैसे भवन निर्माण व ध्वस्तीकरण के व्यर्थ पदार्थ, संयंत्रों के टुकड़ें आदि। इन्हें सम्मिलित रूप से निर्माण व ध्वस्तिकरण अपशिष्ट (Construction and Demolition Waste) कहते हैं।

नगरीय व औद्योगिक अपशिष्ट के स्रोत या कारक

(Sources or Causes of Urban and Industrial Wastes)

नगरों के अव्यवस्थित विकास एवं विस्तार तथा आस–पास स्थापित उद्योग धंधे, कल–कारखानों से पर्यावरण संतुलन काफी बढ़ा है। इस नगरीय अपशिष्ट में व्यावसायिक (Commerical) औद्योगिक (Industrial) व संस्थागत (Institutional) सभी प्रकार के अपशिष्ट मिले होते हैं। अतः इसे CII अपशिष्ट भी कहते हैं (C = Commercal; I = Industrial and I = Institutional)। नगरीय एवं औद्योगिक अपशिष्टों के मुख्य स्रोत निम्न है–

1. घरेलू अपशिष्ट (Garbage): इसके अन्तर्गत रसोईघर के अपशिष्ट, पॉलिथीन की थैलियां, प्लास्टिक धातुओं के डिब्बे, कागज, कांच, कपड़े के टुकड़े, पालतू पशुओं के अपशिष्ट भवन निर्माण, ध्वस्तीकरण के अपशिष्ट आदि शामिल है। उपरोक्त अपशिष्टों की मात्रा जनसंख्या पर निर्भर करती है।

2. औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Waste): इसके अन्तर्गत विभिन्न औद्योगिक इकाइयों जैसे– घी, शक्कर, शराब बनाने वाली इकाईयां, रसायन उद्योग, तेल शोधक उद्योग, धातु गलाने के कारखाने, तापीय ऊर्जा संयंत्र, कागज व लुगदी बनाने के कारखाने शामिल है।

3. व्यावसायिक अपशिष्ट (Commercial Waste): इसमें कागज, प्लास्टिक, बोरे, धातुओं के टुकड़े, परिवहन हेतु आवश्यक पदार्थ, सब्जी, अनाज मण्डियों तथा दूध उद्योग के अपशिष्ट सम्मिलित है।

4. रेडियाधर्मी अपशिष्ट (Radioactive waste): इसमें आण्विक विस्फोट, आण्विक हथियारों के परीक्षण से उत्पन्न अपशिष्टों के साथ चिकित्सीय उपयोग एवं विभिन्न प्रयोगशालाओं में उत्पन्न अपशिष्ट शामिल है।

5. खनन अपशिष्ट (Mining waste): खानों में होने वाले विस्फोटों से उत्पन्न ठोस अपशिष्ट, सीमेंट आदि उद्योगों में कच्चा माल प्राप्त करने हेतु डाइनामाइट से विस्फोट द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट खनन अपशिष्ट कहलाते हैं।

6. मृत जीव (Dead organisms): नगरीय अपशिष्टों में विभिन्न जानवरों जिसमें कुत्ते, बिल्लियों, पक्षियों आदि के मृत शरीर सम्मिलित है।

ठोस अपशिष्टों के प्रभाव (Effects of Solid Waste)

1. ठोस अपशिष्टों से भूमि की सुन्दरता तो बिगड़ती ही है साथ ही इनके सड़ने से उत्पन्न होने वाली दुर्गंध वातावरण को प्रदूषित करती है।
2. ठोस अपशिष्टों में उपस्थित धातुएं जैसे सीसा, पारा, तांबा, आदि पर्यावरण में विषैला प्रभाव डालती है।
3. चिकित्सीय उपयोग से उत्पन्न अपशिष्ट जैसे दवाईयां, रसायन, सुईयां, सीसे के टुकड़े, रूई के साथ–साथ जीवाणु विषाणु विभिन्न बीमारियां फैलाते हैं।
4. ठोस कचरे से रोगवाहक जीव जैसे मच्छर, मक्खियां, चूहे आदि की जनसंख्या तेजी से बढ़ती है, जिससे विभिन्न रोग फैलते हैं।
5. रेडियोधर्मी अपशिष्टों में स्ट्रॉन्शियम–90, सीजियम–137 कोबाल्ट–60 आदि जल व वायु द्वारा हमारे शरीर में पहुंचकर रोग उत्पन्न करते हैं। सीजीयम कैंसर कारक है, जबकि स्ट्रॉन्शियम हड्डियों में एकत्रित होकर उन्हें कमजोर व टेढ़ा कर देता है।
6. घरेलू अपशिष्टों में उपस्थित अम्ल, फिनाइल, डिटर्जेन्ट आदि भी जलप्रदूषण व सुपोषनीकरण (Eutrophication) की समस्या उत्पन्न करते हैं।
7. सूखे कचरे के कण हवा में उड़ते रहने से एलर्जी, दमा, नासा शोध (Rhinities) व विभिन्न त्वचीय रोग उत्पन्न होते हैं।

ठोस अपशिष्ट पदार्थों के नियन्त्रण के उपाय व प्रबन्धन

(Control Measures of Solid Waste Materials and Management)

ठोस कचरा प्रबन्धन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो तीन चरणों में सम्पन्न होती है।

1. ठोस कचरा एकत्रण (Collection of Solid Waste)
2. ठोस कचरा परिवहन (Transportation of Solid Waste)
3. ठोस कचरा निष्पादन (Disposal of Solid Waste)

1. ठोस कचरा एकत्रण (Collection of solid waste)

(i) स्थान–स्थान पर कचरा पात्र होने चाहिये तथा भिन्न–भिन्न प्रकार के कचरे के लिए अलग–अलग कचरा पात्र हो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

(ii) परम्परागत ठेले गाड़ियों का प्रयोग कचरा एकत्रित करने हेतु किया जाता है।

(iii) कभी–कभी निर्धन व्यक्तियों द्वारा भी घर–घर से कचरा एकत्र किया जाता है।

उपरोक्त सभी तरीकों में यह सावधानी रखी जानी चाहिये कि सामान्य कचरे के साथ ज्यादा हानिकारक कचरा सम्मिलित न हो।

2. ठोस कचरा परिवहन (Transportation of Solid Waste)

ठोस कचरे को पारम्परिक ठेले, ट्रेक्टर ट्रॉलियां व ट्रकों द्वारा परिवहन किया जाता है, इसमें कचरे को गाड़ियों की क्षमता के अनुसार भरना चाहिए ताकि परिवहन के दौरान इनके बिखरने की सम्भावना न रहे।

3. ठोस कचरा निष्पादन (Disposal of Solid Waste)

ठोस कचरा निष्पादन में निम्नलिखित विधियां है–

(a) होग फीडिंग (Hog Feeding)

(b) खुले में जमा करना (Open Dumping)

(c) दहन (Incineration)

(d) कम्पोस्ट बनाना (Compositing)

(e) भूमि भरण (Land Fills)

(f) समुद्र में डालना (Ocean Dumping)

(g) उत्पादन में कमी करना (Source Reduction)

(h) पुनर्चक्रण (Recycling)

(a) होग फीडिंग (Hog Feeding): यह ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की पुरानी प्रचलित विधि है, इसमें रसोईघर से निकलने वाले फल, सब्जियों के छिलके व झूठन आदि अपशिष्टों को सूअर आदि जानवरों को खिलाया जाता है। 1953 से 1955 के मध्य एक जीवाणु जनित बीमारी के कारण कई देशों ने इस पर रोक लगा दी।

(b) खुले में जमा करना (Open Dumping): इसमें कचरे को खुले गड्ढ़ों में भर दिया जाता है, गड्ढे की दूरी व दिशा शहर से दूर इस प्रकार हो कि हवा के प्रभाव में शहर को नुकसान न हो। कुल ठोस अपशिष्ट के 75–80 प्रतिशत निष्पादन इस विधि से होता है।

इस विधि से कई प्रकार के रोगवाहक मक्खी, मच्छर, चूहे आदि की संख्या बढ़ जाती है, जिससे रोग फैलने का खतरा बढ़ जाता है तथा इसके कण वायु में उड़ने से वायु प्रदूषण भी होता है।

(c) दहन (Incineration): इस विधि में ज्वलनशील अपशिष्ट का 900–1100° से. पर दहन किया जाता है, जिससे केवल राख व अज्वलनशील घटक शेष रह जाते हैं। जिन्हें बाद में भूमि भरण विधि से निष्पादित किया जाता है। इस विधि से यद्यपि 50 से 75 प्रतिशत अपशिष्टों का निस्तारण हो जाता है, परन्तु वायु प्रदूषण की सम्भावना रहती है।

(d) कम्पोस्ट बनाना (Compositing): अधिक कार्बनिक पदार्थों वाले कचरे के निष्पादन की यह उत्तम विधि है। इसमें ऑक्सीजन आश्रित जीवाणुओं द्वारा कचरे का विघटन किया जाता है। ठोस कचरे को जैव–अपघटनीय व अनअपघटनीय भागों में अलग कर अपघटनीय पदार्थों को सड़ा कर खाद बनाया जाता है।

(e) भूमि भरण (Land fills): इस विधि में कचरे को गड्ढों में भरकर मृदा की मोटी परत से ढक देते हैं (चित्र 4.5)। कुल कचरे के 10 प्रतिशत भाग का निष्पादन इस विधि से किया जा सकता है। भूमि भरण में निम्नलिखित सावधानियां आवश्यक है–

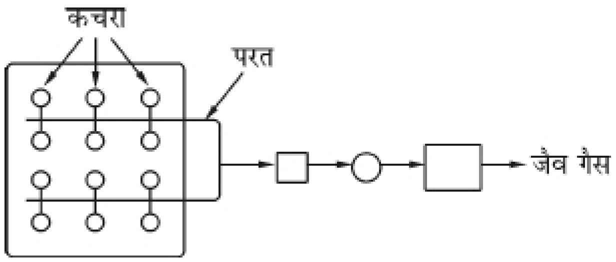

चित्र 4.5 : भू–भरण (Landfill) स्थल से जैवगैस प्राप्ति विधि

(i) यह स्थल जल स्रोतों से दूर होना चाहिये क्योंकि विषैले पदार्थों के रिसाव से जल संक्रमित हो सकता है।

(ii) ढ़कने वाली मृदा की परत पर्याप्त मोटी (कम से कम 20 सेमी) होनी चाहिये।

(iii) भूमि भरण स्थल पर कम से कम पांच साल तक भवन निर्माण जैसे कार्य नहीं किये जा सकते है।

(iv) भूमि भरण स्थलों से शहर की स्थिति प्रभावी हवा की दिशा में नहीं होनी चाहिये। क्योंकि मैथेन गैस का रिसाव होने से आग लगने का खतरा रहता है।

(f) समुद्र में डालना (Ocean Dumping): विभिन्न रासायनिक अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, विस्फोटक सामग्री आदि सीधे समुद्र में डाल दी जाती है। इस प्रकार इस 38 मिलियन टन कचरे का निष्पादन प्रतिवर्ष कर लेते हैं, परन्तु इससे समुद्री पारिस्थितिक तंत्र को हानि पहुंचती है।

(g) उत्पादन में कमी करना (Source Reduction): ठोस कचरा उत्पादन में निम्न तरीकों से कमी की जा सकती है–

(i) आधुनिक तकनीक व अधिक क्षमता वाली मशीनों के उपयोग से औद्योगिक ठोस अपशिष्ट को कम किया जा सकता है।

(ii) बांधने में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों की मोटाई व भार कम करके व्यावसायिक कचरे को कम किया जा सकता है।

(iii) घरेलू बगीचों में छोटे–छोटे कम्पोस्ट गड्ढे बनाकर घरेलू कचरा कम किया जा सकता है।

(iv) कागज, टिन व एल्यूमिनियम के डिब्बे आदि को सीधे पुनर्चक्रमण उद्योगों को भेजकर कचरे की मात्रा कम की जा सकती है।

(v) बायोगैस व विद्युत उत्पादन संयंत्र में भी कचरे का उपयोग किया जाता है।

(h) पुनर्चक्रण (Recycling): कई प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ जैसे प्लास्टिक, कागज, काँच, लोहे व एल्युमिनियम, टिन के टुकड़ों को अलग कर पुनर्चक्रण द्वारा पुनः उपयोग में लाया जा सकता है। जर्मनी में 1991 में कई कारें ठोस अपशिष्ट की तरह उपलब्ध थी। इस विधि द्वारा उनका उपयोग कर एक कार से 2500 पाउण्ड स्टील, 500 पाउण्ड लोह, 50 पाउण्ड जिंक, 5 पाउण्ड एल्युमिनियम, 32 पाउण्ड ताँबा, 20 पाउण्ड सीसा प्राप्त किये गये।

वर्तमान में विभिन्न रसायनों, तेलों, गैसों, पुराने टायर आदि की चक्रण विधियाँ विकसित की जा रही है।

पर्यावरणीय विकास एवं ह्रास दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्राकृतिक संसाधनों के अविवेक पूर्ण दोहन से पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया है। औद्योगिकीकरण, नाभिकीय, तापीय ऊर्जा परियोजनाओं ने जहां विकास के नये आयाम स्थापित किये है वहीं पर्यावरण को भी प्रदूषित किया है और उसकी मूल संरचना लगातार छिन्न–भिन्न होती जा रही है। प्रदूषण को नियंत्रित करने व पारिस्थितिकी सन्तुलन को पुनः स्थापित करने के लिए व्यक्तिगत, सामुदायिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास आवश्यक है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम आस–पास के पर्यावरण को साफ व प्रदूषण रहित रखे ताकि हम व हमारी आने वाली पीढ़ियां सुखी व स्वस्थ जीवन जी सके। चित्र 4.6 में शहरी ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन की प्रक्रिया दर्शायी गई है।

वर्मी कम्पोस्ट (Vermi Compost)

जैविक अपशिष्टों की खाद में परिवर्तित करने की क्रिया को कम्पोस्टिंग कहते है। इस प्रक्रिया में केंचुआ आदि जीवों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से सूक्ष्म जैविक स्तर की है। इस प्रक्रिया द्वारा पशुओं के अपशिष्ट मल–मूत्र, उद्योग, कृषि अपशिष्ट, फसलों के अवशेषों आदि को खाद में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित जैविक अवशेष सम्मिलित होते हैं–

1. कृषि अवशेष (Agriculture Residues)

(a) सूखा जैविक अपशिष्ट (गेहूं की भूसी, मूंगफली के छिलके, सूखे पत्ते, धान की भूसा, मूंगफली के छिलके, अरहर का अवशेष आदि।

(b) सब्जियों का कूड़ा–करकट

;c) गन्ने के रेशा उत्पादन के अपशिष्ट

(d) खरपतवार (गाजर घास–पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस)

(e) सोयाबीन के अवशेष

2. रेशम उत्पादन की प्रक्रिया में निकला अपशिष्ट

3. खाद्य उद्योगों द्वारा छोड़े गये अवशेष

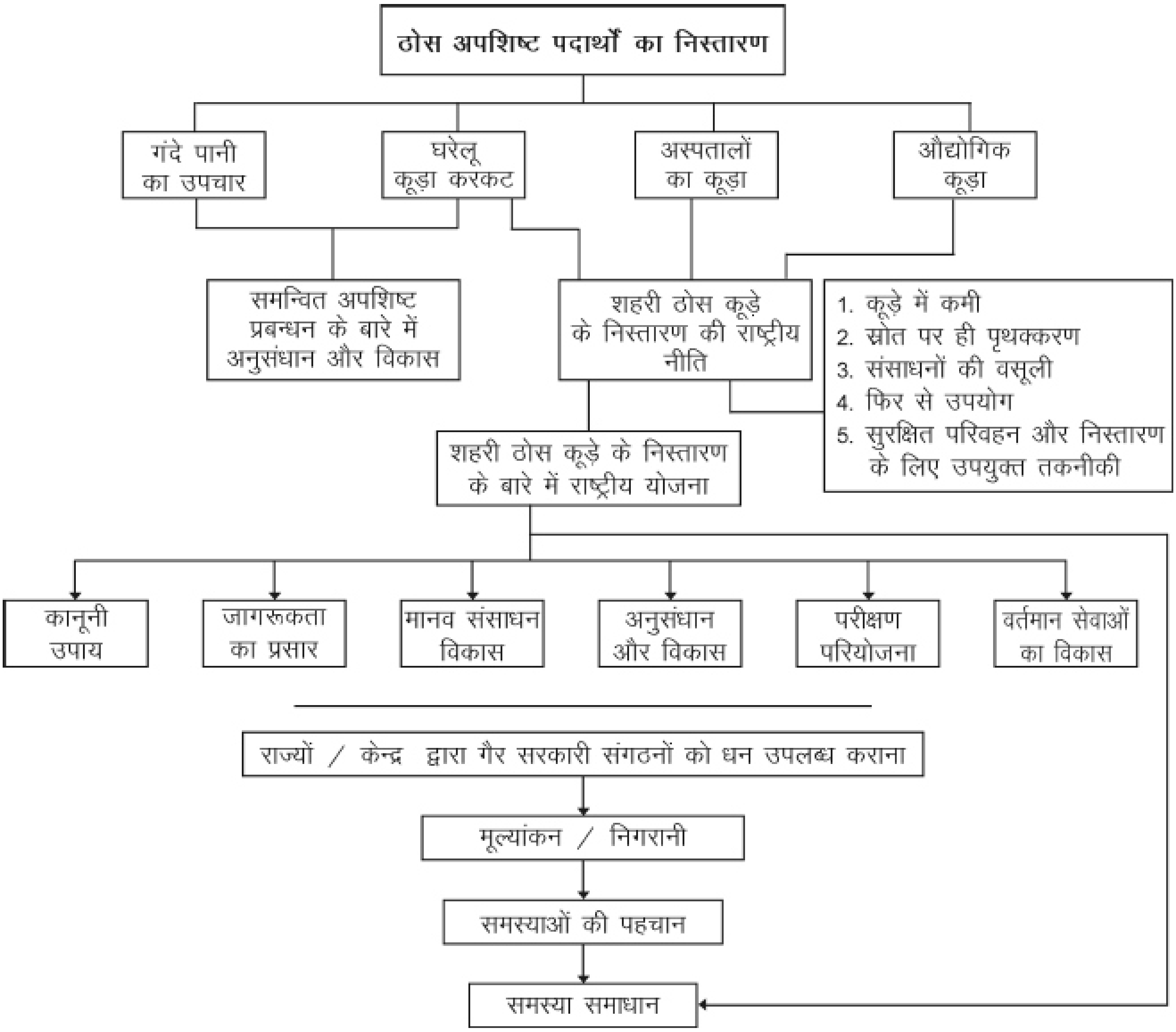

चित्र 4.6 : शहरी ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन की प्रक्रिया

4. बायोगैस का कूड़ा
5. पशु खाद
6. डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन उद्योग का अपशिष्ट
7. नगर निगम के ठोस रूप में छोड़े गये अपशिष्ट

कम्पोस्ट बनाने की विधि

निम्नलिखित चरणों में सम्पन्न होती है (चित्र 4.7)–

1. सीमेन्ट की रिंग के निचले हिस्सों की एक पॉलीथीन शीट द्वारा ढ़क जाता है।
2. शीट के ऊपर 15–20 सेमी. मोटी जैविक अपशिष्ट की परत बिछायी जाती है।
3. अब जैविक तत्वों (2 किलो.) के ऊपर फास्फेट तत्व के पत्थर छिड़क जाते हैं।
4. अब लगभग गाय के 15 किलो गोबर का घोल तैयार कर इस मिश्रण के ऊपर परत बिछायी जाती है।
5. रिंग को इन तहों को सामग्री से पूरी तरह समरूप तरीके से भर दिया जाता हैं।
6. इस सामग्री की तह के ऊपर गाय के गोबर या मिट्‌टी का लेप लगाया जाता हैं।
7. इस सामग्री को 20 दिनों तक सड़ने के पश्चात् इनके ऊपर केंचुओं को डाल जाता है। इस सामग्री के तहों में उपस्थित छिद्रों द्वारा ये केंचुएँ इस प्रवेश कर जाएंगे।
8. रिंग को जालियों या बोरियों से ढक दिया जाता है। ताकि पक्षी केंचुओं को न खाने पाएं।
9. इस पूरे मिश्रण पर तीन–तीन दिनों के अन्तराल में पानी का छिड़काव किया जाता है, यह क्रिया दो महिनों तक सतत् रखी

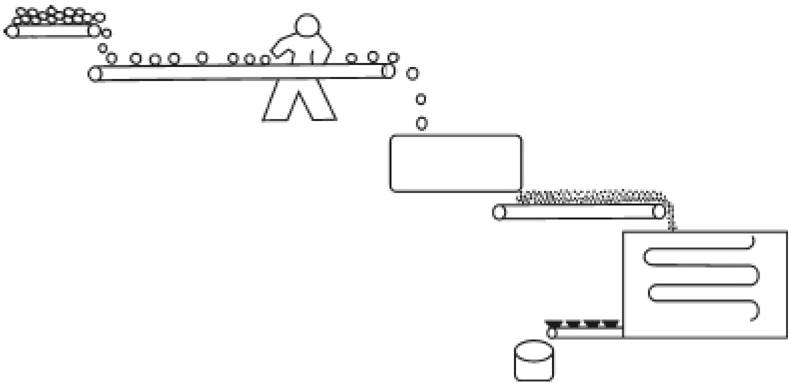

चित्र 4.7 : एक संतत कम्पोस्टिंग प्रचालन

जाती है। ऐसा करने से केचुओं की सही मात्रा में वाष्प मिलती रहती है और उनके शरीर का ताप भी सही बना रहता है। दो महीने की अवधि के पश्चात् काले रंग का, वजन में हल्का एवं खुशबूदार कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

10. कम्पोस्ट तैयार होने पर इस सामग्री को फर्श पर एक शंकु आकार में दो–तीन घंटों के लिए स्थिर छोड़ दिया जाता है। ताकि केंचुए धीरे–धीरे इनकी निचली तह तक पहुंच जाये।
11. इस ढेर के ऊपरी भाग को अलग कर निचले हिस्से को छान लेते है ताकि केंचुए अलग हो जायें इन केचुओं का पुनः नयी खाद बनाने में प्रयोग किया जा सकता है।
12. उपरोक्त विधि से तैयार कम्पोस्ट को थैलों में भरकर ठंडी जगह में संरक्षित रख देते हैं।

जीनोबायोटिक्स (Xenobiotics)

वे मानव निर्मित यौगिक जो या तो प्रकृति में पाए ही नहीं जाते हैं या मानव द्वारा पर्यावरण में विसर्जित मात्रा की तुलना में अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं। सूक्ष्म जीवों द्वारा इन यौगिकों का अपघटन होता है। लेकिन कुछ जीवेत्तर यौगिक जैव–अनपघटनीय होते है तथा पर्यावरण में लम्बे समय तक बने रहते है इन्हें दु:साध्य जीवेत्तर (Recalcitrant Xenobiotic) यौगिक कहते हैं।

दु:साध्य जीवेत्तर यौगिकों के प्रकार (Type of Recalcitrant Xenobiotic Components)

इन यौगिकों के कुछ लक्षण इन्हें जैव–अनअपघटनीय बनाते हैं, जैसे–

1. हाइड्रोजन के स्थान पर हैलोजन होने से कार्बन–हैलोजन बंध को तोड़ने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
2. हाइड्रोजन के स्थान पर नाइट्रो, सल्फोनेट, एमीनो, कार्बेमाइल समूहों का पाया जाना।
3. शाखित ऋजु श्रृंखला।
4. वलयी संरचना।

उपरोक्त कारणों से जीवेत्तर यौगिक अनपघटनीय हो जाते है।

जीवेत्तर यौगिकों को निम्नांकित छः वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. हेलोकार्बन (Halocarbon)
2. बहुक्लोरीनीत बाइफिनाइल (Polychlorinated biphenyls)
3. संश्लेषित बहुलक (Synthetic Polymers)
4. एल्किल बेंजिल सल्फोनेट (Alkyl Benzyl Sulphonate)
5. खनिज तेल मिश्रण (Mineral Oil Mixture)
6. अन्य (नाइट्रो, सल्फोनेट, एमीनो, मिथाक्सी आदि समूह युक्त)

जीवेत्तर यौगिकों से संकट (Xenobiotics Hazards)

1. बहुत से यौगिक दीर्घस्थायी (Persistant) होते हैं, जिससे समय के साथ पर्यावरण में इनकी सान्द्रता बढ़ती जाती है।
2. कुछ हैलोजनी हाइड्रोकार्बन केंसर उत्पन्न करते हैं।
3. कई हैलोजनी एवं एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन निम्न यूकेरियोटो और मानव तक के लिए आविषालु (Toxic) होते हैं। इनकी निम्न सान्द्रता से विविध चर्म रोग हो जाते हैं। तथा जननदर घट जाती है।
4. बहुत से यौगिक जैसे बहुक्लोरीनीत बाइफिनाइल, दु:साध्य होने के साथ–साथ लिपिडरागी होते हैं। अत: जीव शरीरों में उनकी सान्द्रता में पर्यावरण की अपेक्षा 10^4–10^6 गुना तक बढ़ोतरी होती है। भोजन श्रृंखला की हर कड़ी के साथ इन विषाक्त पदार्थों की मात्रा बढ़ती रहती है।

जीवेत्तर यौगिकों के अपघटन की व्यावहारिक विधियां

जीवेत्तर यौगिकों का जैव अपघटन इन यौगिकों की सान्द्रता, घोल का pH, तापमान, जल एवं अन्य पोषक पदार्थों की उपलब्धता आदि पर निर्भर करता है।

जीवेत्तर यौगिकों के जैव अपघटन हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख है–

1. जीवेत्तर यौगिकों की सान्द्रता ऐसी हो जो आविषालु न हो और जैव अपघटन के लिए पर्याप्त हो।
2. इन यौगिकों की उपचार तंत्र में आपूर्ति लगातार होनी चाहिये ताकि इन अपघटित करने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या उच्च स्तर पर बनी रहे।
3. जैव अपघटन में बाधा डालने वाले यौगिकों की अनुपस्थिति आवश्यक है।

जीवेत्तर यौगिकों के जैव अपघटन में निम्न कारक सहायक होते है–

1. पर्याप्त मात्रा में पोषकों एवं सह उपापचयओं की उपस्थिति।
2. जीवेतर यौगिकों की सान्द्रता का आविषालु या संदमनक न होना।
3. सूक्ष्म जीवों के सक्षम कल्चरों द्वारा संरोपण (Inoculation) इसे जैव संवर्धन (Bioaugmentation) भी कहते हैं।

तेल प्रदूषक (Oil Pollutants)

कच्चे तेल व अन्य रासायनिक पदार्थों का समुद्रों के माध्यम से परिवहन किया जाता है इस दौरान कई बार ऐसे जल पोत दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं जिससे कच्चा तेल (Petrolium or Crude Oil) तथा पेट्रोल, डीजल समुद्र की सतह पर फैल जाते हैं यह तेल जल से कम घनत्व का होने के कारण जल के ऊपर एक पतली परत बना लेता है। इस प्रकार के तेल फैलाव को आइल स्पिल (Oil Spill) कहा जाता है, इस प्रकार के तेल प्रदूषकों का प्रभाव निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करता है।

(i) प्रदूषक तेल की प्रकृति (Nature of Oil Pollutant): कच्चे तेल में पॉलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन (PAH) पाया जाता है, जो कि दीर्घायु होने के कारण गहरा प्रभाव डालते है। शुद्ध पेट्रोलियम उत्पाद जल्दी वाष्पीकृत होते हैं, परन्तु अधिक घातक होते हैं जबकि कच्चा तेल स्थायी होता है तथा कम घातक होता है।

(ii) स्थानीय परिस्थितियाँ: तेल के फैलाव के समय की स्थानीय परिस्थितियाँ वायु, जल का तापमान, वायु का वेग, जल धाराएँ आदि तेल रिसाव के प्रभाव को तय करते हैं।

तेल प्रदूषकों के प्रभाव (Effects of Oil Pollutants)

(a) तेल प्रदूषकों की विषाक्तता के कारण अनेक जीवों की मृत्यु हो जाती है।

(b) इसके प्रभाव से प्रकाश संश्लेषण की कमी, भोजन व O_2 की कमी से अनेक जीव मर जाते हैं।

(c) इसके प्रभाव से जातियों की मृत्यु होने से जैव विविधता में कमी आती है तथा खाद्य श्रृंखला व पारितंत्र के अन्य जीव प्रभावित होते हैं।

(d) ज्वलनशील होने के कारण कई बार तेल में आग लग जाती है, जिससे झुलसने से एवं गर्मी बढ़ने से अनेक जीव मर जाते हैं।

(e) कई समुद्री जीवों के श्वसन अंगों में तेल भर जाने से वे श्वसन के अभाव में मर जाते है।

(f) भोजन की कमी व दूषित मछलियों को खाने से बड़े समुद्री स्तनी जैसे व्हेल, उदबिलाव आदि की मृत्यु हो जाती है।

अपमार्जक पृष्ठ सक्रियक (Detergents Surfactants)

उच्चतर एल्केनों के सल्फेट या सल्फोनेटो के सोडियम लवण अपमार्जक कहलाते है। जैसे सोडियम P–एल्किल बेन्जीन सल्फोनेट –

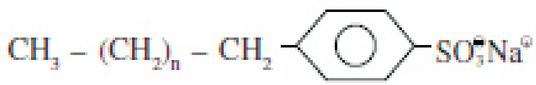

यद्यपि अपमार्जक रासायनिक दृष्टि से साबुन नहीं होते हैं लेकिन साबुन के समान धुलाई करते हैं। अतः इन्हें साबुनहीन साबुन (Soapless Soap) कहा जाता है।

अपमार्जक में एक लम्बी हाइड्रोकार्बन श्रृंखला होती है, जिसके एक सिरे पर ध्रुवीय समूह होता है, जो आकृर्षी होता है इस सिरे को ध्रुवीय जल आकर्षी शीर्ष (Polar Hydrophilic Head) कहते हैं।

अध्रुवीय तल प्रतिकर्षी पुच्छ (Nonpolar Hydrophobic tail) कहा जाता है। अपमार्जक पृष्ठ सक्रिय (Surface Active) होते हैं तथा जल के पृष्ठ तनाव को घटाते हैं।

1. तेल अथवा वसा द्वारा (By oil or Fats) : उच्च ताप ओर दाब पर ताम्र उत्प्रेरक की उपस्थिति में तेल या वसा हाइड्रोजन से क्रिया कर ग्लिसरॉल व प्राथमिक एल्कोहल बनाते है। प्राथमिक एल्कोहल सल्फ्यूरिक अम्ल व सोडियम हाइड्रॉक्साइड से क्रिया कर अपमार्जक का निर्माण करते हैं (चित्र 4.8)।

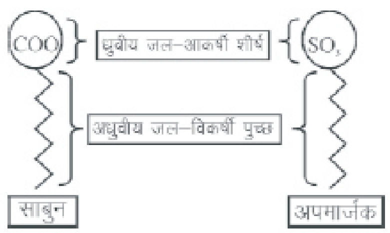

चित्र 4.8 : अपमार्जकों का संश्लेषण

$$\text{तेल या वसा} \xrightarrow[\text{दाब पर ताम्र उत्प्रेरक}]{H_2 \text{ द्वारा उच्च ताप व}} \text{ग्लिसरॉल} + \underset{RCH_2OH}{\text{प्राथमिक एल्कोहल}}$$

$$RCH_2OH \xrightarrow{H_2SO_4} RCH_2OSO_3H \xrightarrow{NaOH} \underset{\text{अपमार्जक}}{RCH_2\ SO_3^{\ominus}Na^{\oplus}}$$

2. रीड अभिक्रिया द्वारा (By Reed Reaction): एल्केन, सल्फर डाइ ऑक्साइड एवं क्लोरीन से क्रिया कर एक मध्यवर्ती उत्पाद बनाते है जो सोडियम हाइड्रोक्साइड से क्रिया कर अपमार्जक का निर्माण करते हैं।

$$R–H + SO_2 + Cl_2 \xrightarrow{hv} RSO_2Cl + HCl$$

$$RSO_2Cl + 2\ NaOH \longrightarrow \underset{\text{अपमार्जक}}{RSO_2O^{\ominus}Na^{\oplus}} + NaCl + H_2O$$

अपमार्जक की परिमार्जन क्रिया (Cleansing Acton of Soaps and Detergents)

मैल कणों में चिकनाई युक्त वसा पायी जाती हैं। अपमार्जक की अध्रुवीय पुच्छ मैल के कण में प्रवेश कर जाती है तथा ध्रुवीय शीर्ष कण के चारों ओर व्यवस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण कण ध्रुवीय हो जाता है एवं जल में विलेय होकर बाहर निकल आता है (चित्र 4.9)।

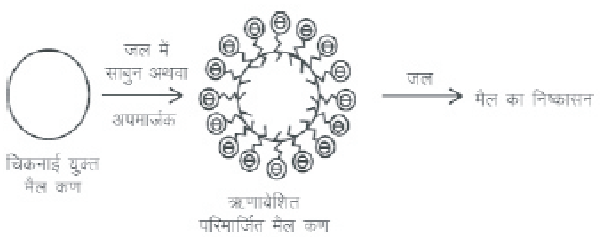

चित्र 4.9 : अपमार्जक की परिमार्जन क्रिया

समन्वित पीड़क प्रबन्धन (Integrated Pest Management)

यह पीड़कों के नियन्त्रण का सबसे प्रभावी तरीका है। यह विधि पीड़कों की संख्या को पूर्ण रूप से समाप्त करती है साथ ही पौधे के विघटन को भी बचाती है।

इस विधि में प्रत्येक फसल की किस्म और उसे हानि पहुंचाने वाले पीड़कों की पारितंत्र के अभिन्न अंग के रूप में माना जाता है, इसके पश्चात् किसान सही अनुक्रम में जोताई, जैविक व रासायनिक विधियों का प्रयोग करके पीड़कों का नियन्त्रण करते है।

पीड़कों की संख्या बढ़ने पर किसान पहले जैविक विधियों व जोताई की क्रिया करते है फिर भी नियन्त्रण न होने पर कीटनाशकों की सूक्ष्म मात्रा का प्रयोग करते हैं। पीड़क नियंत्रण की निम्नलिखित विधियां है–

1. जैविक नियन्त्रण

इसमें रोगजनकों, परजीवी व परभक्षियों का प्रयोग किया जाता है। इसके उदाहरण निम्न है–

(a) केलीफोर्निया में संतरों को भारी नुकसान पहुँचाने वाले स्केल कीटों का नियंत्रण ऑस्ट्रेलियाई लेडीबर्ड द्वारा किया जाता है, जो उन कीटों का भक्षण करती है।

(b) कसावा पोधे को नष्ट करने वाले माली बग पीड़क का नियन्त्रण पैरासीटॉइड वास्प (Parasitoid Wasp) द्वारा किया जाता है।

(c) खीरे के पौधे पर रहने वाले एक पीड़क रेड स्पाइडर माइट का नियंत्रण उसके खाने वाले एक परभक्षी जीव के माध्यम से किया जाता है।

(d) कीटों के सामान्य जीवन चक्र पर अवरोध पैदा करने के लिए ऐसे हार्मोनों का प्रयोग किया जाता है, जो उन्हें और अधिक परिपक्व होने, प्रजनन करने एवं अधिक उत्पन्न होने से रोकते हैं।

2. जोताई की विधियां

पीड़कों से नियन्त्रण हेतु निम्नलिखित जोताई की विधियां प्रचलित है–

(a) फसलों का चक्रीकरणः सामान्यतः मृदा में एक ही प्रकार फसल लगातार उगाने से कुछ पोषक तत्व पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं जबकि कुछ अन्य पोषक तत्वों का बिल्कुल भी प्रयोग नहीं होता है। इसके कारण भूमि में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है, साथ ही कई प्रकार के रोगों व पीड़कों का विकास होता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए फसलों के चक्रीकरण की विधि काम में ली जाती है। इसके अन्तर्गत एक ही खेत में अलग–अलग प्रकार के पौधे एक के बाद एक उगाये जाते हैं, जिससे कीटों व बीमारियों पर नियन्त्रण हो जाता है तथा भूमि के उपजाऊपन में भी वृद्धि होती है तथा मृदा अपरदन में कमी आती है। जैसे लेग्युमिनेसी कुल की फसल उगाने से लेग्यूम (फलीदार पौधे चना आदि) मृदा में

नाइट्रोजन का स्तर बढ़ा देते हैं। इसके कारण वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अधिक क्षमता से स्थिर किया जाता है, जिससे रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक की कम जरुरत पड़ती है। साथ ही धन की भी बचत होती है।

फसलों के चक्रीकरण में निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान रखा जाना चाहिये–

(i) फलीदार फसलों को गैर फलीदार फसलों के बाद ही बोना चाहिये।

(ii) जिन पौधों की किस्मों को कम पानी (सिंचाई) की आवश्यकता है, उन्हें अधिक पानी (सिंचाई) की आवश्यकता वाले पौधे के बाद बोना चाहिये।

(iii) कम खाद की आवश्यकता वाली फसलों को अधिक खाद की मांग वाले पौधों के बाद बोना चाहिये।

पौधों के आवर्तनों के मुख्य प्रतिरूप निम्नानुसार है –

- हरा चना – गेहूं – मूंग
- मूंगफली – गेहूं – मूंग
- अरहर – गन्ना – गेहूँ – मूंग
- धान – गेहूं – मूंग

(b) मिश्रित फसल उगाना (Mixed Cropping): इस विधि में एक ही खेत में एक ही समय में, दो या दो से अधिक प्रकार के पौधों की किस्में उगाई जाती है, इसमें प्रायः एक लम्बे दीर्घकाल के पौधे को छोटी आयु के पौधे के साथ उगाते हैं ताकि परिपक्व होने के समय तक दोनों को पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ एवं पानी मिल सके।

सामान्यतः मुख्य पौधे की किस्म के साथ फलीदार किस्म के खाद्यान्न को उगाया जाता हैं। फलीदार पौधे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाते है, इससे रासायनिक उर्वरकों पर होने वाले खर्चे की बचत होती है।

इस पद्धति से फसल उगाने में कई विधियों का प्रयोग होता है–

पॉलीवैराइटल–बहु किस्में (Polyvarietal): इस प्रकार की कृषि जिसमें एक ही प्रकार के पौधे की विभिन्न किस्में उगाई जाती है।

इन्टर क्रॉपिंग–अन्तर फसली (Inter-cropping): इसमें एक ही खेत में एक ही समय में दो या दो से अधिक किस्म के पौधे उगाए जाते हैं, जैसे कार्बोहाइड्रेट तत्व युक्त अनाज मृदा से N_2 का उपयोग करते हैं और नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले फलीदार पौधे उसे वापस मृदा में भेज देते हैं।

3. बहुशस्यन (Polyculture)

इस प्रणाली में विभिन्न समय काल में परिपक्व होने वाले विभिन्न प्रकार के पौधों की एक साथ बुआई की जाती है, चूंकि विभिन्न पौधों के पानी व खाद की जरुरतें भी अलग–अलग होती है। अतः यह प्रणाली इनके लिए लाभदायक है। साथ ही पीड़कों का नियन्त्रण भी सफलतापूर्वक हो जाता है।

(c) कुछ कीटनाशकों का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे पायरेथ्रम, रोटेनोन एवं नीम उत्पाद है।

(d) आनुवांशिक अभियांत्रिकी क्रियाओं द्वारा पौधों की ऐसी किस्में तैयार की गई, जो पीड़कों व बीमारियों का प्रतिरोध कर सके जैसे Bt जीन (*Bacillus Thuringiensis*) कपास को कीट प्रतिरोधी बनाता है।

आनुवंशिक रूपान्तरित जीव (Genetically Modified Organisms)

संजीन (Genome) के आण्विक संगठन को परिवर्तित करने से संबंधित प्रक्रमों को पुनर्योगज DNA प्रौद्योगिकी (Recombinant DNA Technology) कहते हैं। इस विधि द्वारा फसली पादपों, पालतु पशुओं और मानव की नस्ल को भी सुधारने के प्रयास किये जा रहे हैं।

ट्रांसजैनिक जीव वे जीव है जिसमें बाहरी जीन या जीनों को प्रवेश कराकर उन्हें मुख्य DNA। से स्थायी रूप से संयुक्त कर दिया जाता है।

जिसके कारण रूपान्तरित या ट्रांसजैनिक जीव बाह्य जीनों के अनुरूप लक्षणप्ररूप प्रकट करता है।

उपरोक्त कार्य जीन अभियांत्रिकी के सहयोग से संभव है। विज्ञान की इस नवीन शाखा के अन्तर्गत जीवों के DNA या जीनों में हेरफेर कर उनमें उपयोगी व इच्छित जीनों को प्रवेश कराया जाता है तथा अनुपयोगी और हानिकारक जीनों को बाहर निकाला जाता है। जीवों में विदेशी या बाहरी DNA के प्रवेश कराने की कई विधियां है, जिन्हें मुख्यतः दो प्रकारों में बांटा जा सकता है–

1. वेक्टर की सहायता से DNA स्थानान्तरण
2. DNA का प्रत्यक्ष स्थानान्तरण

1. वेक्टर की सहायता से **DNA** स्थानान्तरणः इस प्रक्रिया में वेक्टरों के रूप में प्लास्मिड, बेक्टिरियोफेज एवं कॉस्मिड प्रयुक्त होते हैं।

वेक्टर एक DNA अणु होता है, जिसके साथ एक अन्य DNA खण्ड को जोड़कर उसका क्लोन किया जाता है इच्छित जीन को उन्हीं के वेक्टरों के साथ क्लोन किया जा सकता है, जिनमें निम्नांकित गुण होते हैं।

(i) वेक्टर डी.एन.ए. परपोषी की कोशिका में प्रवेश कराने योग्य होना चाहिये।

(ii) यह परपोषी कोशिका में पुनरावर्त करने में समर्थ होना चाहिये।

(iii) वेक्टर युक्त कोशिकाओं की पहचान आसान होनी चाहिये।

वेक्टर की सहायता से DNA स्थानान्तरण की प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में सम्पन्न होती है–

(1) इच्छित जीनों की पहचान तथा पृथक्करण (Identification and isolation of desired genes)

(2) इच्छित जीनों का रोगवाहकों (वेक्टरों) में निवेशन (Insertion of desired genes into vectors)

(3) पुनर्योगज DNA का जीवाणु कोशिका में प्रवेश तथा बहुगुणन (Entry of RDNA into bacterial cell and multiplication)

(4) क्लोन्ड जीनों की पहचान तथा इनका अन्य जीवों में स्थानान्तरण (Identification of cloned genes and transfer into other organisms)

2. **DNA** का प्रत्यक्ष स्थानान्तरणः इस विधि में बिना वाहक की सहायता से DNA एक कोशिका से दूसरी कोशिका में स्थानान्तरित कर ट्रांसजैनिक जीव बनाये गये हैं।

ट्रांसजैनिक पादप (Transgenic Plants)

वे पादप जिनमें बाह्य जीनों का स्थानान्तरण कर उनमें उत्तम गुणों का समावेश किया जाता है तथा वे गुण उन पादपों में भावी पीढ़ियों में भी बने रहते है, ट्रांसजैनिक पादप कहलाते हैं। वर्तमान में फसल सुधार की दृष्टि से जिन उपयोगी गुणों वाले ट्रांसजैनिक पादपों की उत्पन्न करने में सफलता मिली है वे निम्नांकित है–

1. शाकनाशी प्रतिरोधी ट्रांसजैनिक पादप (Herbicide Resistance Transgenic Plants): एक ही खेत में मुख्य फसल के अतिरिक्त उगने वाली समस्त पादपों को खरपतवार या अपतृण कहते हैं। इस अपतृण के कारण मुख्य फसल की पैदावार में कमी आती है । अतः विभिन्न रासायनिक शाकनाशियों 2, 4 - D; 2, 4, 5, - T आदि का प्रयोग कर इन अपतृणों का नाश किया जाता है। लेकिन उपरोक्त रसायनों के प्रयोग से मुख्य फसल को भी हानि होती है साथ मृदा व पर्यावरण को भी क्षति पहुंचती है। इस समस्या के निराकरण हेतु जीन अभियांत्रिकी की सहायता से फसली पौधों में ऐसे स्थानान्तरण किये जाये जो इन पौधों का शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधी बना दें।

शाकनाशी प्रतिरोधी पादप निम्न दो विधियों से उत्पन्न किये जा सकते हैं–

(i) उत्परिवर्ती चयन (By Mutant Selection)

(ii) जीन स्थानान्तरण (By Gene Transfer)

आलू, टमाटर, पिटूनिया, तम्बाकू, मक्का आदि पौधों में जीन स्थानान्तरण द्वारा शाकनाशी प्रतिरोधी किस्में तैयार की गई है।

2. कीट–पीड़क प्रतिरोधी ट्रांसजैनिक पादप (Insect Pest Resistant Transgenic Plants): अनेक कीट तथा पीड़क फसली पौधों को अत्यधिक हानि पहुँचाते है इन कीटों को नष्ट करने के लिए कीटनाशियों, डी.डी.टी. आदि का प्रयोग किया जाता है, लेकिन ये कीटनाशी अविघटनशील होते हैं और खाद्य श्रृंखला के विभिन्न स्तरों पर एकत्रित होकर हानि पहुँचाते हैं। अतः ऐसी कीट प्रतिरोधी फसलें तैयार की गई हैं जिसमे कीटों एवं पीड़कों के प्रति प्राकृतिक रूप से प्रतिरोध विद्यमान हो।

उदाहरणः

;i) चंवला के ट्रिप्सिन संदमन जीन – चंवला (*Vigna unguicultata*) में CpTI जीन को कई कीटों के लिए विषाक्त पाया गया है। जिससे भण्डारण के समय यह कीटों व अन्य पीड़कों के प्रति प्रतिरोध दर्शाता है।

;ii) Bt विष के जीन – बेसिलस थूरिजियेन्सिस (*Bacillus thuringiensis*) नामक जीवाणु के बीजाणुओं द्वारा एक प्रोटीन विष उत्पन्न होता है। इस प्रोटीन को क्राइप्रोटीन (cry protein) कहते है, जो कीटों के प्रति प्रतिरोधी होता है। यह जीन तम्बाकू, कपास, टमाटर आदि में सफलतापूर्वक स्थानान्तरित कर लिया गया है।

(iii) गोल्डन चावल नामक ट्रांसजेनिक पादप में विटामिन ए प्रचुर मात्रा में होता है, साथ ही यह किस्म पीड़कनाशी भी है।

(iv) एक प्रकार के जीवाणु के जीन को निकालकर टमाटर के पकने की क्रिया को धीमा किया जा सकता है। यह जीन एथीलीन निर्माण के लिए उत्तरदायी है। इसकी कमी से टमाटर देरी से पकते है तथा लम्बे समय तक ताजे बने रहते हैं।

(v) आर्कटिक सागर की मछलियों के खून में पाई गई एन्टीफ्रीज प्रोटीनों के प्रयोग से पौधों पर सर्दी के मौसम के प्रभाव को (AEPs) कम किया जा सकता है। ऐसे एन्टीफ्रीज प्रोटीन तत्व बर्फीले पानी में रहती हुई ध्रुवीय मछलियों में पाया जाता है। तथा इस प्रक्रिया से ऐसे टमाटरों का उत्पादन प्रारम्भ हो गया है जिन पर सर्दी की वजह से बर्फ की पपड़ी नहीं जम सकती।

ट्रांसजैनिक जन्तु (Transgenic Animals)

जीन अभियांत्रिकी की सहायता से जन्तुओं में उपयोगी जीनों का प्रयोग नस्ल सुधार हेतु हुआ है। साथ ही विभिन्न रोगों के निदान हेतु प्रतिरोधिता विकसित हुई है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

(i) पराजीनी मूषक – मूषक पराजीनी जंतु के सभी अभिलक्षण पाये जाते हैं। वर्तमान में इसके अनेक आनुवांशिक स्टॉक उपलब्ध है। जीन स्थानान्तरण की विधियां सर्वप्रथम मूषकों पर ही प्रयोग द्वारा विकसित की जाती है।

(ii) पराजीनी खरगोश – चिकित्सीय महत्व के प्रोटीनों को पराजीनों द्वारा उत्पादन के लिए खरगोश का उपयोग किया जा रहा है। विभिन्न मानव जीनों को अलग–अलग प्रयोगों में पराजीनी खरगोश की स्तन ग्रन्थियों में अभिव्यक्त किया गया है और उनके उत्पाद दूध में से प्राप्त किये गये है, जैसे इटरल्यूकिन – 2, वृद्धि हार्मोन, ऊतक प्लाज्मोजन सक्रियक आदि।

(iii) पराजीनी भेड़ – कई मानव जीनों (रूधिर स्कंदन कारक – IX, प्रतिट्रिप्सिन आदि) को प्रोटीन उत्पादन हेतु भेड़ों के स्तन ऊतकों में अभिव्यक्त किया गया है। साथ ही मानव वृद्धि हार्मोन जीन को मांस उत्पादन में सुधार के लिए भेड़ों में अभिव्यक्त किया गया है।

(iv) पराजीनी बकरी – अब तक मानव के कुछ जीन बकरी में स्थानान्तरित व अभिव्यक्त किये गये है। जैसे – प्रतिट्रिप्सिन, प्रोटीन–C आदि।

(v) पराजीनी सूअर – सूअर के अंडों में काफी लिपिड पाया जाता है, जिससे नर पूर्व केन्द्रक (Male Pronucleus) को देख पाना कठिन होता है। सूअर अंडों का अपकेन्द्रण करने पर नर पूर्व केन्द्रक को देखने में आसानी होती है और इसमें DNA को सूक्ष्म इंजेक्ट किया जा सकता है। मांस उत्पादन में सुधार एवं अच्छे प्रोटीनों की प्राप्ति हेतु मानव जीनों को सूअरों में स्थानान्तरित किया गया है।

(iv) पराजीनी मछली – कार्प, रेनबो ट्राउट (Rainbow Trout) आदि कई मछलियों में जीन स्थानान्तरित किये गये हैं। रेनबो ट्राउट में वृद्धि हार्मोन जीन, कुक्कुट का b क्रिस्टलीय प्रोटीन (b-Crystalline Protein) जीन, शीत फ्लाउन्डर (Winter Flounder) का प्रतिहिमीकरण प्रोटीन जीन आदि स्थानान्तरित किये गये हैं।

अंडों के ट्रांस्फेक्शन के लिए DNA रचना को अंडों के कोशिका द्रव्य में सूक्ष्म इंजेक्ट या इलेक्ट्रोपोरेशन करते हैं इस प्रक्रिया के बाद जीवित बचे भ्रूणों से पराजीनी मछली प्राप्त होती है।

पराजीनी जंतुओं से जुड़े नैतिक मुद्दे (Ethical issues related to GMO's)

1. इन जंतुओं के शोध से जन्तुओं का अधिक कष्ट एवं यातना होती है। जबकि जंतु भी हमारी तरह जीवित और कष्ट / सुख के लिए संवेदनशील होते हैं।
2. प्रत्येक स्पीशीज एक अलग इकाई है और इस इकाई की पहचान को जीन स्थानान्तरणों द्वारा नष्ट नहीं करना चाहिए।
3. बहुत से लोगों का मानना है कि जंतुओं को भी मनुष्य के बराबर का दर्जा प्राप्त होना चाहिये।
4. कई लोगों का यह विचार है कि जंतुओं में मानव जीनों तथा जंतु जीनों के स्थानान्तरण से मनुष्यों की अद्वितीयता (मानवीयता) समाप्त हो जाएगी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. अपशिष्ट जल का उपचार आरम्भिक, प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उपचार आदि चरणों में होता है।
2. सीवेज उपचार के दौरान सादित ठोस पदार्थों को आपंक कहते हैं।
3. ऐसे ठोस पदार्थ जिन्हें कचरे के रूप में फैंक दिया जाता है, ठोस अपशिष्ट कहलाते हैं।
4. जैविक अपशिष्टों को खाद में परिवर्तित करने की क्रिया को कम्पोस्टिंग कहते हैं। इसमें केंचुओं आदि जीवों की भूमिका के कारण वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है।
5. ऐसे मानव निर्मित यौगिक जो सूक्ष्म जीवों द्वारा अनअपघटनीय होते हैं तथा पर्यावरण में लम्बे समय तक बने रहते हैं। जीनोबायोटिक्स कहलाते हैं।
6. समुद्र में तेल परिवहन पोतों के क्षतिग्रस्त होने के कारण कच्चा तेल समुद्र की सतह पर फैल जाता है जिसे ऑइल स्पिल कहते हैं।
7. उच्चतर एल्केनो के सल्फेट या सल्फोनेटों के सोडियम लवण अपमार्जक कहलाते हैं।
8. फसलों में पाये जाने वाले पीड़कों की संख्या का नियंत्रण बिना पौधों के विघटन समन्वित पीड़क प्रबन्धन कहलाता है।
9. ट्रांसजैनिक जीव वे जीव है जिसमें बाहरी जीनों को प्रवेश कराकर उन्हें रूपान्तरित कर दिया जाता है।
10. बी.टी. जीन बेसिलस थूरिजियेन्सिस नामक जीवाणु का जीन है जो क्राई प्रोटीन उत्पन्न करता है। यह कीट प्रतिरोधी होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. अपशिष्ट जल में उपस्थित आपंक (Sludge) को सूक्ष्म जीवों की सहायता से उपचारित करते हैं। यह विधि है–
   (अ) वायवीय (ब) अवायवीय
   (स) विकल्पी वायवीय (द) कोई नहीं
2. CII अपशिष्ट में सम्मिलित है–
   (अ) व्यावसायिक अपशिष्ट
   (ब) औद्योगिक अपशिष्ट
   (स) संस्थागत अपशिष्ट
   (द) उपरोक्त सभी
3. निम्न में से कौनसा रेडियोधर्मी अपशिष्ट केंसर कारक है–
   (अ) स्ट्रांशियम–90 (ब) सोडियम–13
   (स) सीजीयम–137 (द) कोबाल्ट–60
4. जैविक अपशिष्ट पदार्थों को खाद में परिवर्तित करने की प्रक्रिया कहलाती है–
   (अ) कम्पोस्टिंग (ब) दहन
   (स) भूमिभरण (द) पुनर्चक्रण
5. हेलोकार्बन, बहुक्लोरीनीति हिफिनाइल आदि रासायनिक पदार्थ किसके उदाहरण है–
   (अ) खनिज पदार्थों के
   (ब) एन्जाइमों के
   (स) जीवेतर यौगिकों के
   (द) वायवीय अपघट्य पदार्थों के
6. निम्न में से ट्रांसजैनिक जीव का उदाहरण है–
   (अ) रेनबोट्राउट मछली (ब) Bt–कपास
   (स) गोल्डन चावल (द) उपरोक्त सभी
7. पौधों पर सर्दी के मौसम के प्रभाव को कम किया जा सकता है–
   (अ) AEPs प्रोटीन से (ब) a–प्रतिट्रिप्सिन से
   (स) Bt–जीन से (द) प्रोटीन–C से

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. अपशिष्ट जल क्या है?
2. आपंक किसे कहते हैं?
3. ठोस अपशिष्ट क्या है?
4. विघटनकारी अपशिष्ट कौनसे होते हैं?
5. जैवआवर्द्धन क्या है?
6. कम्पोस्ट क्या है?
7. भूमि भरण से क्या तात्पर्य है?
8. वर्मी कम्पोस्ट किसे कहते हैं?
9. जीनोबायोटिक्स क्या है?
10. तेल फैलाव से क्या समझते हैं?
11. अपमार्जक की परिभाषा दीजिए।
12. पीड़क क्या होते हैं?
13. पीड़कों के जैविक नियंत्रण की दो विधि लिखिए।
14. बहुशस्यन किसे कहते हैं?
15. ट्रांसजेनिक जन्तु के उदाहरण दीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. औद्योगिक ठोस अपशिष्ट पदार्थों के स्रोत कौन–कौन से होते हैं ?
2. ट्रांसजेनिक जीव किन्हें कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।
3. दु:साध्य जीवेतर यौगिक क्या है ? समझाइये।
4. ठोस कचरे के निष्पादन की भूमि भरण विधि को समझाइये।
5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखो–
   (अ) अपमार्जक (ब) तेल प्रदूषक

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपशिष्ट जल के अवायवीय उपचार की विधि का सचित्र वर्णन कीजिए।
2. ठोस कचरा प्रबन्धन प्रक्रिया को विस्तार से सझाइये।
3. कम्पोस्ट बनाने की विधि के विभिन्न चरण समझाइये।
4. पीड़कों के नियन्त्रण की जोताई की विधियों को विस्तार से समझाइये।
5. ट्रांसजैनिक जीवों पर एक लेख लिखो।

उत्तरमाला: 1 (ब) 2 (द) 3 (स) 4 (अ) 5 (स) 6 (द) 7 (अ)

इकाई – 5
पर्यावरण एवं समाज
(Environment and and Society)

परिचय (Introduction)

समाज के विकास की प्रारंभिक अवस्था में पर्यावरण एक निर्धारित कारक के रूप में प्रभावी था। समाज के रीति–रिवाजों, परम्पराओं, संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों में पर्यावरणीय परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका परिलक्षित होती है। प्रारंभिक काल में मानव की पारस्परिक निर्भरता अधिक थी जिसके कारण संयुक्त परिवार की व्यवस्था प्रभावी थी। स्वास्थ्य के प्रति कम जागरूकता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव होने से मृत्यु दर अधिक थी। इसी कारण पुराने समय में अधिक सन्तानों की उत्पत्ति लाभदायक मानी जाती है। इसी प्रकार भवन निर्माण सामग्री, उसका नक्शा, उसमें खिड़कियों, दरवाजों की दिशा, प्रवेश द्वार की दिशा, आदि पर्यावरणीय परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होता था। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व में सभी सामाजिक पहलुओं में पर्यावरणीय परिस्थितियों का समावेश था। परन्तु विकास के साथ–साथ मानवीय क्षमताओं, क्रियाशीलता, तकनीकी ज्ञान एवं साधन सुविधाओं में वृद्धि होती गई। इसके फलस्वरूप सामाजिक संगठन, स्वरूप एवं सामाजिक मूल्यों व मानदण्डों में भी परिवर्तन आने लगे।

सामाजिक परिवर्तन समाज का एक स्वभाव है। यह सामाजिक परिवर्तन नगरीकरण, औद्योगीकरण, पश्चिमी संस्कृतिकरण आदि प्रक्रियाओं से तेजी से बढ़ा है। एक ओर जहाँ भारत में रीति–रिवाज एवं परम्पराओं के अनुसार प्राचीन मूल्यों व निष्ठाओं को बनाये रखने की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है वहीं दूसरी ओर विश्व के अन्य प्रगतिशील देशों के समान भारत में आधुनिकता की लहर आ रही है।

मानव समाज विश्व के सभी क्षेत्रों में गतिशील है तथा परम्पराओं में परिवर्तन होता रहता है। परम्पराओं से आधुनिकता की ओर परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का रूप है। इसकी गति कहीं मंद तो कहीं तेज है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विकास तेजी से हो रहा है तथा समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण आधुनिकता की ओर यह विकास अनिवार्य हो गया। परम्परा किसी भी जीवन क्षेत्र में कार्य करने का एक अनुभव सिद्ध प्रतिमान देती है।

मानव समाज एवं पर्यावरण का संबंध अत्यन्त प्राचीन है तथा वेदों में भी पर्यावरण के तीन प्रमुख घटकों वायु, मृदा एवं तापमान का विवेचन किया गया है। लेकिन मानव ने प्रौद्योगिकी एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण का नुकसान किया है। जिसके प्रमुख कारण निम्न है –

पर्यावरण ह्रास के कारण

कृषि एवं औद्योगिक विकास के फलस्वरूप मानव ने प्रगति तो की है लेकिन इसके कारण पर्यावरण निम्न प्रकार से प्रभावित हुआ है –

1. वनोन्मूलन (Deforestation) – वन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जिसमें शाक से लेकर वृक्ष तक सभी पौधे साथ–साथ वृद्धि करते हैं तथा हमारे देश की जैविक सम्पदा में योगदान करते हैं।

लेकिन बढ़ते औद्योगीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण वनों का उन्मूलन हो रहा है। जिससे अनेक महत्वपूर्ण प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर पहुंच रही हैं।

2. नगरीकरण (Urbanization) – नगरों के विस्तार के कारण उसके आस–पास की भूमि का उपयोग उद्योगों एवं आवासों के लिए होता है। जिस भूमि का उपयोग कृषि के लिए होना होता है वह अतिक्रमण कर ली जाती है। नगरीकरण के फलस्वरूप कच्ची बस्तियों का विस्तार भी निरन्तर बढ़ता जा रहा है। रोजगार की खोज में गांवों व कस्बों से लोग महानगरों की ओर पलायन करते हैं जो खाली स्थानों, उद्योगों के आस–पास व नालों के आस–पास

कच्ची बस्तियाँ बना लेते हैं।

3. औद्योगीकरण (Industrialization) – भारत में औद्योगिकरण की गति में अत्यन्त तेजी आई है। इस हेतु भूमि, कच्चा माल, जल एवं अनेक संसाधनों की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा निकलने वाले अनेक सह उत्पाद पर्यावरण के लिए एक खतरा उत्पन्न करते हैं। विभिन्न प्रकार के उद्योग जैसे उर्वरक, पेट्रो केमिकल्स, रिफाइनरी, कागज, चमड़ा, सीमेन्ट, धातु आदि अनेक महत्वपूर्ण उत्पादों का निर्माण तो करते हैं, लेकिन इनसे निकलने वाले अपशिष्ट व गैसें पर्यावरण प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

4. राष्ट्रीय राजमार्ग (National Highways) – भारत में सड़क परिवहन मार्गों को सुव्यवस्थित एवं अच्छा करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय राजमार्ग निर्माण की परियोजनाएं शुरू की। इन परियोजनाओं से सड़क परिवहन व्यवस्था तो सुचारू हो गई लेकिन इसके निर्माण में अनेक वृक्षों की कटाई, कृषि योग्य भूमि का नुकसान आदि से पर्यावरण का बड़ी मात्रा में ह्रास हुआ।

5. खनन (Mining) – भारत में वन क्षेत्र अनेक खनिज संसाधनों के भण्डार हैं। खनिज प्राप्त करने के लिए वनों की कटाई, वहाँ पर सड़क व रेलमार्ग का निर्माण किया जाता है जिससे वनों का ह्रास होता है। वहाँ की उपजाऊ मिट्टी बहकर चली जाती है तथा अनेक महत्वपूर्ण पादप जातियाँ नष्ट हो जाती है।

6. बहुद्देशीय परियोजनाएं (Multipurpose projects) – इन परियोजनाओं के तहत् बड़े–बड़े बांधों का निर्माण किया जाता है जिसमें जल एकत्रित कर सिंचाई एवं विद्युत उत्पादन किया जाता है। लेकिन इन परियोजनाओं से वनों के बड़े क्षेत्र का विनाश होता है। बांध के पानी के बड़े भूभाग में फैलने से वहाँ का समस्त वन जलमग्न हो जाता है। वहाँ पर पारिस्थितिकीय असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। वनों के ह्रास से आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय हानि उठानी पड़ती है। इसके ज्वलंत उदाहरण नर्मदा सागर, टिहरी एवं सरदार सरोवर बांध है जिनके कारण आन्दोलन होते रहे हैं।

7. संसाधन ह्रास (Resource depletion) – मानव की वे आवश्यकताएं जिनकी पूर्ति पर्यावरण द्वारा होती है, संसाधन कहलाते हैं। ये संसाधन प्रकृति द्वारा देय होते हैं। ऐसे संसाधन जिनकी मात्रा पर्यावरण में निश्चित होती है, वे उपभोग करने के साथ संसाधन ह्रास कहते हैं। इनका उपयोग उपलब्धता रहने तक ही किया जा सकता है।

नव्यकरण संसाधन उपभोग के पश्चात् भी समाप्त नहीं होते हैं। ये एक निश्चित समयावधि के पश्चात् पुनः उपलब्ध हो जाते हैं। जैसे जल, वायु, सौर ऊर्जा, वन, चारागाह आदि।

अनव्यकरण संसाधन वे होते हैं जो उपभोग के साथ–साथ समाप्त होते जाते हैं तथा जिनका नवीनीकरण नहीं हो सकता हो। उदा. कोयला, खनिज, खनिज तेल आदि।

यदि किसी भी संसाधन को उपभोग अधिक मात्रा में करेंगे तो उसका ह्रास होगा अतः इसका संरक्षण करना आवश्यक है।

8. पर्यावरण प्रदूषण (Environmental pollution) – विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के साथ–साथ मनुष्य ने पर्यावरण के घटकों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप उपभोग करना प्रारंभ कर दिया। उत्पादन की दर बढ़ाने के लिए नये–नये आविष्कारों को जन्म दिया। इसका परिणाम सह उत्पादों के निर्माण के साथ–साथ कचरे के उत्पादन को भी बल मिला। प्राकृतिक संसाधनों का भारी मात्रा में शोषण शुरू हुआ तथा इससे पर्यावरण का अवनयन का संकट उत्पन्न हो गया। पर्यावरण प्रदूषित होने लगा तथा फलस्वरूप जल, वायु, ध्वनि, मृदा रेडियोधर्मी प्रदूषण का जन्म हुआ। प्रदूषण के फलस्वरूप पर्यावरण के विभिन्न घटकों के स्वरूप में बदलाव आने लगा। ओजोन परत क्षरण जलवायु परिवर्तन, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसे अनेक परिणाम सामने आ रहे हैं।

मनुष्य की लालची प्रवृत्ति के कारण पर्यावरण का बिगड़ा हुआ स्वरूप सभी के सामने आ रहा है।

पर्यावरण शिक्षा एवं चेतना (Environmental Education and Awareness)

मनुष्य पर्यावरण का जैविक घटक है। पर्यावरण में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है। अतः पर्यावरण की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

पर्यावरण की समस्याएं सार्वभौमिक है तथा विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण की जानकारी एवं पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय भागीदारी का निर्वहन करना होगा। पर्यावरण संरक्षण में सभी व्यक्तियों की भागीदारी बढ़ाने के लिए जनचेतना अतिआवश्यक है। जनचेतना निम्न प्रकार से बढ़ाई जा सकती है –

1. पर्यावरणीय शिक्षा द्वारा – जनचेतना बढ़ाने का यह एक सशक्त माध्यम है। इसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण एवं इसके घटकों, उसके उपभोग, इससे संबंधित समस्याओं तथा उसके निराकरण के प्रति जनचेतना पैदा करना है।

पर्यावरणीय शिक्षा व्याख्यानों, रैलियों, प्रदर्शन, गोष्ठियों या प्रशिक्षण द्वारा जन–जन तक पहुंचाई जा सकती है।

2. संचार माध्यमों द्वारा – पर्यावरणीय जनचेतना को अनेक संचार माध्यमों जैसे समाचार पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन आदि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा भी जनता तक पहुंचाई जा सकती है।

3. पर्यावरण विज्ञान केन्द्रों की स्थापना – प्रत्येक गांव में

पर्यावरण विज्ञान केन्द्रों की स्थापना कर पर्यावरण संबंधी समस्याओं, इसके कारणों एवं निवारणों की जानकारी ग्रामीणों को दी जा सकती है।

4. संगोष्ठी आयोजन द्वारा – पर्यावरण के संरक्षण एवं उसके महत्व को पहुंचाने के लिए ग्रामीणों, विद्यालय, महाविद्यालय के विद्यार्थियों एवं शिक्षाविद्ों के साथ संगोष्ठियों के आयोजन से भी किया जा सकता है।

5. मनोरंजन के साधनों द्वारा – पर्यावरण के महत्व के बारे में लोगों को मनोरंजन के साधनों जैसे नुक्कड़ नाटक, लोक संगीत एवं पारम्परिक गीतों के माध्यम से भी जन–जन तक पहुंचाया जा सकता है।

6. सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा – सरकारी विभाग जैसे पर्यावरण, विज्ञान व तकनीकी, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं अनेक गैर सरकारी संस्थाएं भी इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। इनके द्वारा समय–समय पर पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु अभियान चलाये जाकर जनचेतना जागृत की जाती है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्यरत एन.एस.एस., एन.सी.सी. एवं स्काउट गाइड विद्यार्थियों द्वारा पर्यावरण के महत्व के संबंध में जनचेतना जागृत की जा सकती है।

7. विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन द्वारा – सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में पर्यावरण से संबंधित विषयों पर जनचेतना जागृत करने के लिए विद्यार्थियों के मध्य पोस्टर निर्माण, निबन्ध लेखन, नारा लेखन जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन कराया जा सकता है। इसमें पर्यावरणीय समस्याएं, पर्यावरण संरक्षण के तरीके, गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों, सौर व पवन ऊर्जा का उपयोग आदि अनेक विषयों पर जानकारी दी जा सकती है तथा प्रतियोगिताओं के माध्यम से उन्हें पुरस्कृत कर अन्य लोगों को भी प्रेरणा प्रदान की जा सकती है।

8. पर्यावरण क्लब का गठन – पर्यावरण क्लब का गठन विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर किया जा सकता है। जिसका उद्देश्य इनमें अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील बनाना है। इस हेतु वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता भी दी जा सकती है।

इस क्लब के तहत् विद्यार्थियों को पर्यावरण महत्व के स्थलों का भ्रमण कराना, पर्यावरण संबंधी फिल्में दिखाना, नाटक, पौधे लगाना, पोस्टर, पेन्टिंग, कार्टून, प्रश्न मंच एवं नारे लेखन आदि गतिविधियों का आयोजन करवाया जा सकता है।

9. जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम – बढ़ती हुई जनसंख्या भी पर्यावरण प्रदूषण एवं संसाधन अवनयन का एक कारण है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए लोगों के मध्य जनसंख्या शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए लोगों को बढ़ती जनसंख्या, उसके कारण एवं परिणामों की जानकारी देना, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना, पर्यावरण पर पड़ते इसके प्रभावों के प्रति सचेत करना, प्रदूषण आदि के प्रभावों से अवगत कराना मुख्य उद्देश्य है।

इस हेतु प्रभात फेरी, कठपुतली खेल, हॉर्डिंग लगाना, फिल्म दिखाना, प्रदर्शनी, परिचर्चा एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन कर जनसंख्या शिक्षा के लिए वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

इस प्रकार पर्यावरण के संरक्षण हेतु उपर्युक्त अनेक प्रकार के तरीकों को प्रयोग में लाया जा सकता है। भारत की परम्परागत संरक्षण प्रथायें, संस्कृति, पर्यावरण संरक्षण यात्राएं आदि अनेक पहलू ओर भी हैं जो हमारे देश में पर्यावरण संरक्षण का मुख्य स्रोत है।

पर्यावरणीय नैतिकता (Environmental Ethics)

मनुष्य सदैव एक विकासशील प्राणी रहा है और विकास की इस दौड़ में उसने पर्यावरण के विभिन्न स्रोतों का अतिदोहन किया है। इसके कारण पर्यावरण के विभिन्न घटकों में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। मनुष्य ने अपनी सुख–सुविधाओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण का समग्र रूप से नुकसान किया है। अतः यह आवश्यक है कि मनुष्य वातावरण का उचित प्रबन्धन करें ताकि पर्यावरण के अलावा ऊर्जा स्रोतों, वानिकी, कृषि, भूमि का उचित उपयोग, औद्योगीकरण एवं जनसंख्या नियंत्रण जैसे विषयों की सारगर्भित रूप से व्याख्या कर विकास कर सके।

मनुष्य के गैर जिम्मेदाराना रवैये के कारण ही प्रकृति में अनेक आपदाओं जैसे चक्रवात, भूकम्प, सुखा, असमय वर्षा, अतिवृष्टि व बाढ़ आदि का उसे सामना करना पड़ रहा है। इसीलिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि हम किस प्रकार से प्रकृति एवं पर्यावरण से व्यवहार करें।

पर्यावरण नैतिकता से यह तात्पर्य है कि वे नियम जो हमें पर्यावरण एवं उसके विभिन्न घटकों को नियंत्रित रूप में, उचित व श्रेष्ठ प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा प्रदान करें। पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हमे किस प्रकार से पर्यावरण एवं प्रकृति के साथ अपने आपको ढाले न कि हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्यावरण को ढाले।

भारतीय संस्कृति, परिवेश, धर्म ग्रंथों, पौराणिक किस्से कहानियों एवं जातक कथाओं आदि में समय–समय पर सामान्य जनमानस के लिए नैतिक आचार के नियमों की आचार संहिता लागू की गयी थी, जिसकी पालना करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य

था। इस प्रकार निम्नलिखित अनेक नैतिक विचार है –

;i) भगवान महावीर ने अहिंसा परमोधर्म का सिद्धान्त प्रचारित किया जिसके अनुसार किसी भी जीव के प्रति हिंसा को अपराध की श्रेणी में रखा गया। जीवों के प्रति दया रखना, मांस न खाना एवं प्रकृति की देखरेख करना आदि नियम जीवन के प्रमुख आधार थे।

(ii) हमारे शास्त्रों में सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि को देवता का दर्जा दिया गया है। इसीलिए जल, वायु व मृदा प्रदूषण एवं पेड़ों को काटना पाप माना गया है।

(iii) चरक संहिता में वनों की कटाई सर्वाधिक वर्जित कृत्य माना गया है। वन कटाई को मानव प्रजाति व उसके विकास के लिए घातक माना गया।

(iv) मत्स्य पुराण में तो एक वृक्ष को दस मानव पुत्रों के समान माना गया है। इसी कारण वृक्ष पूजन, शाखाओं पर लच्छा बांधना, दीप जलाना आदि उसकी सुरक्षा के उपाय थे।

(v) हिन्दू धर्म में अनेक प्राणियों को देवी–देवताओं की सवारी के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है जो एक प्रकार से उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करती है। जैसे चूहा–गणेश जी, शेर–दुर्गा, गिद्द–विष्णु, हाथी–इन्द्र, उल्लू–लक्ष्मी का वाहन माना गया है।

(vi) सम्राट अशोक ने पादपों व प्राणियों की सम्पदा के संरक्षण हेतु अनेक उपाय किए। इन सभी की सुरक्षा हेतु अलग–अलग प्रकार के दण्ड निर्धारित किए तथा प्राकृतिक सम्पदा की सुरक्षा सुनिश्चित की।

(vii) हिन्दू पंचांग में भी विभिन्न महत्वपूर्ण तिथियों को पर्यावरण की सुरक्षा से जोड़ा गया है। जैसे – कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर पूर्णिमा मानकर जल स्रोतों की सुरक्षा का संकल्प लेना, भाद्रपद दशमी को खेजड़ी की पूजा कर उसकी सुरक्षा का संकल्प लेना, वैशाखी पूर्णिमा को पीपल पूनम का दर्जा देना, उसको जल पिलाना, श्रावण मास की अमावस्या को हरियाली अमावस्या के रूप में मनाना, गांवों–कस्बों में मेले लगाना तथा प्रकृति के स्वरूप का अवलोकन करना आदि।

(viii) बौद्ध, ईसाई एवं इस्लाम के अनुयायी भी पर्यावरण की रक्षा का संदेश देते है। जैसे कि बोधिवृक्ष की मान्यता बोध में, खजूर वृक्ष को इस्लाम में, क्रिसमस ट्री की मान्यता ईसाई धर्म में पवित्रता से जुड़ी है।

(ix) भारत के संविधान में भी पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षण हेतु 1976 में दो धाराएं 48(A) एवं 51(A)G ाामिल की गयी है। धारा 48-A में समस्त राज्य सरकारों को पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसके उचित रख–रखाव का जिम्मा सौंपा है तथा धारा 51A(G) के अन्तर्गत भारतीय नागरिक का मूल अधिकार है कि वे पर्यावरण की सुरक्षा करें एवं जीवों के प्रति दया व करूणा का भाव रखें।

अतः यह सिद्ध होता है कि पर्यावरण की सुरक्षा से संबंधित हमारे धार्मिक अवधारणाओं, पौराणिक रीति–रिवाजों, ऋषि–महर्षियों, प्राचीन ग्रंथों एवं नैतिक कथनों में तथा भारतीय संविधान में इसके महत्व को ध्यान में रखते हुए धाराएं शामिल की गई हैं।

पर्यावरण संरक्षण में समुदाय की भागीदारी (Community Participation in Environmental Protection)

पर्यावरण के संरक्षण में समुदायों की भूमिका भी प्रमुख रही है। भारत में अनेक आन्दोलन सामूहिक रूप से वनोन्मूलन के विरुद्ध हुए हैं। इनमें से समुदाय की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका का सबसे अच्छा उदाहरण चिपको आन्दोलन के रूप में है।

चिपको आन्दोलन (Chipco Movement)

आदिकाल से ही प्रकृति की रक्षा के लिए भारतीय मानव समाज तत्पर रहा है। प्रकृति के प्रति उसके संरक्षण एवं बलिदान के लिए राजस्थान के जोधपुर में स्थित खेजड़ली गांव की अद्भुत बलिदान कथा, दुनिया के पर्यावरण प्रेमियों एवं प्रकृति प्रेमियों के लिए एक प्रेरणात्मक स्रोत के रूप में है। इसी घटना को चिपको आन्दोलन की शुरूआत माना जाता है।

खेजड़ली बलिदान – राजस्थान जो राजपूताना के नाम से प्रख्यात था। इसी का एक राज्य था मारवाड़ जोधपुर जिसकी जागीर खारड़ा में खेजड़ली नामक ग्राम स्थित था। 1731 में राजा अभय सिंह ने जोधपुर में एक महल का निर्माण करवाया जिसमें लकड़ियों की आवश्यकता पड़ी। महाराजा ने गिरधर भण्डारी के नेतृत्व में एक दल लकड़ियाँ लाने के लिए खेजड़ली के जंगल में रवाना किया। जब खेजड़ली के जंगलों से लकड़ियाँ काटने का शुरू हुआ तो उसके आस–पास के 83 गांवों के लोग एकत्रित होकर उसका विरोध करने लगे। लेकिन गिरधर भण्डारी पर इसका कोई असर नहीं पड़ा।

इस आन्दोलन का नेतृत्व अमृता देवी कर रही थी जिसमें उसकी तीन पुत्रियाँ आसू देवी, भागू देवी एवं रतनी देवी सहित 83 गांवों के लोग शामिल थे। दो दिन की समझाइश के पश्चात् भी गिरधर भण्डारी नहीं माना तो अमृता देवी ने पेड़ों को बचाने के लिए नारा दिया –

"सर सांटे रुख बचे तो भी सस्तो जाण"

इस प्रकार अमृता देवी उसकी तीनों पुत्रियाँ एवं अनेक लोग

वृक्षों से लिपट गये। इसके पश्चात् भी राजा के लोग कुल्हाड़ी चलाने से नहीं रुके एवं 363 व्यक्ति पेड़ों से कट कर मर गये। जब यह बात जोधपुर के राजा अभय सिंह को पता चली तो उन्होंने तुरंत पेड़ों की कटाई बंद करवायी एवं वहाँ आकर लोगों से माफी मांगी।

खेजड़ली गांव में उन लोगों के बलिदान स्वरूप एक स्मारक का निर्माण किया गया है। भारतीय पंचांग के अनुसार भाद्रपद शुक्ल दशमी को वहाँ मेला लगता है। उन दिव्य आत्माओं की पूजा कर आशीर्वाद लिया जाता है।

उत्तराखण्ड आन्दोलन – चिपको आन्दोलन का दूसरा उदाहरण उत्तराखण्ड का है। इसके तीन जिलों उत्तरकाशी, चमोली एवं पिथौरागढ़ की सीमाएं चीन से लगती है। यहाँ के लोगों का व्यवसाय वनों पर निर्भर था। 1962 में भारत चीन युद्ध के बाद परिस्थितियों में बदलाव आया। सीमा सुरक्षा के लिए वहाँ पर सड़क मार्ग का निर्माण करना पड़ा तथा चीन व तिब्बत से उत्तराखण्ड के लोगों का हथकरघा व ऊन उद्योग समाप्त हो गया। सड़क निर्माण के साथ ही हिमालय की अथाह सम्पदा ठेकेदार, माफिया एवं सरकार की नजर में आ गई। असुरक्षित खनन, सड़क निर्माण, जल विद्युत परियोजनाओं एवं पर्यटन के फलस्वरूप वनों की कटाई शुरू हो गयी। इन सबके परिणामस्वरूप सन् 1970 में प्रलयकारी बाढ़ आयी। वहाँ के निवासियों की आजीविका संकट में आ गई। उसके बाद चण्डी प्रसाद भट्ट ने वनों के विनाश को रोकने के लिए ग्रामवासियों को संगठित कर 1973 से चिपको आन्दोलन आरंभ कर वनों के काटने को रोकने का कार्य किया।

चिपको आन्दोलन की वास्तविक सफलता व गति श्रीमती गौरा देवी की घटना के बाद मिली। गौरा देवी चिपको वुमन के रूप में विख्यात है। 22 वर्ष की आयु में इनके पति का देहांत हो गया था। चण्डी प्रसाद भट्ट ने इन्हें चमोली जिले के रेणी गांव की महिला मंगल दल का अध्यक्ष बनाया। 1974 में रेणी गांव के 2451 पेड़ों को काटने का निर्णय किया तो इसके विरोध में 23 मार्च 1974 को गोपेश्वर में गौरा देवी के नेतृत्व में एक रैली का आयोजन हुआ। तत्पश्चात् प्रशासन ने 26 मार्च को रेणी गांव के सभी मर्दों को चमोली में सड़क निर्माण की क्षतिपूर्ति हेतु बुला लिया एवं पीछे से जंगल काटने वाले ठेकेदारों को निर्देशित किया कि वे रेणी जंगल के पेड़ों को काट कर ले जावें। लेकिन इस बात की जानकारी गौरा देवी को लग गई। गौरा देवी अपने साथ–साथ 21 महिला साथियों को लेकर जंगल पहुँच गई। ठेकेदार एवं जंगलात के लोगों ने उनको डराया धमकाया परन्तु गौरा देवी ने डटकर उनका मुकाबला किया और कहा कि जंगल हमारा मायका है, इसको काटने से पहले हमारे प्राण ले लो, यह कहते हुए सभी महिलाएं पेड़ों से चिपक गई। आखिरकार ठेकेदार एवं उसके श्रमिकों को गौरा देवी के समक्ष अपने हथियार डालने पड़े और जंगल बच गया।

इस आन्दोलन ने सरकार, वन प्रेमियों एवं वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। सरकार ने डॉ. वीरेन्द्र कुमार की अध्यक्षता में एक जांच समिति का गठन किया। इसने जांच के बाद यह पाया कि रेणी गांव के जंगलों के साथ अलकनंदा, ऋषि गंगा, पाताल गंगा एवं कुवारी पर्वत के जंगलों की सुरक्षा पर्यावरणीय दृष्टि से आवश्यक है।

इस कार्य हेतु श्रीमती गौरा देवी को 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा वृक्षों की रक्षा के लिए प्रथम वृक्षमित्र पुरस्कार प्रदान किया गया। गौरा देवी का निधन 4 जुलाई 1991 को हुआ। चिपको आन्दोलन में उनके अदम्य साहस व दूरदर्शिता के कारण उन्हें इस आन्दोलन के सूत्रधार एवं जननी कहा जाता है।

सुन्दरलाल बहुगुणा का योगदान – गौरा देवी के साहसिक कदम के पश्चात् सभी पर्यावरणविदों को आपस में जोड़ने का कार्य किया। टिहरी गढवाल के समाजसेवी सुन्दर लाल बहुगुणा भी इस मुहिम से जुड़ गये तथा उन्होंने इस आन्दोलन को विस्तार दिया तथा इस आन्दोलन को जल, जमीन व जंगल को जीवन की सुरक्षा से जोड़ दिया और यह चिपको आन्दोलन का घोष वाक्य बना –

"क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी, पानी और बयार
मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रहने के आधार"

सुन्दर लाल बहुगुणा ने 1981 से 1983 तक गांव–गांव जागरूकता लाने के लिए 5000 कि.मी लम्बी ट्रान्स–हिमालय पद यात्रा की। चिपको आन्दोलन के फलस्वरूप 1980 में वन संरक्षण अधिनियम बना तथा केन्द्र सरकार ने पर्यावरण मंत्रालय का गठन भी किया। प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखने के लिए वन्य जीवों का संरक्षण एक सतत् प्रक्रिया है। अतः चिपको आन्दोलन की आवश्यकता हमेशा रहेगी।

भारतीय परम्पराएं एवं पर्यावरण (Indian Traditions and Environment)

भारतीय संस्कृति मूलतः प्रकृति पूजक रही है। इसलिए हमारी संस्कृति को अरण्य संस्कृति भी माना जाता है। हम प्रकृति के प्रत्येक पशुपक्षी तथा पृथ्वी आदि की पूजा करते हैं। भारतीय संस्कृति प्रकृति एवं पर्यावरण से तालमेल बिठाकर चलने की है।

भारतीय सभ्यता एवं परम्परा में जैविक व अजैविक घटकों का ईश्वर का स्वरूप माना गया। प्रत्येक कण–कण में ईश्वर या परमात्मा का निवास माना गया इसीलिए प्राकृतिक उत्पादों का सम्मान एवं आवश्यकतानुसार न्यूनतम उपयोग करने की मान्यता है।

भारतीय मान्यतानुसार पृथ्वी को माँ माना गया, चन्द्रमा को मामा एवं सूर्य को पिता का दर्जा दिया गया है। इसी प्रकार शरीर को पंच तत्वों आकाश, वायु, जल, अग्नि एवं मिट्टी से बना हुआ माना जाता है। भारतीय सभ्यता में जैविक घटकों जैसे चींटी से लेकर हाथी तक को पूजा जाता है। हंस जैसे ब्रह्मा की सवारी है तो गरूड़ विष्णु की, बैल शंकर का वाहन है तो शेर दुर्गा माता का, गधा शीतला माता का वाहन है तो मछली झूलेलाल की प्रिय मानी गयी है।

भारतीय संस्कृति अवतारों को मानने वाली संस्कृति है जहाँ वराह से बुद्धावतार तक तेइस एवं भविष्य में होने वाले काल्की अवतार तक 24 अवतार मानते हैं। नृसिंह अवतार जैसे पांच अवतार तो प्राणी है। इसी प्रकार राम की सेना में भी वानर, भालू एवं अन्य जंगली पशु थे। हनुमान आज भी विश्व में सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवता है। भारतीय व्यक्ति आदिकाल से ही प्राणियों को सम्मान देने वाला एवं उनके लिए त्याग करने वाला रहा है।

भारतीय संस्कृति में त्योहारों को भी प्राणियों की रक्षा–सुरक्षा से जोड़ा गया है। इसमें मकर संक्रान्ति पर पशुओं को चारा खिलाना, नागपंचमी पर नाग की पूजा करना, श्राद्ध पक्ष में कौओं को खाना खिलाना आदि शामिल है।

प्राणियों के समान पौधों को भी भारतीय व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। अनेक पौधों में विष्णु का, खेजड़ी में देवी का, हार श्रृंगार में हनुमान जी का तो तुलसी व कमल में लक्ष्मीजी का वास माना गया है।

पूजा थाली में अनेक पुष्पी पादप गुलाब, मोगरा एवं चमेली, नारियल (श्रीफल), सुपारी, मूंग, चंदन, हल्दी, पान, केसर, चावल, गेहूं, चना, गुगल, लोबान एवं अनेक ऋतु फलों के बिना अधूरी मानी जाती है। आयुर्वेद में पृथ्वी पर प्रत्येक पादप का औषधीय महत्व माना गया है। वृक्षों का काटना अपराध की श्रेणी में माना गया है। पेड़ों से प्राप्त होने वाली सुखी एवं गिरी हुई लकड़ी को ही ईंधन के रूप में उपयोग लेना सामाजिक नियम माना गया।

अरण्य संस्कृति एवं स्मृति वन – भारतीय संस्कृति मूलतः प्रकृति की पूजक रही है इसीलिए इसे अरण्य संस्कृति कहा जाता है। इस प्रकृति के सभी पादपों, प्राणियों एवं पक्षियों की पूजा की जाती है। हमारी संस्कृति प्रकृति का सामाजिक व धार्मिक रूप से न्यूनतम उपभोग करने की मान्यता प्रदान करती है। लेकिन आजकल प्रकृति के साथ–साथ छेड़छाड़, अतिदोहन एवं विवेकहीन उपयोग के दुष्परिणाम सभी भोग रहे हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य प्रकृति के साथ छेड़छाड़ न करे तथा उसकी रक्षा का राष्ट्रीय एवं संवैधानिक कर्तव्य समझे।

भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत होकर ''स्मृति वन'' की अवधारणा प्रस्तुत की है जिसका भाव यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने पूर्वजों, माता–पिता एवं परिजनों की स्मृति में पौधा लगायें तथा अपने प्रियजनों का स्वरूप मानकर सेवा करें। वृक्ष प्रकृति की अनुपम कृति है तथा अपने जीवन की किसी भी विशेष याद को पेड़–पौधों से जोड़ना प्रकृति के लिए आभार व्यक्त करने का साधन है।

इसी प्रकार विवाह, वर्षगांठ, जन्म दिवस, सफलता के सुखद क्षणों व जीवन की किसी भी अन्य घटना को याद को चिरस्थायी बनाने के लिए पौधा रोपकर उसे गोद लेकर व बाग लगाकर पुष्पित–पल्लवित करें। यह भावना रखकर ही हम स्मृति वन की अवधारणा को सिद्ध कर सकते हैं।

वर्षा जल पुनर्भरण
(Rain Water Harvesting)

भारतीय जनमानस में पानी को एक देवता की तरह माना गया है। जन्म, विवाह, शुभ काम तथा मृत्यु के समय तक पानी को जीवन का अभिन्न अंग माना गया। पानी के लिए कहा गया है कि –

जल है तो जीवन है एवं जल है तो कल है।

विश्व की सभी एवं भारतीय सभ्यताएं पानी के पास यानि नदियों के पास ही विकसित हुई थी एवं पानी का हर स्रोत एक सामाजिक पूंजी के रूप में माना जाता रहा है। कोई भी शासक आया उसने पानी की व्यवस्था के लिए तालाब, बावड़ी या कुओं का निर्माण या उनका पुनः रक्षण अवश्य किया। उनसे पानी पीने एवं कृषि के लिए उपयोग होता था। आज भी हर सभ्यता में पानी का महत्व अधिक है। हमारे तो सारे पवित्र तीर्थ एवं धार्मिक स्थल जल के स्रोत के रूप में ही पूजनीय है। जल के नजदीक लगभग आधे से अधिक पर्यटक स्थल मौजूद हैं।

पीने के जल का प्रकृति में मुख्य स्रोत वर्षा है। वर्षा से प्रकृति में अथाह जल बरसता है। परन्तु दुर्भाग्य से या हमारी व्यवस्थाओं की कमी से वर्षा का जल बहकर चला जाता है। इस वर्षा के जल को इकट्ठा करके हम हमारी पीने के पानी की तथा अन्य कार्यों के पानी की पूर्ति कर सकते हैं।

वर्षा के जल को उचित एवं साफ सफाई से इकट्ठा कर उसका उपयोग करना वर्षा जल पुनर्भरण (Rain water harvesting) कहलाता है।

वर्षा जल पुनर्भरण की प्रचलित विधियां

वर्षा जल को एक स्थान पर इकट्ठा करने के अनेकों प्रकार स्थान एवं सुविधाओं के अनुसार प्रचलन में रहे हैं एवं अनेकों स्थानों

पर वर्तमान में भी वो पानी की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

महत्वपूर्ण प्रचलित तरीके हैं – 1. झीलें 2. तालाब 3. नाड़ी 4. बावड़िया 5. टांके 6. घरेलू टैंक।

1. झीलें (Lakes) – झीलें वर्षा जल के संग्रहण का एक महत्वपूर्ण तरीका रहा है। वैसे झीलें प्राकृतिक भी होती हैं परन्तु मानव ने प्राकृतिक व्यवस्था को कृत्रिम रूप देकर भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की है। कृत्रिम झीलों के लिए ऐसा स्थान चुनते हैं जहाँ वर्षा का जल अधिक इकट्ठा हो तथा जो वन्य जीवों एवं स्वयं मानवीय बस्तियों के लिए पानी की पूर्ति का माध्यम बन सके। अनेक बार झीलें वहाँ भी बनाई जाती है जहाँ से एक से अधिक मानवीय बस्तियों के लिए लम्बे समय तक पानी की पूर्ति करती हो। इनका निर्माण मानवीय एवं आर्थिक क्षमता एवं शासकीय व्यवस्था के अनुरूप विस्तृत भूखण्ड का उपयोग करके किया जाता था। हजारों वर्ष पूर्व बनाई गई झीलें आज भी पानी की पूर्ति का एक अद्भुत स्रोत है एवं अनेक झीलों का उपयोग तो आज तक पीने के पानी के अतिरिक्त कृषि एवं पर्यटन में भी हो रहा है। राजस्थान में ऐसी अनेकों झीलें उदाहरण है – जैसे उदयपुर को तो झीलों की नगरी भी कहते हैं। माउण्ट आबू में नक्की झील अद्भुत उदाहरण है। उदयपुर की जयसमंद झील मानव निर्मित झीलों में सबसे बड़ी झीलों में से एक है।

वर्तमान में जैसे बहती नदियों को रोक कर बांध बनाते हैं। ऐसा झीलों में नहीं के बराबर होता था। नदी को रोकने का प्रावधान नहीं था। पहाड़ों एवं ऊँचाई से आते वर्षा जल को रोक कर झीलें बनाई जाती है। झीलों पर आवश्यकतानुसार स्थान बनाए जाते थे जहाँ से बस्ती वाले पानी अपने पात्रों में भरकर ले जाते हैं इन स्थानों को घाट (Ghat) का नाम दिया जाता है। झीलों के रख–रखाव की भी उचित व्यवस्था होती थी। वैसे इनके रख–रखाव का सामूहिक एवं सामाजिक दायित्व होता था। जैसे समय–समय पर श्रमदान के रूप में झीलों की सफाई करना, उसमें साबुन का उपयोग ना करने देना, कपड़ों का ना धोना, कपड़े धोने की अलग से व्यवस्था करना एवं पशुओं को उसमें प्रवेश करने से रोकना एवं पशुओं के पानी पीने की अलग स्थान तय करना यह शामिल था।

2. तालाब (Pond) – छोटी झीलों को तालाब कहते हैं। इनका निर्माण भी सामूहिक रूप से जहाँ वर्षा जल ऊँचे स्थानों से इकट्ठा होकर आता है, वहाँ किया जाता है। एक बस्ती के पीने के एवं आवश्यकतानुसार कृषि के लिए पानी की पूर्ति के लिए तालाब का उपयोग होता था। पशुओं के पानी पीने के लिए अलग व्यवस्था होती थी।

तालाब बस्तियों के निकट बनाते थे, जिनसे आसानी से बस्ती वाले अपनी आपूर्ति के लिए पानी ले सकते हैं। पशुओं के लिए तालाब के किनारे एक अलग स्थान पर पानी पीने का स्थान होता था। तालाबों के आसपास के क्षेत्र में पशु चराने, शौच करने एवं कृषि कार्य करने को पूर्णतया प्रतिबंधित करते थे। इनकी समय–समय पर सफाई एवं सुरक्षा की समीक्षा होती थी। तालाबों पर भी घाटों का निर्माण करते थे, जहाँ पर पानी भरने के लिए आसानी से व्यक्ति जा सकता था। अनेकों तालाबों पर धार्मिक क्रियाकलाप भी करते थे जैसे त्योहारों पर या अन्य धार्मिक उत्सवों पर तालाबों पर उत्सव मनाते थे एवं इनकी पूजन भी की जाती थी। इसके अतिरिक्त बच्चा पैदा होने पर जलवा पूजन तालाब के किनारे बने घाट या उचित स्थान पर होती थी। तालाबों के निकट मन्दिर या सन्तों के आश्रमों का प्रावधान होता है जिससे मन्दिर का पुजारी तालाब की सुरक्षा में अपना योगदान दे सके।

3. नाडी (Nadi) – कृषि क्षेत्र या वन में किसी छोटे से स्थान पर उस स्थान के आसपास का वर्षा जल इकट्ठा हो जाता है वो छोटा स्थान नाडी कहलाता है। इसके निर्माण की आवश्यकता कम होती है, प्राकृतिक रूप से यह स्थान बन जाता है। बस उसका संरक्षण या रखरखाव किसानों या फिर आसपास के ग्रामीणों का होता है। नाडी के चारों तरफ घाट नहीं बनाए जाते है। बस उस नाडी में जिन स्थानों से पानी आता है, उस स्थान की साफ–सफाई का ध्यान रखा जाता है। नाडी के पानी का उपयोग आवश्यकता होने पर ग्रामीण भी कर सकते हैं, वैसे किसानों के लिए नाडी का महत्व अधिक होता है।

4. बावड़ी (Bawadi) – वर्षा जल संग्रहण का एक अद्भुत तरीका है। बावड़ी का निर्माण जहाँ पर पानी आसानी से इकट्ठा हो सकता है वहाँ कराया जाता है। इस व्यवस्था में उस स्थान को विशेष निर्माण से सुरक्षित किया जाता है। बावड़ी अनेक बार परिवार विशेष या ग्राम विशेष के लिए उपयोग के लिए बनाई जाती थी। वहाँ स्नान की भी व्यवस्था करवाई जाती थी। लेकिन मुख्य उद्देश्य वर्षा जल का ग्राम के उपयोग के लिए होता है। बावड़ियाँ कलात्मकता से भी भरपूर होती है। अनेक बावड़ियाँ पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गई है। बावड़ियों में विशेषकर पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाई जाती है।

5. टांका (Tank) – इस विधि में जहाँ पर आसपास के क्षेत्र से पानी इकट्ठा हो सकता है वहाँ एक जमीन में एक टैंक बना देते हैं। उसमें वर्षा जल इकट्ठा होता है तो अनेक महीनों पीने के पानी की व्यवस्था हो जाती है। इसे पूर्ण सुरक्षा से ढक दिया जाता है तथा आवश्यकता होने पर इस पानी का उपयोग इससे किया जा सकता है। जब ये खाली हो जाता है तो इसकी ठीक से सफाई भी कर दी जाती है। इसे बंद करने से पहले इसमें ठीक से हवा का आगमन हो

इसकी भी व्यवस्था की जाती है।

6. घरेलू टैंक (Domestic tanks) – घरों का पानी भी छतों से इकट्ठा होकर जब बहता है तो इसे भी घर के एक भाग में टैंक बनाकर इकट्ठा कर लिया जाता है जो अनेक माह तक पानी की पूर्ति कर सकता है। इसी का सुधरा रूप आधुनिक (Rain water harvesting system) वर्षा जल संरक्षण प्रणाली है।

वर्षा जल संरक्षण प्रणाली
(Rain Water Harvesting System)

इसमें पहले टैंक एवं छतों की ठीक से सफाई कर ली जाती है तथा जब भी वर्षा आती है तो पाइपों के माध्यम से छतों पर इकट्ठे पानी को टैंक में डाल दिया जाता है। इस विधि को आजकल हर घर में अपनाने लग गए हैं। इससे पानी का सदुपयोग भी बढ़ा है तो पानी व्यर्थ भी नहीं बहता। राजस्थान सरकार ने तो एक आदेश जारी करके मकान बनाने से पूर्व टैंक बनाने का नियम ही बना दिया जिससे वर्षा जल का संरक्षण एवं सदुपयोग हो सके।

वर्षा जल पुनर्भरण ना केवल घरों में ही अपनाना चाहिए अपितु कार्यालयों, सामाजिक भवनों में, विद्यालयों में, कॉलेजों एवं सभी धार्मिक एवं अन्य स्थानों पर भी होना चाहिए। जिससे पानी की समस्या से छुटकारा मिल सके।

वर्षा जल पुनर्भरण का कार्य किसान भाई भी अपने खेतों में कर सकते हैं। बस खेती की थोड़ी जमीन जिस स्थान पर पानी इकट्ठा हो सकता हो को ओर खुदाई करवा कर पानी इकट्ठा होने के लिए रखना चाहिए। यह पानी कृषि के लिए अमृत सिद्ध हो सकता है। इसका उपयोग पशुपालन में भी संभव है। यदि खेत में कुआ है तथा थोड़ा पानी वर्षा का उस कुएं भी भरे तो वो उस कुएं के लिए अच्छा सिद्ध हो सकता है। वर्षा जल पुनर्भरण के काम को एक क्रान्ति के रूप में अपनाना चाहिए क्योंकि इसी से एक अच्छा भविष्य हम देश एवं समाज का बनाने में सहयोग दे सकते हैं। उद्योगों में भी इसे लागू करके हम जल की बचत भी कर सकते हैं तो उद्योगों का एक सामाजिक उपयोग भी इसके माध्यम से हो सकता है।

यदि किसी कारण से घरों में वर्षा जल पुनर्भरण के लिए टैंक नहीं बना सकते तो भी आजकल बाजारों में मिलने वाली प्लास्टिक की टंकियों का भी उपयोग हम वर्षा जल पुनर्भरण में कर सकते हैं।

वर्षा जल पुनर्भरण आधुनिक जगत एवं भविष्य के लिए अति आवश्यक है। बढ़ती जनसंख्या, जीवन को एक सुखमय रूप से जीने के लिए पानी प्रथम आवश्यकता है। पानी की सुरक्षा एवं पानी का मितव्ययता से उपयोग करना हमारी पुरातन परम्परा है। यह भविष्य में भी पूरे दायित्व के साथ निभानी चाहिए।

पानी को ठीक से आवश्यकता के अनुसार ही खर्च करना चाहिए, पानी की सुरक्षा एवं बचाव करना चाहिए तथा हर घर में वर्षा जल को बचाया जाना चाहिए। इसे बिना काम के नहीं बहाना चाहिए। यदि हमें कृषि भी करनी है तो बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति से करनी चाहिए जिसमें पानी पौधों की जड़ों में बूंद–बूंद करके दिया जाता है, इससे पानी की बचत होती है। वर्षा जल पुनर्भरण से भूमिगत जल में भी बढ़ोतरी होती है जिसकी वर्तमान समय में महत्ती आवश्यकता है।

सरकार ने सामुदायिक जल संरक्षण के लिए यानि वर्षा जल पुनर्भरण के लिए सारे देशवासियों का सहयोग मिल जाए इसके लिए भामाशाहों के सहयोग से पुराने जल भरण के साधन जैसे बावड़ियों एवं अन्य छोटे बड़े तालाबों की मरम्मत एवं संरक्षण का काम भी चला रखा है इसे जल स्वावलम्बन योजना भी कहते हैं।

वर्षा जल पुनर्भरण के लिए आधुनिक योजना में भवनों की छतों से जो पानी इकट्ठा होता है उसे पाइपों द्वारा इकट्ठा कर नीचे एक भूमिगत टैंक में इकट्ठा किया जाता है। वर्षा आने का अनुमान लगाकर पहले छतों एवं पाइपों के साथ भूमिगत टैंक की सफाई की जाती है फिर जब वर्षा आती है तो साफ पानी छतों से पाइपों के माध्यम से भूमिगत टैंक में इकट्ठा होता रहता है जिसका उपयोग व्यक्ति अनेकों माह तक कर सकता है। सरकारें ऐसा करने में आवश्यक सहयोग भी करती है एवं इस पद्धति का नाम रैन वाटर हारवेस्टिंग (Rain water harvesting) नाम दिया गया है।

वर्षा जल को इकट्ठा करके इसकी स्वच्छता बनी रहे इसका भी पूरा–पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।

बंजर भूमि सुधार
(Waste Land Development)

हमारी पृथ्वी ना–ना रूप वाली है, कही सघन वन, कहीं सागर कहीं ऊँचे पहाड़ तो कहीं नदियों के किनारे मैदान तो कहीं निर्जन स्थल जहाँ ना तो कोई वनस्पति उग पाए एवं ना ही कोई कृषि की फसलें।

बंजर भूमि सभी देशों में पाई जाती है कहीं कम तो कहीं अधिक। भारत जो पूरी पृथ्वी की 2.4% भूमि पर बसा है लेकिन इसकी जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 16% भाग है। इस देश में 68.35 मिलियन हैक्टेयर भूमि बंजर भूमि के रूप में है। सामान्यतया यदि एक हैक्टेयर में कोई फसल यदि 5 क्विंण्टल भी उत्पन्न हो तो यहाँ 340.00 मिलियन क्विंण्टल से भी अधिक उत्पादन संभव हो सकता है जिससे कितने ही लोगों की भूख मिट सकती है। लेकिन बंजर भूमि होने के कारण उत्पादन शून्य होता है। यह हमारे देश के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है।

इस चुनौती को स्वीकार कर भारत सरकार में 1985 में राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड का गठन किया तथा इसे वन एवं पर्यावरण

विभाग को दिया परन्तु फिर 1992 में इस कार्य को ग्रामीण विकास एवं भूमि सुधार विभाग (Rural Development and Land Resources) को दिया गया जो सतत् प्रयत्न कर रहा है कि बंजर भूमि को सुधार कर उसे कृषि या वन के उपयोग के योग्य बनाया जाए। उपरोक्त आंकड़े राष्ट्रीय रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी (National Remote Sensing Agency - NRSA) के हैं।

भारत में बंजर भूमि के रूप में कॉमन प्रोपर्टी रिर्सोसेस (Common Property Resources - CPRs) जिनको सामान्य जनता उपयोग करती है, जैसी सार्वजनिक भूमि जैसे चारागाह, कचरा डालने की भूमि भी बंजर भूमि में परिवर्तित होती जा रही है। जहाँ देश में 23% वन होने चाहिए वहाँ 1999 के आंकड़ों के अनुसार 19% भूमि पर ही वन हैं जो वर्तमान में ओर भी कम हो गए हैं। लगभग 31 मैट्रिक हैक्टेयर भूमि जिस पर वन थे, वो बंजर भूमि हो गई।

बंजर भूमि होने के कारण

बंजर भूमि होने के कारणों को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते हैं – 1. प्राकृतिक (Natural) एवं 2. मानवीय (By Human)

1. प्राकृतिक (Natural) – बंजर भूमि बढ़ने के प्राकृतिक कारणों में निम्न प्रमुख हैं – i) बाढ़ (Flood), ii) तेज हवाएं (High speed wind), iii) सूखा (Drought), iv) भूस्खलन (Landslide), v) लवणीय मृदा (Salty soil)।

2. मानवीय (By human) – बंजर भूमि बढ़ाने में मानवीय कारण निम्न प्रमुख हैं – i) वनोन्मूलन (Deforestation), ii) झूमिंग कृषि (Jhuming cultivation), iii) कचरा संग्रहण (Dumping), iv) कृषि रसायनिकों का उपयोग (Use of agro chemicals)।

प्राकृतिक कारण (Natural Cause)

बंजर भूमि बढ़ने के निम्न प्राकृतिक कारण हैं –

(i) बाढ़ (Floods) – तेज वर्षा से बाढ़ आती है तथा बाढ़ से ऊपरी उपजाऊ मिट्टी की परत बहकर चली जाती है तथा बची हुई बिना ह्यूमस की भूमि बंजर भूमि हो जाती है। बाढ़ से पेड़ों की भी भारी कमी हो जाती है क्योंकि बाढ़ में पेड़ उखड़ जाते हैं तथा अनेक तो बह भी जाते हैं। ऐसे में पेड़ विहिन भूमि में पुनः ह्यूमस बनने में काफी समय लग जाता है तब तक भूमि बंजर हो जाती है। बाढ़ में पौधों के भूमि में पड़े बीज भी बहकर चले जाते हैं।

अनेक बार बाढ़ से जमीन में गहरी खाइयाँ बन जाती हैं तथा इन खाइयों में बंजर मिट्टी ही बचती है।

(ii) तेज हवाएं (High speed wind) – तेज हवाएं भूमि की उर्वरा परत को उड़ा कर अन्य स्थानों में ले जाती है तथा बची भूमि बंजर हो जाती है। जहाँ तेज हवाएं लगातार चलती रहती है वहाँ पर बंजर भूमि अधिक होती है। हवा भी अनेक हल्के बीजों को दूर ले जाती है तो इससे भी बीजों के अभाव में भूमि बंजर हो जाती है। अनेकों बार उर्वरा भूमि पर बंजर भूमि की मिट्टी भी तेज हवाओं से आकर जमा हो जाती है तथा बंजरता बढ़ जाती है।

(iii) सूखा (Drought) – सबसे अधिक प्रभावी कारण बंजर भूमि होने का वर्षा का ना होना अर्थात् सूखा होता है। पानी की कमी से सब तरफ पेड़ सूख जाते हैं तथा बीज उग नहीं पाते तथा बंजर भूमि बन जाती है।

(iv) भूस्खलन (Landslide) – अनेकों क्षेत्रों में भूस्खलन भी बंजर भूमि का कारण संभव है। भूस्खलन से उपजाऊ भूमि की परत को भारी क्षति पहुंचती है तथा भूमि बंजर हो जाती है।

(v) लवणीय मृदा (Salty soil) – भूमि में लवण की मात्रा अधिक हो जाने से पौधे पानी का अवशोषण ठीक से नहीं कर पाते तथा पौधे मर जाते हैं तथा पौधों की कमी होना बंजरपन को बढ़ाता है। भूमि लवणों की मात्रा पानी के लवणों की मात्रा (यदि वहाँ पानी अधिक लवणीय है) से भी बढ़ जाती है। वहाँ सामान्यतया उगने वाले पादप नहीं उग पाते हैं।

मानवीय कारण

बंजर भूमि के लिए मानवीय कारण भी बहुत प्रभावी होते हैं। मानव स्वयं के स्वार्थ के कारण प्रकृति में बहुत हानिकारक गतिविधियाँ करता रहता है। थोड़ा अधिक पाने के लिए अनेक गलत कदम मानव उठा लेता है वो यह भूल जाता है कि प्रकृति पर आने वाली पीढ़ियों का भी अधिकार है। बस वो तो स्वयं के लिए ही सब कुछ करना चाहता है। निम्न प्रमुख मानवीय कारणों से भी बंजर भूमि बढ़ रही है।

(i) वनोन्मूलन – मानव अपने सुख–सुविधा के जीवन के लिए अनियंत्रित रूप से वनों का विनाश कर रहा है। पेड़ों की कमी से वर्षा नहीं हो पाती तथा बंजर भूमि बढ़ जाती है। फर्निचर एवं अन्य सुविधा, जलाऊ लकड़ी व्यापार के लिए मानव वनों का विनाश करने पर तुला हुआ है। तो कहीं अनियंत्रित खनन के कारण भी भूमि बंजर होती जा रही है। सड़क मार्ग या रेलमार्ग बनाने के लिए वनों को नष्ट किया जा रहा है।

(ii) झूमिंग कृषि (Jhuming cultivation) – इसे स्थानान्तरित कृषि कहते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में एवं जहाँ समतल भूमि नहीं मिलती वहाँ पर इस प्रकार की कृषि का प्रचलन है। वहाँ कृषि करने के लिए वनों के एक क्षेत्र को जलाकर नष्ट किया जाता है। जलने के पश्चात् राख से वहाँ एक दो वर्षों तक कृषि के लिए उस जमीन में उपजाऊपन आ जाता है तथा फिर उनको अगली कृषि के लिए पुनः जंगल के एक क्षेत्र को जलाना पड़ता है। ऐसा करने से वन नष्ट होते रहते हैं। यह प्रक्रिया बंजर भूमि को बढ़ाती है। आसाम, त्रिपुरा, सिक्किम सहित सभी पर्वतीय राज्यों में झूमिंग

कृषि की जाती है।

(iii) कचरा डालना (Dumping of wastes) – आधुनिक युग में शहरीकरण को बढ़ावा मिल रहा है। शहरीकरण की दौड़ में कचरा अधिक होने लगा। जहाँ–जहाँ कचरा डाला जाता है वहाँ पर भी बंजर भूमि होने लगती है। क्योंकि कचरे में अधिकतर प्लास्टिक की थैलियाँ एवं प्लास्टिक के अन्य सामान भी होते हैं। वे न तो पानी को जमीन में जाने देता और न ही ह्यूमस बनने देता है। प्लास्टिक कभी भी गलती या सड़ती नहीं है, वे एक लम्बे समय तक वैसी ही बनी रहती है जिससे भूमि बंजर हो जाती है। वैसे प्लास्टिक थैलियों को जलाए जाए तो हानिकारक गैसें बनती हैं जो पर्यावरण प्रदूषण का कारण भी बनती है। भूमि को बंजर बनाने के साथ–साथ पशु यदि इसे खा जाते हैं तो उनकी भी मौत हो जाती है।

औद्योगिक क्षेत्रों से निकलने वाले कचरे से भी भूमि में बंजरता आती है। अनेक उद्योगों से निकला कचरा एवं हानिकारक रसायन अनियंत्रित रूप से भूमि पर फैलते रहते हैं।

(iv) कृषि रसायनों के प्रयोग से (Use of agro-chemicals) – रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के कृषि में अत्यधिक उपयोग के कारण भी भूमि बंजर हो जाती है। रासायनिकों के अधिक उपयोग से उपजाऊ ह्यूमस नष्ट हो जाती है तथा भूमि की उपजाऊपन के कम होने के साथ–साथ उसमें जहर की मात्रा भी बढ़ जाती है जो सीधे फसलों एवं अन्य कृषि उत्पादनों में भी आता है। इसी प्रकार से कम समय में अधिक उत्पादन लेने के लिए ऑक्सीटोसीन हारमोन की अनियंत्रित उपयोग करने से भी भूमि की बंजरता बढ़ती है तथा इस प्रकार के रासायनिकों के कारण मानव स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव पड़ता है।

भारत के अनेकों कृषि उत्पादन क्षेत्रों में रसायनों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से वहाँ की भूमि तो बंजर हो ही रही है साथ–साथ वहाँ कैंसर जैसे विनाशकारी रोग भी बढ़ते जा रहे हैं। कृषि की उपज अधिक लेने के लिए अनेक रसायन एवं पीड़कनाशी भूमि में डालते रहते हैं। इन रसायनों के कारण पक्षी एवं पशु भी मर जाते हैं।

भूमि के बंजर होने से रोकने के उपाय एवं कार्यक्रम

I. सरकारी प्रयास – भूमि के बंजर होने से बचाने के लिए भारत सरकार एवं राज्य सरकार सरकारी स्तर पर बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (Waste Land Development Programs) चला रखा है। जिससे देश की जमीन पुनः हरीभरी हो सके, उपजाऊपन अधिक हो सके तथा कृषि प्रधान देश की गरीबी दूर हो सके। हमें गौरव करना चाहिए कि दुनिया में सबसे अधिक उपजाऊ भूमि भारत की है। कहने को तो चीन में कृषि योग्य भूमि अधिक है परन्तु उपजाऊपन में भारत की भूमि चीन से भी अधिक उपजाऊ है। परन्तु हमारे यहाँ तो रासायनिक खाद एवं पीड़कनाशी के कारण अधिक धोखा हुआ। यह एक मीठा जहर भूमि में डाल–डालकर उसे बंजर बना रहे हैं। भारत सरकार ने देश में निम्न प्रमुख योजनाएँ बनाकर बंजर भूमि विकास का कार्य आरंभ किया।

1. सूखा संभावित क्षेत्र (Drought Prone Area Program - DPAP) – भारत सरकार ने अपनी नौवीं योजना में बंजर भूमि के विकास के लिए सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम को शुरू किया। यह कार्यक्रम सन् 1973–74 में आरंभ हुआ। इस सूखा उन्मुख क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत देश के 971 खण्डों में जिसमें 16 राज्य सम्मिलित थे इसमें पीड़ित क्षेत्र के आर्थिक विकास पर जोर दिया गया।

2. रेगिस्थान विकास कार्यक्रम (Desert Development Program - DDP) – 1977–78 में यह कार्यक्रम 7 राज्यों एवं 40 जिलों के 234 खण्डों में चला इसमें देश के 40 जिलों में जम्मू–कश्मीर और हिमाचल के ठण्डे जिले भी सम्मिलित थे। इसमें मिट्टी संरक्षण के साथ–साथ पौधे लगाकर रेगिस्थान को बढ़ने से रोकने के प्रयास किये गए।

3. समग्र बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (Integrated Waste Land Development Program - IWDP) – सन् 1989–90 में समग्र बंजर भूमि विकास कार्यक्रम का आरंभ हुआ। इसके अन्तर्गत जहाँ–जहाँ बंजर भूमि है वहाँ के गरीब निवासियों के आर्थिक विकास पर जोर दिया गया।

4. तकनीकी विकास विस्तार एवं प्रशिक्षण (Technology Development Extension and Training - TDET) – सन् 1993–94 में तकनीकी विकास विस्तार एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम आरंभ किया गया। जिसमें बंजर भूमि विकास के लिए वैज्ञानिक तकनीक का विकास एवं विस्तार करके किसानों को बंजर भूमि में अधिक उपज के तरीके भी बताए।

5. इन्वेस्टमेंट प्रमोशन स्कीम (Investment Promotion Scheme - IPS) – इसके अन्तर्गत छोटे किसानों तथा एससी/एसटी के किसानों को कॉरपोरेट जगत से जुड़े व्यक्तियों के सहयोग से सहायता दी गई कि बंजर भूमि में किस प्रकार कृषि करें। उनको आर्थिक सहयोग भी दिया गया। लेकिन तकनीकी विकास विस्तार एवं प्रशिक्षण तथा इन्वेस्टमेंट प्रमोशन स्कीम कार्यक्रम छोटे क्षेत्र एवं छोटे किसानों तक ही सीमित रही अतः योजना सफल कम हो पाई।

6. नेशनल वाटरशेड डवलपमेंट प्रोजेक्ट फॉर रैनफेड एरिया (National Watershed Development Project for Rainfed

Area - NWDPRA) – नेशनल वाटरशेड डवलपमेंट प्रोजेक्ट फॉर रैनफेड एरिया कार्यक्रम 1990–91 में प्रारंभ किया गया। जिसके अन्तर्गत वर्षा क्षेत्रों में पानी को बचाकर कृषि करने के लिए सरकारी सहयोग दिया जाता था। ये कार्यक्रम हरित क्रान्ति (Green Revolution) के क्षेत्र में आए किसानों के लिए हितकारी रहा।

7. वर्षा जल संग्रहण विकास फण्ड (Rain Water Harvesting Development Fund) – सत्र 2000–01 में जहाँ–जहाँ वर्षा से खेती होती थी। उन क्षेत्रों में वर्षा जल संग्रहण के लिए केन्द्र सरकार ने वर्षा जल संग्रहण विकास फण्ड योजना चलाई। जिसमें 200 करोड़ का फण्ड नाबार्ड (National Bank for Agriculture and Rural Development - NABARD) द्वारा जारी किया गया। यह दो चरणों में चला। प्रथम चरण में छः राज्यों में आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और उत्तरप्रदेश को सम्मिलित किया गया तथा दूसरे चरण में बिहार, केरल, राजस्थान, तमिलनाडु, जम्मू एवं कश्मीर, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा को सम्मिलित किया गया। कुल मिलाकर संग्रहण विकास फण्ड द्वारा 14 राज्यों के 100 खण्डों में यह कार्यक्रम चला।

8. वाटरशेड डवलपमेंट प्रोग्राम इन शिफ्टिंग कल्टीवेशन एरिया (WDPSCA) – स्थानान्तरित कृषि को नियंत्रित करने के लिए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय (Ministry of Agriculture) एवं भूमि संसाधन विभाग (Department of Land Resources या (DoLR) ने संयुक्त रूप से प्रयास करके पूर्वोत्तर क्षेत्रों में जिसमें सिक्किम भी था, में सफलता प्राप्त की। इन क्षेत्रों में पांचवी योजना में भी ऐसे कार्यक्रम आरंभ किये गए थे उनका नवीनीकरण 1994–95 में किया गया तथा इस कार्यक्रम को चालू किया गया। जिसमें झूमियाँ परिवारों को स्थाई रूप से कृषि करने के क्षेत्र बताए गए एवं उनको वहाँ बसाया गया।

9. समग्र जल संग्रहण प्रबन्धन (Integrated Watershed Management) – बाढ़ वाले क्षेत्रों में केन्द्र सरकार ने मृदा संरक्षण तथा समग्र जल संग्रहण प्रबंधन (Integrated Watershed Management) कार्यक्रम चलाकर मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर कृषि के क्षेत्र में फसलों की उत्पादकता भी बढ़ाई गई। इससे बंजर भूमि की कमी का प्रयास किया गया।

10. पश्चिमी घाट विकास योजना (Western Ghat Development Project) – पश्चिमी घाट के पठार एवं अन्य पर्वतों के कमजोर पारिस्थितिकी तंत्र के विकास के लिए पश्चिमी घाट विकास योजना (Western Ghats Development Project - WGDP) तथा पर्वतीय क्षेत्र विकास परियोजना (Hill Area Development Project - HADP) के द्वारा पश्चिमी घाट के क्षेत्रों को एवं वहाँ के पर्यावरण को संरक्षित किये जाने का प्रयास किया।

दसवीं योजना में ऐसे बंजर भूमि विकास कार्यक्रम तथा वाटरशेड डवलपमेन्ट प्रोग्राम को 25 वर्षों तक जारी रखने का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव फरवरी 1997 में लिया गया। इसमें वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा जल संरक्षण एवं बंजर भूमि विकास कार्यक्रमों को आगामी 25 वर्षों तक सतत् रूप से चलाने एवं क्षेत्र में कृषि उत्पादकता बढ़ाने का कार्यक्रम जारी रखने का प्रस्ताव रहा। इसका उद्देश्य गरीबी दूर करने का भी रहा। इसके साथ–साथ इसका उद्देश्य रोजगार बढ़ाना भी हुआ। इन कार्यक्रमों से वनों के विकास एवं विस्तार को भी जोड़ा गया। इसके लिए वन कृषि (Farm forestry) एवं कृषि वानिकी (Agroforestry) पर भी जोर दिया जा रहा है। दसवीं योजना में 107 मिलियन हैक्टेयर बंजर भूमि को चिह्नित किया गया है जबकि नौवीं पंचवर्षीय योजना में मात्र 27.5 मिलियन हैक्टेयर भूमि का ही विकास संभव हुआ।

II. सामुदायिक प्रयास – देश में बंजर भूमि विकास एवं जल संग्रहण कार्यक्रम बिना जनता की भागीदारी के अधूरे रह सकते हैं। अतः इन कार्यक्रमों को एक नैतिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों के साथ समझ कर प्रत्येक भारतीय नागरिक को इसमें सहयोग देना चाहिए। इसके लिए हम निम्न प्रयास कर सकते हैं –

1. वृक्षारोपण (Plantation) – सघन वृक्ष लगाने से बाढ़ को नियंत्रित करने में सहयोग हो सकता है तथा तेज हवाओं से उपजाऊ मृदा एक स्थान से दूसरे स्थानों पर उड़ जाती है, उसे भी रोका जा सकता है। पेड़ लगाने से वर्षा आती है जिससे सूखे को भी कम किया जा सकता है। अतः हमें अच्छी समझ से वृक्षारोपण एवं उसकी समुचित देखभाल, समय–समय पर पानी देकर वृक्ष वृद्धि बढ़ानी चाहिए। जहाँ पानी कम है, वहाँ कम पानी के क्षेत्र में उगने वाले पादपों को लगाना चाहिए।

वृक्ष लगाना वैसे भी प्रत्येक नागरिक का मूल दायित्व होना चाहिए। अपने जीवन में व्यक्ति जितने वृक्ष लगाकर उनको संरक्षित करता है उसे यह सोचना चाहिए कि उसने उतना ही श्रेष्ठ कर्तव्य पालन किया है।

2. वृक्षों एवं वनों को बचाकर – (By Saving trees and forest) – हमारे आसपास लगे हुए वृक्षों एवं वनों का संरक्षण करके, उनको समय–समय पर यदि आवश्यक हो तो सामूहिक प्रयास करके पानी भी पिलवाए तो यह एक बहुत अच्छा कार्य बंजर भूमि को बढ़ने से रोकने के लिए हो सकता है।

3. नई वाटिकाएं या नए बस्ती वन लगाकर (By growing new gardens and colony forest) – नए बस्ती वन एवं वाटिकाएं बनाकर उनका संरक्षण करके बंजर भूमि को बढ़ने से रोका जा सकता है। इसके लिए आवश्यक हो तो वनकर्मियों से सहयोग

लिया जाना चाहिए।

जैसे अनेक व्यक्ति मन्दिर निर्माण करवाते हैं अथवा कोई अपने पुरखों की याद में कोई भवन बनाता है या ओर कोई निर्माण करवाता है तो उसे समझाकर नया बगीचा या नया कोई स्मृति वन लगाने का आग्रह करना चाहिए।

4. कचरा डालने के स्थान को विकसित करके (By development of dumping place) – कचरा डालने का स्थान यथासंभव छोटा हो, चाहे उसे एक कचरा डालने का टैंक रूपी बनाया जा सकता है तथा वहाँ पर कचरे को भी अलग–अलग भागों में बांट कर उसका निस्तारण करना चाहिए। जैसे प्लास्टिक की थैलियाँ एवं प्लास्टिक के सामानों को अलग स्थान पर इकट्ठा करना चाहिए। कागज, कपड़े, कांच एवं जो शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं उनको अलग स्थान पर डाले, जैविक कचरा जैसे पेड़ों की पत्तियाँ, सब्जी के बचे भाग, रोटियाँ, फलों के बचे भागों को गाय या पशुओं के लिए अलग स्थान पर डालना चाहिए। बाकी अन्य प्रकार के कचरे को अलग से डालना चाहिए। अपनी बस्ती या गांव में कचरे के निस्तारण के लिए सभी में सोच नई डाले एवं समय–समय पर विद्वानों द्वारा गोष्ठी कराकर लोगों को कचरा निस्तारण के तरीके समझाए जाने चाहिए। अपने कार्यालयों एवं कर्मस्थली पर भी इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।

प्लास्टिक की बनी थैलियों का उपयोग नहीं करना चाहिए। औद्योगिक कचरा भी ठीक से नियंत्रित तरीके से एक विशेष खण्ड में ही डालना चाहिए। औद्योगिक घरानों को इसकी विशेष चिंता करनी चाहिए।

5. रसायनों एवं कीटनाशकों का उपयोग न करके (No use of chemicals and pesticides) – अधिकतर कृषि भूमि का बंजर भूमि में बदलने का मुख्य कारण रसायनों एवं रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करना है। अतः सभी सजग एवं पढ़े–लिखे नागरिक अपने आसपास के एवं जानकार किसानों को समझाने का प्रयास करें कि वो कृषि भूमि में रसायनों एवं खाद तथा रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग ना करें। इससे पशु–पक्षियों की भी सुरक्षा होगी तथा फसले भी अधिक गुणकारी मिलेगी।

6. जल संग्रहण करके (Water harvesting) – बाढ़ के क्षेत्रों में सामुदायिक एवं बस्ती के सहयोग से जल संग्रहण क्षेत्र बनाकर एवं किसान अपने–अपने खेत में यथासंभव जल संग्रहण का काम करके बाढ़ की गति को भविष्य में कम कर सकते हैं। अपने–अपने घरों, कार्यालयों, सामुदायिक भवनों में वर्षा जल का संग्रहण करके बाढ़ के खतरे को काफी हद तक कम कर सकते हैं। इससे पीने के पानी की समस्या का भी निदान हो सकता है। जहाँ पानी कम है वहाँ बूंद बूंद प्रणाली से सिंचाई करनी चाहिए। पानी का मितव्ययता से उपयोग करना चाहिए।

7. मृदा की जांच कराकर (By soil testing) – मृदा की समय–समय पर जांच करवाकर उसका आवश्यकतानुसार मृदा में अन्य खाद या पदार्थ या अन्य फसल उगाकर उसका उचित निराकरण या उपचार भी किया जा सकता है एवं भूमि को बंजर होने से बचाया जा सकता है। यदि भूमि लवणीय है तो उसका भी निदान वैज्ञानिक तरीके से होता है।

8. झूमिंग कृषि को बंद करके (By stopping jhuming cultivation) – पहाड़ी क्षेत्रों में झूमिंग खेती को पूर्णतया बंद करके भी भूमि को बंजर होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए इच्छाशक्ति होना अनिवार्य है।

आपदाएं एवं उनका प्रबन्धन (Disasters and their Management)

पृथ्वी पर अनेक बार कुछ ऐसी घटनाएं घटती हैं जो विनाश करती है। ये घटनाएं आपदाएं कहलाती हैं। इनसे प्रकृति के जैविक घटक एवं अजैविक घटक दोनों प्रभावित होते हैं। लेकिन ज्यादा जैविक घटक प्रभावित होते हैं। ये घटनाएं इतनी ताकत से घटती है कि इनको रोकना एवं इनका सामना करना असंभव है।

ये आपदाएं दो प्रकार की संभव है–

I. प्राकृतिक आपदाएं (Natural Disasters)

II. मानवीय कृत आपदाएं (Human made Disasters)

I. प्राकृतिक आपदाएं (Natural Disasters)

1. भूकम्प (Earthquake)
2. भूस्खलन (Landslides)
3. अकाल (Drought)
4. बाढ़ (Flood)
5. आग (Fire)
6. ज्वालामुखी (Volcano)
7. चक्रवात (Cyclone)

II. मानव कृत आपदाएं (Human made Disasters)

1. **नाभिकीय दुर्घटनाएं (Nuclear accidents)**

I. प्राकृतिक आपदा (Natural Disaster)

प्रकृति में अनेकों घटनाएं घटती रहती हैं, कुछ तो हमें प्रसन्नता देने वाली एवं कुछ हमें दुःख दर्द देती हैं। जो दुःख दर्द देती हैं वे घटनाएं प्राकृतिक आपदाएं कहलाती हैं। प्राकृतिक आपदाएं सदैव प्रकृति में उथल–पुथल करती हैं। मानवीय शक्ति, वैज्ञानिक शक्ति सभी प्राकृतिक आपदाओं से संघर्ष करने में सक्षम

नहीं होती एवं मानव प्राकृतिक आपदाओं के समक्ष असहाय हो जाता है। ऐसी प्राकृतिक आपदाएं हैं जैसे भूकम्प, भूस्खलन, बाढ़, आग, अकाल, चक्रवात आदि।

भूकम्प
(Earthquake)

हमारी पृथ्वी का स्थलीय एवं समुद्रों का भी जो गर्तिय भाग है वे विशेष परतों के द्वारा निर्मित है। पृथ्वी की ये परतें कालान्तर में बनी। ठीक जैसे गरम दूध पर मलाई की परत जमती है, उसी प्रकार पृथ्वी के धरातल परन्तु इनमें भी कई अन्य परतें बनी। वैसे भूगोलवेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी की अनेक परतें हैं।

इनकी एक विशेषता यह है कि इनमें प्रत्यास्थता का गुण होती है यानि ये ज्यादा कठोर नहीं होती इनमें ऊर्जा भी होती है। इसे प्रत्यास्थता तनाव ऊर्जा कहते हैं। ये भी कई प्रकार की हैं जैसे महाद्वीपीय परतें या प्लेटें, उपमहाद्वीपीय परतें या इनसे भी छोटी अन्य परतें। ये सभी तैरती हुई अवस्था में होती हैं। एक दूसरे के पास–पास स्थित परतें सामान्यतया एक–दूसरे से टकराती नहीं है परन्तु अनेक बार अनेकों कारणों से ये परस्पर टकराती है। इससे ऊर्जा मुक्त होती है वैसे जब ये परतें टकराती है तो इनमें दरारें भी पड़ती है, घर्षण भी होता है। दरारें पड़ने व घर्षण इत्यादि से ऊर्जा उत्पन्न होती है जो तरंगों में बदलकर भूकम्प का कारण बनती है। वैसे इस ऊर्जा का मात्र 10% भाग ही भूकम्प का कारण बनता है। इसमें से ज्यादा ऊर्जा तो भूखण्ड को तोड़ने में, उस स्थान का ताप बढ़ाने में ही खर्च हो जाती है। वैसे भूकम्प भूमि के अन्दर भारी मात्रा में गैस प्रवास, ज्वालामुखी, भूस्खलन या नाभिकीय परीक्षणों से भी होता है।

भूकम्प जहां से शुरू होता है वे मुख्य केन्द्र (Central point) या फोकस केन्द्र (Focus center) या हाइपो सेन्टर (Hypo center) तथा भूमि के ठीक ऊपर उपस्थित बिन्दु अधिकेन्द्र कहलाता है।

विज्ञान की वह शाखा जिसमें भूकम्पों का अध्ययन किया जाता है भूकम्प विज्ञान (Seismology) कहलाती हैं। भूकम्पों को पारम्परिक रूप से सीस्मोमीटर (Seismometer) से नापा जाता है। ये भूकम्प का क्षण परिमाण (Moment magnitude) के रूप में मापा जाता है। इसे रिक्टर (Richter) में मापा जाता है। यदि 3 या इससे कम रिक्टर का भूकम्प है तो वे इम्परसेप्टीबल (Imperceptible) या कम परिमाण का भूकम्प होता है। 3 से 7 रिक्टर तक का भूकम्प मध्यम प्रकार का तथा 7 से ज्यादा रिक्टर परिमाण का भूकम्प तेज भूकम्प कहलाता है। इससे पृथ्वी पर आए झटकों का परिमाप मरकेली स्केल (Mercalli scale) पर नापते हैं। भूकम्पों की भविष्यवाणी करना असंभव है।

उथले और गहरे केन्द्र का भूकम्प

सामान्यतया भूकम्प 10 कि.मी. तक की गहराई तक नहीं आता है। यह 70 कि.मी. की गहराई में शुरू होते हैं, जिनको छिछले केन्द्र के भूकम्प कहते हैं। 70 कि.मी. से 300 कि.मी. की गहराई वाले भूकम्प ''मध्य केन्द्रीय भूकम्प'' अथवा ''अन्तर मध्य केन्द्रीय भूकम्प'' कहलाते हैं। मध्य केन्द्र में पुरानी और ठण्डी परतें अन्य प्लेटों के नीचे खिसक जाती है जैसे टेक्टोनिक प्लेट। इससे भी 700 कि.मी. से नीचे जो कि सीस्मिक रूप से सक्रिय वाडाती बेनिऑफ क्षेत्र (Wadati-Benioff zone) है, वहां के भूकम्प गहरे केन्द्रीय भूकम्प (Deep focus earthquake) कहलाते हैं।

भूकम्प और ज्वालामुखी गतिविधि

भूकम्प अक्सर ज्वालामुखी क्षेत्रों में भी उत्पन्न होते हैं, यहां इनके दो कारण होते हैं टेक्टोनिक दोष तथा ज्वालामुखी में लावा (Magma) की गतियां, ऐसे भूकम्प ज्वालामुखी विस्फोट की पूर्व चेतावनी हो सकती है।

भूकम्प समूहों

एक क्रम में होने वाले अधिकांश भूकम्प, स्थान और समय के संदर्भ में एक–दूसरे से संबंधित हो सकते हैं।

भूकम्प तूफान

कई बार भूकम्पों की एक श्रृंखला भूकम्प तूफान (Earthquake storm) के रूप में उत्पन्न होती है। जहां भूकम्प समूह है, दोष उत्पन्न करता है। प्रत्येक झटके के तनाव का पुनर्वितरण होता है। ये बाद के झटके (After shock) के समान है लेकिन दोष का अणुगामी भाग है, ये तूफान कई वर्षों की अवधि में उत्पन्न होते हैं और कई बाद में आने वाले भूकम्प उतने ही क्षतिकारक होते हैं जितने कि पहले वाले। इस प्रकार का प्रतिरूप तुर्की में 10वीं सदी में देखा गया जहां लगभग एक दर्जन भूकम्पों के क्रम में उत्तर (Anatolian) दोष (North Anatolian Fault) पर प्रहार किया, इसे मध्य पूर्व में भूकम्प के बड़े, गुच्छों के रूप में माना जाता है।

भूकम्प के प्रभाव

1. झटके और भूमि का फटना – भूकम्प झटके और भूमि का फटना व अन्य कठोर संरचनाओं को कम या अधिक गंभीर नुकसान पहुंचाती है। स्थानीय प्रभाव की गंभीरता भूकम्प के परिणाम (Magnitude) के जटिल संयोजना पर भूकम्प केन्द्र (Epicenter) से दूरी पर और स्थानीय भूवैज्ञानिक व भूआकारिकीय स्थितियों पर निर्भर करती है। जो तरंग के प्रसार को कम या अधिक कर सकती है।

दोष सतह के किनारे पर भूमि की सतह का विस्थापन व भूमि का फटना दृश्य है, ये मुख्य भूकम्पों के मामलों में कुछ मीटर तक

हो सकता है। भूमि का फटना प्रमुख अभियांत्रिकी संरचनाओं जैसे बाधों (Dams), पुल (Bridges) और परमाणु शक्ति स्टेशनों (Nuclear power Stations) के लिए बहुत बड़ा जोखिम है।

2. भूस्खलन और हिम स्खलन – भूकम्प, भूस्खलन और हिमस्खलन पैदा कर सकता है, जो पहाड़ी और पर्वतीय इलाकों में क्षति का कारण हो सकता है।

एक भूकम्प के बाद किसी लाइन या विद्युत शक्ति के टूट जाने से आग लग सकती है। यदि जल का मुख्य स्रोत फट जाए या दबाव कम हो जाए तो एक बार आग शुरू हो जाने के बाद इसे फैलने से रोकना कठिन हो जाता है।

3. मिट्टी द्रवीकरण (Soil liquefaction) – मिट्टी द्रवीकरण तब होता है जब झटकों के कारण जल संतृप्त दानेदार पदार्थ अस्थायी रूप से अपनी क्षमता को खो देता है और ठोस से तरल में रूपान्तरित हो जाता है। मिट्टी द्रवीकरण कठोर संरचनाओं और पुलों को द्रवीभूत में झुका सकता है या डूबा सकता है।

4. सुनामी – समुद्र के भीतर भूकम्प के कारण हुए भूस्खलन में टकराने से सुनामी आ सकते हैं। उदाहरण – 2005 हिन्द महासागर में आए भूकम्प से सुनामी आई थी।

5. बाढ़ – यदि बांध क्षतिग्रस्त हो जाए तो बाढ़, भूकम्प का द्वितीयक प्रभाव हो सकता है। भूकम्प के कारण भूमि फिसल कर बांध की नदी में टकरा सकती है, जिसके कारण बांध टूट सकता है और बाढ़ आ सकती है।

6. मानव प्रभाव – भूकम्प रोग, मूलभूत आवश्यकताओं की कमी, जीवन की हानि, उच्च बीमा प्रीमियम, सामान्य सम्पत्ति की क्षति, सड़क और पुल का नुकसान और इमारतों को ध्वस्त होना या इमारतों के आधार का कमजोर हो जाना, इन सबका कारण हो सकता है, जो भविष्य में फिर से भूकम्प का कारण बनता है।

भूकम्प से बचाव के लिए तैयारियां

1. जब भूकम्प आए तो कम से कम नुकसान हो इसके लिए मकान एवं कार्यालयों को भूकम्परोधी तरीके से बनाया जाना चाहिए। एक मकान से दूसरे मकानों के बीच पर्याप्त दूरी भी हो जिससे एक मकान को यदि भूकम्प से नुकसान हो तो वे दूसरे मकान को नुकसान ना पहुंचा पाए। मकानों के पास पर्याप्त खुला स्थान भी होना चाहिए।
2. यदि भूकम्प आए तो मकानों के कोनों में जान बचाने के लिए छुपा जा सकता है।
3. भूकम्प आए तो बिना घबराए यथासंभव जितना जल्दी हो सुरक्षित स्थान की तरफ जाना चाहिए। दूसरे व्यक्तियों की भी सुरक्षा को देखते हुए उन्हें भी सुरक्षित स्थानों पर जाने के लिए कहना चाहिए।
4. अनेकों व्यक्ति भूकम्प से घबरा जाते हैं तो उन्हें संबल देना चाहिए।
5. यदि ऐसा लगे कि भूकम्प ज्यादा नुकसान देने वाला है तो बिना किसी की प्रतीक्षा के आत्मविश्वास रखकर स्वयं बचते हुए तुरंत दूसरों की सहायता में लग जाना चाहिए तथा फिर जितना संभव हो दूसरों का आत्मविश्वास जगाकर जो सक्षम लगे उसे भी दूसरों की सहायता के लिए प्रेरित करना चाहिए। घायलों का चिकित्सालय ले जाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

भूकम्प एवं मान्यताएं

- भारतीय संस्कृति के अनुसार जब मानव जाति में दुष्कर्म अर्थात् पाप कर्म अधिक होने लग जाते हैं तो धरती पर भूकम्प आते हैं और नुकसान होता है। क्योंकि पाप से धरती पर वज़न अधिक होता है तथा धरती हिलती है जो भूकम्प होगा।
- नर्स मेथोलॉजी (ईसाई मान्यतानुसार) लोकी नामक अनिष्ट के देवता एवं सुन्दरता तथा प्रकाश के देवता बाल्डर (Balder) में अनबन हो गई। उनमें झगड़ा हुआ तथा देवता लोकी पकड़ा गया उसे एक विषैले सर्पों की गुफा में बन्द कर दिया और उसके सिर पर ये विषैले सर्प अपना विष गिराने लगे लेकिन उसकी पत्नी सिंगी एक कटोरी लेकर उस विष को इकट्ठा करने लगी तथा जब कटोरी भर जाती तो वे उसे खाली करने जाती तथा उस समयान्तराल में जब देवता लोकी पर विष गिरता तो वे उस विष से बचने के लिए अपना सिर हिलाता है तो भूकम्प आते हैं।
- ग्रीक की पुरानी मान्यताओं में एनाक्सागोरस (Anaxagoras) के अनुसार पृथ्वी में बनी गुफाओं में हवा के कारण भूकम्प आते हैं।
- थैलस ऑफ मिलेटस (Thales of Miletus) के अनुसार पानी एवं जमीन में परस्पर तनाव के कारण भूकम्प आते हैं।
- एनाक्सामीन्स (Anaxamines) के अनुसार पृथ्वी में सूखापन और गीलेपन के बीच तनाव से भूकम्पीय तरंगें पैदा होती हैं।
- डेमोक्राइट की मान्यतानुसार भूकम्प के लिए जिम्मेदार पानी है।
- प्लीनी द एल्डर (Pliny the Elder) की मान्यतानुसार भूकम्प धरती की अंदरूनी गूंज है। पुरानी ग्रीक मान्यतानुसार पोजिडन (Poseidon) भूकम्प का देवता है जब उसको क्रोध आता है तो वे भूकम्प पैदा करता है।
- जापानी मान्यतानुसार नमाजू (Namazu) नामंक एक मछली

को कासीमा नामंक देवता जब पत्थर मारता है तो भूकम्प आते हैं।

कुछ आधुनिक अवधारणा वाले कहते हैं कि प्रकृति से छेड़छाड़ से ग्लोबल वार्मिंग हुआ तथा ये भी भूकम्प की ताकत को बढ़ा रहा है।

भूस्खलन (Landslide)

भूस्खलन या Landslide या Landslip एक भूगर्भिक घटनाक्रम (Geological phenomenon) है। इसमें भूमि पर ऊंचाई से नीचे की तरफ भूमि को कोई बड़ा भाग नीचे खिसक या लुढ़क जाता है। जैसे पहाड़ों में ऊपर से नीचे की तरफ अनेकों बार भूमि का हिस्सा, चट्टानें और भी अनेकों वहां की रचनाएं खिसक जाती है या धंस जाती है। ये उस ऊंची या पर्वतीय संरचना के ढलान पर घटने वाली घटना है। ये भूस्खलन मिट्टी, पत्थर व चट्टानों द्वारा जल अवशोषण से भार बढ़ने से होता है। भूस्खलन भी अचानक घटने वाली घटना है जो अनेकों बार अधिक हानिकारक हो सकती है।

भूस्खलन के कारण

प्राकृतिक कारण

- पृथ्वी या भूमिगत जल का दबाव ढलान को अस्थिर कर देता है।
- ढलान पर उगे पादपों का नष्ट हो जाना (जैसे आग से) जिससे वहां की मिट्टी जो उन पादपों की जड़ों से जकड़ी रहती थी ढीली हो जाती है तथा भूस्खलन का कारण बनती है।
- अनेकों बार नदियों या समुद्री धाराओं से किसी ऊंचे स्थान के ढलान में कटाव हो जाता है तथा इससे भी भूस्खलन होता है।
- भूकम्पों से भी भूस्खलन होता है।
- बर्फ पिघलने से जो जल की धारा बनती है उससे भी ढलान में कटाव आ जाता है जो भूस्खलन का कारण बनता है।
- भूकम्प के कारण मिट्टी के कण तरल रूप में आ जाते हैं जिससे भी ढलान कमजोर हो जाती है तथा भूस्खलन हो जाता है।
- ज्वालामुखी के कारण भी भूस्खलन हो जाता है।
- तेज वर्षा के कारण भी भूस्खलन हो जाता है।

मानव की अनेक गतिविधियां भूस्खलन का कारण बनती है जैसे –

- विकास के नाम पर होने वाला वन विनाश भूस्खलन का कारण है।
- कृषि के लिए भी अनेक बार वनों को समाप्त कर दिया जाता है।
- उद्योगों एवं आवागमन के साधनों से उत्पन्न कम्पनों से भी भूस्खलन होता है।
- खनिजों के लिए खोदी गई खानों से भी ढलान में परिवर्तन आता है तथा वे भूस्खलन का कारण बन जाता है।
- निर्माण कार्यों, कृषि तथा वानिकी गतिविधियों से भूमि के जल की मात्रा में परिवर्तन आया है तथा ये भूस्खलन का कारण बनता है।
- अनेकों स्थान पर तो मानव ने अनेक छोटे–छोटे पहाड़ियों को 90% तक खोद लिया जो भी भूस्खलन का कारण बनता है।

भूस्खलन के प्रकार

मुख्यतया भूस्खलन दो प्रकार का होता है–

1. मलबा या कीचड़रूपी भूस्खलन (Debris flow or Mudflow) – जब किसी ढलान की मिट्टी में पानी अधिक हुआ तथा वहां मिट्टी कीचड़ के रूप में बन गई तो ऐसा होकर जो भूस्खलन होता है वे कीचड़ या मलबा रूपी कहलाता है। ऐसी स्थिति में पेड़, चट्टान राह में आने वाले भवन व अन्य भी इसके साथ तेजी से नीचे आ जाते हैं। ये काफी तेजी से या अधिक गति से होता है।
2. भूमि धंसन (Earth flow) – यह एक धीमी क्रिया है। इसमें भूमि की मुख्य मिट्टी और कंकड़, पत्थर ढलान से नीचे गिरने लगते हैं। इस अवस्था में पानी की सामान्य मात्रा होती है जिसमें मिट्टी, कंकड़, पत्थर लसलसे रूप में (Viscus) आ जाते हैं तथा फिर धीरे–धीरे ढलान से ऊपर से नीचे गिरने लगते हैं। इसके गिरने की गति तेज होती रहती है।

अनेकों बार भूस्खलन गतिशील रूप में भी होते हैं। ये छोटी ऊंचाई से भी दूर तक बहती अवस्था में भी हो सकते है। वैसे ये भूस्खलन बहुत धीमा होगा। इसे स्टर्जस्ट्रोम (Sturzstrom) कहते हैं।

अनेकों बार भूस्खलन कुछ डेसीमीटर से कुछ मीटर तक का ही होता है तथा बहुत धीमा होता है। ये सतही या छिछला भूस्खलन कहलाता है।

गहराई में भी अर्थात् पृथ्वी पर उगे पौधों की जड़ें जितनी गहराई होती है उतनी गहरी ज़मीन भी अन्दर से खिसक जाती है।

अनेकों बार समुद्र में भी भूस्खलन होता है। यदि समुद्रों में अधिक तीव्रता से भूस्खलन होता है तो समुद्र में तूफान या सुनामी आती है। अनेकों बार ज्वालामुखियों के कारण भी भूस्खलन होता है।

भूस्खलन के समय

- हमारे घरों के खिड़की दरवाजों के माप बदल जाते हैं। या उनकी चौखटें टेढ़ी–मेड़ी हो जाती हैं।
- पेड़ तिरछे हो जाते हैं।
- अनेकों बार बिजली के खंभे, टेलिफोन के टावर भी तिरछे हो जाते हैं।
- अनेकों बार ज़मीन में दरारें आ जाती हैं।

भूस्खलन होने पर

- अपना आत्मविश्वास ना खोए, स्वयं एवं अन्य आत्मविश्वासी व्यक्तियों के सहयोग से अन्य व्यक्तियों को वहां से सुरक्षित स्थान पर ले जाएं।
- प्रशासन को सूचित करें।
- आवश्यक सामानों को सुरक्षित स्थानों पर ले जाएं।
- पशु–पक्षियों को भी सुरक्षित स्थान पर ले जाएं।

कुछ ऐतिहासिक भूस्खलन

- द गोल्डाउ (Goldau) में 2 सितम्बर 1806 में हुआ।
- द कैप डैमन्ट क्यूबैक में 19 सितम्बर 1889 में।
- कनाडा के एल्बेरटा में फ्रेकस्लाइड जो टरटल पर्वत पर 29 अप्रेल 1903 में।

बाढ़
(Flood)

तेज वर्षा से बाढ़ आती है तो अनेक बार जल के विशाल बांध टूटने से भी बाढ़ आती है। अर्थात् वर्षा प्राकृतिक कारण है तो जलीय स्रोतों का टूटना अप्राकृतिक कारण अनियंत्रित तेज जल प्रवाह बाढ़ कहलाता है। ये ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो प्रकृति में बहुत प्रलय मचाती है। मानव के अलावा ये पादपों एवं अन्य प्राणियों को भी समाप्त कर देती है। इसमें बड़े–बड़े निर्माण ध्वस्त हो जाते है तो अनेकों वन क्षेत्र तथा अन्य स्थल लुप्त हो जाते हैं। हजारों लाखों पशु–पक्षी तथा यहां तक कि जलीय जीव भी मर जाते हैं।

ये आपदा अनेकों बार 5–6 घण्टों की मूसलाधार वर्षा से भी सम्भव है तथा किसी को बचने का भी समय नहीं मिल पाता है। यदि कोई स्थल है जहां बाढ़ आती है तो वहां भूस्खलन का भी संकट रहता है तथा इससे दोहरी प्राकृतिक आपदा हो जाती है। बाढ़ सभी प्रकार के सम्पर्कों को तोड़ देती है चाहे वे आवागमन के मार्गों का सम्पर्क हो, विद्युत सम्पर्क हो, सूचना के सम्पर्क हो सभी टूट जाते हैं यहां तक कि अनेकों बार तो हवाई यात्राएं भी नहीं हो सकती। यहां तक कि अनेकों बार तो लोगों के निवास स्थान भी बह जाते हैं।

बाढ़ के बाद भी उसका प्रभाव कम नहीं होता वहां महामारी फैलने की आशंका बन जाती है। सब तरफ मृत शरीरों का दृश्य दिखने लग जाता है। वहां पुनः स्थिति सामान्य होने में कई महीनों या कभी तो कई वर्षों लग जाते हैं।

बाढ़ से अनेकों बार तो पूरे–पूरे गांव, कस्बे यहां तक कि शहरों का अस्तित्व नष्ट हो जाता है। आधुनिक युग में भी जहां मानवीय सभ्यता साधन सम्पन्न है बाढ़ में चाह कर भी साधनों का उपयोग करके भी वह सहायता नहीं कर सकता सिर्फ मूक दर्शक बन जाता है। जहां ऊंची–ऊंची वैभवशाली बस्तियां होती हैं बाढ़ के बाद वहां खड्डों में भरा कीचड़ और मृत शरीरों का अम्बार दिखता है। इससे उपजाऊ मिट्टी भी कम होती है क्योंकि उपजाऊ मिट्टी जो ऊपरी परत होगी वह बह जाती है। विश्व में अनेकों समय बड़ी–बड़ी बाढ़ें आई जिससे पूरा विश्व हिल गया।

विश्व में उल्लेखनीय बाढ़ों में –

- चीन की पीली नदी या ह्वागही नदी में सामान्यतया बाढ़ आती रहती है। 1931 में आई भीषण बाढ़ में अनेक मौतें हुई।
- 1983 में अमेरिका की भीषण बाढ़ अब तक की आर्थिक रूप से नुकसान करने वाली सबसे भीषण बाढ़ थी।
- 1998 की याग जी नदी (चीन) की बाढ़ ने 1 करोड़ 40 लाख लोग बेघर हुए।
- 2000 में मोजाम्बिक में बाढ़ आई तो तीन हफ्तों तक देश को ढका रखा। लाखों लोग मारे गए।
- 2013 में 21 जून से 24 जून 2013 तक उत्तराखण्ड में केदारनाथ की भारी बाढ़ में 8 लाख से 15 लाख लोग मारे गए। अनेकों कस्बों एवं गांवों का अस्तित्व मिटा गया।
- 2015 में भारत के जम्मू कश्मीर में बाढ़ आई। हजारों व्यक्ति प्रभावित हुए।

बाढ़ के समय क्या करें

- बाढ़ के समय आत्मविश्वास एवं मानसिक स्थिति सकारात्मक रखें तथा अतिशीघ्र सुरक्षित स्थान की ओर निकले एवं अन्य साथियों को भी ले जाएं।
- रस्सी, हथौड़ी, टार्च की व्यवस्था करके बचाव कार्यों में लगे एवं व्यक्तियों को सुरक्षित स्थानों पर ले जाएं।
- चिकित्सा व खाद्य सामग्री की भी उचित व्यवस्था करें।
- तैरना जानने वालों की सहायता लेकर कार्य को आगे बढ़ाते रहे।
- बच्चों एवं महिलाओं को भी प्राथमिकता के आधार पर सुरक्षित स्थानों पर ले जाएं।
- संभव हो तो पशु एवं अन्य जीवों को भी सुरक्षित निकालने की

व्यवस्था करें।

- विद्युत वितरण व्यवस्था यथासंभव बंद करा देवें, संचार व्यवस्था का ठीक से उपयोग कर सकते है तो अच्छा रहता है जैसे चल दूरभाष यंत्र (मोबाइल) से फंसे व्यक्तियों की जानकारी लेकर उनका आत्मविश्वास बढ़ा सकते हैं तथा उनको बचने के निर्देश भी दिए जा सकते हैं जैसे कि उनसे कहे कि किसी ऊंचे स्थान पर जाए।
- रस्सियों एवं लकड़ियों से भी पुलिया बनाई जा सकती है जो उचित स्थान पर बनाकर लोगों को बचाने में एक अच्छा साधन बन सकती है। अंधेरा होने पर टॉर्च का उपयोग कर सकते हैं।
- हथौड़े से सुरक्षित रास्ता बनाने के लिए छोटी–मोटी दीवार या बाधा तोड़ी जा सकती है।
- तुरन्त चिकित्सा व्यवस्था भी कराई जा सके ऐसी भी व्यवस्था हो।

सुनामी (Tsumani)

सुनामी जापानी शब्द है जिसका अर्थ है ''बंदरगाह की निकटवर्ती लहर'' समुद्र में यदि भूकम्प आए या भूस्खलन हो या ज्वालामुखी मानवीयकृत परमाणु बम परीक्षण हो उनसे एक तूफान या चक्रवात उठता है जिसे सुनामी (Tsumani) कहते हैं। सुनामी से समुद्री वनस्पति एवं प्राणियों को तो मृत्यु मिलती ही समुद्र के पास, अनेकों बार तो दूर–दूर तक प्रलय मिलता है।

समुद्र सतह के समानान्तर लहरें आती हैं 17 मीटर तक ऊंची हो सकती है तथा इससे अचानक तूफान आता है जो भारी प्रलयकारी हो सकता है। इसमें अनेकों समुद्री टापूओं, अनेक समुद्री किनारे बसे नगरों के अस्तित्व का संकट हो जाता है। लाखों जीव–जन्तु मृत्यु को प्राप्त होते हैं। आर्थिक संकट भी हो जाता है एवं ये भी किसी को बचने एवं सहयोग करने का अवसर नहीं देती है। इससे अन्य संकट भी उत्पन्न हो सकते हैं जैसे जापान में सुनामी आई वहां परमाणु बिजलीघर नष्ट हुआ जिससे विकिरण की सुनामी ओर आ गई जो पूरी विश्व के लिए चिन्ता का विषय भी बनी।

सुनामी से जब टापूओं या तटीय क्षेत्रों में जब समुद्र के समानान्तर ऊंची लहरें उठती है तो आस–पास की उपजाऊ मिट्टी भी बह जाती है तथा वहां वन क्षेत्र पुनः लगने या कृषि करने में भी समस्या आती है। अनेकों बार तो वहां कई–कई महीनों कीचड़ बन जाता है तथा चारों तरफ बदबू भी आने लग जाती है जो महामारी का कारण हो सकता है।

ज्वारभाटा एवं सुनामी की लहरों में अंतर होता है। ज्वारभाटा की लहरें चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से आती है जो प्रायः छोटी–छोटी लहरें होती हैं। सुनामी की लहरों समुद्र में आए ज्वालामुखी अथवा भूकम्प या अन्य समुद्री भूमि की हलचल के कारण उठती है जो अनेकों किलोमीटर चौड़ी एवं सैकड़ों किलोमीटर लम्बी होती है ये अनेक बार 17 से 20 मीटर ऊंची हो सकती है या समुद्र के समानान्तर उठती है। मानो समुद्र के आसमान में एक नया समुद्र का भाग हो गया हो। जब ये तट पर टकराती है तो प्रलयकारी प्रभाव दिखाती है। इसके लिए आवश्यक है कि भूकम्प या भू हलचलों का केन्द्र समुद्र हो। इसमें समुद्र तल से कोई गैस का रिसाव तेजी से होता है तो भी वहां सुनामी आ सकती है। जैसे 1953 में अलास्का में व 2004 में हिन्द महासागर में सुनामी आई। भूकम्प की तरह इसका भी पूर्वानुमान लगाना असंभव है।

सुनामी के कुप्रभावों से बचने के लिए पूर्व में की गई तैयारियां कुछ सीमा तक बचाव का कारण हो सकती है जैसे –

- तटों पर वृक्षों को लगाना।
- सुरक्षित स्थानों पर ही व्यापारिक एवं अन्य प्रतिष्ठान खोलना।
- सुरक्षित स्थानों पर ही बस्तियां बसाना यदि पूर्व में बस्तियां बसी हुई है तो तटों पर वैकल्पिक सुरक्षा की व्यवस्था करना जैसे ऊंची–ऊंची तटीय दीवारें बनाना, आसपास की बस्तियों को सुरक्षित स्थानों पर पुनर्वास करना।
- सूचना तकनीक के उपयोग में विकास कर आशंका होने पर सतर्कतापूर्वक स्थान खाली करना।
- अनुभवों का उपयोग करके भविष्य की योजना बनाकर सुनामी के प्रभावों से भविष्य में बचा जा सकता है।

आग (Fire)

आग वैसे तो मानव विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान देती है तथा महत्वपूर्ण खोज भी मानी जाती है। परन्तु यही आग जब अनियंत्रित हो जाती है तो हानिकर हो जाती है। वनस्पति एवं प्राणियों के साथ मानव की मृत्यु का कारण बन जाती है। इससे आर्थिक घाटा भी होता है तो यह पर्यावरण को भी घाटा पहुंचा देती है।

आग प्राकृतिक तथा मानवीय या तकनीकी भूल से लग जाती है। प्राकृतिक कारणों में तो बिजली गिरना (Lightning) तथा सूखा (Drought) के कारण जंगल की आग (Wild fire) लग जाती है तथा यह सबसे भयावह आग हो सकती है। इससे वनक्षेत्र नष्ट हो जाते हैं। वहां के निवासी जंगली जानवर तथा निवासी मानव भी नष्ट हो जाते हैं तथा वनस्पति भी पूर्ण नष्ट हो जाती है। ये अनेकों दिनों तक लगती रहती है। इसका फैलाव नगर एवं शहरों तक भी हो सकता है।

सूखा प्राकृतिक आग लगने का दूसरा कारण हो सकता है।

इसमें जब कुछ वनस्पति जैसे घास कुल के पौधे तथा बांस सूख जाते हैं तथा किसी कारण एक पौधा या एक बांस (Bamboo) दूसरे बांस से रगड़ खाते हैं तो आग लग जाती है जो भयावह स्थिति बन जाती है। ऐसा खेतों में भी संभव है। मानवीय भूल में मानव की छोटी सी गलती आग का कारण हो जाती है जैसे मानव बीड़ी–सिगरेट पीने के लिए आग लगाता है तथा उस आग लगाने वाली तिली को सुरक्षित स्थान पर ना फेंक वे चारे में या अन्य आग पकड़ सकने वाले पदार्थ के पास जैसे कपड़ा, कागज, डीजल, पेट्रोल या अन्य पदार्थ के पास फेंक देता है तो आग लग जाती है। अनेकों बार वाहनों के दुर्घटनाग्रस्त होने से भी आग लग जाती है। अनेकों बार मानव खेती करने के लिए वन क्षेत्रों में आग लगाता है जो अनियंत्रित होकर दावानल के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

अनेक बार मानव कचरा जलाने को आग लगाता है तो भी वे बड़ी आग का रूप ले लेती है। खाना बनाने के लिए लगी आग भी भयंकर रूप में आ जाती है। अनेकों बार दंगा करने वाले लोग भी आग लगाते हैं जिससे अनेकों वाहन, दुकानें, बाजार, खेत–खलिहान वनक्षेत्र तथा उद्योगों को नुकसान होता है।

तकनीकी खराबी में विद्युत वितरण के तारों में आग लग जाती है तथा भयावह रूप में आ जाती है तो अनेक बार मशीनों में घर्षण की अधिकता से आग लग जाती है तो अनेक बार गैस सिलेण्डर के रिसाव से आग लग जाती है, अनेकों बार डीजल, पेट्रोल के या केरोसीन के भण्डारों के पास अधिक मोबाइल के उपयोग या अन्य मशीनों या तकनीकी उपकरणों के द्वारा भी आग लग सकती है। प्लास्टिक की बनी वस्तुएं भी छोटी सी त्रुटि के कारण आग पकड़ सकती है। एल्कोहल या उसके उत्पाद भी छोटी सी त्रुटि के कारण जैसे विद्युत स्पार्किंग से आग पकड़ सकते हैं। विशेष रूप से उद्योगों में लगी आग से आर्थिक नुकसान अधिक होता है। आग से जान–माल की हानि हो जाती है। जिसकी पूर्ति करना असंभव हो सकता है।

बचाव के उपाय

- बीड़ी, सिगरेट की आदत कम करके या छोड़कर भी आग लगने से बचाया जा सकता है।
- यदि बीड़ी, सिगरेट या अन्य धूम्रपान करते है तो तिली सुरक्षित रूप से फेंके तथा बीड़ी, सिगरेट का पूरा बंद करके या बुझा के सुरक्षित स्थान पर फेंके।
- यदि कचरा जलाए तो सावधानीपूर्वक जलाएं। बच्चों से कचरा जलाने को ना कहे।
- बिजली के तार अच्छी तरह लगवाए तथा अच्छी तकनीक से बने तारों का उपयोग करें। सभी प्रकार के तारों पर प्लास्टिक या रबर की परत होनी चाहिए।
- कटे–फटे बिजली के तार तुरन्त बदल देने चाहिए।
- वनों में आग ना लग सके इसके लिए वन विभाग के कर्मचारियों को नियमित निगरानी रखनी चाहिए तथा आग से बचने के लिए आवश्यक निर्देशों का स्वयं भी पालन करे तथा वन भ्रमण करने आए पर्यटक या अन्य को भी करने की अपील करनी चाहिए।
- सड़क एवं अन्य आवागमन के मार्गों पर आग से बचने के निर्देशों का भी लिखकर लगाने चाहिए तथा मीडिया एवं अन्य माध्यमों में प्रचार–प्रसार करना चाहिए।
- सभी संभावित क्षेत्रों एवं स्थानों पर अग्निशमन यंत्र होने चाहिए।
- वन सूख रहे तो वहां पर उचित कार्यवाही करके आग से बचने का प्रयास करें। वन्य प्राणियों को विशेष सुरक्षा दे या संभावना होने पर वन्यजीवों का अन्य स्थान पर स्थानान्तरित भी किया जा सकता है।
- आग से बचने के लिए उद्योगों, कार्यालयों, निकायों, स्कूलों, चिकित्सालयों तथा महाविद्यालयों में समुचित व्यवस्था एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम समय–समय पर होते रहने चाहिए।
- डीजल, पेट्रोल, केरोसीन, गैस, प्लास्टिक सामानों के भण्डार बस्ती से दूर सुरक्षित स्थानों पर हो तथा आग लगने पर बुझाने की समुचित व्यवस्था हो। वहां एक अग्निशमन वाहन की वैकल्पिक व्यवस्था तो सदैव रहनी ही चाहिए। पेट्रोल या डीजल, केरोसीन में लगी आग मिट्टी से भी बुझ सकती है तो वहां पर मिट्टी की भरी एक बाल्टियों की व्यवस्था होनी चाहिए।
- कार्यालयों एवं विद्यालयों में प्रवेश एवं निकास की व्यवस्थाएं तथा प्रत्येक कमरे में खिड़की दरवाजे समुचित व्यवस्था में होने चाहिए।

ज्वालामुखी (Volcano)

मानव ने प्रकृति के सामने अपनी अनेकों प्रकार की शक्तियों का प्रदर्शन किया होगा परन्तु प्रकृति की प्रचण्ड शक्ति के सामने मानव की हर शक्ति बौनी हो जाती है। इसी प्रकार की प्राकृतिक शक्ति का रूप है ज्वालामुखी।

ज्वालामुखी पृथ्वी के आन्तरिक गर्म भाग से तेज तापमान के साथ भाप, लावा, धुंआ, पिघली अवस्था में चट्टानें एक दरार से तेज गति के साथ बाहर निकलती है। प्रारंभ में ये एक छोटे कोन जैसी संरचना से निकलता है परन्तु धीरे–धीरे ये एक पर्वताकार रूप में बदल जाती है तथा इससे निकले ये लावा, धुंआ, वाष्प आदि ठण्डे होते रहते हैं एवं पहाड़ों में बदलते रहते हैं।

पृथ्वी के अन्दर गर्म भाग है अनेकों बार समुद्री पानी या अन्य

स्रोत का पानी जब किसी तरीके से गर्म भाग तक पहुंचता है तो पानी वाष्प रूप में आता है तथा जब पृथ्वी की सतह पर दाब कम होता हो भूमि की परत कमजोर होती है तो वह वाष्प एक दरार या छिद्र के द्वारा बाहर आ जाती है तथा साथ में लावा, धुआं और पिघली अवस्था में बाहर निकलता है। छिद्र ज्वालामुखी छिद्र (Volcanic pore) कहलाता है। अनेकों बार पृथ्वी में छिपी गैस का रिसाव भी ज्वालामुखी से होता है।

ज्वालामुखी तीन प्रकार के होते हैं–

1. सक्रिय ज्वालामुखी (Active volcano)
2. प्रसुप्त ज्वालामुखी (Dormant volcano) तथा
3. शान्त ज्वालामुखी (Extinct volcano)

1. सक्रिय ज्वालामुखी – ऐसे ज्वालामुखी जो सदैव लावा एवं धुआं निकालते रहते हैं।

2. प्रसुप्त ज्वालामुखी – ऐसे ज्वालामुखी जिनसे कभी–कभी कुछ लावा, धुआं एवं राख निकलते रहते हैं। वे प्रसुप्त ज्वालामुखी कहलाता है।

3. शान्त ज्वालामुखी – ये ज्वालामुखी पूर्व में सक्रिय थे परन्तु कई वर्षों से इनमें से ना तो लावा निकलता है और ना ही राख, धुआं आदि। भविष्य में भी कम संभावना होती है कि ये सक्रिय हो तो इसे शान्त ज्वालामुखी कहते हैं।

जब ज्वालामुखी सक्रिय होते हैं तो इनसे तेज गति से लावा, धुआं, राख इतना निकलता है कि अनेक कि.मी. वर्ग क्षेत्र में ये फैल जाता है तथा वहां जीवन दूभर कर देता है। अनेक बार तो जान–माल का नुकसान हो जाता है। अनेको जंगली पशु–पक्षी यहां तक कि पालतु पशु–पक्षी भी मारे जाते हैं। अनेक बार मानव भी इसमें मारा जाता है। इनकी क्षमता के आधार पर हवाई, स्ट्रम्बोली, वल्कोनी, पिलियल तथा विसूवियस तुल्य ज्वालामुखी।

संसार में अधिकांश ज्वालामुखी दो प्रधान मेखलाओं में पाये जाते हैं – 1. परिप्रशान्त मेखला एवं 2. मध्य महाद्वीपीय मेखला।

1. परिप्रशान्त मेखला के ज्वालामुखी – संसार में अधिकांश ज्वालामुखी प्रशान्त महासागर के किनारे–किनारे पाये जाते हैं। ये परिप्रशान्त मेखला वाले ज्वालामुखी होते हैं।

2. मध्य महाद्वीपीय मेखला के ज्वालामुखी – ये ज्वालामुखी पश्चिम में आइसलैण्ड से लेकर पूर्वी म्यांमार तक पाये जाते हैं। ये अल्पाइन पर्तों के सहारे फैली हुई पट्टी है। इसके अतिरिक्त अंधमहासागर के मध्यवर्ती कटक और पूर्वी अफ्रीका की दरार घाटी के सहारे भी ज्वालामुखी पाये जाते हैं।

ज्वालामुखी विस्फोट के साथ फटते है तो साथ–साथ भूकम्प भी आते हैं। इससे सल्फरडाईऑक्साइड, हाइड्रोजन क्लोराइड जैसी गैसों का रिसाव भी होता है। इनमें हाइड्रोजन–डाई–ऑक्साइड और कार्बन डाईऑक्साइड अति दुखदायी होती है। ये वातावरण को प्रदूषित करती है। ज्वालामुखी से खनिज पदार्थ भी निकलते हैं। इनसे काली, पीली, लाल मिट्टी भी निकलती है।

अमेरिका के एडिस पर्वतमाला को ज्वालामुखी पर्वतमाला श्रेणी का पर्वत माना गया है। ये काली मिट्टी से बने तटों के लिए प्रसिद्ध है। ये तट ज्वालामुखी से निकले खनिज ही है। ज्वालामुखी पृथ्वी की गहराई ये छिपे खनिजों को बाहर लाता है। अभी भी पृथ्वी पर 1500 सक्रिय ज्वालामुखी है।

ज्वालामुखी पर्वत दो प्रकार के हैं – 1. जीवित ज्वालामुखी पर्वत जैसे माउण्ट एटना 2. मृत ज्वालामुखी पर्वत जैसे हमारा हिमालय। इसलिए हमें इससे कोई संकट नहीं है। मगर माउण्ट एटना जो कि जीवित ज्वालामुखी पर्वत है जिनसे समय–समय पर लावा निकलता है। एशिया के इण्डोनेशिया में सबसे अधिक ज्वालामुखी है। ज्वालामुखी महासागरों में भी होते हैं। समुद्र में 10000 (दस हजार) ज्वालामुखी मौजूद है। ये सुनामी का कारण बनते हैं। अनेकों ज्वालामुखी आज भी वैज्ञानिकों की दृष्टि से बचे हुए हैं।

इण्डोनेशिया समेत अनेक देशों में आई सुनामी का कारण ज्वालामुखी (समुद्री ज्वालामुखी) था। सबसे बड़ा ज्वालामुखी (समुद्री) हवाई द्वीप में है। इसका नाम मोनालो है। ये करीब 13000 फीट ऊंचा है। यदि इसे समुद्र से निकाला जाए तो ये 29000 फीट का हो जाए। जो माउण्ट एवरेस्ट से भी ऊंचा हो जाए। इसके बाद सिसली के माउण्ट एटना का नाम आता है ये संसार का सबसे पुराना ज्वालामुखी है। ये 3500 वर्ष पुराना है। एक ज्वालामुखी है स्ट्रोमबोली इसे लाइट हाउस ऑफ मेडिटेरियन कहा जाता है क्योंकि यह हर समय लावा निकालता रहता है।

ज्वालामुखी एवं तबाही

ज्वालामुखी प्रारंभिक समये से ही पेड़–पौधों एवं प्राणियों के लिए हानिकारक रहे हैं। इनसे सैकड़ों वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में पादप प्राणी मारे जाते हैं।

ज्वालामुखी से होने वाली तबाही का इतिहास काफी पुराना है। 1994 में मरपी नामक ज्वालामुखी फटने से हजारों लोगों की जान गई थी। मरपी का अर्थ है – माउण्ट ऑफ फायर। अकेले अमेरिका के 48 राज्यों में करीब 40 से अधिक जीवित ज्वालामुखी मौजूद हैं। इन आग बरसाते पर्वतों में अमेरिका का रैनियर प्रमुख है। इसके फटने का अभी तक कोई इतिहास नहीं है। मगर इसके बावजूद यहां से काफी समय से जहरीला धुआं और गैस बाहर आ रही है। इसलिए यह कभी भी खतरनाक साबित हो सकता है। 1984 में कोलम्बिया में ज्वालामुखी के फटने से ही करीबन 25,000

से अधिक की जानें गई थी। ऐसा ही हादसा 1814 में इण्डोनेशिया में हुआ जिसमें करीब 50,000 लोगों ने अपनी जान गंवाई थी। अमेरिका में माउण्ट लेन के फटने से भी ऐसा ही हादसा पेश आया था। आज भी पृथ्वी पर कहीं कोई ना कोई ज्वालामुखी अपने होने का आभास कराता रहता है।

पृथ्वी पर उपस्थित ज्वालामुखी अधिकतर दस हजार वर्षों से लेकर एक लाख वर्ष पुराने हैं। ज्वालामुखी से अनेक बार विषैली गैसों का भी रिसाव होता है जो लोगों एवं पादप प्राणियों सबके लिए घातक होती है।

चक्रवात (Cyclone)

प्रकृति में अनेकों प्रकार की घटनाएं घटती रहती हैं। कभी भूकम्प तो कभी ठण्डी बर्फ गिरना तथा कभी गर्मी आना। इनमें से एक घटना है चक्रवात।

चक्रवात एक ऐसा बंद परिपत्र है जिसका तरल पदार्थ पृथ्वी के समान एक ही दिशा में चक्कर लगाता रहता है। इसमें आमतौर पर हवा सर्पिल आकार में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणावर्त और दक्षिणी गोलार्द्ध में वामावर्त रूप में घूमती है।

बड़े चक्रवात वाले परिसंचरण लगभग हमेशा कम वायुमण्डलीय दबाव के क्षेत्रों पर केन्द्रित रहते हैं। सबसे बड़ी कम दबाव वाली प्रणालियां कोर ध्रुवीय चक्रवात और अतिरिक्त उष्ण कटिबंधीय चक्रवात कहलाती है जो साइनोपटिक पैमाने पर रहती है। गर्म सत् चक्रवात जैसे उष्ण कटिबंधीय चक्रवात मेसोसैक्लोनेस और ध्रुवीत कम छोटे मेसोस्केल के भीतर रहती है। कटिबंधीय चक्रवात मध्यवर्ती आकार के होते हैं। ये चक्रवात पृथ्वी के बाहर अन्य कारण से होता है। बड़े चक्रवात वाले परिसंचरण लगभग हमेशा कम वायुमण्डलीय दबाव के क्षेत्रों पर केन्द्रित रहते हैं।

साइक्लोजेनीसिस चक्रवात गठन और उत्कटता की प्रक्रिया के बारे में बताते है। चक्रवाती अंश अतिरिक्त उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बड़े अक्षांशों वाले तापमान पर तरंगों का रूप धारण करते है जिन्हें बरोक्लिनिक क्षेत्र कहा जाता है। यही क्षेत्र संकुचित होकर जब चक्रवातीय परिसंचरण में बन्द होते है या उग्र रूप धारण कर लेते हैं तब वातावरण चक्रवात आता है। कच्चे घरों एवं झोंपड़ियों के छत्त–छप्पड़ उखड़ जाते हैं। भारत में अंधड़/झक्कड़ आना एक आम बात है। मई एवं जून के महीने में यह अक्सर आते हैं। आंधी की अपनी लाभ एवं हानियां होती हैं।

राजस्थान एक रेगिस्तान है इसके रेतीले मैदान मीलों फैले हैं। इसमें भी अंधड़ आते हैं तो कभी काली–पीली आंधी। राजस्थान में मान्यता है कि जितनी आंधियां आएगी उतनी बारिश भी आएगी। मौसम अलग घनत्व वाली हवाओं के दो भागों को अलग करता है और मौसाभिक घटना में चक्रवात सबसे प्रमुख होता है। हवा के अंश आमतौर पर गंभीर मौसम में तूफान की संकीर्ण पट्टियों के रूप में, कभी–कभी प्रचण्ड रेखाओं के रूप में तो कभी सूखी रेखाओं के रूप में दिखाई देती है, वे पश्चिम में संचलन केन्द्र बनाती है और चक्रवात केन्द्र के पूर्व में रहती है और अधिकतर स्ट्रेटफार्म के रूप में दिखाई देती है। ये चक्रवातीय पथ में ध्रुव की ओर बढ़ती रहती है। बंद केन्द्र चक्रवातीय जीवन चक्र में देर से प्रवेश करते हैं और तूफानी केन्द्र को लपेट लेते हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवाती अंश उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के विकास की प्रक्रिया का वर्णन करता है उष्णकटिबंधीय चक्रवात सार्थक आंधियों की अव्यक्त गर्मी के कारण संचालित होती है।

ब. मानवीय कृत आपदा (Human Mad Disasters)

मानव प्रकृति का एक घटक है एवं सबसे अधिक विकसित प्राणी है। ये अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए अनेक बार प्रकृति में आपदाएं भी उत्पन्न कर सकता है जैसे युद्ध जैसी आपदा। युद्ध में रासायनिक एवं परमाणवीय शक्ति का प्रदर्शन कर प्रकृति में एक बड़ी आपदा उत्पन्न करता आया है। परमाणवीय आपदा उसकी जाने–अनजाने में होने वाली सबसे बड़ी मानवीय आपदा है।

नाभिकीय दुर्घटना (Nuclear Accidents)

मानव द्वारा खोजी गई सबसे महत्वपूर्ण एवं विनाशकारी खोज नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear energy) है। ये जितनी विकास में सहयोगी है उतनी ही विनाश में भी। दुनिया में सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र वही है जिसके पास नाभिकीय ऊर्जा का ज्ञान एवं नाभिकीय ऊर्जा के स्रोत तथा साधन है।

प्रकृति में सौ से अधिक तत्व उपस्थित है इनमें से अनेक तत्व स्वतः ही विकसित होते रहते हैं अर्थात् से बड़े नाभिक वाले, अधिक परमाणु भार वाले तत्व होते हैं जिनके नाभिक टूटते रहते हैं तथा विशेष ऊर्जा को उत्सर्जित करते रहते हैं। इनसे नये छोटे तत्वों का निर्माण भी होता रहता है। ऐसे तत्व रेडियोएक्टिव तत्व (Radioactive element) कहलाते हैं। ये तत्व प्रकृति में पाये जाते हैं लेकिन शुद्ध रूप में लाने के लिए विशेष प्रकार का प्रक्रम अपनाना होता है। जिसकी तकनीकें बहुत कम देशों के पास है।

जब रेडियोएक्टिव तत्वों को शुद्ध रूप में लाते हैं तो इनको विशेष रूप की तकनीकों द्वारा तथा विशेष पात्रों में रखना पड़ता है। शुद्ध रेडियोएक्टिव तत्वों के परमाणुओं से (एल्फा, बीटा एवं गामा) तरंगे निकलती रहती है जो कि विशेष उच्च ऊर्जा के लिए होती है। यदि विशेष ऊर्जा को नियंत्रित करके उसका सकारात्मक उपयोग किया जाता है तो वे मानव का कल्याण करती है लेकिन यही ऊर्जा जब अनियंत्रित हो जाती है तो ये मानव का विनाश कर देती है। उदाहरण के लिए जब रेडियो एक्टिव तत्वों का उपयोग बिजली उत्पादन में किया जाता है तो ये विकास को उच्च गति देता

है तथा यह परमाणु संयंत्र (Atomic Reactor) कहलाता है। लेकिन यही रिएक्टर जब अनियंत्रित हो जाता है तो, महाप्रलय का कारण बनता है। जैसे पानी को इकट्ठा करके बांध, तालाब इत्यादि बनाए जाते हैं तो वे कृषि में सिंचाई के लिए सहायक है। पानी को गिराकर टरबाइन चलाकर विद्युत भी उत्पन्न की जाती है। बांध के पास अच्छे बगीचे लगाने का काम भी हो सकता है एवं ये पर्यटन के लिए भी उपयोगी हो सकता है। लेकिन अचानक ही बांध टूट जाए तो बाढ़ जैसी प्रलयंकारी घटना का भी कारण बन सकता है। ठीक वैसे ही परमाणु बिजलीघर या परमाणु संयंत्र भी विकास एवं विनाश दोनों का कारण बन सकता है।

परमाणु संयंत्र जब खराब हो तो विनाश का कारण बनता है। लेकिन अनेकों देश के वैज्ञानिकों ने परमाणु शक्ति के दुरूपयोग के खातिर परमाणु बमों का निर्माण किया हुआ है। जो अधिक विनाशकारी होता है। जैसे 1945 में अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी नगरों पर परमाणु बम गिराया था तो उस समय पत्थर भी वाष्प में बदल गए थे। अनेक दिनों तक तेज ऊर्जा का पुंज वहां रहा। आज भी वहां की संतानें विकलांग होती है। हिरोशिमा तथा नागासाकी में तो जीव (पादपों एवं प्राणियों) का नामोनिशान ही मिट गया था।

परमाणु संयंत्र के खराब होने या टूट जाने के कारण बहुत बड़ा विनाश होता है। जैसे फुकुसीमा 11 मार्च 2011 को सुनामी से टूटे परमाणु ऊर्जा संयंत्र में विस्फोट हुआ जिसमें 21 हजार से अधिक व्यक्ति मारे गए तथा 30 हजार लापता हो गये।

इसी प्रकार रूस के चेरनोबिल में भी परमाणु संयंत्र दुर्घटना हुई। ये घटना 26 अप्रेल 1986 में घटी जिसमें 31 व्यक्ति मारे गए। जबकि रूस का वह परमाणु बिजलीघर घने जंगल में तथा मानव बस्ती से सैकड़ों किलोमीटर दूर था। अमेरिका के थ्री माइल आइसलैण्ड के परमाणु बिजलीघर में भी 1979 में ऐसी ही घटना घटी थी जिससे भारी जान–माल का नुकसान हुआ था।

सामान्यतया 0 से 10 मिलीसीवर्ट्स तक प्रतिवर्ष सामान्य स्थान पर रहने वालों को संकट से नीचे का माप माना जाता है। यूरेनियम खदान में काम करने वालों की विकिरण ग्राह्यता क्षमता आमतौर पर 20 मिलीसीवर्ट्स होती है। परमाणु विशेषज्ञ मानते हैं कि 150 मिलीसीवर्ट्स की विकिरण कैंसर को उत्पन्न करता है। 1000 मिलीसीवर्ट्स प्रति घण्टे की विकिरण विष या ज़हर पैदा करती है एवं यह विनाश का कारण हो सकती है।

आपदा प्रबंधन
(Disaster Management)

प्राकृतिक और मानवीय कृत आपदाओं से बचना तो काफी कठिन है। परन्तु फिर भी व्यक्ति कुछ सीमा तक अपने आपको सुरक्षित रख सके इसके लिए किये जाने वाले प्रयासों को आपदा प्रबंधन कहते हैं। ये अलग–अलग आपदाओं के लिए अलग–अलग होते हैं।

प्रकृति के जैविक एवं अजैविक घटकों में मानव भी एक जैविक घटक का सदस्य है। अर्थात् मानव भी प्रकृति का एक अभिन्न घटक है तथा ये प्रकृति पर निर्भर भी है तो प्रकृति के संसाधनों का सर्वाधिक दोहन करने वाला भी। प्रकृति में यदि कोई आपदा घटित होती है तो वह भी अन्य घटकों जैसे पादप, प्राणियों की तरह प्रभावित होता है तथा असहाय सा हो जाता है। फिर भी आदिकाल से ही मानव आपदाओं से अपने आपको सुरक्षित रखने के प्रयास करता आया है। जैसे बाढ़ से बचने के लिए ऊंची जगहों पर बस्ती बनाता था। सूखे एवं पानी की कमी से बचने के लिए वर्षा जल को तालाब या बावड़ी या अन्य तरीकों से इकट्ठा करता आया है। सर्दी से बचने के लिए पहनावा एवं खाने–पीने का परिवर्तन करता आया है। चक्रवातों से बचने के लिए अपने आवास स्थानों को सुरक्षित तरीके से बनाता था। आग से बचने के भी प्रयास करता था।

आधुनिक युग में आपदाओं के बचने के लिए विशेष अनुभवों तकनीकों तथा उपकरणों का उपयोग होता है। जिससे त्वरित गति से सहायता मिले सके तथा आधुनिक युग में अनेकों प्रशिक्षित आपदा प्रबंधक तैयार किये जाते हैं। जो आपदा के समय सहायता को निकल पड़ते हैं। आपदा प्रबन्धन में सरकारी व्यवस्था भी होने लगी है तथा अपना एक विशेष आपदा प्रबंधन का बजट भी सरकारें रखती हैं।

आपदा प्रबंधन में प्रभावितों की जान बचाना और उन्हें पुनः मुख्यधारा में लाना प्रमुख कार्य होता है।

आपदा प्रबंधन में सेना, चिकित्सा विभाग, पुलिस, यातायात विभाग, अनेकों आपदा प्रबंधन के लिए बनी एजेन्सियां तथा स्वयंसेवी संस्थाएं संयुक्त रूप से भागीदारी निभाती है। ये भी बाढ़ के समय अलग प्रकार से काम करते हैं, तो भूकम्प के समय अलग प्रकार से तो, आग लगने पर अलग प्रकार से अर्थात् अलग–अलग आपदा में सहायता तथा प्रबंधन अलग–अलग प्रकार से होता है। परन्तु भोजन एवं पुनर्वास सब में होता है। बाढ़ के समय प्रभावितों को बाढ़ प्रभाव क्षेत्र से शीघ्रता से निकाल कर सुरक्षित स्थानों पर ले जाया जाता है। उनको वहां आवश्यकतानुसार चिकित्सा दी जाती है तथा उनके भोजन व पुनर्वास की व्यवस्था की जाती है।

आग लगने पर अग्निशमन यंत्रों से पहले आग बुझाने का और प्रभावित व्यक्तियों को तुरंत वहां से बचा कर निकालते हैं व उनकी चिकित्सा करवाई जाती है तथा आग और आस–पास के क्षेत्रों में ना फैले इसकी भी व्यवस्था की जाती है।

भूकम्प के समय वहां से पीड़ितों को बचाकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचाते हैं तथा मलबे को हटाकर वहां से भी ज़िन्दगियों को बचाने का प्रयास किया जाता है। पीड़ितों के पुनर्वास तथा भोजन की भी व्यवस्था होती है। यही कार्य भूस्खलन के समय होता है।

चक्रवात प्रभावितों में भी प्रभावितों को सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं तथा भोजन पानी की व्यवस्था एवं चिकित्सा की व्यवस्था के पश्चात् पुनर्वास कार्यक्रम होने तक आपदा प्रबंधन चलते हैं।

सूखे की आपदा में वहां पर सर्वप्रथम पीने के पानी एवं खाने की व्यवस्था कराई जाती है। चाहे वहां रेल माध्यम से अन्न एवं जल की व्यवस्था हो अथवा टैक्ट्ररों या अन्य माध्यमों से सहायता पहुंचे वहां सहायता पहुंचाई जाती है। इन स्थिति में पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था कराई जाती है।

परमाणु विकिरण आपदा में भी सर्वप्रथम विकिरण के स्थान से प्रभावितों को दूर सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं तथा प्रभावितों की आवश्यक चिकित्सा एवं पुनर्वास की व्यवस्था की जाती है।

आधुनिक युग में तो आपदा में प्रभावितों की सहायता के लिए पूरे विश्व में सहायता के हाथ उठ जाते हैं। एक देश की अनेकों देश सहायता करते हैं। वे सहायता धन की भी होती है तथा साधनों की भी होती है तथा इसी के साथ प्रशिक्षित कार्यकर्ता आपदा स्थान पर शीघ्रताशीघ्र पहुंचकर कम समय में अधिक पीड़ितों की सहयोग करते हैं।

हर देश में तथा हर देश के हर क्षेत्र में अब स्कूलों से लेकर कॉलेजों तक आपदा प्रबंधन पर शिक्षा दी जाती है। भारत में भी 2003 से स्कूलों के स्तर से ही प्रारंभ हो गई है तथा अनेक स्थानों पर आपदा प्रबंधन की विशेष शिक्षा दी जाती है जो कि डिग्री तथा सर्टिफीकेट कोर्स की शिक्षा होती है।

विशेष प्रबन्धन उपाय

- भूकम्प आने पर सर्वप्रथम खुले स्थानों पर जाने का प्रयास करे अथवा कोण युक्त स्थान पर छिपे। किसी मजबूत टेबल के नीचे भी बचने के लिए बैठा जा सकता है। बिजली एवं गैस बंद करें।
- आग लगने पर शीघ्रता से गैस सिलेण्डरों और अन्य ज्वलनशील पदार्थों को स्थान से दूर ले जाए। स्वयं को भी आग से बचाने के लिए सुरक्षित स्थानों पर भागना चाहिए।
- बाढ़ के समय ऊंचे स्थानों पर जाना चाहिए तथा इस समय सामूहिक झुण्डों में रहना चाहिए। सावधानी एवं आत्मविश्वास के साथ कार्य करना चाहिए। रस्सों का भी उपयोग करके सुरक्षित स्थानों पर जाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पर्यावरण व मानव समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा वेदों, उपनिषदों आदिकाल से ही मानव समाज पर्यावरण की रक्षा करता रहा है।
2. कृषि एवं औद्योगिक विकास, नगरीकरण, खनन आदि कारणों से मानस समाज ने प्रगति तो की है लेकिन इससे संसाधनों का अवनयन हुआ है तथा पर्यावरण के घटकों का ह्रास हुआ है।
3. पर्यावरणीय शिक्षा द्वारा समाज को जन जागृत कर पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण किया जा सकता है।
4. जनचेतना में संचार माध्यम, पर्यावरण क्लब, पर्यावरण विज्ञान केन्द्र, विभिन्न पर्यावरणीय प्रतियोगिताओं के आयोजन द्वारा पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिल सकता है।
5. पर्यावरणीय नैतिकता से तात्पर्य उन नियमों से है जो पर्यावरण व उसके घटकों का उचित व श्रेष्ठ प्रकार से प्रयोग करने की शिक्षा प्रदान करें।
6. चिपको आन्दोलन की शुरूआत राजस्थान के खेजड़ली ग्राम में अमृता देवी द्वारा खेजड़ली के वृक्षों को बचाने के लिए अपने बलिदान से हुई। इस आन्दोलन के प्रणेता श्री सुन्दरलाल बहुगुणा रहे।
7. चिपको आन्दोलन का घोष वाक्य – ''क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी, पानी और बयार, मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रहने के आधार''
8. अरण्य संस्कृति जो भारत की प्राचीन संस्कृति है, इसमें पेड़ पौधों व प्राणियों को उनके पूजा स्रोतों से जोड़कर संरक्षण करने का अभिप्राय से है।
9. वर्षा जल को झील, तालाब, बावड़ी व टांकों आदि में संग्रहित किया जाता है। आजकल सरकार ने नवनिर्मित मकानों में भी छत के पानी को टांके में एकत्रित कर संरक्षित करने का नया प्रावधान किया है।
10. भारत में बंजर भूमि के बढ़ने के अनेक कारण है जिसमें बाढ़, सूखा, भूस्खलन, वनोन्मूलन, झूमिंग कृषि आदि प्रमुख है।
11. प्रकृति में घटने वाली वे घटनाएं जो विनाश करती है वे आपदाएं कहलाती है। आपदाएं प्राकृतिक एवं मानव कृत होती है।
12. प्राकृतिक आपदाएं तो भूकम्प, भूस्खलन, अकाल, बाढ़, आग, ज्वालामुखी, चक्रवात के रूप में हो सकती हैं।
13. युद्ध एवं आण्विक (नाभिकीय) आपदाएं मानवकृत है।
14. पृथ्वी की परतें जब टकराती है तो इससे निकली ऊर्जा से

भूकम्प आते हैं।

15. भूकम्प एवं बरसात, बाढ़ आदि से भूस्खलन होते हैं। ये भी हानिकर है।
16. तेज वर्षा से बाढ़ आती है। जो विनाशकारी होती है। इससे शहर एवं गांव पूर्ण रूप से नष्ट हो सकते हैं।
17. जंगलों में लगी आग या मानव बस्ती में लगी आग भी आपदा होती है। ये सब कुछ नष्ट कर देती है।
18. पृथ्वी के आंतरिक हलचल से ज्वालामुखी फटते हैं।
19. अचानक आए चक्रवात भी एक प्राकृतिक आपदा है जो भयावह रूप धारण कर लेता है। तो अनेक बस्तियां नष्ट हो जाती है।
20. युद्ध में मानव द्वारा नाभिकीय हथियारों के उपयोग से नाभिकीय आपदा आती है। अनेक बार तो नाभिकीय रिएक्टर टूटने के कारण भी नाभिकीय आपदाएं आती हैं।
21. आपदा आने पर व्यक्ति अपने आपको जिन विधियों से सुरक्षित रख सकता है उसे आपदा प्रबंधन कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. पर्यावरण ह्रास के प्रमुख कारण है –
   (अ) वनोन्मूलन (ब) खनन
   (स) औद्योगीकरण (द) उपरोक्त सभी
2. कृषि योग्य भूमि के अवनयन के कारण है –
   (अ) नगरीकरण (ब) औद्योगीकरण
   (स) खनन (द) उपरोक्त सभी
3. विकास की गति बढ़ने के फलस्वरूप क्या हुआ –
   (अ) पर्यावरण समृद्ध हुआ (ब) पर्यावरण सन्तुलन बढ़ा
   (स) पर्यावरण विनाश बढ़ा (द) कोई प्रभाव नहीं
4. राजस्थान में खेजड़ली आन्दोलन किसलिए हुआ –
   (अ) देश की रक्षा हेतु
   (ब) वृक्षों की रक्षा हेतु
   (स) संस्कृति की रक्षा हेतु
   (द) गांव के जल स्रोतों की रक्षा हेतु
5. चिपको आन्दोलन का नेतृत्व किसने किया –
   (अ) सुन्दरलाल बहुगुणा (ब) मेधा पाटकर
   (स) विनोबा भावे (द) बाबा आमटे
6. भारत की सबसे बड़ी मानव निर्मित झील है –
   (अ) नक्की झील (ब) राजसमंद झील
   (स) फतहसागर झील (द) जयसमंद झील
7. कृषि या वन क्षेत्र में वर्षा जल संग्रहण का छोटा स्थल कहलाता है –
   (अ) नाडी (ब) कुआ
   (स) टांका (द) बावड़ी
8. राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड का गठन कब हुआ –
   (अ) 1988 (ब) 1985
   (स) 1982 (द) 1992
9. निम्न में से बंजर भूमि निर्माण में कौनसा कारण मानवीय कारण नहीं है –
   (अ) वनोन्मूलन (ब) झूमिंग कृषि
   (स) भूस्खलन (द) कचरा संग्रहण
10. लावा किसी प्राकृतिक घटना के फलस्वरूप निकलता है –
   (अ) भूस्खलन (ब) भूकम्प
   (स) ज्वालामुखी (द) बाढ़
11. समुद्र के भीतर भूकम्प के फलस्वरूप कौनसी आपदा आती है –
   (अ) बाढ़ (ब) भूस्खलन
   (स) ज्वालामुखी (द) सुनामी
12. निम्न में से कौनसा नाभिकीय दुर्घटना का उदाहरण नहीं है –
   (अ) चेरनोबिल दुर्घटना (ब) थ्री माइल दुर्घटना
   (स) भोपाल त्रासदी (द) उपरोक्त सभी
13. कौनसी आपदा मानव प्रजाति के लिए सबसे घातक होती है –
   (अ) अकाल (ब) बाढ़
   (स) भूस्खलन (द) नाभिकीय आपदा
14. भूकम्प तूफान क्या होते हैं –
   (अ) भूकम्प के बाद के झटके
   (ब) भूकम्प से गिरी मिनारें
   (स) भूकम्पों की एक शृंखला
   (द) भूकम्प पूर्व का वातावरण
15. किसानों के लिए अकाल के बाद कौनसी प्राकृतिक आपदा अधिक चिंता का विषय रहती है –
   (अ) बाढ़ (ब) भूस्खलन
   (स) ज्वालामुखी (द) चक्रवात

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. वनोन्मूलन से क्या तात्पर्य है?

2. स्मृति वन क्या होते हैं?
3. नगरीकरण क्या होता है?
4. उत्तराखण्ड में चमोली आन्दोलन का नेतृत्व किसने किया?
5. भूकम्प की तीव्रता किससे नापते हैं?
6. संसार का सबसे पुराना ज्वालामुखी कौनसा है?
7. चेरनोबिल दुर्घटना किस आपदा का उदाहरण है?
8. बंजर भूमि किसे कहते हैं?
9. पर्यावरणीय नैतिकता किसे कहते हैं?
10. भारत के संविधान में पर्यावरण सुरक्षा के क्या प्रावधान है?
11. अरण्य संस्कृति से क्या अर्थ है?
12. चक्रवात क्यों आते हैं?
13. वर्षा जल पुनर्भरण क्या है?
14. झूमिंग कृषि क्या है?
15. सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम का क्या उद्देश्य था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. खेजड़ली बलिदान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. भूकम्परूपी आपदा पर अपने विचार रखिए।
3. बाढ़ क्यों आती है?इसके कारणों की व्याख्या कीजिए।
4. बंजर भूमि सुधार के क्या तरीके हैं?
5. वर्षा जल संरक्षण के क्या–क्या माध्यम है?
6. चक्रवात क्यों आते हैं?इसके प्रभावों पर प्रकाश डालिए।
7. नाभिकीय दुर्घटनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
8. आपदा प्रबन्धन किसे कहते हैं?
9. सुनामी क्या है?इससे बचने के लिए किये जाने वाले उपायों की विवेचना कीजिए।
10. आग लगने के क्या–क्या कारण है?इससे किस–किस प्रकार की हानि हो सकती है। लिखिए।
11. बाढ़ आने के क्या परिणाम होते हैं?ऐसे समय में क्या करना चाहिए?
12. भूस्खलन के क्या कारण हैं?इसके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
13. स्मृति वन व अरण्य संस्कृति पर टिप्पणी कीजिए।
14. बंजर भूमि सुधार पर सरकार द्वारा किये गये कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।
15. पर्यावरणीय जन चेतना किस प्रकार जागृत की जाती है? लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. पर्यावरण एवं संसाधनों के ह्रास के विभिन्न कारणों पर लेख लिखिए।
2. चिपको आन्दोलन क्या है?
3. निम्न में से किन्हीं दो आपदाओं व उनके प्रबन्धन पर टिप्पणी लिखिए –

   (अ) बाढ़ (ब) भूस्खलन (स) सुनामी
4. वर्षा जल पुनर्भरण के विभिन्न प्रचलित तरीकों एवं आधुनिक टांका पद्धति को विस्तार से समझाइए।
5. बंजर भूमि होने के प्राकृतिक व मानवीय कारणों पर विस्तृत लेख लिखिए।

उत्तरमाला: 1 (द) 2 (द) 3 (स) 4 (ब) 5 (अ) 6 (द) 7 (अ) 8 (ब) 9 (स) 10 (स) 11 (द) 12 (स) 13 (द) 14 (स) 15 (अ)